

प्रकाशक :

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

जोधपुर



शाखा कार्यालय

नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)

☎ : (01462) 251216, 257699, 250328

प्रश्नव्याकरण सूत्र

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य

विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का ५२ वाँ रत्न

प्रश्नव्याकरण सूत्र

अनुवादक एवं विवेचक

रतनलाल डोशी

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म
जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शास्त्रा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-३०५६०१
☎ : (०१४६२) २५१२१६, २५७६६६

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई प्राप्ति स्थान

१. श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ सिटी पुलिस, जोधपुर ॐ 2626145
२. शाखा - श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, ब्यावर
३. महाराष्ट्र शाखा - माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेडकर पुतले के बाजू में, मनमाड
४. कर्नाटक शाखा - श्री सुधर्म जैन पौषधशाला भवन, ३८ अप्पुराव रोड छठा मेन रोड
चामराजपेट, बेंगलोर- १८ ॐ : 25928439
५. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो. बां. नं. २२१७, बम्बई-२
६. श्रीमान् हस्तीमलजी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊसिंग कॉ० सोसायटी ब्लॉक नं. १०
स्टेट बैंक के सामने, मालेगांव (नासिक)
७. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, दिल्ली-६
८. श्री अशोकजी एस. छाजेड, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, अहमदाबाद
९. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, बुलडाणा (महा.)
१०. प्रकाश पुस्तक मंदिर, रायजी मोंढा की गली, पुरानी धानमंडी, भीलवाड़ा ॐ 327788
११. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, इन्दौर
१२. श्री विद्या प्रकाशन मंदिर, विद्या लोक ट्रांसपोर्ट नगर, मेरठ (उ. प्र.)
१३. श्री अमरचन्दजी छाजेड, १०३ वाल टेक्स रोड, चैन्नई ॐ : 25357775
१४. श्री संतोषकुमारजी जैन वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३९४, शापिंग सेन्टर, कोटा ॐ : 2360950

मूल्य : ३५-००

छठी आवृत्ति

१०००

वीर संवत् २५३४

विक्रम संवत् २०६५

मई २००८

मुद्रक : स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ॐ : 2423295

प्रस्तावना

किसी भी धर्म का मुख्य आधार श्रुत-साहित्य है। आचार-विचार, उत्थान तथा तात्त्विक विधि-विधानों की जानकारी श्रुत-साहित्य से ही होती है। श्रुत में भी प्राचीन एवं मौलिक श्रुत-आगम साहित्य का महत्त्व सर्वाधिक है। यह अनन्तज्ञानी, परम वीतरागी, जिनेश्वर भगवन्तों की वाणी है और गणधरादि महापुरुषों के आत्मागम से परम्परागम होती हुई आचार्य श्री देवर्द्धि क्षमाश्रमण द्वारा पुस्तकबद्ध हुई है। प्रत्येक जैनी के लिए आगम श्रुत (सूत्रागम, अर्थागम और उभयागम) आदरणीय है।

सूत्रागम का आधार अर्थागम है। जिनेश्वर भगवन्त की अतिशय-सम्पन्न वाणी से निकले हुए अर्थ को ही गणधर भगवन्त ने श्रुतबद्ध किया है। जिनेश्वर भगवन्तों से उत्पन्न वह अर्थ, उनके श्रीमुख से निकल कर प्रत्यक्ष श्रोताओं को प्राप्त हुआ। उन प्रत्यक्ष श्रोताओं में गणधर भगवन्त सर्वश्रेष्ठ अर्थ-धारक हुए। उन श्रुतकेवली भगवन्तों ने जिनेश्वर के अर्थागम के अल्प भाग को श्रुतबद्ध किया। इससे सिद्ध है कि सूत्र का आधार अर्थ है, अर्थ का आधार सूत्र नहीं है। किन्तु यह ध्यान में रखने की बात है कि अर्थ भी दो प्रकार का होता है। एक अर्थ वह है कि जिसके आधार पर श्रुत-सर्जन होता है और दूसरे प्रकार के अर्थ का आधार 'श्रुत' है। श्रुत को जान कर श्रुतानुसारी अर्थ किया जाता है। प्रथम अर्थ का उद्गम अनन्तज्ञान-दर्शनधर जिनेश्वर भगवन्त हैं, जिसके आधार पर गणधर भगवन्त श्रुत की रचना करते हैं। किन्तु दूसरे अर्थ का सर्जन गणधर भगवन्त रचित उस श्रुत का है जो मति-श्रुत ज्ञान वाले आचार्य करते हैं अर्थात् प्रथम अर्थ सर्वज्ञ सर्वदर्शी का है और दूसरा-मति-श्रुत ज्ञान वाले आचार्य का। प्रथम अर्थ तो नियमतः सर्वमान्य होता है किन्तु दूसरे में नियम नहीं, भजना है। यदि वह अर्थ श्रुत के अनुकूल हुआ, प्रतिकूल नहीं हुआ, तो मान्य होता है और बाधक हुआ, तो अमान्य होता है। बाधक होने का कारण है। श्रुत-सर्जक गणधर भगवन्तों के बाद जो आचार्यादि उस श्रुत का अर्थ करते हैं, उनका ज्ञान एवं क्षयोपशम उतना नहीं होता। समय की दूरी के कारण धारणा में परिवर्तन भी हो जाता है और आचार-विचार में हुई न्यूनता का प्रभाव भी उस अर्थ पर पड़ता है। इन सब में उदयभाव का जोर रहता है। कोई-कोई साहसिक व्यक्ति जान-बूझकर भी अर्थ में गड़बड़ी कर देते हैं। मूल में परिवर्तन भी हुआ है, तब अर्थ परिवर्तन में बाधा ही क्या हो सकती है? अतएव वर्तमान में उपलब्ध अर्थ, प्रथम प्रकार का नहीं, दूसरे प्रकार का है, और उसका आधार श्रुत है। जो लोग दूसरे प्रकार के वर्तमान अर्थ

को प्रथम अर्थ के समान मौलिक एवं परम-मान्य बताने का प्रयत्न करते हैं, वे भ्रम में हैं, अथवा वे चाह कर भ्रम फैलाते हैं। उनके ऐसा करने का कारण प्रायः कमजोरी का बचाव करना है। सत्य बात यह है कि - अर्थ भासइ अरहा.....कह कर जो छद्मस्थों एवं सकषाइयों के किये अर्थों को, अरिहंत-प्ररूपित अर्थ के समान बतला कर पूर्ण रूप से मान्य करने का आग्रह करते हैं; वे सत्य से दूर चले जाते हैं।

अर्थ, शब्द का होता है। अर्थ सामान्य भी होता है और विशेष भी। विशेष अर्थ- निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, अवचूरि, दीपिका, टीका, व्याख्या, विकरण आदि कई नामों से दिया जाता है। जब तक वह विशेष अर्थ, सूत्र के लिए बाधक नहीं बनता, तब तक तो चल सकता है किन्तु जहाँ वह मनमाना चलने लगा कि गड़बड़ी कर देता है। इसलिए सूत्रकार भगवंत ने कहा कि -

“गिरुद्धं वा वि ण दीहइजा”-टीका - “निरुद्धम्-अर्थस्तोकं दीर्घवाक्यैर्महता शब्ददुर्दुणार्कविटपिकाष्टिकान्यायेन न कथयेत् निरुद्धं वा स्तोककालीनं व्याख्यानं व्याकरणतर्कादि प्रवेशनद्वारेण प्रसक्त्यानुप्रसक्त्या ‘न दीर्घयेत्’ न दीर्घकालिकं कुर्यात्, तथा चोक्तम्-“सो अत्थो वत्तव्वो जो भण्णइ अक्खरेहिं शोवेहिं। जो पुण थोवो बहु-अक्खरेहिं सो होइ णिस्सारो।”

अर्थात् - छोटे अर्थ को शब्दाडम्बर से बढ़ावें नहीं। टीकाकार कहते हैं कि जो अर्थ छोटा है, उसे शब्दाडम्बर से बढ़ा कर बड़ा नहीं करें। जैसे कि आकड़े की लकड़ी को-‘अर्कविटपिकाष्टिका’ कह कर व्यर्थ ही शब्दाडम्बर रचने जैसा कार्य नहीं करें अथवा जो बात थोड़े समय में ही पूर्ण होने योग्य है, उसे व्याकरण और तर्कादि के प्रपंच से बढ़ा कर लम्बावै नहीं। कहा भी है कि - ‘साधु वही अर्थ कहे जो अल्प अक्षरों में कहा जाये। जो अर्थ थोड़ा होकर बहुत अक्षरों में कहा जाता है, वह निःसार समझना चाहिए। (सूत्रकृतांग १-१४-२३)

अधिक बोलने या लिखने वाले, भान भूलकर कुछ का कुछ कर बैठते हैं। इसके उदाहरण में ‘ऋषिभाषित’ सूत्र का अनुवाद, ‘अमरभारती’ मासिक-पत्रिका और अमर-साहित्यादि अनेक उपस्थित किये जा सकते हैं। जिनसे अर्थ का अनर्थ हुआ है। अर्थ के नाम पर अधकचरों और स्वच्छन्दों ने कई धांधलियाँ की हैं, जो चिन्ताजनक हैं।

जिनागमों का ज्ञान प्रत्येक जैनी को होना चाहिए। किन्तु खेद है कि बहुत-से साधु-साध्वी भी अपने घर के मौलिक ज्ञान से वंचित हैं। उन्हें मालूम ही नहीं कि हमारे शाही खजाने में कैसे अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। कई दीक्षित होकर प्रखर-वक्ता और सिद्ध-हस्त लेखक बनने और प्रसिद्धि पाने की धुन अपना लेते हैं। हम प्रचार-पत्रों में देखते हैं कि कई छोटे-छोटे साधु और

साध्वियों लेखक बन चुके हैं। उनके विषय भी प्रायः सामान्य और लोक-रंजक तथा व्यर्थ-से रहते हैं। उन्हें लेखक बनने का समय मिल जाता है, परन्तु आगम ज्ञान के अध्ययन का समय नहीं मिलता। उनका पठन, अध्ययन और लेखन प्रायः लौकिक रहता है या एक ही विषय की पुनरावृत्ति होती रहती है।

हमारा समाज श्रावक-वर्ग को भी आगम का अभ्यास करने का अधिकार देता है और यह बात ठीक भी है। कोई गृहस्थ होने मात्र से आगम-पठन से वंचित नहीं हो सकता। मध्य-युग में गृहस्थों के लिए आगम-वाचन का निषेध किया था, यह उचित नहीं था। आचार्य श्रीहरिभद्रसूरिजी ने अपने 'सम्बोधप्रकरण' ग्रंथ के दूसरे 'कुगुरु-गुर्वाभास पासत्थाधिकार' प्रकरण गाथा २६, २७ में श्रावकों का आगम ज्ञाता होना स्वीकार किया है। यथा -

“केइ भणंति उ भणइ, सुहुमविचारो न सावगाण पुरो।

तं न जओ अंगाइसु, सच्चइ तव्वन्नणा एवं ॥ २६ ॥

लद्धट्ठा गहियट्ठा, पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा य।

अहिगय जीवाजीवा, अचालणिज्जा पवयणाओ ॥ २७ ॥”

- कुछ साधु कहते हैं कि “श्रावकों को साधु धर्म का सूक्ष्म विचार नहीं बताना चाहिए”, उनका ऐसा कहना असत्य है। क्योंकि अंगादि शास्त्रों में श्रावकों का वर्णन करते हुए उन्हें आगमों के लब्धार्थ वाले, ग्रहित अर्थ वाले, पृच्छित अर्थ वाले, विनिश्चित अर्थ वाले, जीव-अजीव के ज्ञाता और निर्ग्रन्थ-प्रवचन में दृढ़ बतलाये हैं।

अंतएव श्रावक का आगमों का पठन-मनन अनुचित नहीं है। किन्तु इसमें खतरा अवश्य है और यह खतरा केवल गृहस्थों के सामने ही नहीं, साधुओं के सामने भी है। मति-भिन्नता, क्षयोपशम की मन्दता या उदय की विचित्रता से समझ-फेर होकर हित के बदले अहित होने का भय रहता है। अपेक्षा-युक्त वचनों को नहीं समझने या अपनी मति-कल्पना से अर्थ लगाने से अनर्थ हो सकता है। अयोग्यता भी एक बहुत बड़ा कारण है। कई ऐसे भी पाठक देखे हैं कि जो ऐसे सूत्र पढ़ने बैठ जाते हैं कि जिसे समझने की योग्यता उनमें नहीं है। इसके पूर्व उन्हें सामान्य ज्ञान की आवश्यकता है। केवल पुस्तक से और मति-कल्पना से आगम का आशय बराबर समझ में नहीं आता। इसके लिए अनुभवी गुरु का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है। गुरुगम से प्राप्त किया हुआ ज्ञान हितकारी होता है।

नन्दी सूत्र और समवायांग सूत्र को देखने से मालूम होता है कि प्रारम्भ में प्रश्नव्याकरण सूत्र का स्वरूप ही दूसरा था। उसमें अंगुष्ठ-प्रश्न, बाहुप्रश्न, आदर्श-प्रश्न और अनेक विद्यातिशय तथा

नागकुमार, सुवर्णकुमार आदि के साथ दिव्य-संवाद आदि के पूछे हुए १०८ प्रश्न, बिना पूछे १०८ प्रश्न और पूछे-बिना पूछे १०८ प्रश्न विषयक विवेचन था। किन्तु वर्तमान प्रश्नव्याकरण सूत्र में यह विषय बिल्कुल नहीं है। कदाचित् भावी अहित की आशंका से इस विषयक प्रश्नों को छोड़कर केवल पांच आस्रव और पांच संवर का विषय, किसी प्रौढ़ अनुभवी आचार्य ने रख दिया ह्ये। वर्तमान विषय तो वास्तव में आत्महित में अत्यन्त उपयोगी है। पाप के स्वरूप को समझ कर त्याग करना ही आत्मोत्थान का प्रधान विषय है। अन्य किसी मूल-सूत्र में इतना विशद विवेचन नहीं है।

संस्कृति-रक्षक संघ आगम-ज्ञान का प्रसार करने का प्रयत्न कर रहा है। आगमों के मूल-पाठ, शब्दार्थ, भावार्थ और आवश्यक विवेचन के साथ आगमों के प्रकाशन से, सम्यक् ज्ञान की वृद्धि करना, संघ का ध्येय है। हमारी दृष्टि इस समय प्रश्नव्याकरण सूत्र की ओर गई। हमारा अनुमान है कि इस अंग सूत्र का स्वाध्याय बहुत कम होता है। बहुत से साधु भी इससे अपरिचित से हैं, तब श्रावकों का तो कहना ही क्या? हमारी दृष्टि में इस आगम की एक विशेषता है। इसके प्रथम भाग में पांच आस्रव-द्वारों का और दूसरे में पांच संवर-द्वारों का जो विवेचन है, वह प्रत्येक जैनी के लिए समझने योग्य है। इसके स्वाध्याय से हेय और उपादेय का सरलता से बोध हो सकता है।

इसके सम्पादन का आधार निम्न पुस्तकें रहीं - १. पं० श्री घेवरचन्दजी बांठिया 'वीरपुत्र' द्वारा अनुवादित और श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था बीकानेर द्वारा प्रकाशित प्रति, २. पूज्य श्री घासीलालजी म. सा. की टीका वाली प्रति, ३. पूज्य श्री हस्तीमल जी म. सा. द्वारा अनुवादित और ४. मुक्ति-विमल जैन ग्रंथमाला अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित श्रीज्ञानविमलसूरि की टीका वाला प्रति। इनके आधार से हमने मूलपाठ, शब्दार्थ, मूलानुवाद और विवेचन प्रस्तुत किया है।

हमने इस सूत्र का प्रकाशन लेखमाला के रूप में 'सम्यग्दर्शन' के २०-१-६६ अंक से प्रारम्भ किया था। यह लेखमाला २०-६-७० अंक में पूरी हुई। हमने निवेदन किया था कि विद्वान् पाठक इसे ध्यान पूर्वक पढ़ें और हमें इसमें हुई भूलों से अवगत करावें। किन्तु वैसा नहीं हुआ। हमें आशंका है कि इसमें कई भूलें रही होंगी। विद्वत्ता के अभाव में और अकेले ही काम करने के कारण त्रुटियाँ रही होंगी, जिन्हें पाठक सुधारने और हमें सूचित करने की कृपा करें।

भगवान् महावीर निर्वाण की पच्चीसवीं शताब्दी के उपलक्ष में संघ का यह आगम प्रकाशन धर्मप्रिय पाठकगण के लिए अत्यन्त हितकारी हो।

इसके प्रकाशन में लागत से भी अल्प मूल्य रखने में एक आगमप्रेमी धर्म-बन्धु की उदारता पूर्ण दानशीलता कारणभूत रही है। वे धन्यवाद के पात्र हैं।

- रतनलाल डोशी

इस आवृत्ति के विषय में -

निवेदन

जैन दर्शन के अनुसार जिन महापुरुषों ने अपने प्रबल पुरुषार्थ से तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया उन्हें तीर्थंकर नाम कर्म के उपार्जन के तीसरे भव में तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है। वे अपनी साधना आराधना के बल से चारघाती कर्मों को क्षय करके केवल ज्ञान-दर्शन प्राप्त करते। इसके पश्चात् चतुर्विध संब के हित के लिए धर्मोपदेश देकर तीर्थ की स्थापना करते हैं। उनका वह धर्मोपदेश अर्थ रूप में होता है जिसे गणधर भगवन्त सूत्र रूप में गूथित करते हैं। उनकी वह विमल वाणी जिसे आगम (सूत्र) कहा जाता है। चूंकि यह वाणी राग द्वेष के विजेता सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग प्रभु द्वारा भाषित है, अतएव इसमें किंचित् मात्र भी दोष की संभावना नहीं रहती और न ही पूर्वापर विरोध या युक्तिबाध ही होती है। आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यक निर्युक्ति में लिखा है "तप, नियम, ज्ञान रूप वृक्ष पर आरूढ़ होकर अनन्त ज्ञानी केवली भगवान् भव्य आत्माओं के बोध के लिए ज्ञान कुसुमों की वृष्टि करते हैं। गणधर प्रभु अपने बुद्धि पट में उन सभी कुसुमों को झेल कर प्रवचन माला गूथते हैं।

जैसा कि ऊपर बतलाया कि तीर्थंकर भगवन्त अर्थ रूप ही उपदेश फरमाते हैं, जिसे गणधर भगवन्त सूत्र बद्ध अथवा ग्रन्थ बद्ध करते हैं। अर्थात्मक सूत्र के प्रणेता तीर्थंकर प्रभु हैं। इसीलिए आगमों को तीर्थंकर-प्रणीत कहा है। प्रबुद्ध पाठकों को यह स्मरण रखना होगा कि आगम साहित्य की जो प्रामाणिकता है उसका मूल कारण गणधरकृत होने से नहीं, किन्तु उसके अर्थ के प्ररूपक तीर्थंकर की वीतरागता और सर्वज्ञता के कारण है। गणधर केवल द्वादशांगी की रचना करते हैं किन्तु अंग बाह्य आगमों की रचना स्थविर करते हैं।

आचार्य मलयगिरि आदि का अभिमत है कि गणधर तीर्थंकर भगवन्त के सन्मुख जब यह जिज्ञासा व्यक्त करते हैं कि तत्त्व क्या है? उत्तर में तीर्थंकर "उप्यत्रेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा" इस त्रिपदी का प्रवचन करते हैं। इस त्रिपदी के आधार पर जिन आगम साहित्य का निर्माण होता है, वह आगम साहित्य अंग प्रविष्ट के रूप में विश्रुत होता है और अवशेष जितनी भी रचनाएं

हैं, वे सभी अंग बाह्य हैं। द्वादशांगी त्रिपदी से उद्भूत है, इसीलिए वह गणधर कृत भी है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि गणधरकृत होने से सभी रचनाएं अंग नहीं होती, त्रिपदी के अभाव में युक्त व्याकरण से जो रचनाएं की जाती है, भले ही उन रचनाओं के निर्माता गणधर हो अथवा स्थविर हो वे अंग बाह्य ही कहलायेगी।

आगम साहित्य के जंदा सूत्र में अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य दो भेद किये हैं। उसके पश्चात्पूर्ती साहित्य में अंग-उपांग, मूल और छेद के रूप में आगमों का विभाग किया है। प्रस्तुत "प्रश्नव्याकरण सूत्र" मूल अंग प्रविष्ट आगम है। इस आगम के दो श्रुत स्कन्ध हैं। प्रथम श्रुत स्कन्ध में पांच आस्रव का वर्णन है। इसमें प्रत्येक आस्रव के भेद प्रभेद, किन् कारणों से जीव आस्रव का सेवन आदि करते हैं। यह बतलाया गया है। इनके सेवन का कटु फल बतलाते हुए आगमकार फरमाते हैं कि "अन्तर्मुहूर्त्त" मात्र निकृष्ट मय परिणामों से आस्रव का सेवन करने वाले जीव को सागरोपमों तक दुःख भोगना पड़ता है। बड़ के एक बारीक बीज का वृक्ष कितना विशाल हो जाता है उसके कितने असंख्यात बीज उत्पन्न हो जाते हैं और उसकी परम्परा इतनी बढ़ती रहती है कि जिसका कोई अन्त भी नहीं आता। इसी प्रकार एक मनुष्य भव में किए गए आस्रव के सेवन से आत्मा इतनी अधम बन जाती है कि उस पाप का काला रंग परम्परा से बढ़ता ही जाता है।

आगमकार ने प्रथम श्रुतस्कन्ध में पांच आस्रवों का स्वरूप एवं सेवन का कटु फल बताकर दूसरे श्रुतस्कन्ध में पांच संवर का स्वरूप एवं महत्व बतलाया है, इसकी आराधना का फल बतलाते हुए आगमकार फरमाते हैं "हे उत्तम व्रतों के धारक जम्बू! ये पांच संवर रूपी महाव्रत, समस्त लोक के लिए हितकारी एवं मंगलकारी है। श्रुतसागर में इन महाव्रतों का उपदेश हुआ है। ये पांचों तप संथम और महाव्रत रूप है। शील एवं उत्तम गुणों का समूह इनमें रहा हुआ है। सत्य वचन एवं आर्जवता (सरलता) युक्त ये व्रत नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गति को रोक कर मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। सभी जिनेश्वर भगवन्तों ने इनकी शिक्षा प्रदान की है। ये संवर, कर्म रूपी रज को नष्ट करने वाले हैं। ये सैकड़ों भवों का छेदन कर सैकड़ों दुःखों को मिटाने वाले हैं और सैकड़ों प्रकार के सुखों को प्रदान करते हैं। इन महाव्रतों को कायर जन धारण नहीं कर सकते। इनका पालन सत्पुरुष ही कर सकते हैं। ये पांचों महाव्रत मोक्ष एवं स्वर्ग के प्रदाता हैं। इन पांच महाव्रतों का उपदेश भगवान् महावीर स्वामी ने दिया है।

जिस तरह का पांच आस्रवों और पांच संवरों का विशद वर्णन प्रस्तुत प्रश्न व्याकरण सूत्र में है वैसा वर्णन विस्तृत वर्णन किसी अन्य आगम में नहीं है। अतएव आगम रसिक बंधुओं को इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिये। जिससे वह आस्रवों के कटु फल को जानकर इन्हें छोड़ने के लिए प्रेरित हो सके।

संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन में आदरणीय श्री जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई निवासी का मुख्य सहयोग रहा है। आप एवं आपकी धर्म सहायिका श्रीमती मंगलाबेन शाह की सभ्यगुणों के प्रचार-प्रसार में गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा प्रकाशित सभी आगम अर्द्ध मूल्य में पाठकों को उपलब्ध हो तदनुसार आप इस योजना के अन्तर्गत सहयोग प्रदान करते रहे हैं। अतः संघ आपका आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपके पुत्र रत्न मयंकभाई शाह एवं श्रेयांसभाई शाह भी आपके पद चिन्हों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हों एवं शासन की प्रभावना करते रहें, इसी शुभ भावना के साथ!

प्रश्नव्याकरण सूत्र की पूर्व में पाँच आवृत्तियाँ संघ द्वारा प्रकाशित हो चुकी हैं। अब इसकी यह छठी आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है। आए दिन कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्यों में निरंतर वृद्धि हो रही है। इस आवृत्ति में जो कागज काम में लिया गया वह उत्तम किस्म का मेपलिथो है। बाईडिंग पक्की तथा सेक्शन है। बावजूद इसके आदरणीय शाह परिवार के आर्थिक सहयोग के कारण इसका मूल्य मात्र 34) ही रखा गया है, जो अन्यत्र से प्रकाशित आगमों से बहुत अल्प है। सुज्ञ पाठक बंधु संघ के इस नूतन आवृत्ति का अधिक से अधिक लाभ उठावें।

इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राज.)

दिनांक: २०-५-२००८

संघ सेवक

नेमीचन्द्र बांठिया

अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

विषयानुक्रमणिका

आस्रव नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध

| क्रमांक | पृष्ठ | क्रमांक | पृष्ठ |
|-----------------------------------|-------|---|-------|
| हिंसा नामक प्रथम अध्ययन | | २२. नैरयिकों का बीभत्स शरीर | ३१ |
| १. प्राण-वध का स्वरूप | ३ | २३. नारकों को दिया जाने वाला लोमहर्षक दुःख | ३२ |
| २. प्राण-वध के नाम | ४ | २४. नारक जीवों की करुण पुकार | ३६ |
| ३. पापियों के पापकर्म | ६ | २५. नरकपालों द्वारा दिये जाने वाले घोर दुःख | ३७ |
| ४. जलचर जीवों का वध | ७ | २६. नारकों की विविध पीड़ाएँ | ४१ |
| ५. स्थलचर चतुष्पद जीवों की हिंसा | ७ | २७. नारकों के शस्त्र | ४२ |
| ६. उरपरिसर्प जीवों की हिंसा | ८ | २८. नारकों के मरने के बाद की गति | ४५ |
| ७. भुजपरिसर्प जीवों की हिंसा | ९ | २९. तिर्यच योनि के दुःख | ४७ |
| ८. नभचर जीवों का वध | ९ | ३०. चौरिन्द्रिय जीवों के दुःख | ५२ |
| ९. विकलेन्द्रिय और पशुओं की पीड़ा | १० | ३१. तेइन्द्रिय जीवों के दुःख | ५२ |
| १०. हिंसा के कारण | ११ | ३२. बेइन्द्रियों जीवों के दुःख | ५३ |
| ११. ये दीन एवं असहाय प्राणी | १३ | ३३. एकेन्द्रिय जीवों के दुःख | ५३ |
| १२. पृथ्वीकाय की हिंसा के कारण | १५ | ३४. मनुष्य भव के दुःख | ५७ |
| १३. अप्काय की हिंसा के कारण | १६ | ३५. उपसंहार | ५८ |
| १४. तेजस्काय की विराधना के कारण | १६ | मृषावाद नामक दूसरा अधर्मद्वार | |
| १५. वायुकाय की विराधना के कारण | १७ | ३६. मृषावाद के नाम | ६२ |
| १६. वनस्पतिकाय की हिंसा के कारण | १७ | ३७. मृषावादी | ६४ |
| १७. हिंसक जीवों का प्रयोजन | १९ | ३८. मृषावादी-नास्तिकवादी का मत | ६६ |
| १८. हिंसक जन | २० | ३९. असद्भाववादी का मत | ६८ |
| १९. हिंसक जातियाँ | २३ | ४०. प्रजापति का सृष्टि-सर्जन | ७२ |
| २०. हिंसा का दुःखद परिणाम | २७ | ४१. ईश्वरवादी | ७५ |
| २१. नरक का वर्णन | २८ | | |

| क्रमांक | पृष्ठ | क्रमांक | पृष्ठ |
|---|-------|---|-------|
| ४२. विष्णुमय जगत् | ७६ | ६६. पाप और दुर्गति की परम्परा | १३६ |
| ४३. एकात्मवाद-अद्वैतवाद | ७६ | ६७. पापियों को प्राप्त संसार-सागर | १३९ |
| ४४. अकर्तृत्ववादी | ७७ | ६८. पापियों के पाप का फल | १४४ |
| ४५. मृषावाद | ७९ | अब्रह्मचर्य नामक चौथा आस्त्रवद्धार | |
| ४६. झूठा दोषोरोपण करने वाले निन्दक | ८५ | ६९. अब्रह्म के गुण-निष्पन्न नाम | १५० |
| ४७. लोभजन्य अनर्थकारी झूठ | ८७ | ७०. अब्रह्म सेवी देवादि | १५२ |
| ४८. उभय घातक | ८९ | ७१. चक्रवर्ती के विशिष्ट भोग | १५४ |
| ४९. पाप का परामर्श देने वाले | ९० | ७२. चक्रवर्ती का राज्य विस्तार | १५४ |
| ५०. हिंसक उपदेश-आदेश | ९४ | ७३. चक्रवर्ती नरेन्द्र के विशेषण | १५५ |
| ५१. युद्धादि के उपदेश-आदेश | ९७ | ७४. चक्रवर्ती के शुभ लक्षण | १५६ |
| ५२. मृषावाद का भयानक फल | ९९ | ७५. चक्रवर्ती की ऋद्धि | १५७ |
| ५३. भगवान् से कहा हुआ | १०२ | ७६. बलदेव और वासुदेव के भोग | १६२ |
| ५४. उपसंहार | १०३ | ७७. अकर्मभूमिज मनुष्यों के भोग | १७० |
| अदत्तादान नामक तीसरा अध्यायद्वार | | ७८. अकर्मभूमिज स्त्रियों का शारीरिक वैभव | १७७ |
| ५५. अदत्त का परिचय | १०५ | ७९. पर-स्त्री में लुब्ध जीवों की दुर्दशा | १८३ |
| ५६. अदत्त के तीस नाम | १०७ | ८०. स्त्रियों के लिए हुए जन-संहारक युद्ध | १८५ |
| ५७. चौर्य-कर्म के विविध प्रकार | १०८ | परिग्रह नामक पाँचवां अधर्म द्वार | |
| ५८. धन के लिए राजाओं का आक्रमण | १११ | ८१. परिग्रह का स्वरूप | १८९ |
| ५९. युद्ध के लिए शस्त्र-सज्जा | ११२ | ८२. परिग्रह के गुण-निष्पन्न नाम | १९१ |
| ६०. युद्धस्थल की वीभत्सता | ११४ | ८३. परिग्रह के पाश में देवगण भी बँधे हैं | १९२ |
| ६१. समुद्री डाके | ११८ | ८४. कर्मभूमि के मनुष्यों का परिग्रह | १९५ |
| ६२. ग्रामादि लूटने वाले | १२१ | ८५. विविध कलाएँ भी परिग्रह के लिए | १९६ |
| ६३. चोर को बन्दीगृह में होने वाले दुःख | १२५ | ८६. परिग्रह पाप का कटुफल | २०० |
| ६४. चोर को दिया जाने वाला दण्ड | १२९ | ८७. आस्त्रियों का उपसंहार | २०२ |
| ६५. चोरों को दी जाती हुई भीषण यातनाएं | १३४ | | |

संवर नामक दूसरा श्रुतस्कन्ध

| क्रमांक | पृष्ठ | क्रमांक | पृष्ठ |
|---|-------|--|-------|
| अहिंसा संवरद्वार नामक प्रथम अध्ययन | | १०७. चौथी भावना-भय-त्याग | २४६ |
| ८८. अहिंसा भगवती के साठ नाम | २०५ | १०८. पाँचवीं भावना-हास्य-त्याग | २४७ |
| ८९. अहिंसा की महिमा | २०९ | १०९. उपसंहार | २४९ |
| ९०. अहिंसा के विशुद्ध दृष्टा | २११ | दत्तानुज्ञात नामक तृतीय संवरद्वार | |
| ९१. आहार की अहिंसक-निर्दोष विधि | २१८ | ११०. अस्तेय का स्वरूप | २५१ |
| ९२. प्रवचन का उद्देश्य और फल | २२३ | १११. व्रत विराधक और चोर | २५५ |
| ९३. अहिंसा महाव्रत की प्रथम भावना | २२३ | ११२. आराधक की वैयावृत्य-विधि | २५७ |
| ९४. द्वितीय भावना-मन-समिति | २२४ | ११३. आराधना का फल | २६० |
| ९५. तृतीय भावना-वचन-समिति | २२५ | ११४. अस्तेय व्रत की पाँच भावनाएँ | २६० |
| ९६. चतुर्थ भावना-आहारैषणा समिति | २२६ | ११५. प्रथम भावना-निर्दोष उपाश्रय | २६१ |
| ९७. आहार करने की विधि | २२८ | ११६. द्वितीय भावना-निर्दोष संस्कारक | २६२ |
| ९८. पंचमी भावना-आदान निक्षेपण समिति | २२९ | ११७. तृतीय भावना-शय्या- परिकर्म वर्जन | २६३ |
| सत्यवचन नामक द्वितीय संवरद्वार | | ११८. चतुर्थ भावना-अनुज्ञात भक्तादि | २६४ |
| ९९. सत्य की महिमा | २३२ | ११९. पाँचवीं भावना-साधर्मिक विनय | २६५ |
| १००. सदोष सत्य का त्याग | २३८ | १२०. उपसंहार | २६६ |
| १०१. बोलने योग्य वचन | २४० | ब्रह्मचर्य नामक चतुर्थ संवरद्वार | |
| १०२. भगवतोपदेशित सत्य- महाव्रत का सुफल | २४२ | १२१. ब्रह्मचर्य की महिमा | २६८ |
| १०३. सत्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ | २४३ | १२२. ब्रह्मचर्य की ३२ उपमाएँ | २७१ |
| १०४. प्रथम भावना-बोलने की विधि | २४३ | १२३. महाव्रतों का मूल | २७३ |
| १०५. दूसरी भावना-क्रोध-त्याग | २४४ | १२४. ब्रह्मचर्य के घातक-निमित्त | २७५ |
| १०६. तीसरी भावना-लोभ-त्याग | २४५ | १२५. ब्रह्मचर्य-रक्षक नियम | २७६ |

| क्रमांक | पृष्ठ | क्रमांक | पृष्ठ |
|---|-------|--|-------|
| १२६. ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ | २७८ | १३५. अकल्पनीय-अनाचरणीय | २९९ |
| १२७. प्रथम भावना-विविक्त शयनासन | २७८ | १३६. कल्पनीय-आचरणीय | ३०३ |
| १२८. द्वितीय भावना-स्त्री-कथा वर्जन | २८० | १३७. साधु के उपकरण | ३०६ |
| १२९. तृतीय भावना-स्त्रियों के रूप दर्शन का त्याग | २८३ | १३८. निर्ग्रन्थों का अन्तर्दर्शन | ३०८ |
| १३०. चतुर्थ भावना-पूर्वभोग- चिन्तन त्याग | २८४ | १३९. निर्ग्रन्थों की ३१ उपमाएँ | ३११ |
| १३१. पंचम भावना-स्निग्ध सरस- भोजन-त्याग | २८६ | १४०. अपरिग्रह व्रत की पाँच भावनाएँ | ३१९ |
| १३२. उपसंहार | २८७ | १४१. प्रथम भावना-श्रोत्रेन्द्रिय-संयम | ३१९ |
| परिग्रह त्याग नामक पंचम संवर द्वार | | १४२. द्वितीय भावना-चक्षुरिन्द्रिय संयम | ३२३ |
| १३३. हेय-ज्ञेय और उपादेय के- तेतीस बोल | २८९ | १४३. तीसरी भावना-घ्राणेन्द्रिय-संयम | ३२६ |
| १३४. धर्म वृक्ष का स्वरूप | २९८ | १४४. चतुर्थ भावना-रसनेन्द्रिय-संयम | ३२७ |
| | | १४५. पंचम भावना-स्पर्शनेन्द्रिय-संयम | ३२९ |
| | | १४६. पंचम संवरद्वार का उपसंहार | ३३३ |
| | | १४७. सम्पूर्ण संवरद्वार का उपसंहार | ३३५ |



अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

१. बड़ा तारा टूटे तो-
२. दिशा-दाह *:
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-
४. अकाल में बिजली चमके तो-
५. बिजली कड़के तो-
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-
- ८-९. काली और सफेद धूंअर-
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-

काल मर्यादा

- एक प्रहर
जब तक रहे
दो प्रहर
एक प्रहर
आठ प्रहर
प्रहर रात्रि तक
जब तक दिखाई दे
जब तक रहे
जब तक रहे

भौदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,

ये तिर्यच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।

१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-

तब तक

१५. श्मशान भूमि-

सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

* आकाश में किसी दिशा में त्रगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

१६. चन्द्र ग्रहण-

खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो
तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण-

खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो
तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर,

जब तक नया राजा घोषित न
हो

१९. युद्ध स्थान के निकट

जब तक युद्ध चले

२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,

जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन,

कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा

दिन रात

२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-

दिन रात

२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि-

इन चार सन्धिकालों में-

१-१ मुहूर्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।



आगम बत्तीसी के अलावा संघ के प्रकाशन

| क्रं. | नाम | मूल्य | क्रं. | नाम | मूल्य |
|--------|---------------------------------|----------|-------|-------------------------------|----------|
| १. | अंगपविद्धसुत्ताणि भाग १ | १४-०० | ५२. | बड़ी साधु वंदना | १५-०० |
| २. | अंगपविद्धसुत्ताणि भाग २ | ४०-०० | ५३. | तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय | ५-०० |
| ३. | अंगपविद्धसुत्ताणि भाग ३ | ३०-०० | ५४. | स्वाध्याय सुधा | ७-०० |
| ४. | अंगपविद्धसुत्ताणि संयुक्त | ८०-०० | ५५. | आनुपूर्वी | १-०० |
| ५. | अनंगपविद्धसुत्ताणि भाग १ | ३५-०० | ५६. | सुखविपाक सूत्र | २-०० |
| ६. | अनंगपविद्धसुत्ताणि भाग २ | ४०-०० | ५७. | भक्तामर स्तोत्र | २-०० |
| ७. | अनंगपविद्धसुत्ताणि संयुक्त | ८०-०० | ५८. | जैन स्तुति | ८-०० |
| ८. | अनुत्तरोववाइय सूत्र | ३-५० | ५९. | सिद्ध स्तुति | ८-०० |
| ९. | आयारो | ८-०० | ६०. | संसार तरणिका | १०-०० |
| १०. | सूयगडो | ६-०० | ६१. | आलोचना पंचक | २-०० |
| ११. | उत्तरज्जायणाणि(गुटका) | १०-०० | ६२. | दिनयचन्व चौबीसी | १-०० |
| १२. | वसवेयालिय सुत्तं (गुटका) | ५-०० | ६३. | भवनाशिनी भावना | २-०० |
| १३. | पंवी सुत्तं (गुटका) | अप्राप्य | ६४. | स्तवन तरंगिणी | ५-०० |
| १४. | चउछेयसुत्ताइ | १५-०० | ६५. | सामायिक सूत्र | १-०० |
| १५. | अंतगडवसा सूत्र | १०-०० | ६६. | सार्थ सामायिक सूत्र | ३-०० |
| १६-१८. | उत्तराध्ययन सूत्र भाग १, २, ३ | ४५-०० | ६७. | प्रतिक्रमण सूत्र | ३-०० |
| १९. | आवश्यक सूत्र (सार्थ) | १०-०० | ६८. | जैन सिद्धांत परिचय | अप्राप्य |
| २०. | दशवैकालिक सूत्र | १५-०० | ६९. | जैन सिद्धांत प्रवेशिका | ४-०० |
| २१. | जैन सिद्धांत शोक संग्रह भाग १ | १०-०० | ७०. | जैन सिद्धांत प्रथमा | ४-०० |
| २२. | जैन सिद्धांत शोक संग्रह भाग २ | १०-०० | ७१. | जैन सिद्धांत कोविद | ३-०० |
| २३. | जैन सिद्धांत शोक संग्रह भाग ३ | १०-०० | ७२. | जैन सिद्धांत प्रवीण | ४-०० |
| २४. | जैन सिद्धांत शोक संग्रह भाग ४ | १०-०० | ७३. | तीर्थंकरों का लेखा | अप्राप्य |
| २५. | जैन सिद्धांत शोक संग्रह संयुक्त | १५-०० | ७४. | जीव-घड़ा | २-०० |
| २६. | पद्मवणा सूत्र के शोकड़े भाग १ | ८-०० | ७५. | १०२ बोल का बासठिया | ०-५० |
| २७. | पद्मवणा सूत्र के शोकड़े भाग २ | १०-०० | ७६. | लघुवण्डक | ३-०० |
| २८. | पद्मवणा सूत्र के शोकड़े भाग ३ | १०-०० | ७७. | महावण्डक | १-०० |
| २९-३१. | तीर्थंकर चरित्र भाग १, २, ३ | १४०-०० | ७८. | तेतीस बोल | २-०० |
| ३२. | मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १ | ३५-०० | ७९. | गुणस्थान स्वरूप | ३-०० |
| ३३. | मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २ | ३०-०० | ८०. | गति-आगति | १-०० |
| ३४-३६. | समर्थ समाधान भाग १, २, ३ | ६०-०० | ८१. | कर्म-प्रकृति | १-०० |
| ३७. | सम्यक्त्व विमर्श | १५-०० | ८२. | समिति-गुप्ति | २-०० |
| ३८. | आत्म साधना संग्रह | २०-०० | ८३. | समकित के ६७ बोल | २-०० |
| ३९. | आत्म शुद्धि का मूल तत्वत्रयी | २०-०० | ८४. | पच्चीस बोल | ३-०० |
| ४०. | भवतत्त्वों का स्वरूप | १५-०० | ८५. | नव-तत्व | ८-०० |
| ४१. | अमार-धर्म | १०-०० | ८६. | सामायिक संस्कार बोध | ४-०० |
| ४२. | SaarthSaamaayikSootra | अप्राप्य | ८७. | मुखवस्त्रिका सिद्धि | ३-०० |
| ४३. | तत्व-पृच्छा | १०-०० | ८८. | विद्युत् सचित्त तेऊकाय है | ३-०० |
| ४४. | तेतली-पुत्र | ५०-०० | ८९. | धर्म का प्राण यतना | २-०० |
| ४५. | शिविर व्याख्यान | १२-०० | ९०. | सामण्य सङ्घिधम्मो | अप्राप्य |
| ४६. | जैन स्वाध्याय माला | २०-०० | ९१. | मंगल प्रभातिका | १.२५ |
| ४७. | सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १ | २२-०० | ९२. | कुगुरु गुर्वाभास स्वरूप | ५-०० |
| ४८. | सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २ | १८-०० | ९३. | जैन सिद्धांत शोक संग्रह भाग ५ | २०-०० |
| ४९. | सुधर्म चरित्र संग्रह | १०-०० | ९४. | जैन सिद्धांत शोक संग्रह भाग ६ | २०-०० |
| ५०. | लोकाशाह मत समर्थन | १०-०० | ९५. | जैन सिद्धांत शोक संग्रह भाग ७ | २०-०० |
| ५१. | जिनागम विरुद्ध मूर्ति पूजा | १५-०० | | | |

प्रश्नव्याकरण सूत्र

आस्रव नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध

हिंसा नामक प्रथम अध्ययन

श्री जिनागम के दसवें अंग 'प्रश्नव्याकरण' का विषय प्रतिपादन करते हुए गणधर भगवान् श्री सुधर्मा स्वामी जी महाराज अपने सुशिष्य जम्बू अनगार से फरमाते हैं कि -

जंबू-इणमो अण्हय-संवर-विणिच्छयं, पवयणस्स णिस्संदं ।

वोच्छामि णिच्छयत्थं, सुभासियत्थं महेसीहिं ॥ १ ॥

शब्दार्थ - अण्हय-संवर विणिच्छयं - आस्रव और संवर का निर्णय करने वाले, पवयणस्स - आर्हत प्रवचन के, णिस्संदं - सार रूप, महेसीहिं - महर्षियों-तीर्थकरों के द्वारा, सुभासियत्थं - भली-भांति कहे हुए, इणमो - इस सूत्र को, णिच्छयत्थं - तत्त्वों का निर्णय करने के लिए, वोच्छामि - मैं कहूँगा।

भावार्थ - गणधर भगवान् श्री सुधर्मा स्वामी जी महाराज अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी जी महाराज से कहते हैं कि हे जम्बू! मैं तुम्हें आस्रव और संवर का निर्णय करने वाले और जिनेश्वर भगवंत के सुभाषित प्रवचन के सार रूप इस सूत्र को कहूँगा।

विवेचन - 'अनुत्तरोपपातिक' नाम के नौवें अंग का भाव सुनने के बाद आर्य जम्बू स्वामीजी ने गुरुदेव गणधर महाराज श्री सुधर्मा स्वामी जी को वन्दना नमस्कार करके विनयपूर्वक निवेदन किया - हे भगवन्! मोक्ष प्राप्त चरम तीर्थकर भगवान् महावीर प्रभु द्वारा अर्थागम से प्ररूपित और आप द्वारा सूत्रागम से उपदेशित अनुत्तरोपपातिक दसा सूत्र का भाव तो मैंने सुना और समझा। उसके बाद अब क्रमागत दसवें अंग प्रश्नव्याकरण सूत्र का जिनेश्वर प्ररूपित अर्थ समझाने की कृपा करें।

श्री सुधर्म गणधर ने कहा - हे आशुष्मान् जम्बू! प्रश्नव्याकरण सूत्र के दो द्वार बतलाये हैं - पहला आस्रव द्वार और दूसरा संवर द्वार। इस सूत्र में आस्रव और संवर का स्वरूप बताया गया है। यही जिन-प्रवचन का सार है। तीर्थकर भगवंत द्वारा आस्रव और संवर का जो निश्चित-मोक्ष के प्रयोजनभूत अर्थ का प्रतिपादन हुआ है, वही मैं तुझे कहूँगा।

आस्रव - जिस द्वार से कर्मों का आगमन होता है, वह 'आस्रव' है। आत्मा रूपी जलाशय में जिन मार्गों से कर्म रूपी पानी का आगमन होता है, उसे 'आस्रव' कहते हैं। जलाशय में अपने-आप में

पानी नहीं होता। वह पृथ्वी का एक हिस्सा होता है। उसमें बाहर से पानी आता है। तदनुसार आत्मा में अपने-आप में कर्म नहीं होते, किन्तु बाहर से कर्म का आगमन होता है। जिन द्वारों-कारणों से कर्म का आगमन होता है, वे कारण ही 'आस्रव' कहलाते हैं।

आस्रव के दो भेद हैं - द्रव्यास्रव और भावास्रव। कर्म का आगमन-द्रव्य आस्रव है और इस द्रव्य आस्रव का मूल कारण है-भावास्रव-आत्मा के आस्रव योग्य अध्यवसाय। यही द्रव्यास्रव का मूल है। वैसे द्रव्यास्रव भी भावास्रव का कारण है। जिन आत्माओं में द्रव्य-कर्म नहीं होते, उन्हें भावास्रव भी नहीं होता। भावास्रव में द्रव्यास्रव की नियमा है, किन्तु द्रव्यास्रव में भावास्रव की भजना है। अप्रमत्त एवं वीतराग के द्रव्यास्रव तो होता है, किन्तु भावास्रव नहीं होता।

संवर - जो आस्रव को रोके वह 'संवर' है। संवर के द्वारा कर्म-आगमन के द्वारों को बन्द किया जाता है।

पंचविहो पण्णत्तो जिणेहिं, इह अण्हओ अणाईओ।

हिंसामोसमदत्तं, अब्बंभपरिग्गहं चेव ॥ २ ॥

शब्दार्थ - इह - इस प्रवचन में, जिणेहिं - जिनेश्वरों ने, पंचविहो - पांच प्रकार का, अण्हओ - आस्रव, पण्णत्तो - कहा है, अणाईओ - आस्रव अनादि से है। इसके पांच भेद इस प्रकार हैं, हिंसा - प्राणियों का घात, मोस - मृषावाद, अदत्तं - स्वामी के दिये बिना लेना-चोरी, अब्बंभ - अब्रह्मचर्य-मैथुन, चेव - और, परिग्गहं - परिग्रह।

भावार्थ - इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन में जिनेश्वरों ने आस्रव के पांच भेद इस प्रकार कहे हैं - हिंसा, मृषावाद, अदत्त ग्रहण, अब्रह्मचर्य और परिग्रह। यह आस्रव अनादिकाल से है।

विवेचन - इस गाथा में आस्रव के पांच भेदों का नामोल्लेख कर के बताया गया है कि आस्रव के ये भेद अनादिकाल से हैं। इसी से संसार है। यदि आस्रव नहीं हो, तो संसार भी नहीं है। आस्रव के कारण ही संसार है। इसी से गति, स्थिति, जन्म, मरण और संयोग-वियोगादि हैं। जहाँ आस्रव का अन्त हुआ कि जीव अयोगी बना और अशरीरी होकर परम विशुद्ध परमात्मा हो जाता है। व्यक्ति विशेष के लिए आस्रव का अन्त हो सकता है, परन्तु समूचे संसार से आस्रव का अन्त कभी नहीं हो सकता।

जारिसओ जं णामा, जह य कओ जारिसं फलं देइ।

जे वि य करेति पावा, पाणवहं तं णिसामेह ॥ ३ ॥

शब्दार्थ - जारिसओ - प्राणी-वध-हिंसा का जैसा स्वरूप है, जं णामा - हिंसा के जो नाम हैं, य - और, जह - जिस प्रकार, कओ - हिंसा की जाती है, जारिसं - हिंसा जैसा, फलं - फल, देइ-देती है, य - और, जे - जो, पावा - पापात्मा, करेति - पाप करती है, तं - उस, पाणवहं - प्राणी-वध को, णिसामेह - सुनो।

भावार्थ - प्राणीवध के जो नाम हैं, जैसा स्वरूप है और पापियों द्वारा जिस प्रकार प्राणातिपात किया जाता है तथा हिंसा का जो फल होता है, उसे सुनो।

विवेचन - इस गाथा में आगे कहे जाने वाले प्राणी-वध नामक प्रथम अध्ययन का विषय बताया गया है। अब प्राण-वध के नाम आदि का वर्णन किया जा रहा है।

प्राण-वध का स्वरूप

पाणवहो णाम एसो जिणेहिं भणिओ - १. पावो २. चंडो ३. रुहो ४. खुहो
५. साहसिओ ६. अणारिओ ७. णिघिणो ८. णिस्संसो ९. महब्भओ १०. पइभओ
११. अइभओ १२. बीहणओ १३. तासणओ १४. अणज्जओ १५. उव्वेयणओ
१६. णिरवयक्खो १७. णिद्धम्मो १८. णिप्पिवासो १९. णिक्कलुणो
२०. णिरववासणिधणगमओ २१. मोहमहब्भयपयट्टओ २२. मरणवेमणस्सो।

एस पढमं अहम्मदारं ॥ १ ॥

शब्दार्थ - एसो - यह, पाणवहो - प्राणी-वध, णाम - नाम, जिणेहिं भणिओ - जिनेश्वर ने कहा है। आगे प्रत्येक नाम के साथ ही उसका अर्थ और स्वरूप बताया जाता है।

१. पावो - पाप। जिसके आचरण से आत्मा ८२ प्रकार की पाप-प्रकृतियों का बन्ध करती है।

२. चंडो - चण्ड। क्रोध के कारण हिंसक में सौम्यता नष्ट होकर प्रचण्डता आ जाती है। इससे प्राण-वध को 'चंड' कहा है।

३. रुहो - रौद्र। अपनी क्रोधी परिणति के कारण हिंसक का रौद्र रूप बन जाता है।

४. खुहो - क्षुद्रता। अधमता। हिंसा नीचजनों के योग्य है।

५. साहसिओ - साहसिक। हिताहित और योग्या-योग्य का विचार नहीं करके सहसा पाप करना।

६. अणारिओ - अनार्य। आर्यों - उत्तमजनों से त्याज्य और अनार्यों, म्लेच्छों द्वारा आचरित।

७. णिघिणो - घृणा रहित। जिसके हृदय में से हिंसा के प्रति रही हुई घृणा निकल गई हो।

८. णिस्संसो - नृशंस। क्रूरता युक्त।

९. महब्भओ - महाभय रूप। जीवों के लिए भयानक।

१०. पइभओ - प्रतिभय। प्रत्येक प्राणी के लिए भयप्रद।

११. अइभओ - अतिभय। मृत्यु-भय जैसा अत्यन्त भयानक।

१२. बीहणओ - भयोत्पादक। जीवों के मन में भय उत्पन्न करने वाला।

१३. तासणओ - त्रासदायक। अकस्मात् क्षोभ उत्पन्न करने वाला।

१४. अणज्जओ - अन्यायरूप अथवा अनार्यों के योग्य।

१५. उव्वेयणओ - उद्वेग कारक। हृदय को अशान्त करने वाला।

१६. गिरयवक्खओ - निरपेक्ष। दूसरे जीवों के सुख एवं जीवन की अपेक्षा रहित।

१७. णिद्धम्मो - धर्म से रहित-अधर्म।

१८. णिप्पिवासो - निष्पिपासा। प्राणियों के प्रति पिपासा-मैत्री अथवा प्रेम भाव से रहित।

१९. णिककलुणो - निष्करुण। दयारूप कोमल भाव से रहित।

२०. गिरयवासणिच्चण गमणो - नरक में ले जाकर चिरकाल तक वास कराने वाला।

२१. मोहमहम्मयपयद्दुओ - मोह एवं महान् भय का प्रवर्तक। प्राणातिपात के पाप से पापी की आत्मा, महामोह से आच्छादित होकर अज्ञान और भय की उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त कराने वाली।

२२. मरणवेमणस्सो - मृत्यु और वैमनस्य का कारण। प्राणी-वध से वैमनस्य-शत्रुता होकर मृत्यु का निमित्त उपस्थित होता है।

यह प्रथम अधर्म द्वार हुआ।

विवेचन - उपरोक्त २२ प्रकार से सूत्रकार ने प्राण-वध (हिंसा) का स्वरूप बतलाया है। प्राणातिपात का पाप करने वाले पापी जीव की आत्मा कितनी हीन एवं अधम दशा में पहुँच जाती है, इसका सूत्र में स्पष्ट उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि प्राण-वध करने वाली आत्मा अपनी क्रूर वृत्ति के कारण अपनी आत्मा को अप्रशस्त, कलुषित एवं पाप के भार से बोझिल बनाकर और पाप का भयानक भार लादकर नरक गति की ओर चली जाती है और चिरकाल तक दुःख-परम्परा भुगतती रहती है। यदि स्थावरकाय या निगोद में गये, तो वहाँ की जन्म-मरण परम्परा का तो कहना ही क्या?

प्राण-वध के नाम

तस्स य णामाणि इमाणि गोण्णाणि होति तीसं, तं जहा - १. पाणवहं
 २. उम्मूलणा सरीराओ ३. अवीसंभो ४. हिंसविहिंसा तथा ५. अकिच्चं च ६. घायणा
 च ७. मारणा च ८. वहुणा ९. उह्वणा १०. णिवायणा च ११. आरंभसमारंभो
 १२. आउयक्कम्मस्सुवह्वो भेयणिहुवणगालणा च संबहुगसंखेवो १३. मच्चू
 १४. असंज्जमो १५. कडुगमहणं १६. वोरमणं १७. परभवसंकामकारओ १८.
 दुग्इप्पवाओ १९. पावकोवो च २०. पावलोभो २१. छविच्छेओ २२. जीवियंतकरणो
 २३. भयंकरो २४. अणकरो २५. वज्जो २६. परियावण अणहओ २७. विणासो
 २८. णिज्जवणा २९. लुंपणा ३०. गुणाणं विराहणत्ति विय तस्स एवमाइंणि
 णामधिज्जाणि होति तीसं। पाणवहस्स कलुसस्स कडुयफल-देसगाइं ॥ २ ॥

शब्दार्थ - तस्स - इस प्राणी-वध के, गोष्णाणि - गुण-निष्पन्न, णामाणि - नाम, तीसं - तीस, होति - है, इमाणि - ये, तं जहा - इस प्रकार हैं।

१. पाणवहं - प्राण-वध, जीवघात, आत्मा को प्राणों से रहित करना।

२. उम्मूलणा सरीराओ - शरीर से प्राणों का उन्मूलन करके पृथक् करना। पृथ्वी से वृक्ष को उखाड़कर फेंकने के समान शरीर से आत्मा को निकाल कर भिन्न करना।

३. अवीसंभो - अविश्रंभ - जीवों के लिए अविश्वास के योग्य। हिंसा ऐसा कार्य है कि जिसके करने वाले-हिंसक के प्रति विश्वास नहीं रहता।

४. हिंसविहिंसा - हिंस्य (हिंसा के योग्य) जीवों के प्राणों का विनाश।

५. अकिच्चं - अकृत्य, नहीं करने योग्य, अनाचरणीय।

६. घायणा - घातना, प्राणियों का घात करना।

७. मारणा - मारण, मृत्यु प्राप्त कराना।

८. वहणा - वध करना, हनन करना, प्राणों को पीड़ित करना।

९. उहवणा - उपद्रवणा, उपद्रव करना या उत्पात करना।

१०. णिवायणा - निपातना-प्राणों को जीव से पृथक् करना। किसी के प्रति में 'तिवायणा' पाठ भी है, जिसका अर्थ-मन, वचन और काया इन तीन से अथवा शरीर, आयु और इन्द्रिय से जीव का पतन करना-रहित करना।

११. आरंभसमारंभो - आरम्भ-समारम्भ। कृषि आदि कार्यों के द्वारा जीवों की विराधना करना।

१२. आउथकम्मस्सुवह्वो भेयणिद्ववणगालणा य संवहुगसंखेवो - जीव के आयुकर्म को उपद्रव करके चलित करना, भेद न करना-तोड़ना या समाप्त कर देना अथवा संक्षिप्त कर देना।

१३. मधू - मृत्यु। प्राण-वध का अंतिम रूप मृत्यु ही है।

१४. असंजमो - असंयम, प्राण-वध स्वतः असंयम है। सतरह प्रकार के असंयम से प्राण-वध मुख्य है।

१५. कडगमहण - कटक-मर्दन, सेना द्वारा आक्रमण करके जीवों का मर्दन (संहार) करना।

१६. वोरमणं - व्युपरमण, प्राणों को शरीर से भिन्न करना।

१७. परभव संक्रामकारओ - परभव संक्रामकारक, प्राणियों को मार कर परभव में पहुँचाने वाला।

१८. दुग्गाइप्पवाओ - नरकादि दुर्गति में गिराने वाला।

१९. पावकोवो - पापकोप, पाप प्रकृतियों का पोषण करने वाला। समस्त पापों को उत्पन्न करने वाला अथवा पाप रूप कोप-क्रोध का उत्पादक।

२०. पावलोभो - पाप-लोभ, आत्मा की पाप से प्रीति बढ़ाने वाला।

२१. छविच्छेओ - शरीर का छेदन करने वाला।

२२. जीवियंतकरणो - जीवन का अन्त-विनाश करने वाला।

२३. भयंकरो - भयंकर, प्राण-वध सभी जीवों के लिए भयप्रद है।

२४. अणकरो - ऋणकर, पापकर्म आत्मा पर बड़ा भारी कर्ज है, जो अनेक भवों से भी नहीं उतर सकता।

२५. वज्जो - वर्ज्य-दूर रहने योग्य, आत्महितैषी एवं प्रशस्त आत्मा के लिए दूर रखने योग्य अथवा वज्र समान भारी, डुबाने वाला।

२६. परिचावण अण्हओ - परितापन आस्रव, प्राणियों को परितापना देने-क्लेशित करने रूप आस्रव।

२७. विणासो - विनाश, जीवन को विनष्ट करने वाला।

२८. णिज्जवणा - निर्यापना, शरीर से प्राणों को निकालने वाला।

२९. लुपणा - जीवों के प्राणों का लोप करने रूप।

३०. गुणार्ण विराहणत्ति - गुणों की विराधना, उत्तम गुणों का नाश करने वाला।

एवमाइणि - इस प्रकार - अथवा इत्यादि तस्स - उस, कलुसस्स - पापजनक, पाणवहस्स - प्राण वध के, कडुयफलदेसगाई - कटु फल बतलाने वाले, तीसं - तीस, नामधेज्जाणि - नाम, होति - होते हैं।

विवेचन - प्राण-वध=हिंसा के ये नाम, इसके दुष्परिणाम को सूचित करते हैं। हिंसा, हिंसक को इस भव, पर-भव और भवोभव में दुःखी करने वाली है। उपरोक्त तीस नामों में सूत्रकार ने प्राण-वध की विभिन्न पर्यायों को स्पष्ट किया है।

पापियों का पापकर्म

तं च पुण करंति केइ पावा असंजया अविरया अणिहुयपरिणामदुप्पयोगा पाणवहं भयंकरं बहुविहं बहुप्पगारं परदुक्खुप्पायणपसत्ता इमेहि तसथावरेहि जीवेहि पडिणिविट्ठा।

शब्दार्थ - केइ पावा - कई पापी जीव, इमेहि - इन, तसथावरेहि - त्रस और स्थावर, जीवेहि - जीवों पर, पडिणिविट्ठा - द्वेष करते हैं, परदुक्खुप्पायणपसत्ता - दूसरे जीवों को दुःख उत्पन्न करने में प्रवृत्त रहते हैं, अणिहुयपरिणामदुप्पयोगी - जिनका परिणाम-भाव अशान्त है और जिनके मन, वचन और काया के योग दुष्ट व्यापार वाले हैं, अविरया - जो विरति से रहित-अविरत हैं, असंजया - जो असंयमी हैं, बहुविहं - वे बहुविध-विविध रीति से, बहुप्पगारं - अनेक प्रकार से, तं - उस, पाणवहं-प्राण-वध को, करंति - करते हैं।

भावार्थ - कितने ही पापी जीव, त्रस और स्थावर जीवों पर द्वेष रखते हुए उन्हें दुःखी करने में

ही प्रयत्नवंत रहते हैं। उनके भाव तीव्र और प्रवृत्ति दुष्ट होती है। वे संयमहीन, व्रतहीन पापी अनेक प्रकार से हिंसा करते हैं।

विवेचन - अनन्तानुबन्धी कषाय एवं मिथ्यात्व-मोहनीय के तीव्र उदय वाले पापी जीवों के मन में बहुधा पापमय विचार ही उठते रहते हैं। वे अकारण ही जीवों पर द्वेष रखते हैं और उन्हें सताने मारने यावत् प्राण-रहित करने में लगे रहते हैं। उनकी भावना भी दुष्ट होती है और प्रवृत्ति भी वैसी ही दुष्ट होती है। जिनके आत्म-द्रव्य में पाप की ऐसी कालिमा भरी हुई रहती है कि जिसमें से हिंसक विचार तथा हिंसक प्रवृत्ति होती रहती है। ऐसे जीव विवेक, विरति और संयम से शून्य रहकर, विविध प्रकार से, अनेक रीति से हिंसा करते हैं।

जलचर जीवों का वध

किं ते? पाठीण तिमि तिमिंगल अणोगझस विविहजाइमंडुकक दुविह-कच्छभ-णक्क • मगर-दुविह-ग्राह-दिलिवेढय-मंडुय-सीमागार-पुलुय-सुंसुमार बहुप्पगारा जलयरविहाणा कए य एवमाई।

शब्दार्थ - ते - वे पापी, किं - किन जीवों की विराधना करते हैं, यह बताया जाता है, पाठीण - एक प्रकार की मछली, तिमि - बड़ी मछली, तिमिंगल - बहुत बड़ी मछली, अणोगझस - अनेक प्रकार की मछलियाँ, विविहजाइमंडुक - अनेक प्रकार के मेढक, दुविहकच्छभ - दो प्रकार के कछुए, णक्क-नक्र, मगरदुविह - दो प्रकार के मगर - १. सुंडा मगर और २. मत्स्य मगर, ग्राहा - ग्राह-मगर विशेष, दिलिवेढय - दिलिवेष्टक-पूँछ से लपेटने वाले, मंडुय - मंडुक, सीमागार - सीमाकार, पुलुय - पुलक आदि ग्राह, सुंसुमार - एक जलचर प्राणी, एवमाई - ऐसे, बहुप्पगारा - बहुत प्रकार के, जलयर-विहाणा कए - भेद वाले जलचर जीवों का-वे पापी लोग वध करते हैं।

भावार्थ - वे पापी लोग जिन जीवों की हिंसा करते हैं, उनके नाम ये हैं - पाठीण, तिमि, तिमिंगल, अनेकझस, अनेक प्रकार के मेढक, दो प्रकार के कछुए, नक्र, दो प्रकार के मगर, ग्राह, दिलिवेष्टक, मंडुक, सीमाकार, पुलक, सुंसुमार आदि बहुत प्रकार के जलचर जीवों की हिंसा करते हैं।

स्थलचर चतुष्पद जीवों की हिंसा

कुरंग-रुरु-सरभ-चमर-संबर-उरब्भ-ससय-पसय-गोण-रोहिय-हय-गय-खर-करभ-खग्ग-वाणर-गवय-विग-सियाल-कोल-मज्जार-कोलसुणह-सिरियंदलगावत्त-कोकंतिय-गोकण्ण-मिय-महिस-वियग्घ-छगल-दीविय-साण-तरच्छ-अच्छभल्ल-सद्-दुल-सीह-चिल्लल-चउप्पयविहाणाकए य एवमाई।

• 'णक्कचक्क' - पाठ भेद।

शब्दार्थ - कुरंग-रुरु - कुरंग और रुरु जाति के मृग, सरभ - अष्टापद, चमर - चमरी गाय, संबर - सांभर, उरब्भ - मेंढा, ससय - खरगोश, पसय - वनचर पशु विशेष, गोण - बैल, रोहिय - रोहित नाम का पशु, हय - घोड़ा, गय - हाथी, खर - गधा, करभ - ऊँट, खग्ग - गेंडा, वाणर - बन्दर, गवय - रोझ, विग - भेड़िया, सियाल - गीदड़, कोल - सूअर, मग्जार - बिल्ली, कोलसुणह-बड़ा सूअर, सिरियंदलगावत्त - श्रीकंदलक और आवर्त्त नाम के एक खुर वाले पशु, कोकंतिथ - लोमड़ी, गोकण्ण - गोकर्ण-यह दो खुर वाला होता है, मिय - मृग, महिस - भैंसा, वियग्घ - व्याघ्र, छगल - बकरा, दीविय - तेंदुआ, साण - जंगली कुत्ता, तरच्छ - तरक्ष-जरख, अच्छभल्ल - रीछ भालू, सहुलसीह - सार्दूल सिंह, चित्तल - चित्तल, एवमाई - इत्यादि, चउप्पयविहाणाकए - चतुष्पद पशुओं के भेद हैं।

भावार्थ - कुरंग और रुरु जाति के मृग, अष्टापद, चमरी गाय, सांभर, मेंढा, खरगोश, पसर, बैल, रोहित, घोड़ा, हाथी, गधा, ऊँट, गेंडा, बन्दर, रोझ, भेड़िया, जम्बूक, सूअर, मार्जार, बड़ा सूअर, श्रीकंदलक, आवर्त्त, लोमड़ी, गोकर्ण, मृग, महिष, व्याघ्र, बकरा, तेन्दुआ, जंगली कुत्ता, तरक्ष, भालू, सार्दूल सिंह, चित्तल इत्यादि चतुष्पद जीवों के अनेक भेद हैं, जिन्हें पापीजन मारते हैं।

उरपरिसर्प जीवों की हिंसा

अजगर-गोणस-वराह-मउलि-काउदर-दब्भपुप्फ-आसालिय-महोरगोरग विहाणकए य एवमाई।

शब्दार्थ - अजगर - अजगर, गोणस - एक प्रकार का सर्प, जिसके फण नहीं होता, वराह - दृष्टि-विष सर्प, मउलि - मुकुली-जिसके फण होता है, काउदर - सामान्य सर्प, दब्भपुप्फ - दुर्भपुष्प-एक जाति सर्प, आसालिय - सर्प विशेष, महोरग - बड़ा सर्प, उरगविहाणाकए - ये सर्प जाति के भेद हैं।

भावार्थ - अजगर, गोणस, वराह, मुकुली, काकोदर, दुर्भपुष्प, आसालिक और महोरग आदि सर्पों के भेद हैं।

विवेचन - उपरोक्त सूत्र में उरपरिसर्प जाति के-पेट घसीटकर चलने वाले-सर्प जाति के पंचेन्द्रिय तिर्यचों का वर्णन है। इसमें आसालिक का परिचय देते हुए टीकाकार ने लिखा है कि यह सर्प बारह योजन तक लम्बा होता है और सम्पूर्ण होता है। इसकी आयु अन्तर्मुहूर्त्त की होती है। यह भूमि के भीतर उत्पन्न होता है। जब किसी चक्रवर्ती, वासुदेव आदि के सामूहिक विनाश का समय निकट आता है, तब यह उनकी नक-स्कन्धावार के नीचे अथवा किसी ग्रामादि बस्ती के विनाश के समय उसके नीचे उत्पन्न होते हैं। इनके उत्पन्न होने पर पृथ्वी का वह भाग पोला हो जाता है और वह सेना या ग्राम उस पोली भूमि में उतर कर नष्ट हो जाता है।

आसालिक, बेइन्द्रिय तिर्यचों में भी होता है, किन्तु वह दूसरा है। प्रस्तुत वर्णन पंचेन्द्रिय आसालिक सम्बन्धी है।

महोरग के विषय में टीकाकार लिखते हैं कि यह सर्प बहुत लम्बा होता है। यह मनुष्य-क्षेत्र के बाहर होता है और एक हजार योजन लम्बा होता है।

भुजपरिसर्प जीवों की हिंसा

छीरल-सरंब-सेह-सेल्लग-गोधा-उंदुर-णउल-सरड-जाहगमंगुस-खाडहिल-वाउप्पिय ☆ धिरोलिया सिरीसिबगणे य एवमाई।

शब्दार्थ - छीरल - क्षीरल, सरंब - शरम्ब, सेह - जिसके शरीर पर कांटे के समान बड़े-बड़े बाल होते हैं, सेल्लग - शल्यक, गोधा - गोह, उंदुर - चूहा, णउल - नकुल-नेवला, सरड - गिरगिट, जाहग - इसके शरीर पर कटि-होते हैं, मंगुस - गिलहरी, खाडहिल - छछुन्दर, वाउप्पिय - वातोत्पतिक, धिरोलिया - धिरोलिक-छिपकली, सिरी-सिबगणे - सरीसृप-भुजपरिसर्प जाति, एवमाई - इत्यादि।

विवेचन - भुजपरिसर्प जाति के चतुष्पद तिर्यच जीवों के कुछ भेद इस पाठ में दिये गये हैं। हिंसक लोग इन जीवों की हिंसा करते हैं।

नभचर जीवों का वध

कादंबक-बक-बलाहक-रगरस-आडा-सेतीय-कुलल-वंजुल-परिप्पव-कीर-सउण-दीविय-हंस-धत्तरिडुग-भास-कुलीकोस-कुंच-दगतुंड-ढोणिया-लग-सुईमुह-कविल-पिंगलक्खग-कारंडग-चक्कवाग-उक्कोस-गरुल-पिंगुल-सुय-बरहिण-मयण-साल-णंदीमुह-णंदमाणग-कोरंग-भिंजारग-कोणालग-जीवजीवग-तित्तिर-वट्टग-लावग-कपिंजलग-कवोतग-पारेवग-चडग-ठिंक-कुक्कुड-वेसर-मयूरग-चउरगु-हय पोंडरीय-करकरग-चीरल्ल-सेण-वायस-विहग-सेण-सिणचास-वग्गुलि-चम्मट्टिल-विययपक्खी-समुग्गपक्खी खाहयर-विहाणाकए य एवमाई।

शब्दार्थ - कादम्बक - हंस की एक जाति, बक - बगुला, बलाहक - एक प्रकार का बगुला, रगरस - प्रसिद्ध पक्षी, आडा-सेतीय-कुलल - ये जल-पक्षी हैं, वंजुल - वंजुल, परिप्पव - परिप्लव, कीर - तोता, सउण - शकुन-तीतर, दीविय - दीपिका-देवी नाम की काली चिड़िया, हंस - प्रसिद्ध पक्षी, धत्तरिडुग - काली चोंच वाला-धार्तराष्ट्र हंस, भास - भासक, कुलीकोस - कुटीक्रोश-

☆ 'वाउप्पिय' शब्द के स्थान पर कुछ प्रतियों में 'चाउप्पाइय' - चातुष्पदिक शब्द है।

शकुन, कुंज - क्रौंच पक्षी, दगतुंडा - दगतुंडक-जलकुकडी, डेलियाणग - जलचर पक्षी, सुईमुह - शूचीमुख-सुधरी, कविल - कपिल, पिंगलखग - पिंगलाक्ष, कारंडग - कारंडक-बतख, चक्कवाग-चक्रवाक, उक्कोस - पक्षी विशेष, गरुल - गरुड, पिंगुल - रक्त वर्ण वाला तोता, सुय - तोता, बरहिण - मयूर, मयणसाल - मदनशालिका-मैना, णंदीमुह - नन्दीमुख, णंदमाणग - नन्दमानक, जिसका शरीर दो अंगुल परिमाण है और भूमि पर फुदकता रहता है, कोरंग - कोलूक, भिंगारग - भृंगारक-भिंगोड़ी (छोटा पक्षी), कोणालग - कुणालक, जीवजीवग - जीवजीवक-चातक, तित्तिर - तीतर, चड्ढग - बतख, लावग - पक्षी विशेष, कपिंजलग - इस नाम का पक्षी, कवोतग - कबूतर, पारेवग - पारावत-एक प्रकार का कबूतर, चडग - चिड़िया, डिंक - एक पक्षी, कुक्कुड - मुर्गा, वेसर-इस नाम का पक्षी, मयुरग - मोर, चउरग - चकोर, हयपोंडरीय - हृदपुंडरीक-जल-पक्षी, करग - करक, चीरस्ल - चील, सेण - बाज, वायस - कौआ, विहग - पक्षी विशेष, सिणचास - श्वेतचास, चग्गुलि - बलुली, चम्मट्टिल - चमगादड़, विययपक्खी - वितत पक्षी, समुग्गपक्खी - समुद्र पक्षी, एवमाई - इत्यादि, खहयर-विहाणाकए - खेचर पक्षियों के भेद हैं।

ये सब खेचर-आकाश में उड़ने वाले पक्षियों के भेद हैं। हिंसक लोग इन जीवों की हिंसा करते हैं।

विकलेन्द्रिय और पशुओं की पीड़ा

जल-स्थल-खग-चारिणो उ पंचिंदियपसुगणे बिय-तिय-चउरिदिए विविहे जीवे पियजीविए मरणदुक्ख पडिकूले वराए हणंति बहुसंकिलिट्टकम्मा।

शब्दार्थ - जल-स्थल-खग-चारिणो - जल, स्थल और आकाश में विचरने वाले, पंचिंदिय - पंचिन्द्रिय प्राणी और, पशुगणे - पशुओं का समूह तथा, बिय-तिय-चउरिदिए - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरिन्द्रिय जीव जो, विविहे - विविध प्रकार के हैं, पियजीविए - जिनको अपना जीवन प्रिय है, मरणदुक्खपडिकूले - जिनको मृत्यु का दुःख प्रतिकूल-अप्रिय है, वराए - उन दीन प्राणियों को, बहुसंकिलिट्टकम्मा - अत्यंत क्लेशोत्पादक एवं दुष्ट कर्म करने वाले पापी जीव, हणंति - हिंसा करते हैं।

भावार्थ - विविध प्रकार के जलचर, स्थलचर और खेचर ऐसे पंचेन्द्रिय जीवों और बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरेन्द्रिय, जीवों को अपना जीवन अत्यंत प्रिय है और मृत्यु का दुःख अत्यंत अप्रिय एवं प्रतिकूल है। ऐसे दीन जीवों की दुष्ट प्रकृति के दुराचारी क्रूर लोग हिंसा करते हैं।

विवेचन - पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवों के पांच भेद हैं - १. जलचर २. स्थलचर ३. खेचर ४. उरपरिसर्प और ५. भुजपरिसर्प। इन पांचों प्रकार के जीवों के कुछ भेद बतलाने के बाद उपरोक्त मूलपाठ में संक्षेप में तीन ही भेदों में पांच भेदों का समावेश किया गया है। उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प इन दो भेदों का समावेश स्थलचर में किया गया है। इसका कारण यह है कि ये जीव भी स्थलचारी-भूमि पर ही चलने वाले हैं। इन सभी जीवों और विकलेन्द्रिय जीवों को अपना जीवन अत्यन्त प्रिय

होता है और मरना अत्यन्त दुःखदायक तथा असहनीय है। ये जीव अत्यन्त दीन हैं। ये बिचारे अपने प्राणों को हिंसक मनुष्यों से बचाना चाहते हैं, किन्तु इनके पास रक्षा के अमोघ उपाय नहीं है। इन्हें प्राणों के विनाश का भय लगा ही रहता है। ऐसे दीन एवं रक्षा की भिक्षा चाहने वाले असहाय जीवों की भी क्रूर कर्म करने वाले दुष्ट पापरत क्रूर मनुष्य हिंसा करते हैं।

हिंसा के कारण

इमेहिं विविहेहिं कारणेहिं, किं ते? चम्म-वसा-मंस-मेय-सोणिय-जग-फिफिस-मत्थुलुंग-हिययंत-पित्त-फोफस-दंतद्रा अट्टिमिंज-णह-णयण-कण्ण-णहारुणि-णक्क-धमणि-सिंग-दाडि-पिच्छ-विस-विसाण-वालहेउं। हिंसंति य भमर-महुकरिगणे रसेसु गिद्धा तहेव तेइंदिए सरीरोवमरणट्टयाए किवणे बेइंदिए बहवे वत्थोहर-परिमंडणट्टा।

शब्दार्थ - इमेहिं - पापीजन इन, विविहेहिं - विविध, कारणेहिं - कारणों से हिंसा करते हैं, किं ते - वे कारण कौन से हैं?, चम्म - चमड़ा, वसा - चर्बी, मंस - मांस, मेय - मेद, सोणिय - रक्त, जग - यकृत, फिफिस - फेफड़ा, मत्थुलुंग - मस्तुलिंग-भेजा, हिय - हृदय, यंत - आंत, पित्त-पित्ताशय, फोफस - शरीर-का एक अवयव, दंतद्रा - दाँत के लिए, अट्टि - हड्डी, मिंज - मज्जा, णह - नख, णयण - आँख, कण्ण - कान, णहारुणि - स्नायु, णक्क - नाक, धमणि - धमनी, सिंग - सींग, दाडि - दाढ़ी, पिच्छ - पूँछ, विस - विष, विसाण - हाथी-दाँत, विसाण शब्द से सूअर के दाँत का भी ग्रहण हुआ है, बालहेउं - बालों के लिए, रसेसु गिद्धा - रसलोलुप जीव, मधु के लिए, भमरमहुकरिगणे - भ्रमर और मधुमक्खियों के समूह का, तहेव - वैसे ही, सरीरोवमरणट्टयाए - शारीरिक सुख के लिए, तेइंदिए - यूका खटमल आदि तेइन्द्रिय जीवों को, य - और, वत्थोहर परिमंडणट्टा - वस्त्र तथा घर की शोभा बढ़ाने के लिए, बहवे - बहुत-से, किवणे - दीन, बेइंदिए - बेइन्द्रिय जीवों की, हिंसंति - हिंसा करते हैं।

भावार्थ - पापीजन किन कारणों से जीवों की हिंसा करते हैं? इसके उत्तर में बतलाया है कि - चर्मड़ा, चर्बी, मांस, मेद, रक्त, यकृत, फेफड़ा, भेजा, हृदय, आंत, पित्ताशय, फोफस, दाँत, हड्डी, मज्जा, नख, आँख, कान, स्नायु, नाक, धमनी, सींग, दाढ़ी, पूँछ, विष, हाथी या सूअर के दाँत के लिए और बालों के लिए जीवों की हिंसा करते हैं। रसलोलुप जीव मधु (शहद) के लिए भ्रमरों और मधुमक्खियों के समूह (छत्ते) का और शरीर सम्बन्धी सुख के लिए तथा वस्त्र और घर को सजाने के लिए बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय जीवों की हिंसा करते हैं।

विवेचन - प्रयोजन से प्रवृत्ति होती है। हिंसा की प्रवृत्ति किस प्रयोजन से होती है? शिष्य के इस प्रश्न के उत्तर में आगमकार वे कारण बतलाते हैं।

चमड़े के लिए-चमड़े से ढोल, नगाड़े, तबले, डफली आदि वादिन्त्र बनते हैं, जूते बनते हैं,

शीत-प्रधान देशों में मनुष्यों के वस्त्र के समान पहनने के काम में भी आता है। ढाल, तलवार आदि का म्यान आदि में तो पहले भी आता था। कई ऋषि-संन्यासी मृगचर्म एवं व्याघ्रचर्म बिछाने के काम में लेते हैं। पहले जिन कारणों से हिंसा होती थी, उनमें वर्तमान युग में वृद्धि हुई है। बटुआ, घड़ी के पट्टे, कमरपट्टे (पेंट-बेल्ट) बॉक्स, बेग-बिस्तर-बंद, थैले, चश्मे के घर, खिलौने आदि अनेक कार्यों में चमड़ा काम में आता है और इसके लिए पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा होती है। अत्यन्त मुलायम चमड़े के लिए छोटे बच्चों तथा गर्भस्थ जीवों की भी हिंसा होती है। इस प्रकार की हिंसा में सुकुमालता, सुखशीलियापन, बाहरी सज-धज-आडम्बर एवं दूसरों का अन्गानुकरण मुख्य है। अहिंसकसंस्कृति के बहुत-से सदस्य भी हिंसा के द्वारा प्राप्त चमड़े को काम में लेने से नहीं बचे।

चर्बी के लिए - चर्बी को लोग खाने, चमड़े को मुलायम रखने के लिए लगाने, मशीनरी में चिकनाई देने, शरीर पर मालिश करने, मरहम बनाने आदि कई कामों में लेते हैं।

मांस - खाने, पशुओं को खिलाने और दवाई बनाने आदि कामों में लिया जाता है। इसी प्रकार रक्त, यकृत (जिगर) फेफड़ा आदि भी खाने और दवाई बनाने के काम में लेते हैं।

दाँत - हड्डी, नख, सींग आदि सजाई के उपकरणों को सुन्दर बनाने में लिए जाते हैं।

विष - दवाई, नशा और किसी को मारने के काम आता है।

हाथी के दाँत से चूड़ियाँ बनती हैं और अनेक प्रकार के उपकरणों को सुन्दर बनाने के काम में लिए जाते हैं।

बालों की टोपियाँ बनाने के काम में लेते हैं और जूते तथा कपड़े में भी लगाते हैं। खासकर मुलायम गरम कपड़े-शाल आदि बनाने के लिए जीवों की हत्या की जाती है। खरगोश आदि के चमड़े सहित बालों की टोपियाँ बनती हैं। सुन्दर पक्षियों के बालों-पंखों के तुर्रें, कलंगी आदि बनते हैं। मयूर के बालों से मोरपीछी बनती है, जिसे देवी-देवताओं की मूर्तियों के प्रमार्जन आदि के लिए काम में लेते हैं। सूअर के बाल ब्रुश आदि के काम में आते हैं। पूँछों में खासकर चमरी गाय की पूँछ, चँवर और गजगाव के काम में आते हैं।

घर की सजाई के लिए हिरण, सिंह आदि के सिर और सींग प्राप्त करने के लिए हिंसा होती है। रेशमी वस्त्रों के लिए रेशम के लाखों कीड़ों का प्रतिदिन संहार होता है।

मधु - शहद के लिए भ्रमरों और मधुमक्खियों के छत्तों का विनाश किया जाता है। मधु, खाने और औषधी के काम में आता है।

मनुष्य अपनी सुख-सुविधा के लिए कीड़े-मकोड़े, डाँस, मच्छर, खटमल, पिस्सू, चूहे, घुन, यूका, टिड्डी, छिपकली, अंडे आदि अनेक प्रकार के जीवों की हिंसा करता है। इन छोटे-छोटे बेइन्द्रियादि जीवों को मारने के लिए फिनाइल, डी. डी. टी. आदि का उपयोग करता है। जलाशयों में शुद्धि के लिए दवाई डालकर असंख्य जीवों की हिंसा करता रहता है।

चमड़ा, ऊन आदि कुछ वस्तुएँ बिना हिंसा के भी मिल सकती हैं, किन्तु वे उतनी मुलायम और सुन्दर नहीं होती। इसलिए निर्दोष होते हुए भी लोग उन्हें पसन्द नहीं करते। जैनी एवं अहिंसा प्रेमी सज्जनों का कर्तव्य है कि जहाँ तक हो आवश्यक वस्तुओं में उन्हीं का उपयोग करे जो निर्दोष अथवा अल्प दोष वाली हो। जिनके लिए बेइन्द्रियादि त्रस जीवों की हिंसा हो, उन वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए।

ढोल, नगाड़े, नोबत, तबला आदि मढ़ने के लिए जीवित पशु की हत्या की जाती है, तभी ये वादित्र बनते हैं और इनसे गंभीर ध्वनि निकलती है। देव-मंदिरों में भी इनका उपयोग होता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि हिंसा से निर्मित इन साधनों को जैन-मंदिरों में भी स्थान मिला है और उनके द्वारा वीतराग जिनेश्वर भगवंतों की भक्ति होना माना जा रहा है।

शंख, शीप और मोती के लिए बेइन्द्रियादि जलचर प्राणियों का वध होता है।

ये दीन एवं असहाय प्राणी

अण्णेहिं य एवमाइएहिं बहुहिं कारणसएहिं अबुहा इह हिंसन्ति तसे पाणे इमे य-
एगिंदिए बहुवे वराए तसे य अण्णे तयस्सिए चेव तणुसरीरे समारंभन्ति।
अत्ताणे, असरणे, अणाहे, अबंधवे, कम्मणिगड-बद्धे, अकुसलपरिणाम-
मंदबुद्धिजणदुव्विजाणए, पुढविमए, पुढविसंसिए, जलमए, जलगए,
अणलाणिलतण-वणस्सइगणणिस्सिए य तम्मयतज्जिए चेव तयाहारे
तप्परिणय-वण्ण-गंध-रस-फास-बोदिरूवे अचक्खुसे चक्खुसे य तसकाइए असंखे
थावरकाए य सुहुम-बायर-पत्तेय-सरीरणामसाहारणे अणंते हणंति अविजाणओ
य परिजाणओ य जीवे इमेहिं विविहेहिं कारणेहिं।

शब्दार्थ - एवमाइएहिं - इसी प्रकार के, य - और भी, अण्णेहिं - अन्य, बहुहिं - बहुत-से, कारणसएहिं - सैकड़ों कारणों से, अबुहा - अबुझ-अज्ञानी जीव, इह - इस संसार में, तसे पाणे - त्रस प्राणियों की, हिंसन्ति - हिंसा करते हैं, य - और, इमे वराए - ये विचारे, बहुवे - बहुत से, एगिंदिए-एकेन्द्रिय प्राणी, चेव - तथा, तयस्सिए - तदाश्रित, तणुसरीरे - छोटे शरीर वाले, अण्णे - दूसरे, तसे-त्रस प्राणी का, समारंभन्ति - समारम्भ करते हैं, अत्ताणे असरणे - वे जीव त्राण और शरण से रहित हैं, अणाहे - अनाथ है, अबंधवे - जिनका कोई बान्धव नहीं है, कम्मणिगडबद्धे - अपने कर्मों की बेड़ी में बंधे हुए, अकुसलपरिणाम-मंदबुद्धिजणदुव्विजाणए - शुभ परिणाम-अनुकम्पा भाव से रहित एवं मन्दबुद्धि वाले जीवों को इन जीवों का ज्ञान ही नहीं है।

पुढविमए - पृथ्वीकाय वाले, पुढविसंसिए - पृथ्वी के आश्रय रहे हुए, जलमए - जलकाय वाले,

जलगाए - जलगत-जल में रहे हुए त्रस जीव, अणलाणिलतण-वणस्सइगणणिसिए - अग्नि, वायु, तृण और वनस्पति के समूह के आश्रय से, व - और, तम्मयतज्जिए - तन्मय-उन्हीं के स्वरूप वाले और उनसे ही जीने वाले, तयाहारे - उन्हीं के आधार से रहे हुए या उन्हीं का आहार करने वाले, च्चेव - और, तप्परिणयवणणगंधरसफास-बोदिरूवे - वैसे वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और शरीर रूप में परिणत, अचक्खुसे चक्खुसे य - कई जीव आँखों से नहीं दिखाई देने वाले हैं, असंखे - वैसे असंख्य, तसकाइए - त्रसकाय जीवों को, य - और, अणांत - अनन्त, सुहुमब्बायरपत्तेयसरिरणाम-साहारणे - सूक्ष्म, बादर, प्रत्येक और साधारण शरीर वाले, थावरकाए - स्थावर काय के, जीवे - जीव, परिजाणओ-जानबूझ कर, य - और, अवियाणओ - बिना जाने, इमेहि - इन, विविहेहि - विविध, कारणेहि - कारणों से, हणांति - हिंसा करते हैं।

भावार्थ - मूर्ख अज्ञानी एवं अबोध पापीजन, उपरोक्त तथा अन्य अनेक कारणों से त्रस प्राणियों की हिंसा करते हैं और बहुत-से एकेन्द्रिय प्राणियों तथा उनके आश्रित रहने वाले दूसरे छोटे त्रस जीवों का समारम्भ करते हैं। वे दीन प्राणी अरक्षित, निराश्रित, अनाथ और बन्धु-बान्धवों से रहित हैं और अपने-अपने कर्म बन्धनों की दृढ़ बेड़ियों से बंधे हुए हैं। बुरे और अशुभ परिणाम वाले मन्दबुद्धि लोग इन जीवों को नहीं जानते। उनकी पापमय बुद्धि में इन जीवों के हिताहित का विवेक नहीं है। वे अज्ञानीजन न तो पृथ्वीकाय के जीवों को जानते हैं और न पृथ्वीकाय के आश्रय से रहे हुए अन्य स्थावर और त्रस जीवों को जानते हैं। वे जलकायिक तथा जलाश्रित रहने वाले जीवों को भी नहीं जानते। वे अग्नि, वायु, तृण और वनस्पतिकाय के जीवों और उनके आश्रय से रहने वाले अन्य जीवों को भी नहीं जानते। ये पृथिव्यादि मय जीव तथा उनके सहारे रहने वाले और उन्हीं के आधार से जीने वाले तथा उन्हीं का आहार करने वाले हैं, उनके शरीर पृथिव्यादि के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रूप से परिणित हैं। उनमें से कई आँखों से दिखाई देते हैं और कई दिखाई नहीं देते। त्रस जीवों की तथा सूक्ष्म, बादर, प्रत्येक और साधारण शरीर वाले असंख्य एवं अनन्त स्थावर जीवों की जानबूझ कर या अनजानपन से हिंसा करते हैं।

विवेचन - पूर्वोक्त पाठ में जीव-हिंसा के कुछ कारण बतलाये हैं। इन कारणों के अतिरिक्त भी ऐसे सैकड़ों कारण हैं कि जिनसे प्रेरित होकर, धर्म-अधर्म और हेयोपादेय के विवेक से रहित मूढ़जन, हिंसा में प्रवृत्त होते हैं। हिंसादि प्रवृत्ति में जीव की अमर्यादित इच्छा, आशा एवं तृष्णा मुख्य रहती है। इच्छा और तृष्णा पर विवेक का अंकुश नहीं होने के कारण हिंसक-प्रवृत्ति बढ़ती ही रहती है। विवेक का अंकुश सम्यक्बोध होने पर ही लग सकता है। जिसकी आत्मा में बोध का अभाव है, वह अज्ञानी है। विद्या, बुद्धि और कला में निपुण होते हुए भी सम्यक्बोध के अभाव में हिंसक-प्रवृत्ति बढ़ती है-विशेष बढ़ती है। स्वार्थ, द्वेष, वैर आदि दूषित भावों के चलते असम्यग् विद्या अधिक संहारक हो जाती है।

पृथ्वीकाय की हिंसा के कारण

किं ते? करिसण-पोक्खरणी-वावि-वप्पिणि-कूव-सर-तलाग-चिइ-वेइय ॐ
खाइय-आराम-विहार-थूम-पागार-दार-गोउर-अट्टालग-चरिया-सेउ-संकम-पासाय-
विकप्प-भवण-घर-सरण-लयण-आवण-चेइय-देवकुल-चित्त-सभा-पवा-
आयतणा-वसह-भूमिघर-मंडवाण कए भायणभंडोवगरणस्स य विविहस्स य अट्टाए
पुढविं हिंसंति मंदबुद्धिया।

शब्दार्थ - किं ते - वे कारण कौन से हैं?, करिसण - कृषि, पोक्खरणी - पुष्करणी, वावि -
बावड़ी, वप्पिणि - क्यारी, कूव - कुआँ, सर - छोटा सरोवर, तलाग - तालाब, चिइ - भीत, वेइय -
वेदी, खाइय - खाई, आराम - बगीचा, विहार - मठ, थूम - स्तूभ, पागार - प्राकार-परकोटा, दार -
द्वार, गोउर - नगर-द्वार, अट्टालग - अटारी, चरिया - चरिका-नगर और कोट के बीच का मार्ग, सेतु -
पुल, संकम - ऊँची-नीची भूमि को, पार करने का मार्ग, पासाय - प्रासाद-राजभवन, विकप्प -
भवन की ही तरह का छोटा प्रासाद, भवण - भवन, घर - मकान, सरण - फूस की झोंपड़ी, लयण -
पर्वत खोदकर बनाये हुए आवास, आवण - दुकान, चेइय - चैत्य-प्रतिमा आदि, देवकुल -
देवमंदिर, चित्तसभा - चित्र-सभा, पवा - प्याऊ, आयतण - देव-स्थान, आवसह - तापसों का आश्रम,
भूमिघर - भूमिगृह-तलघर, मंडवाण - मंडप, कए - इन सबके बनाने आदि में, य - और, विविहस्स-
विविध प्रकार के, भायणभंडोवगरणस्स - भाजन-पात्र बर्तन और उपकरण बनाने के, अट्टाए -
अर्थ-लिए, मंदबुद्धिया - जिनकी बुद्धि आत्महित सोचने में मन्द है, ऐसे अज्ञानी जीव, पुढवि -
पृथ्वीकाय की, हिंसंति - हिंसा करते हैं।

भावार्थ - प्रश्न - पृथ्वीकाय की हिंसा किस प्रयोजन से की जाती है?

उत्तर - खेती करने के लिए, पुष्पकरणी, बावड़ी, क्यारियाँ, कुआँ, सरोवर, तालाब आदि
जलाशय बनाने के लिए, भीत, वेदिका, खाई, बगीचा, साधुओं के ठहरने का मठ, स्तूभ, प्राकार, द्वार,
गोपुर, अट्टालिका, चरिका, सेतु, संक्रम, प्रासाद, भवन, घर, झोंपड़ी, पर्वतगृह, दुकान, चैत्य, देवमंदिर,
चित्र सभा, प्याऊ, आयतन, आश्रम, भूमिगृह और मण्डप आदि के लिए, भाजन, बरतन आदि विविध
प्रकार के कार्यों के लिए मन्दबुद्धि वाले जीव पृथ्वीकाय की हिंसा करते हैं।

विवेचन - उपरोक्त सूत्र में उस हिंसा के कुछ भेद बतलाये हैं कि जिसमें पृथ्वीकाय की हिंसा
मुख्यता से होती है। उपरोक्त वर्णन में कई ऐसे कार्यों का उल्लेख है जिन्हें मनुष्य अपनी आजीविका

ॐ श्री ज्ञानविमलसूरि रचित वृत्ति में 'वेइय' के स्थान पर 'चेतिय' शब्द है, जिसका अर्थ किया है - 'चेति
मृतदहनार्थं काष्ठस्थापनं।'

चलाने के लिए करते हैं। कई सुख-सुविधा के लिए और कई सार्वजनिक उपयोग के लिए करते हैं। इनमें कुछ कार्य ऐसे भी हैं कि जो धर्म समझकर किये जाते हैं।

पुष्करणी - वह चौकोन जलाशय, जिसमें कमल खिले हों।

विहार - बौद्ध साधुओं के ठहरने का स्थान। स्वाध्याय-भूमि को भी आगमों में 'विहार-भूमि' बतलाया है, किन्तु उसका यहाँ सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि वह स्वाभाविक भूमि होती है। उसको बनाने और हिंसा करने की आवश्यकता नहीं होती। मध्यकाल में जैन-विहार भी बने। उनका समावेश इस पद में हो सकता है।

स्तूभ - मृतक के दाह-स्थान पर बनाई हुई छत्री, स्मारक-स्तंभ, चबूतरा आदि।

चैत्य - व्यन्तरायतन, उद्यान, प्रतिष्ठित वृक्ष, यज्ञस्थान, मंदिर, मूर्ति, स्मारक वृक्ष आदि।

पृथ्वीकाय की हिंसा के साथ अन्य स्थावर तथा त्रस जीवों की भी हिंसा होती है। किन्तु यहाँ मुख्यता पृथ्वीकाय की ही है, इसलिए उसी का वर्णन किया गया है।

हिंसा आजीविका के लिए हो या सुख-सुविधा के लिए, वह हिंसा ही है, पाप ही है, फिर भले ही वह सार्थक हो, निरर्थक हो या धर्म के नाम पर हो। उन जीवों की हिंसा तो होती ही है। यदि ऐसी हिंसा को भी धर्म माना जाय तो वह बुद्धिहीनता है।

अपकाय की हिंसा के कारण

जलं च मज्जण-पाण-भोयण-वत्थधोवण-सोयमाइएहिं ।

शब्दार्थ - मज्जण - स्नान, पाण - पीने, भोयण - भोजन के, वत्थधोवण - वस्त्र धोने में, सोयमाइएहिं - शौच आदि कार्यों में, जलं - पानी के जीवों की हिंसा होती है।

भावार्थ - अपकाय जीवों की हिंसा-स्नान करने, पानी पीने, भोजन बनाने, वस्त्र धोने और शूचि करने आदि कार्यों में की जाती है।

विशेषण - अपकाय के जीवों की हिंसा के कुछ प्रकार इस सूत्र में बताए हैं। इसके अतिरिक्त कई प्रकार पृथ्वीकाय की विराधना के कारणों में आ जाते हैं। घर-भवनादि बनाने में पृथ्वीकाय के साथ अपकाय की भी आवश्यकता होती ही है। इसके अतिरिक्त शौच कारणों का समावेश आदि शब्द से कर लेना चाहिए।

तेजस्काय की विराधना के कारण

पयण-पयावण-जलावण-विदंसणेहिं अगणिं ।

शब्दार्थ - पयणपयावण - भोजनादि पकाने व दूसरे से पकवाने, जलावण - दीपकादि जलाने, विदंसणेहिं - प्रकाश के लिए, अगणिं - अग्निकाय के जीवों की हिंसा की जाती है।

भावार्थ - अग्निकाय जीवों की हिंसा, भोजनदि बनाने, दूसरों से बनवाने, दीपक आदि जलाने और प्रकाश करने आदि कर्मों में की जाती है।

विवेचन - पचन-पचावन में केवल भोजन ही नहीं, वे सभी चीजें आ गई, जो पकाई जाती हैं। जैसे-ईट, चूना, बर्तन, धातु, औषधि आदि। इसी प्रकार आदि शब्द से अन्य अग्निकाय के आरम्भ के कारणों को भी जान लेना चाहिए।

वायुकाय की विराधना के कारण

सुष्य-विषण-तालयंट-पेहुण-मुह-करयल-सागपत्त-वत्थमाइएहि अणिलं हिंसन्ति।

शब्दार्थ - सुष्य - सूप-धान्यादि फटक कर साफ करने का साधन, विषण - पंखे से, तालयंट - ताड़ के पंखे से, पेहुण - मयूरादि के पंख से, मुह - मुख से, करयल - हथेलियों से, सागपत्त - सागोन के पान से, वत्थमाइएहि - वस्त्र आदि से, अणिलं - वायुकाय के जीवों की हिंसन्ति - हिंसा की जाती है।

भावार्थ - सूप, बाँस आदि के विंजने (पंखे) से, मयूरादि के पंखों से बने हुए पंखे से, मुँह से, हथेलियों से, सागोन के पान और वस्त्रादि साधनों से वायुकाय के जीवों की विराधना की जाती है।

विवेचन - इस सूत्र में वायुकाय के जीवों की हिंसा के साधन बतलाये हैं।

मुँह से वायुकाय की हिंसा - एक तो फूँक लगाने से होती है, दूसरी वस्त्रादि से यतना नहीं करके खुले मुँह से बोलने और छींक जम्हाई आदि लेने से होती है।

करतल से - ताली बजा कर या झाँझ, डफली, तबला आदि हाथों से बजाकर वायुकाय की विराधना की जाती है।

सागपत्र - सागोन नामक वृक्ष के पान, हाथी के कान जैसे बड़े होते हैं। उनसे हवा करके विराधना की जाती है।

वस्त्र से - झटक, फटक और हिलाकर तथा उड़ाकर हिंसा की जाती है। 'विजन' शब्द में उन सभी प्रकार के पंखों का समावेश किया जा सकता है, जो हवा के लिए बिजली आदि से चलते हैं।

वनस्पतिकाय की हिंसा के कारण

अगार-परियार-भक्ख-भोयण-सयणासण-फलक-मूसल-उखल-तत-वितता-
तोज्ज-वहण-वाहण-मंडव-विविह-भवण-तोरण-विडंग-देवकुल-जालयद्धचंद-
णिज्जूहग-चंदसालिय-वेतिय-णिस्सेणि-दोणि-चंगेरी-खील-मंडव-सभा-पवावसह-
गंध-मल्लाणुलेधणं - अंबर-जुयणंगल-मइय-कुलिय-संदण सीयारह-सगड-जाण-
जोग्ग-अड्डालग-चरिय-दार-गोउर-फलहा-जंत-सूलिय-लउड-मुसंठि-सयग्धी-बहप-

हरणा-वरणुवक्खराणकए अण्णेहिं य एवमाइएहिं बहुहिं कारणसएहिं हिंसंति ते तरुगणे भणियाभणिए य एवमाई ।

शब्दार्थ - अगार - घर, परियार - खडगादि का म्यान, भक्ख-भोयण - खाने के लिए भोजन, सयण - सोने के लिए पलंगादि, आसण - बैठने के लिए आसन, फलक - पटिया, मूसल - धान्य कूटने का मूसल, उखल - ओखली, तत - वीणा आदि, वितत - ढोल-नगाड़ा आदि, आतोज्ज - वादिन्त्र, वहण - नौका आदि, वाहण - गाड़ी-रथ आदि, मंडव - मण्डप, विविहभवण - अनेक प्रकार के भवन, तोरण - तोरण, विडंग - कबूतरों के बैठने व रहने के लिए बनाए गए-कपोतपाली (छाजे), देवकुल-देवालय, जालय - झरोखा; अद्धचंद - अर्द्ध-चन्द्राकार खिड़की अथवा तदाकार सोपान, णिज्जूहग - द्वार शाखा के ऊपर छोड़े के मुँह के आकार के निकले हुए लकड़ी केसाधन, चंदसालिय - चन्द्रशाला-घर के ऊपर की शाला-अट्टालिका, वेतिय - वेदिका, णिस्सेणि - निःस्सरणी-सीढ़ी, दोणि - छोटी नौका, चंगेरी - बड़ी नौका अथवा पुष्प भरने का डलिया, खील - खूँटी, मेढक - स्तंभ, सभा - सभा, प्याऊ - प्याऊ, आवसह - आश्रम या मठ, गंध - सुगन्ध, मल्ला - माला, अणुलेवणं - विलेपन, अंबर - वस्त्र, जुय - जुआ, णंगल - हल, मइय - खेती के काम में आने वाली लकड़ी का 'बक्खर', कुलिय - बीज बोने की नलिका, संदण - एक प्रकार का रथ, सीयारह - शिविका-पालकी, रथे, सगड-गाड़ी, जाण - यान, जोग्ग - छोटी गाड़ी, अट्टालग - अट्टालिका, चरिय - नगर और प्रकौट के बीच का आठ हाथ चौड़ा मार्ग, द्वार - द्वार, गोउर - नगर का बड़ा द्वार, फलिह - परिघा-अर्गला, जंत - यंत्र-अरहट्टादि, सुलिय - शूली, लउड - लाठी, मुसंढि - शस्त्र विशेष-बन्दूक, सयग्घि - शतघ्नि-तोप, बहुपहरणावरणुवक्खराणए - बहुत प्रकार के शस्त्र ढक्कन तथा नाना प्रकार के उपकरण बनाने के लिए, य - और, एवमाइएहिं - इसी प्रकार के, अण्णेहिं - दूसरे, भणिया अभणिए - ऊपर कहे गए और नहीं कहे गए ऐसे, बहुहिं - बहुत से, कारण-सएहिं - सैकड़ों कारणों से, ते - वे अज्ञानीजन, तरुगणे - वृक्षों के समुदाय-वनस्पतिकाय की, हिंसंति - हिंसा करते हैं ।

भावार्थ - वनस्पति का आरम्भ घर बनाने के लिए, तलवार आदि शस्त्रों के कोश (म्यान) के लिए, खाने-पीने, भोजन बनाने, शय्या, आसन, पाट, मूसल, ओखली, वीणा, ढोल-नगारे, वादिन्त्र, जलयान, स्थलयान-रथादि, मंडप, भवन, तोरण, कबूतरादि के बैठने के लिए स्थान, देवालय, झरोखे, चन्द्राकार सोपानादि, द्वारोपरि छोड़मुखे, चन्द्रशाला, वेदिका, निःसरणी, नौका, बड़ी नौका (जहाज) फूलों की छाब, खूँटे, थंभे, सभा, प्याऊ, आश्रम, सुगन्धित साधन, माला विलेपन वस्त्र बैलों को जोतने का जुआ, हल, बक्खर, नलिका, शिविका, गाड़ी, यान, छोटी गाड़ी, अट्टालिका, चरिका, द्वार, नगरद्वार, अर्गला, यंत्र, शूली, लाठी, बन्दूक, तोप अनेक प्रकार के उपकरण बनाने और ऐसे सैकड़ों कामों के लिए जो यहाँ बताए नहीं गये हैं, अज्ञानीजन वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं ।

द्विवेचन - वनस्पतिकाय का मानव जीवन पे बहुत बड़ा सम्बन्ध है । खान-पान, वस्त्र-पात्र,

रहन-सहनादि में वृक्षों, लताओं, पुष्पों, फलों और बीजों को काम में लिया जाता है। मकान बनाने आदि सहस्त्रों काम में लकड़ी, पटिये आदि लिए जाते हैं। मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह, आजीविका, मौजशौक, भोगविलास आदि में वनस्पतिकाय का आरम्भ करता है। विवेकी गृहस्थ अकारण आरम्भ नहीं करते, परन्तु अविवेकी लोग व्यर्थ का आरम्भ करते हैं।

हिंसक जीवों का प्रयोजन

सत्ते सत्तपरिवञ्जिया उवहणंति दढमूढा दारुणमई कोहा माणा माया लोहा हस्स रई अरई सोय वेयत्थी जीय-धम्मत्थकामहेउं सवसा अवसा अट्टा अणट्टाए य तसपाणे थावरे य हिंसंति मंदबुद्धी। सवसा हणंति, अवसा हणंति, सवसा अवसा दुहओ हणंति, अट्टा हणंति, अणट्टा हणंति, अट्टा अणट्टा दुहओ हणंति, हस्सा हणंति, वेरा हणंति, रईय हणंति, हस्सा-वेरा-रईय हणंति, कुद्धा हणंति, लुद्धा हणंति, मुद्धा हणंति, कुद्धा लुद्धा मुद्धा हणंति, अत्था हणंति, धम्मा हणंति, कामा हणंति, अत्था धम्मा कामा हणंति ॥ ३ ॥

शब्दार्थ - दढमूढा - वे महा मूढ़, दारुणमई - कठोर मति वाले-क्रूर जीव, सत्तपरिवञ्जिया - सत्व रहित, सत्ते - उन सत्त्वों-जीवों को, उवहणंति - मारते हैं, मंदबुद्धी - वे बुद्धिहीन अज्ञानी जीव, कोहा - क्रोध, माणा - मान, माया - माया, य - और, लोहा - लोभ से, हस्स - हास्य, रई अरई - रति-अरति, सोय - शोक से, वेयत्थी - वेदार्थी-वैदिक अनुष्ठान के लिए, जीयधम्मत्थकामहेउं - जीवन, काम, धन और धर्म के लिए, सवसा - अपनी इच्छा से-स्वतंत्रता से, अवसा - विवश होकर, अट्टा - प्रयोजन से, अणट्टा - बिना प्रयोजन से, तसपाणे - त्रस प्राणियों, य - और, थावरे - स्थावर प्राणियों की, हिंसंति - हिंसा करते हैं, सवसा हणंति - अपनी अच्छा से प्राणियों की घात करते हैं, अवसा हणंति - विवश होकर घात करते हैं, सवसा अवसा दुहो हणंति - स्वधीन और पराधीन-दोनों प्रकार से जीवों की घात करते हैं, अट्टा हणंति - प्रयोजन से जीव घात करते हैं, अणट्टा हणंति - बिना प्रयोजन हिंसा करते हैं, अट्टा अणट्टा दुहओ हणंति - सकारण और अकारण दोनों प्रकार से हिंसा करते हैं, हस्सा हणंति - हास्य वश जीव-घात करते हैं, वेराहणंति - वैरभाव से हनते हैं, कुद्धा हणंति- क्रुद्ध होकर हिंसा करते हैं, लुद्धा हणंति - लुब्ध होकर हिंसा करते हैं, मुद्धा हणंति - मुग्ध होकर हिंसा करते हैं, कुद्धा लुद्धा मुद्धा हणंति - क्रुद्ध, लुब्ध और मुग्ध होकर मारते हैं, अत्था हणंति - अर्थ-धन के लिए मारते हैं, धम्मा हणंति - धर्म के लिये जीव घात करते हैं, कामा हणंति - कामभोग के लिए हिंसा करते हैं, अत्था धम्मा कामा हणंति - अर्थ, धर्म और काम के लिए जीवघात करते हैं।

विवेचन - त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करने वालों का अभिप्राय बतलाते हुए आगमकार

ने जिस अभिप्रायों का उल्लेख किया, उनमें मंदबुद्धी - विशेषण मुख्य है। इसका अर्थ है-हीन मति वाले, विवेक-विकल, मिथ्यादृष्टि जीव, जिन्हें हिताहित धर्म-अधर्म और पुण्य-पाप का ज्ञान नहीं है।

वास्तव में मिथ्यादृष्टिपन बहुत बड़ा पाप है। मिथ्यादृष्टि उस अन्धे के समान है जो सुख की चाह में भटकता हुआ दुःख के अन्धकूप में गिरकर मर जाता है। मिथ्यादृष्टि अन्य जीवों की घात के साथ अपनी आत्मा का भारी पतन कर लेता है।

मन्दबुद्धि के साथ 'दबमूढा' - अत्यन्त मूर्ख और 'दारुणमई' - भयंकर विचार वाले क्रूर-परिणाम भी मिल जाये, तो प्राणियों की हत्या बढ़ चढ़ कर की जाती है। मिथ्यात्व के साथ क्रूरता जिसमें आ जाये और वह शक्ति-सम्पन्न हो, तो अत्याचारों और हिंसक कार्यों की वृद्धि होती है।

मन्दबुद्धि केवल वही नहीं है-जो पढ़ा-लिखा नहीं हो, जिसे बोलना-लिखना और अधिकार जमाना नहीं आता हो। वे लोग भी बुद्धिहीन हैं, जो अपने समान प्राण रखने वाले जीवों की हिंसा बढ़ाते हैं। हिंसा के साधन बढ़ाते हैं, हिंसक कृत्य करके धन-संग्रह करना चाहते हैं और हिंसा में ही अपनी और राष्ट्र की उन्नति होना मानते हैं। अहिंसक लोगों में हिंसा का प्रचार, मांस-भक्षण में वृद्धि और ऐसे अन्य पापाचार की वृद्धि करने वाले पढ़े-लिखे, चुस्त, चालाक और अधिकार सम्पन्न व्यक्ति भी मन्दबुद्धि एवं भीषण-मति हैं। वे धर्म एवं उत्तम आर्य-संस्कारों को नष्ट कर, अनार्य एवं हिंसक संस्कार बढ़ाते हैं। शिक्षा एवं प्रयोगादि से हिंसा वृद्धि के उपाय बताते हैं। ये सब विवेकहीन हैं। एक जीव को अहिंसक से हिंसक बनाना भी महापाप है, तब सारे राष्ट्र को जीवघातक बनाना कितना भयानक पाप है ?

सत्त्वपरिवर्जिता - सत्त्वपरिवर्जित-बलहीन, शक्ति सहित, अशक्त, दीन, अपनी रक्षा करने में असमर्थ। शक्ति-सम्पन्न जीव, अशक्त और दीन जीवों की हिंसा करते हैं, उन पर अत्याचार करते हैं और उनकी घात करके प्रसन्न होते हैं।

वेद्यथी - वेदार्थी-वैदिक अनुष्ठान को सम्पन्न करने के लिए। वैदिक क्रियाकांड में अन्य स्थावर और त्रस जीवों के अतिरिक्त पंचेन्द्रिय जीवों-बकरा, भेड़ आदि का बलिदान करने में धर्म माना गया है। अजामेध, गोमेध, अश्वमेध और नरमेध तक का विधान है पर प्राणियों की हत्या करके धर्मसाधना करना-देव का प्रसन्न होना और अपनी तथा अपने कुटुम्ब की रक्षा होना माना जाता है। वैदिक मान्यता के अतिरिक्त इस्लाम, क्रिश्चियन आदि संस्कृति भी जीव-हत्या करके धर्म का अनुष्ठान होना मानती है। यह सब 'मंदबुद्धी' - मिथ्यादृष्टि का परिणाम है।

हिंसक जन

कयरे ते ? जे ते सोयरिया मच्छबंधा सावणिया वाहा कूरकम्पा त्ताउरिया दीविय-
धणप्यओम-तप्यगल-जाले-वीरल्लगायसीदध-वग्गुरा-कूडछलियाहत्याहरिएसा

साउणिया य वीदंसगपासहत्था वणचरगा लुद्धगा महुघाया पोयघाया एणीयारा
पएणीयारा-सर-दह-दीहिय-तलाग-पल्लल-परिगालण-मलण-सोत्तबंधण-सलिला-
सयसोसगा-विसगरस्स य दायगा उत्तणवल्लर-दवग्गि-णिहया-पलीवगा कूरकम्मकारी ।

शब्दार्थ - कथरे ते - कौन हैं वे हिंसक लोग ? **ते - वे,** जे सोयरिया - जो सूअरों का शिकार करते हैं, **मच्छबंधा -** मछलियों को पकड़ने वाले-मछलीमार, **साउणिया -** शाकुनिक-पक्षियों को जाल में फंसाकर मारने वाले-पारधी-बहेलिया, **वाहा -** व्याधामृग-घातक, **कूरकम्मा -** क्रूर कर्म करने वाले, **वाउरिया -** वागुरिका-मृगों को जाल में फंसाने की तक में रहने वाले, **दीविय-बंधणप्पओग-तप्पगल-जाल-वीरल्लगायसी-दब्ध-वग्गुरा कुड्डलियाहत्था -** मृग को मारने के लिए चीता रखने वाले, मृग बांधने के लिए जाल रखने वाले, मछली मारने के लिए कांटा और जाल रखने वाले, अन्य पक्षियों को मारने के लिए वीरल्लक-बाज-पक्षी रखने वाले, लोह अथवा कुश का बना हुआ जाल रखने वाले, अन्य चीता-सिंह आदि को पकड़ने के लिए बकरा और पिंजरा रखने वाले, **हरिएसा -** हरिकेश-चांडाल, **साउणिया -** शिकारी, **वीदंसगपासहत्था -** बाज आदि घातक-पक्षी तथा फन्दा रखने वाले, **वणचरगा-वन में घूमने वाले वनवासी भील आदि,** **लुद्धगा -** लुब्धक-व्याघ्र, **महुघाया -** मधुमक्खियों का घात कर मधु लेने वाले, **पोयघाया -** पोतघातक-पक्षियों के बच्चों को मारने वाले, **एणीयारा -** मृग को लुभाकर पकड़ने के लिए हिरनी को लेकर घूमने वाले, **पएणीयारा -** बहुत सी हिरनियों को रखने वाले, **सर-दह-दीहिय-तलाग-पल्लल-परिगालण-मलण-सोत्तबंधण-सलिलासयसोसगा- सरोवर, द्रह (झील) नहर, पोरख, तालाब और तलाई का पानी निकाल कर उनमें रहे हुए मच्छादि जीवों का मर्दन करने वाले और जल-प्रवाह को रोक कर पानी सुखाने वाले,** **विसगरस्स य दायगा -** आहार आदि में विष मिला कर देने वाले, **उत्तणवल्लर-दवग्गि-णिहया पलीवगा -** तृणयुक्त वनों और वन में रहे हुए खेतों में निर्दयतापूर्वक आग लगाने वाले, **कूरकम्मकारी- ये क्रूर कर्म करने वाले हिंसकजन हैं।**

भावार्थ - प्रश्न - वे हिंसक मनुष्य कौन हैं ?

उत्तर - जो सूअरों का शिकार करते हैं, मछलियों को मारते हैं, पक्षियों को जाल में फंसा कर मारने वाले-पारधी आदि, मृगघातक-व्याधा, मृगों को अपनी जाल में फंसाने की तक में रहने वाले, मृग-समूह पर झपटकर दबोचने वाले चीता रखने वाले, जाल, मछली मारने का कांटा आदि तथा पक्षियों का शिकार करने वाले बाज आदि रखने वाले और हिंसक चीता, सिंह आदि को आकर्षित करने के लिए बकरा आदि रखने वाले, चांडाल, शिकारी, वन में घूमने वाले वनवासी, मधुमक्खियों के समूह के घातक, पोतघातक, मृगों को लुभाने के लिए हिरनी और अनेक हिरनियों को रखने वाले, जलाशय को सुखाकर या खाली करवा कर उसमें रहे हुए मच्छादि को मारने वाले, आहारादि में विष मिलाकर प्राणियों को मारने वाले और खेतों तथा जंगलों में आग लगाकर निर्दयतापूर्वक जीवों का संहार करने वाले क्रूर जीव, हिंसक लोग हैं।

दिवेचन - प्रस्तुत सूत्र में प्रायः उन्हीं हिंसकों का वर्णन है, जिनकी आजीविका ही हिंसा के साधन से चलती है। वे ऐसे क्रूर-कर्मियों में ही उत्पन्न होते, बढ़ते और जीवहिंसा में ही जीवन व्यतीत कर काल के शिकार बन जाते हैं। निरन्तर हिंसक कृत्यों में ही रहने के कारण उनका हृदय इतना क्रूर कठोर और निर्दय हो जाता है कि जीवों को आक्रन्द करते, तड़पते, छटपटाते और मरते देखकर उनके हृदय में तनिक भी कोमलता नहीं आती। उनका हृदय इतना अधिक क्रूर हो जाता है। वे सूर्योदय से पूर्व ही नियमानुसार शूकरघात, मृगघात, पक्षीघात और मत्स्यघात के लिए निकल पड़ते हैं। उनको प्राप्त मनुष्यभय, पाप का भार बढ़ाने वाला ही होता है। इन पापानुबन्धी-पाप के भाजन मनुष्यों के लिए, मनुष्य जैसा उत्तम भव भी दुर्गतिरूप ही रहा। यदि उनके मन में कुछ अंशों में कोमलता है, तो अपने कौटुम्बिक मनुष्यों या अधिक हुआ तो मनुष्य जाति के लिए ही। पशुओं, पक्षियों और जलचरों के लिए तो उनके हृदय में करुणा का कोई स्थान ही नहीं है।

ग्राम्य-सूअर - जिन्हें चाण्डाल लोग पालते हैं। इनकी घात का तरीका बड़ा ही क्रूर है। कहते हैं कि सूअर की चमड़ी मोटी होती है और बाल भी ऐसे होते हैं कि साधारण शस्त्र से उसकी हत्या होना कठिन हो जाता है। चाण्डाल लोग, सूअर के पाँवों को लोहे के तार से दृढ़तापूर्वक बांध देते हैं, जिससे वह उठ कर भाग नहीं सके। फिर उस पर घास-फूस आदि डाल कर आग लगा देते हैं। वह बेचारा आग से जलता हुआ तड़पता है और भागने का प्रयत्न करता है, किन्तु पाँव दृढ़तापूर्वक बंधे होने के कारण भाग नहीं सकता। यदि जोरदार झटके से तार टूटकर एक भी पाँव खुल जाये, तो वह आग में से निकलने का प्रयत्न करता है, किन्तु पास ही लाठियाँ लेकर खड़े चाण्डाल लोग, लाठियों की मार से उसे गिरा देते हैं। कितनी क्रूरतापूर्वक हत्या की जाती है उस बिचारे की? किन्तु उनका क्रूरतम हृदय पसीजता ही नहीं। वे उसका मांस खाकर और पैसे बटोर कर प्रसन्न होते हैं।

जिस प्रकार मृग को इबोचने के लिए पाले हुए चीते छोड़े जाते हैं, उसी प्रकार विकराल एवं भयंकर कुत्तों को पालकर उनसे भी हिरन, खरगोश, शृंगाल आदि जीवों की हत्या करवाते हैं।

खेतों और जंगलों को साफ करने या अन्य कारणों से आग लगाकर छोटे-बड़े असंख्य त्रस जीवों को होमने के कार्य भी स्वार्थी मनुष्य करता है।

'हरिणसा' - 'हरिकेशाश्चाण्डालविशेषा' - तथा - 'हरिकेशाः=मातंगाश्चाण्डाला इत्यर्थः।' हरिकेश का अर्थ 'चाण्डाल' होता है। यह शब्द जाति-विशेष का पर्याय है। इससे शंका होती है कि उत्तराध्ययन अध्यायन १२ में वर्णित महात्मा का 'हरिणसा' विशेषण जाति-सूचक था और नाम 'बल' था या उनका नाम ही 'हरिणसबल' था? किन्तु उत्तराध्ययन सूत्र देखते यह शंका नहीं रहती। यहाँ उसका नाम ही 'हरिणसबल' और 'हरिणसा' लिखा है। जैसे - 'हरिणसबलो नाम' गाथा १ और 'सोवागपुत्रं हरिणसाहुं' (गाथा ३७)।

अब हिंसक मनुष्यों की जाति का परिचय सूत्रकार स्वयं देते हैं।

हिंसक जातियाँ

इमे य बहवे मिलक्खुजाई, के ते? सक-जवण-सबर-बब्बर-काय-मुरुडोद-भडग-तित्थिय-पक्कणिय-कुलक्ख-गोड-सीहल-पारस-कोचंध-दविल-बिल्लल-पुलिंद-अरोस-डोंब-पोक्कण-गंध-हारग-बहलीय-जल्ल-रोम-मास-बउस-मलया-चुंचया य चूलिया कोंकणगामेत्त ॐ पण्हव-मालव-महुर-आभासिय-अणक्ख-चीण-लासिय-खस-खासिया-नेहुर ६-मरहट्ट-मुट्ठिय-आरब-डोबिलग-कुहण-कैकय-हूण-रोमग-रुरु-मरुया-चिलायविसय-वासी य पावमइणो ।

शब्दार्थ - इमे - ये, बहवे - बहुत-सी, मिलक्खुजाई - म्लेच्छ जातियाँ हैं, ते के - वे कौन-सी जातियाँ हैं?, सक - शक देश के, जवण - यवन-तुर्क, इन देशों में उत्पन्न मनुष्य जातियाँ, सबर-भील, बब्बर - बर्बर, काय - काय, मुरुडोदभडग - मुरुंड उद भडक, तित्थिय - तित्तिक, पक्कणिय-पक्कणिक, कुलक्ख - कुलाक्ष, गोड - गौड, सीहल - सिंहल, पारस - पारस, कोचंध - क्रौंच और आन्ध्र, दविल - द्रविड, बिल्लल - विल्वल, पुलिंद - पुलिंद, अरोस - अरोष, डोंब - डोंब, पोक्कण-पोक्कण, गंधहारक - गंधहारक-गान्धार, बहलीय - बहलीक, जल्ल - जल्ल, रोम - रोम, मास - मास, बउस - बकुश, मलया - मलय, चुंचया - चुंचक, चूलिया - चूलिक, कोंकणगामेत्त - कोंकणक मेद, पण्हव - पण्हव, मालव - मालव, महुर - महुर, आभासिय - आभाषिक, अणक्ख - अण्णक, चीण - चीन, लासिय - लुहासिक, खस - खस, खासिया - खासिक, नेहुर - नेहर, मरहट्ट-महाराष्ट्र, मुट्ठिय - मौष्टिक, आरब - आरब, डोबिलग - डोबिलक, कुहण - कुहण, कैकय - कैकय, हूण - हूण, रोमग - रोमक, रुरु - रुरु, मरुया - मरुक, चिलायविसयवासी - चिलात देशवासी, पावमइणो - पापमति ।

भावार्थ - वे बहुत-सी म्लेच्छ जातियों के लोग हैं। वे कौन-सी जातियाँ हैं? - शक, यवन, सबर, बब्बर, काय, मुरुंड, उद, भडक, तित्तिक, पक्कणिक, कुलाक्ष, गौड, सिंहल, पारस, क्रौंच, आन्ध्र, द्रविड, विल्वल, पुलिंद, आरोष, डोंब, पोक्कण, गान्धार, बहलीक, जल्ल, रोम, मास, बकुश, मलय, चुंचुक, चूलिक, कोंकण, मेद, पण्हव, मालव, महुर, आभाषिक, अणक्क, चीन, लुहासिक, खस, खासिक, नेहर, महाराष्ट्र, मौष्टिक, आरब, डोबिलक, कुहण, कैकय, हूण, रोमक, रुरु, मरुक, चिलात देश के निवासी पापमति वाले हिंसक लोगों की जातियाँ हैं।

विवेचन - मनुष्यों के हिंसक और मांस-भक्षी जातियाँ बहुत हैं। भारत के अतिरिक्त सभी देशवासी मांस-भक्षक हैं। भारत में ही जैन और कुछ वैष्णव मतानुयायी जातियाँ ऐसी हैं कि जो न तो

ॐ पूज्य श्री हस्तीमल जी म. सम्पादित तथा बीकानेर वाली प्रति में 'कोंकणगामेत्त' पाठ है और पूज्य श्री घासीलाल जी म. तथा श्रीमदज्ञानविमल सूरि की टीकावली प्रति में-'कोंकणग-कणय-सेय-मेता'-पाठ है। यह पाठ भेद है।

६ 'नेहुर'-पाठ भेद।

मांस भक्षक हैं और न पशु-पक्षियों की हिंसा करने वाली हैं। वैसे बौद्ध मतात्रलंबी भी अहिंसक कहलाते हैं, किन्तु वे नाम-मात्र के अहिंसक हैं। उनके साधु (लामा) भी मांस भक्षी हैं, तब अनुयायी तो निश्चय ही मांसाहारी हैं और अपने गुरुओं के लिए पशु-हत्या करके मांसाहार तैयार करते हैं। भारत के बाहर ऐसी एक भी जाति जानने में नहीं आई—जो अहिंसक हो। कुछ व्यक्ति पूर्व के सुसंस्कार से या किसी निमित्त से प्रेरित होने पर अहिंसक बन सकते हैं, किन्तु वे अपवाद रूप हैं। अधिकांश जातियां मांसभक्षी हैं। भारत में भी अधिक संख्या मांस-भक्षियों की है। हमारे मालव, मेवाड़, मारवाड़, गुजरात, सौराष्ट्र आदि में ब्राह्मण निरामिषभोजी हैं और पशुघातक नहीं हैं, किन्तु कश्मीर, पूर्वदेश आदि में ब्राह्मण भी मांसाहारी एवं शिकारी हैं। तात्पर्य यह कि भारत के जैन, वैष्णव जैसी जातियों को छोड़कर मनुष्य की शेष सभी जातियां मांसाहारी हैं।

मूलपाठ में बताई हुई जातियों के नाम प्रायः देश सापेक्ष हैं। इनमें से कुछ देश भारत में हैं और कुछ बाहर के। कई देशों का परिचय टीका से भी नहीं मिलता। टीकाकार ने भी मूल का रूपान्तर ही प्रस्तुत किया है। कुछ जातियाँ एत्र देश तो हमारे पड़ोसी और जाने माने हैं। एक समय वह भी था कि ये बाहर के सारे अनार्य देश, भारत के अधिपत्य में थे। चक्रवर्ती और वासुदेव ही नहीं, अन्य प्रतापी शासकों ने भी इन देशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। इतना होते हुए भी आर्यत्व की सीमा बहुत कम रही। भारत में भी म्लेच्छत्व का प्रसार अधिक रहा।

तीर्थंकर भगवन्तों और अन्य पहर्षियों के समय अहिंसा का प्रचार बहुत हुआ। महाराजा श्रेणिक, कुणिक, उदयन आदि जिनोपासकों ने अहिंसा का प्रचार किया और उस क्षेत्र में हिंसा में कमी आई, किन्तु हिंसा सर्वथा बन्द नहीं हो सकी। महाराजा श्रेणिक ने अपनी सत्ता से राजाज्ञा प्रचारित कर 'अमारि' घोषणा करवाई, किन्तु लुके-छिपे वहाँ भी कसाइखाना चलता रहा और कालसौरिक सैकड़ों भैंसों का नित्य वध करता रहता था। उसके बाद जैनाचार्यों के उपदेश से हिंसा में कहीं-कहीं कुछ रोक लगा दी गई, किन्तु विदेशों से भारत में आई हुई यवन, आंग्ल आदि जातियों ने हिंसा में अधिक वृद्धि कर दी और इस धर्म-शून्य भौतिकवादी जमाने ने तो भारत को भी अन्य मांस-भक्षी देशों से होड़ लगाने को लालायित कर दिया। अब यहाँ भी बड़े-बड़े भीमकाय कसाइखाने खोले जा रहे हैं।

जलयर-थलयर-सणष्क-योरग-खहयर-संडासतुंड-जीवोवघायजीवी सण्णी य असण्णणो पज्जत्ते अपज्जत्ते य असुभलेस्स-परिणामे एए अण्णो य एवमाई करेति पाणाइवायकरणं।

पावा पावाभिगमा * पावरुई पाणवहकयरई पाणवहरूवाणुट्टाणा पाणवहकहासु अभिरमंता तुट्टा पावं करेत्तु होइ य बहुप्पगारं।

* किसी-किसी प्रति में यहाँ 'पावमई' शब्द भी है।

शब्दार्थ - असुभलेस्स-परिणामे - अशुभ-बुरी लेश्या=पापी विचार के भावों से ओतप्रोत जीव, **जलचर** - जलाशय में रहने वाले मच्छ आदि, **थलचर** - पृथ्वी पर चलने वाले गाय, बैस, भेड़, बकरे आदि, **सण्णक्य** - जिनके पाँवों में नख हैं ऐसे चीते, सूअर आदि, **उरग** - साँप आदि पेट के बल रेंगकर चलने वाले, **खहयर** - खेचर-आकाश में उड़ने वाले पक्षी, **संडासतुंड** - संडासी के समान जिनका मुँह (चोंच) है-ऐसे पक्षी (ढंक, कंक आदि), **जीवोवघायजीवी** - इन सभी प्राणियों की घात करके आजीविका करने वाले लोग, **सण्णी य असण्णिणणो** - संज्ञी और असंज्ञी, **पज्जत्ते अपज्जत्ते** - पर्याप्त और अपर्याप्त, **ए** - इन जीवों की और, **एवमाई** - इस प्रकार के, **अण्णे** - अन्य जीवों के, **पाणाइवायकरणं** - प्राणों का अतिघात-हिंसा, **करेति** - करते हैं।

पावा - पाप करने वाले, **पावाभिगमा** - पाप को ही उपादेय मानने वाले, **पाव-रुई** - जिनकी रुचि ही पापमय है, **पाणवहकयरई** - प्राणवध करके ही जो सुख मानते हैं-प्रसन्न होते हैं, **पाणवहरूवाणुद्दाणा** - प्राणियों के वध रूप अनुष्ठान करने वाले, **पाणवह-कहासु** - प्राणवध की कथा कहानी में, **अभिरमंता** - मन लगाने-रस लेने वाले, **बहुप्पगारं** - बहुत प्रकार का, **पावं करेत्तु** - पाप करके, **तुड्डा** - संतुष्ट-प्रसन्न, **होइ** - होते हैं।

भावार्थ - जिनकी आत्मा पापमय विचारों में लगी रहती है, ऐसे पापीजन जलचर, स्थलचर, नखी, नभचर, तीक्ष्ण एवं दृढ़ चोंच वाले पक्षी, साँप आदि जीवों की घात करके अपनी आजीविका चलाते हैं। वे संज्ञी (मन वाले) और असंज्ञी, पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों और ऐसे अनेक प्रकार के जीवों की हिंसा करते हैं।

वे पापीजन पाप को ही उपादेय मानते हैं। उनकी रुचि पाप में ही रहती है। वे प्राणवध करके प्रसन्न होते हैं। उनका कार्य अथवा अनुष्ठान प्राणियों की घात रूप ही है। जीववध का कहानी में उनकी बहुत रुचि होती है। वे अनेक प्रकार का पापकर्म करके संतुष्ट (प्रसन्न) होते हैं।

दिवेचन - आजीविका के लिए, स्वादवश और शरीर-पुष्टि के लिए जीवों की घात करने के अतिरिक्त धन संग्रह करने के लिए भी लोग जीवों को मारते हैं और कई लोग जीवों को मार कर के हाथ बेचकर धन कमाते हैं। व्यक्तिगत कमाई के धन्धे के अतिरिक्त अब तो कुछ समूह एवं समितियाँ मिलकर पूर्ण सहयोग से इस प्राणी-संहारक धन्धे को बढा रहे हैं। यहाँ तक कि धर्मप्रधान एवं आर्य-संस्कृति का निजधाम जाने वाले भारत की भारतीय सरकार स्वयं मांस का निर्यात करती है और विदेशी मुद्रा प्राप्त कर राष्ट्र को समृद्ध बनाना चाहती है। वह नहीं सोचती कि पाप का परिणाम कभी सुख-समृद्धिदायक नहीं हो सकेगा। कभी तात्कालिक धन लाभ हो भी जाये, तो अग्रे संकड़ों गुणा हानि का बीजारोपण भी तत्काल हो जाता है।

इसके अतिरिक्त हिंसा के निम्न कारण भी है -

“पावाभिगमा” - “पापमेव अभिनमं उपादेयं येण”-जिसे पापमय प्रवृत्ति ही उपादेय लगती

है। ऐसे लोग कहते हैं कि 'पशुवध आवश्यक है। मांस में अन्न, दूध तथा घृतादि की अपेक्षा अधिक शक्ति है। मांस, मत्स्य एवं अंडा भक्षण से शरीर बलवान् बनता है। दुधारु और खेती के काम में आने वाले पशुओं के अतिरिक्त सभी पशुओं को और सभी पक्षियों तथा जलचरों को मारना उपादेय ही नहीं लाभकारी भी है। इससे बेकार पशुओं पर होता हुआ खर्च रुकता है, अन्न की कमी की पूर्ति होती है और धन लाभ भी होता है।'

बन्दर, मेढक आदि को पकड़कर विदेश भेजकर धन प्राप्त किया जाता है। इन्हें पकड़ कर लाने, इकट्ठा करके विदेश भेजने का काम बड़ी-बड़ी कम्पनियों द्वारा सरकार करवाती है। वे इन सब पाप-कार्यों की उपादेयता बतलाते हुए कहते हैं कि - "ये पशु राष्ट्र के किसी काम में नहीं आते। बन्दर, हिरन, नीलगाय आदि खेती को हानि पहुँचाते हैं। अतएव इनकी हिंसा उपादेय-हितकारी है।" इस प्रकार पाप की उपादेयता बताकर हिंसा को बढ़ावा देते हैं।

पावरुई - "पापपरुचयः पापे एव रुचिरनुरागः" - जिसकी पाप में रुचि-अनुराग हो। बहुत से लोगों का तो जीवहत्या करने का शौक होता है। शिकार खेलना प्रायः शौक-रुचि के कारण होता है। यह एक प्रकार का व्यसन हो जाता है। शिकारी की रुचि किसी-किसी की इतनी तीव्र हो जाती है कि वह अपने आपको खतरे में भी डाल देता है। कई जिह्वा-लोलुप धनहीन मांसाहारी लोग, स्वाद रुचि के लिए छोटे-छोटे पशुओं और पक्षियों को मारकर उदरस्थ करते हैं।

कोई-कोई तो केवल मनोरंजन के लिए कुत्तों से पशुओं की घात करवाते हैं। पिंजरे में कई दिन तक चीते को भूखा रखकर और उसे दौत तथा नाखून से रहित करके मैदान में छोड़ने और फिर भयंकर शिकारी कुत्तों को छोड़कर उसे मरवाने के मनोरंजन भी मनुष्य करता है। सबल को निर्बल बनाकर निर्बल के हाथों मरवाकर तमाशा देखने और प्रसन्न होने की मनोवृत्ति भी मनुष्य में है।

विजया के त्योहार पर भैंसे को मदिरा पिलाकर मैदान में छोड़ना और उसे मानव-समूह द्वारा भालों और बरछों से मारने का कार्य भी बढ़ा क्रूर है। वह भैंसा अपने प्राण बचाने के लिए इधर-उधर भागता है, किन्तु चारों ओर घेरा डाले हुए मनुष्य उसे अपने पास आते ही तीक्ष्ण भाले से मारते हैं। वह भयभीत भैंसा उधर से लौटकर दूसरी ओर भागता है, किन्तु वहाँ भी उसका रक्षक कौन है? सभी भाले और बरछे लिए हुए उसे मारने को तत्पर। यदि किसी दर्शक के मन में करुणा जगे, तो भी वह क्या कर सकता है? सैकड़ों या हजारों दर्शकों के मनोरंजन में बाधक बनने का वह साहस नहीं कर सकता। इस प्रकार लगभग आधे घंटे में वह भैंसा गिर जाता है। उस गिरे हुए पर भी प्रहार होता है और वह तड़प-तड़प कर मर जाता है। इस प्रकार के मनोरंजन रजवाड़ों और ठिकानों में होते थे। अब भी कदाचित् कहीं होते हों?

"पावमई" - "पापमहतयः पापमेव श्रद्धानः" अथवा "पापमयबुद्धयः" जिसकी श्रद्धा ही पापमय हो। जो जीवहत्या में अपना, परिवार यावत् राष्ट्र का हित मानता हो, जिसकी श्रद्धा हो कि पशुओं का

बलिदान करना धर्म-पुण्य या उत्तम कार्य है, अपना कुटुम्ब और देश का हित है, तो इस प्रकार की मति-पापमति है।

“पाणवहकयरई” - “प्राणवधेकृतरतयः-प्राणवधेकृता-रतिः-प्रीतिर्येस्ते” - जिसे जीव-हत्या के कार्यों से रति-प्रीति है। जीवों को मारने तड़पाने और दुःख देने में जिसे मजा आता है-ऐसे परमाधामी देव जैसे मनुष्य।

“पाणवहरूवाणुद्राणा” - “प्राणवधरूपानुष्ठानाः तदेव आचरणं” - प्राणियों का वध करने रूप अनुष्ठान करने वाले। जो यज्ञ, याग और देवी देवता के नाम पर प्राणियों का वध करवा कर बलिदान रूप अनुष्ठान करवाते हैं।

“पाणवहकहासु अभिरमंता” - “प्राणवधकथासु अभिरमंतः-चित्तं ददन्तः” जीव हिंसा की कथा में रुचि रखने वाला। शिकार के वर्णन को रुचि पूर्वक सुनने वाला और वैसे लेख, कहानी एवं विवरण को (पत्र-पत्रिकाओं में छपती है) रस पूर्वक पढ़ और सुनकर मनोरंजन करने वाला है।

सूत्रकार महर्षि ने उपरोक्त शब्दों में हिंसक लोगों की मनोवृत्ति का परिचय दिया है।

हिंसा का दुःखद परिणाम

तस्स य पावस्स फलविक्कगं अयाणमाणा वड्ढंति महब्भयं अविस्सामवेयणं दीहकालबहुदुक्खसंकडं णरयतिरिक्खजोणिं।

शब्दार्थ - तस्स - उस, णवस्स - पाप के, फलविवागं - फल-विपाक को, अयाणमाणा - नहीं जानते हुए, महब्भयं - महा भयानक, दीहकालबहुदुक्खसंकडं - दीर्घकाल तक बहुत-से दुःखों और संकटों से भरी हुई, अविस्सामवेयणं - विश्राम रहित-निरंतर, असाता वेदना वाली, णरयतिरिक्खजोणिं - नरक और तिर्यच योनि को, वड्ढंति - बढ़ाते हैं।

भावार्थ - हिंसक जीव, हिंसा-जन्य पाप के फलविपाक को नहीं जानते हुए अपने पाप से नरक और तिर्यच योनि की ओर बढ़ते हैं और अपने लिए अनेक प्रकार के महान् भयंकर दुःखों और संकटों की ऐसी परम्परा का निर्माण कर लेते हैं कि जिसमें विश्राम का कोई समय ही नहीं है, निरन्तर दुःख ही दुःख और संकट ही संकट बने रहते हैं।

विवेचन - सूत्रकार ने हिंसा से उत्पन्न पाप के परिणाम का दिग्दर्शन कराते हुए कहा है कि वे पापी जीव, पाप के भयंकर परिणाम को नहीं जानते हुए पाप करते हैं और अपने लिए दुःखों का पहाड़ खड़ा कर लेते हैं। तात्पर्य यह है कि अज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान-ही इन महान् भयानक दुःखों और संकटों का मूल है। अज्ञान और कुज्ञान के अन्धेरे में रहकर जीव, सुख और शांति के सदन में पहुँचने के बदले दुःखों और संकटों के, नरक-तिर्यच गति के समान गहरे अन्ध-कूप में गिर जाता है, जिसमें केवल दुःख ही दुःख भरा है। उस गहन-गम्भीर अन्धकूप में से निकलना अत्यन्त कठिन है और वहाँ सुख का तो लेश भी नहीं है।

नरक का वर्णन

इओ आउक्खए चुया असुभकम्मबहुला उववज्जंति णरएसु हुलियं महालएसु वयरामय-कुडु-रुद्द-णिस्संधि-दार-विरहिय-णिम्महव-भूमि-तल-खरामरिसविसम-णिरय-घरचारएसु महोसिण-सया-पतत्त दुग्गंध-विस्स-उव्वेयजणगेसु बीभच्छ दरिसणिज्जेसु णिच्चं हिमपडलसीयलेसु कालोभासेसु य भीम-गंभीर-लोमहरिसणेसु णिरभिरामेसु णिप्पडियार-वाहिरोगजरापीलिएसु अईव णिच्चंधयार-तिमिस्सेसु पड्भएसु ववगयगह-चंद-सूर-णक्खत्तजोइसेसु मेय-वसा-मंसपडल-पोच्चड-पूय-रुहि-रुक्किण्ण-विलीण-चिक्कण-रसिया वावण्णकुहियचिक्खल्लकदमेसु कुकूला-णल-पलित्तजालमुम्पुर-असिक्खुर-करवत्तधारासु णिसिय-विच्छुयडंक-णिवायोवम्प-फरिस अइदुस्सहेसु य अत्ताणा अमरणा कडुयदुक्खपरितावणेसु अणुबद्ध-णिरंतर-वेयणेसु जमपुरिस-संकुलेसु।

शब्दार्थ - इओ - यहाँ मनुष्य भव का, आउक्खए - आयुष्य क्षय होने पर, चुया - च्युत होकर- गिर कर, असुभकम्मबहुला - अशुभ-कर्मों की अत्यधिकता वाले मनुष्य, हुलियं - शीघ्र ही, महालएसु- विशाल, णरएसु - नरक में, उववज्जंति - उत्पन्न होने हैं। कैसे हैं वे नरक, वयरामयकुडु - उसकी भीति वज्र की है, रुद्द - बहुत लम्बी-चौड़ी है, णिस्संधि - उसमें कहीं कोई सन्धि-छिद्र आदि नहीं है, दारविरहिय - निकलने का द्वार भी नहीं है, णिम्महव भूमितल - उसकी भूमि कोमल नहीं है-कर्कश है, खरामरिस - कठोरतर है, विसमणिरयघरचारएसु - नरकावास रूपी बन्दीगृह-नगरों के उत्पत्ति स्थान महा विषम हैं, महोसिणसयापतत्त - वे नरकावास अत्यन्त उष्ण और सदैव तप्त रहते हैं, दुग्गंधविस्सउव्वेयजणगेसु - दुर्गन्ध एवं सड़ान से भरपूर, जीव को उद्विग्न कर देने वाले, बीभच्छदरिसणिज्जेसु - बीभत्स-भयावने दृश्य वाले, णिच्चं - कुछ स्थान तो ऐसे हैं कि जो-नित्य, हिमपडलसीयलेसु - हिम-बर्फ के पटल के समान शीतल हैं, कालोभासेसु - काली पभा वाले, भीमगंभीरलोमहरिसणेसु - बड़े भयानक गम्भीर और रोंगटे खड़े कर देने वाले, णिरभिरामेसु - अरमणीय-घृणित, णिप्पडियार - जिसका प्रतिकार-चिकित्सा नहीं हो सके, ऐसे, वाहिरोगजरापीलिएसु- कुष्ठादि व्याधि रोग और जरा से पीड़ित, अईवणिच्चंधयारतिमिस्सेसु - सदैव अत्यन्त घोर अन्धकार वाली, पड्भएसु - प्रतिभय वाली-वहाँ की प्रत्येक वस्तु अत्यन्त भयंकर है, ववगयगह-चंद-सूर- णक्खत्तजोइसेसु - चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्र की ज्योति से सवंधा रहित, मेयवसामंसपडल-पोच्चडपूयरुहिरुक्किण्णविलीण-चिक्कणरसियावावण्णकुहियचिक्खल्लकदमेसु- भेद, वसा, तर्जों

और मांस के टेरों से वहाँ का स्थान अत्यन्त घृणास्पद है तथा पीप और रक्त के बहने से भूमि गीली और चिकनी हो गई है और वह स्थान कीचड़ से परिपूर्ण हो गया है। कुकूलाणलपलित्तजालमुमुत्तर-असिक्खुर-करवत्तधारासुणिसियविच्छुयडंक णिवायोवम्म-फरिसअइदुस्सहेसु - वहाँ का स्पर्श धधकती हुई करीष की आग अथवा खेर की आग के समान अत्यन्त उष्ण और तलवार, उस्तरे तथा करवत्त की धार के समान तीक्ष्ण और बिच्छु के डंक से उत्पन्न वेदना से भी अत्यन्त दुःखदायक है, अताणा - त्राण-रक्षण से रहित, असरणा - शरण-आश्रय से रहित, कडुयदुक्खपरितावणोसु - वहाँ अत्यन्त कटु लगने वाले ऐसे दारुण दुःख से जीव दुःखी रहते हैं, अणुबद्धणिरंतरवेयणोसु - वहाँ निरन्तर अत्यन्त वेदना होती रहती है, जमपुरिससंकुलेसु - वहाँ यम-पुरुष-परमाधामी देव सर्वत्र भरे रहते हैं।

भावार्थ - वे हिंसक लोग, मनुष्य-भव के आयुष्य का क्षय होने पर, अपने मनुष्य-भव से गिरकर अशुभ कर्म की अधिकता से शीघ्र ही नरक में उत्पन्न हो जाते हैं। वे महानरक बहुत लम्बे चौड़े हैं। उनकी भीत वज्रमय हैं। उस भीत में न तो कहीं कोई छिद्र है और न कहीं कोई सन्धिवाली पतली-सी दरार ही है। उसके द्वार भी नहीं है। वह नरकभूमि बड़ी कठोर, कर्कश और रूक्ष स्पर्श वाली है। नरक जीवों का वहाँ का उत्पत्ति-स्थान और आवास महाविषम एवं बन्दीगृह के समान है। वे नरकावास सदैव अत्यन्त उष्ण और तप्त रहते हैं। वहाँ जीव को उद्विग्न कर देने वाली तीव्र दुर्गन्ध है। वहाँ का दृश्य बड़ा ही भयानक है। वहाँ कई स्थानों पर हिम-पटल के समान अत्यन्त शीत है। वे नरकावास अत्यन्त काले, महाभयंकर, गंभीर और रोंगटे खड़े कर देने वाले हैं। नरकावास अरमणीय-घृणित हैं। वहाँ नरक जीवों को ऐसी व्याधियाँ और रोग लगते हैं कि जिनका कोई उपचार ही नहीं है। अत्यन्त घनघोर अन्धकार वहाँ छाया रहता है। वहाँ का स्थान भय से परिपूर्ण रहता है। उन नरकावासों में चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रों की ज्योति (एक किरण भी) नहीं पहुँच पाती। वह स्थान मेद, वसा, मांस, रक्त और पीप आदि घृणित वस्तुओं से भरा हुआ है और वहाँ की भूमि पर रक्त, मांस और चर्बी आदि का कीच मचा हुआ है। नरकावास की भूमि का स्पर्श धधकते हुए अंगारों जैसा असह्य उष्ण, तलवार, उस्तरे और आरी की धार के समान तीक्ष्ण और बिच्छु-दंश से उत्पन्न वेदना से भी अत्यन्त दुःखदायक है। वहाँ न कोई रक्षक है, न शरणदाता। नरक जीव वहाँ दारुण दुःख से दुःखी रहते हैं। ऐसी उग्र वेदना वहाँ निरन्तर होती रहती है। वहाँ परमाधामी देव भी बहुत हैं। वे भी नरक जीवों को दुःख देते रहते हैं।

विवेचन - घोर पापियों और जीवों की हत्या, ताड़न, पीड़न और कदर्थन में ही आनन्द मानने वाले मनुष्यों के लिए पाप का दुःखदायक परिणाम भोगने का स्थान नरक और तिर्यच गति है। मनुष्यों की आयु कम होती है। किन्तु अपनी कम आयु में भी कई मनुष्य जीवन भर पाप ही पाप करते रहते हैं। पूर्व पुण्य के उदय से इस मनुष्य-जन्म में उन्हें अपने पाप का फल नहीं भोगना पड़े, तो अन्य ऐसा कोई स्थान अवश्य होना चाहिए-जहाँ उनके पापों का फल मिल सके।

एक भयंकर डाकू अपने जीवन में सैकड़ों निरपराध मनुष्यों को मार डालता है। गाँव के गाँव जलाकर भस्म कर देता है। स्त्रियों, बच्चों और वृद्धों को निराधार करके दुःख एवं क्लेश की भट्टी में झोंक देता है। ऐसा भयंकर पापी यदि पकड़ा भी जाये और उसे मृत्यु-दण्ड भी मिले, तो उसके महान् पापों और हत्याओं के आगे वह मृत्यु-दण्ड किस गिनती में है? उसे अपने पापों का यथोचित फल भोगने का कोई स्थान होना ही चाहिए और वह स्थान नरक-निगोद ही है।

एक युद्धखोर सत्ताधारी अपनी कलुषित महत्वाकांक्षा से दूसरों की भूमि और सम्पत्ति हड़पने के लिए, अन्य पड़ोसी राज्यों को अपने आधीन बनाने के लिए युद्ध कर लाखों मनुष्यों को मरवाता है। दूसरे राज्य की प्रजा को बर्बाद करता है, लूट मचाकर हजारों डाकुओं से भी अधिक पाप करता है। जलाशयों में विष मिलाकर और बम वर्षा कर तथा परमाणु बम गिराकर लाखों मनुष्यों, असंख्य तिर्यचों को मार देता है। ऐसे भयंकर हत्यारे का घोरतम पाप क्या व्यर्थ ही चला जाएगा? नहीं, उसका परिणाम उसे अवश्य भुगतना पड़ेगा और उस घोर पाप के फल-भोग का स्थान उपरोक्त सूत्र में वर्णित नरक ही हो सकता है।

एक मनुष्य चाहे जितना शक्तिशाली हो (भले ही देव या इन्द्र ही क्यों न हो) हजारों मनुष्यों के घातक एक महानतम् पापी मनुष्य को उसके पाप का पूरा दण्ड, उस एक ही जन्म में नहीं दे सकता। उसके पाप का यथोचित दण्ड तो उसके अशुभ कर्म ही दे सकते हैं और वह भी एक नहीं अनेक जन्म-जन्मान्तर में। कई ऐसे शक्तिशाली उच्चाधिकारी महापापी होते हैं कि जिन्हें अपने महापापों का फल इस मनुष्य भव में तो मिलता ही नहीं। वे जीवनपर्यन्त महाराजाधिराज (ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीवत्) राष्ट्रायक (हिटलर, मुसोलिनी, तोजो जैसे) या कालसौरिक कर्साई जैसे रहकर मर जाते हैं। उनके महापापों का फल भवान्तर में ही मिलता है और इसके लिए उपयुक्त स्थान नरक ही है।

जिस प्रकार भयंकर अपराधी को काले पानी की सजा देकर स्थानान्तर किया जाता है और अंडमान साइबेरिया आदि प्रतिकूल परिस्थिति वाले क्षेत्र में भेजकर अत्यधिक दुःखद स्थान पर रखा जाता है, वैसे ही कर्म-फल भोगने के लिए नरक स्थान हैं। ऐसे स्थान पर मानव की अपेक्षा असंख्य गुण आयु प्राप्त कर, जीव भयंकरतम दुःख भोगता है।

उपरोक्त संक्षिप्त विचार से नरक-भूमियों और उनमें होने वाले भयंकरतम दुःखों को समझना सरल है।

उष्णता - सभी नरकों में उष्णता नहीं है। प्रथम से तीसरी नरक तक उष्णता ही है। चौथी और पांचवीं में उष्णता और शीतलता है। छठी व सातवीं में शीतलता ही है। (प्रज्ञापनासूत्र पद ९)

जमपुरिस - यमपुरुष का अर्थ 'परमाधामी' देव है। ये देव भवनपति जाति के हैं। तीसरे नरक तक ये देव जाते हैं और नैरयिकों को अनेक प्रकार के दुःख देते हैं। यह उनका मनोरंजन है।

नैरयिकों का बीभत्स शरीर

तत्थ य अंतोमुहुत्तलद्धिभवपच्चएणं णिवत्तंति उ ते सरिरं हुंडं बीभच्छदरिसणिज्जं बीहणगं अट्टि-णहारु-णह-रोम-वज्जियं असुभगं दुक्खविसहं तओ य पज्जत्तिमुवगया इंदिएहिं पंचहिं वेएंति असुहाए वेयणाए उज्जल-बल-विउल-क्कखड-खर-फरुस-पयंड-घोर-बीहणगदारुणाए ।

शब्दार्थ - तत्थ य - उन नरकों में, ते - वे पापी जीव, अंतोमुहुत्तलद्धिभवपच्चएणं - उत्पन्न होते ही अन्तर्मुहूर्त्तकाल में वैक्रिय-लब्धि और नरक भव से, सरिरं - शरीर, णिवत्तंति - निर्माण कर लेते हैं, उनका वह शरीर, हुंडं - हुंडक संस्थान वाला, बीभच्छदरिसणिज्जं - बीभत्स दर्शनीय-देखने में विकृत-घृणित, बीहणगं - भयानक, अट्टि-णहारु-णह-रोम-वज्जियं - हड्डियों, नसों, नाखून और रोम से रहित, असुभगं - अशुभ-खराब, दुक्खविसहं - दुःखों को सहने वाला, तओ - उसके बाद, पज्जत्तिमुवगया - पर्याप्ति को प्राप्त होकर, पंचहिं - पांचों, इंदिएहिं - इन्द्रियों से, वेएंति - दुःख का वेदन करते हैं, असुहाए - अशुभ, वेयणाए - वेदना, उज्जल - अत्यन्त तीव्र, बल - भारी-कठोर अथवा जोरदार, विउल - विपुल-अत्यन्त, कक्खड - कर्कश, खर - कठोर, फरुस - असह्य-प्रगाढ़, पयंड - प्रचण्ड, घोर - अत्यन्त, बीहणग - भयंकर, दारुणाए - दारुण-विकट, घोर ।

भावार्थ - वे पापी जीव उन नरकावासों में उत्पन्न होते ही और अन्तर्मुहूर्त्त में ही वैक्रिय-लब्धि और नरक भव के योग्य शरीर निर्माण कर लेते हैं। उनका वह शरीर हुंडक संस्थान वाला, दिखने में बीभत्स एवं भयानक होता है। उनके शरीर में हड्डियाँ, नसें, नाखून और रोम नहीं होते, उनका शरीर अशुभ और भयंकर दुःखों को सहन करने योग्य होता है। पांचों पर्याप्ति से पर्याप्त होने के बाद वे पांचों इन्द्रियों के द्वारा दुःख का वेदन करते हैं। अशुभ, अत्यन्त तीव्र, असह्य भयंकर एवं घोरतम वेदना का वेदन करते हैं।

विवेचन - नरक पाप का फल भोगने का प्रमुख स्थान है। वहाँ उत्पन्न होने वाले पापी जीवों का शरीर भी अत्यन्त अशुभ, बीभत्स, घृणित एवं भयानक होता है और उत्पन्न होते ही दुःखमय वेदना प्रारम्भ हो जाती है।

हुंडक संस्थान - शरीर की आकृति विशेष। छह प्रकार की आकृति में हुंडक आकृति सबसे निकृष्ट एवं विविध प्रकार की होती है। इसमें बेडोलता, भद्दापन और अशोभनीयता होती है।

हड्डी-रक्त-मांसादि रहित - मनुष्यों और पशुओं के शरीर में रक्त, मांस और हड्डी आदि होते हैं, किन्तु नारकों के शरीर में रक्तादि नहीं होते। उनका शरीर बहुत ही अशुभ-बुरी सामग्री से बना होता है।

पांच पर्याप्ति - सत्री पंचेन्द्रिय जीवों के कुल छह पर्याप्ति होती है। यथा - १. आहार पर्याप्ति २. शरीर पर्याप्ति ३. इन्द्रिय पर्याप्ति ४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति ५. भाषा पर्याप्ति और ६. मनः पर्याप्ति ।

नैरयिकों और देवों के भी छह पर्याप्ति होती है। किन्तु इनमें पांच पर्याप्ति बतलाई जाती हैं। इसका कारण यह है कि नैरयिकों और देवों के भाषा और मनःपर्याप्ति एक साथ बंधती हैं। इसलिए इन दोनों की पृथक् गणना नहीं करके पांचवां स्थान ही दिया गया है। टीकाकार ने भी लिखा है कि -
 “भाषामनसोरैक्यकालमिति दर्शितम्।”

वेदना - लोक में वेदना का अर्थ - 'दुःख-भोग' माना गया है। किन्तु जैन परिभाषा में सुख और दुःख, इन दोनों का 'वेदन' होना माना है। एक सुख रूप वेदन और दूसरा दुःखमय वेदन। वेदना का अर्थ-अनुभव करना-भोगना होता है, जो साता-सुखरूप भी होता है और दुःख रूप भी। सुखभोग और दुःखानुभव, दोनों ही प्रत्यक्ष हैं और सभी के अनुभव-सिद्ध बात है। नारक प्राणियों का जीवन 'असुहाए वेयणाए' - अशुभ-असाता रूप वेदना प्रधान होता है।

नारकों को दिया जाने वाला लोमहर्षक दुःख

किं ते कंदुमहाकुंभिए पयण-पउलण-तवग-तलण-भट्टुभज्जणाणि य लोहकडाहु-
 कट्टुणाणि य कोट्टुबलिकरण-कोट्टुणाणि य सामलितिकखग्ग-लोहकंटग-अभिसरण-
 पसारणाणि फालणाविदारणाणि य अवकोडकबंधणाणि लट्टिसयतालणाणि य
 गलगंबलुल्लंबणाणि सुलगभेयणाणि य आएसपवंचणाणि खिंसणविमाणणाणि
 विघुट्टुपणिज्जणाणि वध्जसयमाइकाणि य एवं ते।

शब्दार्थ - शिष्य पूछता है कि किं ते - वे दुःख कौन-से हैं? नरक के दुःख बतलाते हुए गुरु कहते हैं, कंदुमहाकुंभिए - कंदु और महाकुंभी में डालकर, पयण पउलण - जीवों को पकाया एवं उबाला जाता है, तवगतलणभट्टुभज्जणाणि - तवे के ऊपर रोटी की तरह सेका जाता है, कडाही में तला जाता है, भाड़ में डालकर भूना जाता है, लोहकडाहुकट्टुणाणि - लोहे की कड़ाही में इक्षुरस की बरह डाल कर औटया जाता है, कोट्टुबलिकरणकोट्टुणाणि - देवी के आगे बलिदान करने की तरह काटा जाता है-शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं, सामलितिकखग्गलोहकंटगअभिसरणपसारणाणि - लोह के तीक्ष्ण शूल जैसे शाल्मलि वृक्ष के काँटों पर उन्हें घसीटा जाता है, फालणाविदारणाणि - उन्हें लकड़ी फाड़ने की तरह फाड़ा एवं चीरा जाता है, अवकोडकबंधणाणि - हाथ-पैर बांध दिये जाते हैं, लट्टिसयतालणाणि - सैकड़ों लाठियों से पीटा जाता है, गलगंबलुल्लंबणाणि - गले में फंदा डालकर वृक्ष पर लटका दिये जाते हैं, सुलगभेयणाणि - शूल के अग्रभाग से उनके शरीर को भेदा जाता है, आएसपवंचणाणि - झूठे आदेश देकर उन्हें धोखा दिया जाता है खिंसणविमाणणाणि - उन्हें खिंसित और अपमानित किया जाता है, विघुट्टुपणिज्जणाणि - पापों की घोषणा के साथ उन्हें वध्य-भूमि पर ले जाते हैं, वध्जसयमाइकाणि - वध्यजनित सैकड़ों प्रकार के दुःख दिये जाते हैं, एवं ते - इस प्रकार नारक जीवों को दुःख भोगना पडता है।

भावार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि नारक जीवों को किस प्रकार की वेदना होती है? गुरुदेव नारकीय दुःखों का स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं कि उन नारक जीवों को कंदु और महाकुंभी में डालकर पकाया एवं उबाला जाता है। तवे पर रोटी के समान सेंकते हैं और पूरी की तरह तलते हैं। भाड़ में डालकर चने की तरह भूनते हैं। लोहे की कड़ाही में डालकर इक्षुरस की तरह औटाया जाता है। देवी-देवता के आगे नारियल फोड़ने के समान टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं। लोहे के तीक्ष्ण शूल जैसे सामली-वृक्ष के कांटों पर घसीटा जाता है। कुल्हाड़ी से लकड़ी फाड़ने और करवत से चीरने के समान नैरयिक को फाड़ा और चीरा जाता है। हाथ-पाँव बांधकर लुढ़का दिया जाता है। सैकड़ों लाठियों से पीटा जाता है। गले में फन्दा डालकर वृक्ष पर लटका दिया जाता है। शरीर में तीक्ष्ण शूल भोंककर छेद कर दिये जाते हैं। असत्य आदेश देकर धोखा दिया जाता है। उनकी निन्दा एवं भर्त्सना की जाती है। अपमानित किया जाता है। उनके पापों की घोषणा के साथ वध्यभूमि पर ले जाते हैं और छेदभेदादि सैकड़ों प्रकार के दुःख दिये जाते हैं। इस प्रकार नारक जीवों को महान् दुःख भोगना पड़ता है।

विवेचन - इस सूत्र में नारक जीवों को नरकावास में परमाधामी (महान् अधर्मी) देवों द्वारा प्राप्त भयंकरतम एवं रोमांचकारी दुःखों का वर्णन किया गया है। परमाधामी देव, भवनपति जाति के देवों में हैं। नारक जीवों को दुःख देने के लिए किसी परम शक्ति ने इनकी नियुक्ति नहीं की और नारकों को दुःख देने का इनका आवश्यक कर्तव्य भी नहीं है। किन्तु ये स्वभाव से ही इस प्रकार की रुचि वाले हैं। जिस प्रकार कई निर्दयी मनुष्य खरगोश, हिरन, शृगाल आदि पर शिकारी कुत्ते छोड़ कर, उन्हें मरवा कर प्रसन्न होते हैं और इसे वे अपना मनोरंजन मानते हैं, उसी प्रकार परमाधामी देव भी नैरयिक जीवों को अनेक प्रकार के दुःख देकर, उनका रोना, क्रन्दन करना, चिल्लाना, तड़पना देखकर प्रसन्न होते हैं। यह उनका मनोरंजन है।

कुछ अविश्वासी लोग नारकों को होने वाली परमाधामी कृत वेदना को असंभव एवं काल्पनिक मानते हैं। किन्तु ऐसा सोचना ठीक नहीं है। इस प्रकार के कुछ नमूने मनुष्यलोक में भी मिलते हैं। मांस-भक्षी लोग खौलते हुए पानी में जीवित मुर्गी को डालकर तत्काल ढक्कन लगा देते हैं। वे सोचते हैं कि इससे मुर्गी में रही हुई शक्ति सुरक्षित रह कर विकसित होती है। खुले में मारने से शक्ति कम हो जाती है। मांस को आग पर सेंकते हैं, भूनते हैं, पकाते हैं, काटते हैं, चीरते-फाड़ते हैं। भेड़-बकरों को काट कर उनका चमड़ा उधेड़ कर छिलते हैं। कई देवी के पुजारी उछल-कूद करते हुए अपने में देवी का प्रवेश बतलाते हैं, वे जीवित बकरे, भेड़ आदि को काटकर उसका रक्त पीते हैं। दक्षिण में भेड़ के बच्चों को देवी के मंदिर के सामने एक तीक्ष्ण शूल के ऊपर पछाड़ कर उसमें पिरो देते हैं। किसी स्थान पर उन पशुओं के बच्चों के नरम पेट या गले में दाँत गढ़ाकर रक्तपान करते हैं। मनुष्य ऐसा निर्दयतापूर्वक दारुण दुःख पशुओं को देता है। पिछले महायुद्ध के बाद समाचार-पत्र में पढ़ने में आया था कि जर्मनी में कई बन्दियों को जीवित ही तेजाब से भरी हुई नादों में उतार कर मार दिया था।

सिक्खों के गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों को भीत में चुनवा दिया था। कई मुसलमान राजाओं-नवाबों और बादशाहों के यहां बन्दी मनुष्य को सिंह के पिंजरे में बन्द कर सिंह के द्वारा मरवाते थे। सांप से डसवाते और हाथी के पांव से बांधकर घसीटवा कर मरवाते थे। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के क्रूरता पूर्ण कृत्य इस मनुष्य लोक में भी होते हैं, तब नारकों के साथ हो, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। इसमें उपादान कारण तो उन नारक जीवों का अपना पापकर्म ही है। उनका किया हुआ पाप-कर्म अब फल दे रहा है। परमाधामी देव हैं - निमित्त कारण। यदि ये जीव पाप-कर्म का उपार्जन नहीं करते, वे उन्हें नरक में जाने की और परमाधामी का सम्पर्क होने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

महापापी जीवों को इस प्रकार का दारुण दुःख होता है। पाप-कर्म से उत्पन्न भार-ऋण को भुगत कर आत्मा हल्की बनती है।

कंदुमहाकुंभीए - कन्दु-एक प्रकार का कडाव जैसा चौड़े मुख का पात्र। महाकुंभी - घड़े जैसे संकड़े मुंह वाला पात्र। कुंभी-संकड़े मुख वाला नारक जीवों के उत्पत्ति का स्थान भी होता है। नारकों की उत्पत्ति कुंभियों में होती है।

आएसपवंचणाणि - महावेदना, घोर उष्णता, अत्यन्त घबराहट और तीव्रतम प्यास से अत्यन्त दुःखी हुआ नारक जीव पानी पीपा चाहता है। उसे परमाधामी देव जलाशय का भ्रम बतलाकर दुर्गम स्थान पर भेजते हैं। वास्तव में वहाँ जलाशय नहीं होता, एकमात्र भ्रम ही होता है। इस प्रकार उसे झूठे आदेश देकर भटकवाया जाता है और अत्यधिक दुःखी किया जाता है।

विधुद्रुपणिज्जणाणि - नारक जीवों को अपने पापकर्म का निष्ठुर वचनों से स्मरण कराकर उसे फलभोग के लिए वध्यभूमि की ओर ले जाना। जैसे-'तुझे मांस-भक्षण बहुत प्रिय था। तू अत्यन्त क्रूर और निरंकुश होकर जीवों का वध करता था। तुझे मदिरा बड़ी प्रिय लगती थी' इत्यादि रूप से पापकर्म का स्मरण कराया जाता है।

पुव्वकम्मकयसंचयोवतत्ता णिरयग्गिमहग्गिसंपलित्ता गाढदुक्खं महब्भयं कक्कसं असायं सारीरं माणसं य तिव्वं दुविहं वेएंति वेयणं पावकम्मकारी बहूणि पलिओवम-सागरोवमाणि कलुणं पालेति ते अहाउयं जमकाइयतासिया य सहं करेति भीया।

शब्दार्थ - पुव्वकम्मकयसंचयोवतत्ता - पूर्वभव में किए हुए कर्मों के संचय से संतप्त हुए, णिरयग्गिमहग्गिसंपलित्ता - नरक की महान् अग्नि से जलते हुए, पावकम्मकारी - पापकर्म करने वाले, गाढदुक्खं - उत्कृष्ट दुःख, महब्भयं - महान् भय वाली, कक्कसं - कर्कश-अत्यन्त कठोर, असायं - असाता वेदनीय कर्म से उत्पन्न, तिव्वं - तीव्र, सारीरं - शारीरिक, माणसं - मानसिक, दुविहं- दो प्रकार की, वेयणं - वेदना, वेएंति - वेदते-भोगते हैं, य - और बहूणि - बहुत, पलिओवमसागरोवमाणि - पत्योपम और सागरोपम तक, अहाउयं - यथायु-अपनी आयु के अनुसार, कलुणं - करुण अवस्था-

दीन दशा, पालेति - पालते-भोगते हैं, जमकाइयतासिया - यमकायिक देवों द्वारा त्रासित होते हैं, भीया - भयभीत होकर, सहं करेति - शब्द करते हैं-चिल्लाते हैं।

भावार्थ - वे पापकर्म करके नरक में उत्पन्न हुए जीव पूर्वभव में किए हुए अपने पापकर्मों के संचय से नरक की महान् अग्नि में जलते हैं। उनकी आत्मा अत्यन्त संतापित होती है। वे कठोरतम एवं महान् असातावाली शारीरिक और मानसिक वेदना तीव्रता से वेदते हैं। इस प्रकार वे बहुत से पल्योपम और सागरोपम तक अपनी आयु के अनुसार करुण अवस्था में पड़े रहते हैं। यमकायिक-परम अधर्मी देवों के द्वारा त्रासित एवं भयभीत होकर वे चिल्लाते रहते हैं।

विवेचन - नारक जीवों के पापकर्म का वर्णन करते हुए सूत्रकार ने बताया कि नरक की वेदना कितनी भयंकर और दीर्घ-कालिक है। मनुष्य भव में तो अग्नि में जलकर मनुष्य कुछ क्षणों में ही मर जाता है, किन्तु नरक में यहां की अग्नि से भी अत्यन्त तीव्रतम अग्नि है। उसमें लाखों-करोड़ों ही नहीं, पल्योपमों और सागरोपमों तक जलता ही रहता है, फिर भी नहीं मरता।

मनुष्यों में तो किसी की करुणाजनक दशा देखकर दयालु लोग उसकी सहायता करते हैं, परन्तु नरक में उन परम अधर्मी देवों पर उन दुःखी नारकों की करुण-पुकार का उल्टा प्रभाव पड़ता है। वे उसकी चिल्लाहट से पसीजते नहीं, प्रसन्न होते हैं।

पल्योपम - गणित की सीमा से बाहर-जिनके वर्षों की गिनती नहीं हो सके और पल्य की उपमा से ही जिसका काल जाना जा सके। पल्योपम=पल्य की उपमा। यथा -

चार कोस का लम्बा-चौड़ा एक योजन गहरा ऐसा एक पल्य। उसमें देवकुरु उत्तरकुरु के युगल मनुष्य के बच्चे के (जो अधिक से अइधक सात दिन का हो) बाल के टुकड़ों से वह पल्य इतना टूंस-टूंस कर भर दिया जाये कि जिसमें न तो हवा घुस सके, न पानी उतर सके और न आग ही उस ठोस स्थान पर कुछ जला सके। इस प्रकार भरे हुए पल्य में से सौ-सौ वर्ष में एक-एक बाल का टुकड़ा निकाला जाये। इस प्रकार निकालते-निकालते जब वह पल्य सर्वथा खाली हो जाये, उसे एक 'पल्योपम' कहते हैं।

सागरोपम - दस कोटाकोटि पल्योपम का एक सागरोपम होता है। (भगवती ६-७)

इतने दीर्घतर काल तक नैरयिक, बिना मरे ही भयंकर दुःख भोगा करते हैं। वे मरना चाहते हुए भी अपनी पूरी आयु भोगे बिना नहीं मर सकते।

जमकाइयतासिया - यमकायिक देवों द्वारा त्रास पाये हुए। ये यमकायिक देव, इन्द्र के दक्षिण दिशा के लोकपाल महाराजा यम के अनुशासन में रहते हैं। इन यमकायिक देवों को 'परम-अधर्मी' भी कहते हैं। ये परम-अधर्मी देव-पन्द्रह प्रकार के होते हैं। यथा -

१. अम्ब - असुर जाति के देव। ये नारकी जीवों को ऊपर आकाश में ले जाकर एकदम छोड़ देते हैं।

२. अम्बरीष - जो छुरी आदि के द्वारा नारकी जीवों के छोटे-छोटे टुकड़े करके भाड़ में पकने योग्य बनाते हैं।

३. श्याम - जो रस्सी या लात-धूसे आदि से नारकी जीवों को पीटते हैं और भयंकर स्थानों में पटक देते हैं। ये काले रंग के होते हैं, और 'श्याम' कहलाते हैं।

४. शबल - जो नारकी जीवों के शरीर की आँतें, नसें और कलेजे आदि को बाहर खींच लेते हैं तथा शबल अर्थात् चितकबरे रंग वाले होते हैं, इसलिए 'शबल' कहलाते हैं।

५. रुद्र (रौद्र) - जो भाला-बरछी आदि शस्त्रों में नारकी जीवों को पिरो देते हैं और जो रौद्र (भयंकर) होते हैं।

६. उपरुद्र (उपरौद्र) - जो नैरयिकों के अंगोपांगों को फाड़ डालते हैं और जो महारौद्र (अत्यन्त भयंकर) होते हैं।

७. काल - जो नैरयिकों को कड़ाही में पकाते हैं और काले रंग के होते हैं।

८. महाकाल - जो उनके चिकने मांस के टुकड़े-टुकड़े करते हैं, उन्हें खिलाते हैं और बहुत काले होते हैं। उन्हें 'महाकाल' कहते हैं।

९. असिपत्र - जो वैक्रिय-शक्ति द्वारा असि अर्थात् तलवार के आकार वाले पत्तों से युक्त वन की विक्रिया करके उसमें बैठे हुए नारकी जीवों के ऊपर वे पत्ते गिराकर तिल सरीखे छोटे-छोटे टुकड़े कर डालते हैं, उन्हें 'असिपत्र' कहते हैं।

१०. धनुष - जो धनुष के द्वारा अर्द्ध चन्द्रादि बाण फेंककर नारकी जीवों के कान आदि को छेद देते हैं, भेद देते हैं और भी कई प्रकार की पीड़ा पहुँचाते हैं।

११. कुम्भ - जो नारकी जीवों को कुम्भियों में पकाते हैं।

१२. बालू - जो वैक्रिय के द्वारा बनाई हुई, कदम्ब-पुष्प के आकार वाली अथवा वज्र के आकार वाली बालू रेत में नारकी जीवों को चने की तरह भुनते हैं।

१३. वैतरणी - जो असुर मांस, रुधिर, राध, ताम्बा, सीसा आदि गरम पदार्थों से उबलती हुई नदी में नारकी जीवों को फेंककर उन्हें तैरने के लिए बाध्य करते हैं, उन्हें 'वैतरणी' कहते हैं।

१४. खरस्वर - जो वज्र कण्टकों से व्याप्त शाल्मली वृक्ष और नारकी जीवों को चढ़ाकर, कठोर स्वर करते हुए अथवा करुण रुदन करते हुए नारकी जीवों को खींचते हैं। उन्हें 'खरस्वर' कहते हैं।

१५. महाघोष - जो डर से भागते हुए नारकी जीवों को पशुओं की तरह बाड़े में बन्द कर देते हैं तथा जोर से चिल्लाते हुए वहाँ उन्हें रोके रखते हैं, उन्हें 'महाघोष' कहते हैं (भगवती ३-७)।

उपरोक्त यमकायिक देवों से त्रास पाये हुए दुःखी नारक जीव आक्रन्द करते हुए चिल्लाते हैं।

नारक जीवों की करुण पुकार

किं ते? अविभाय सामि भाय बप्प ताय जियवं मुय मे मरामि दुब्बलो

वाहिपीलिओऽहं किं दाणिऽसि? एवं दारुणो णिहय मा देहि मे पहारे उस्सासेयं मुहुत्तं मे देहि पसायं करेह मा रुस वीसम्ममि गेविज्जं मुयह मे मरामि गाढं तण्हाइओ अहं देह पाणीयं ।

शब्दार्थ - किं ते - वे नारक जीव किस प्रकार चिल्लाते हैं?, अभिवाय - हे अज्ञात स्वरूप वाले महाभाग, सामि - स्वामी, भाय - भ्राता, षप्प - पिता, ताय - तात, जियवं - विजेता, मे मुय - मुझे छोड़ दो, मे मरामि - मैं मर रहा हूँ, दुब्बलो - मैं दुर्बल हूँ, वाहिपीलिओऽहं - मैं व्याधि से पीड़ित हूँ, किं दाणिं - क्यों आप इस समय, एवं - इस प्रकार दारुणो - दारुण, णिहय - निर्दय, असिं - हो रहे हैं, मा देहि मे पहारे - मुझ पर प्रहार मत करो, मुहुत्तं मे उस्सासेयं - मुझे मुहूर्तभर श्वास लेने दीजिये, पसायं करेहि - कृपा कीजिये, मा रुस - मुझ पर रोष मत कीजिए, विसम्ममि - मुझे विश्राम लेने दीजिये, मे गेविज्जं - मेरी गर्दन, मुयह - छोड़ दीजिये, मरामि - मैं मर रहा हूँ, अहं - मैं, गाढं तण्हाइओ - प्यास से अत्यन्त पीड़ित हूँ, देह पाणीयं - पानी दीजिये।

भावार्थ - प्रश्न - वे नारक जीव किस प्रकार चिल्लाते हैं ?

उत्तर - वे कहते हैं-“हे महाभाग! हे स्वामी! हे भ्रात! हे पिता! हे पालक! हे विजेता! अरे, मुझे छोड़ दो। मैं अत्यन्त दुर्बल हूँ। अरे, मैं मर रहा हूँ। मैं भयंकर व्याधि से पीड़ित हूँ। आप मुझ दुःखी पर इतने क्रुद्ध क्यों हो गए हैं? अरे आप मुझ पर दया क्यों नहीं करते? क्यों निर्दय बन रहे हैं? अरे, मुझे मत मारो। मुझ पर कृपा करो। थोड़ी देर के लिए मुझे विश्राम करने दो। थोड़ी देर शान्ति से श्वास लेने दो। मुझ पर क्रोध मत करो। मेरी गर्दन छोड़ दो। मुझे अत्यन्त प्यास लग रही है। मैं मर रहा हूँ। मुझे पानी दो।”

विवेचन - पूर्व सूत्रांश में ‘भीया सहं करेति’ - से बताया है कि वे नारक जीव करुण दशा में पड़े हुए यमकायिक (परमाधामी) देवों से भयभीत होकर शब्द करते-चिल्लाते हैं। वे क्या चिल्लाते हैं, अपनी करुण पुकार में वे कौन-से भाव व्यक्त करते हैं? यह प्रस्तुत सूत्रांश में स्पष्ट बताया गया है।

जीव हँस-हँस कर जो पापकर्म करता है, उसका परिणाम कितना दुःखद, दुःसह एवं भयानक होता है, ग्रह उपरोक्त शब्दों से स्पष्ट हो रहा है।

उत्कट प्यास से पीड़ित उन नारक जीवों के पानी मांगने पर वे परमाधामी देव क्या करते हैं, यह आगे सूत्रांश में बताया जाता है।

नरकपालों द्वारा दिये जाने वाले घोर दुःख

हंता पिय ॐ इमं जलं विमलं सीयलं त्ति घेत्तूण य णरयपाला तबियं तउयं से

ॐ ताहे तं पिय-पाठ भेद।

दिति कलसेण अंजलीसु ददूण य तं पवेवियंगोवंगा अंसुपगलंतप्युयच्छा छिण्णा
तण्हाइयम्ह कलुणाणि जंपमाणा विपेक्खंता दिसोदिसिं अत्ताणा असरणा अणाहा
अबंधवा बंधुविप्यहूणा विपलायंति य मिया इव वेगेण भयुक्विग्गा ।

शब्दार्थ - हंता - हाँ, तुम प्यासे हो, इमं - यह, विमलं - निर्मल, सीयलं - शीतल जल, पिय - पीओ, त्ति - कहकर, णरयपाला - वे नरकपाल-परमाधामी देव, घेत्तूण - उसे पकड़कर, तवियं - तपा हुआ, तउयं - सीसा या रांगा, कलसेण - कलश से, से - उसकी, अंजलीसु - अंजलि में, दिति- डाल देते हैं, तं - उसे, ददूण - देखकर, पवेवियंगोवंगा - नारकों के अंगोपांग कम्पित हो जाते हैं, अंसुपगलंतप्युयच्छा - आंसुओं से आँखें भरकर वे कहते हैं, छिण्णा तण्हाइयम्ह - हमारी प्यास छिन्न- नष्ट हो गई है, इस प्रकार, कलुणाणि - करुणापूर्ण वचन, जंपमाणा - बोलते हुए, दिसोदिसिं - भागने के लिए दिशाओं को, विपेक्खंता - देखते हुए, अत्ताणा - त्राण रहित, असरणा - शरण रहित, अणाहा- अनाथ, अबंधवा - बान्धव रहित, बंधुविप्यहूणा - बन्धुओं से वंचित, भयुक्विग्गा - भय से उद्विग्न होकर, मियाइव - मृग के समान, वेगेण - जोर से, विपलायंति - भागते हैं।

भावार्थ - 'तुम्हें प्यास लगी है, तो लो यह स्वच्छ शीतल जल पीओ' - यों कहकर वे नरकपाल उस नैरयिक को पकड़ कर उबलता हुआ सीसा, कलश भरकर उसके हाथ की अंजलि में डालते हैं। उस उबलते हुए सीसे को देखकर वे नारक भयभीत होकर कम्पित होते हैं-धूजते हैं। उनकी आँखें आंसुओं से छलछलाती हैं। वे करुणापूर्ण स्वर से कहते हैं-'अब हमारी प्यास मिट गई है। आप रहने दीजिये'- इस प्रकार कहते हुए वे बचाव का स्थान देखते हुए-इधर-उधर भागते हैं। वे अरक्षित, निराश्रित, अनाथ, अबान्धव, भ्रातृ-विहीन नारक भयाक्रांत होकर भयभीत मृग के समान जोर से भागते हैं।

विवेचन - पाप का कितना भयंकर परिणाम होता है - इसकी कुछ झाँकी सूत्रकार ने उपरोक्त शब्द-चित्र में प्रदर्शित की है। यह कोई अतिरंजित बात नहीं है। असहाय प्राणियों पर किये अत्याचार का परिणाम समय आने पर भोगना ही पड़ता है। ऐसे भयंकर परिणाम को जानकर हिंसा से विरत होने के उद्देश्य से परम उपकारी सूत्रकार महाराज ने नरक के दुःखों का वर्णन किया है।

अंसुपगलंतप्युयच्छा - उनकी आँखों में आंसू भर आते हैं। ये शब्द उनके दुःख की तीव्रता व्यक्त करने के लिए दिए हैं। वैसे आंसू का सम्बन्ध औदारिक शरीर से है।

घेत्तूणबला पलायमाणाणं णिरणुकंपा मुहं विहाडेत्तुं लोहदंडेहिं कलकलं णं वयणंसि छुभंति केइ जमकाइया हसंता। तेण ददूा संतो रसंति य भीमाइं विस्सराइं रूवंति य कलुणागाइं पारेयवगा व एवं पलविय-विलाव-कलुण-कंदिय-बहरुण्णरुइयसहो परिदेवियरुद्धबद्ध य णारधार-वसंकुलो णीसिट्ठो। रसिय-भणिय-कुविय-उक्कूइय-णिरयपाल तज्जियं गिण्हक्कम पहर छिंद भिंद उप्पाडेह उक्खणाहि

कत्ताहि विकत्ताहि य भुज्जो हण विहण विच्छुब्भोच्छुब्भ-आकड्ड-विकड्ड किं ण जंपसि? सराहि पावकम्माइं ॐ दुक्कयाइं एवं वयणमहप्पगब्भो पडिसुयासहसंकुलो उतासओ सया णिरयगोयराणं महाणगरड्ज्जमाण-सरिसो णिग्घोसो, सुच्चइ अणिट्ठो तहियं णेरइयाणं जाइज्जंताणं जायणाहिं ।

शब्दार्थ - केइ - कोई, णिरणुकंपा - दया विहीन, जमकाइया - यमकायिक, पलायमाणानं-उन भागते हुए नारकों को, बला - बलात्कार से, घेत्तूण - पकड़ कर, हसंता - हँसते हुए, लोहदंडेहिं-लोहे के डंडे से, मुहं - उनके मुंह को, विहाडेत्तुं - खोलकर, वयणंसि - वदन-मुंह में, कलकलं - कलकल करते-उबलते हुए, ण्हं - शीशे को, छुभंति - डालते हुए, तेण दड्ढासंतो - उससे जले हुए वे बिचारे, भीमाइं - भयंकर, विस्सराइं - विस्वर-आर्तनाद से, रसंति - चिल्लाते हैं, य - तथा वे, पारेयवगा व - कबूतर की तरह, कलुणगाइं - करुणाजनक क्रन्दन, बहुरुण्णरुइयसद्धो - अत्यन्त अश्रुपात के साथ चित्कार करते हुए, परिदेविय - विलाप करते हुए, रुद्ध - रोके हुए, बद्धय - बांधे हुए, णारयारवसंकुलो - नारकों के आर्तनाद से पूर्ण, णीसिट्ठो - उनके मुंह से निकले हुए, रसिय - शब्द करते हुए, भणिय - बोलते हुए, कुविय - क्रोध करते हुए, उक्कूइय - महानाद करते हुए, णिरयपालतज्जियं-नरकपाल के द्वारा धमकाये हुए, गिण्ह - पकड़ो, वकम - मारो, पहर - प्रहार करो, छिंद - छिल दो, काट दो, भिंद - भेदन कर दो, उप्पाडेह - ऊपर उठाओ या खाल उतारो, उक्खणाहि - आँखें निकाल दो, कत्ताहि - काट डालो, विकत्ताहि - विविध प्रकार से काटो, हण - मार डालो, भुज्जो - फिर से, विहण - विशेष प्रकार से हनन करो, विच्छुब्भ - मुंह में शीशा डालो, उच्छुब्भ - उठाकर जोर से पटको अथवा मुंह में-विशेष शीशा डालो, आकड्ड - इसे घसीटो, विकड्ड - उल्टा घसीटो, किं ण जंपसि - क्यों नहीं बोलता?, पावकम्माइं - अपने पाप-कर्मों को, दुक्कयाइं - दुष्कर्मों को, सराहि - स्मरण कर, एवं - इस प्रकार, वयणमहप्पगब्भो - परमाधर्मियों के महान् शब्दों, तासओ - त्रास-दायक, महाणगरड्ज्जमाण-सरिसो - जलते हुए बड़े नगर के समान, तहियं - वहाँ, जायणाहिं - यातना से, जाइज्जंताणं - पीड़ित किये जाते हुए, णिरय गोयराणं - नरक गोंत्र वाले, णेरइयाणं - नारकों का, पडिसुयासहसंकुलो-प्रतिध्वनि से व्याप्त, अणिट्ठो-अनिष्ट, णिग्घोसो-निर्घोष, सुच्चइ - सुनाई देता है।

भावार्थ - कोई क्रूर-निर्दय यमकायिक देव, उन भागते हुए नारकों को बलपूर्वक पकड़ कर, लोहे का डंडा उनके मुंह में डाल कर खोलते हैं और उनके मुंह में उबलता हुआ शीशा उड़ेल देते हैं। उससे उन्हें महान् वेदना होती है। वे भयंकर रूप से तड़पते आक्रन्द करते और चिल्लाते हैं। उनकी छटपटाहट, आक्रन्द और विलाप देखकर वे यमदेव हँसते हैं।

उन बंधे हुए धूजते-कांपते रोते और आक्रन्द करते हुए नारकों के प्रति विशेष कुद्द होते हुए वे

* 'पावकम्माणं' के आगे 'कियाइं' पाठ भी कुछ प्रतियों में है, जिसका अर्थ - 'किए हुए' होता है।

नरकपाल भयावने शब्दों में कहते हैं - 'इन्हें पकड़ो, मारो, जोर से मारो, इन्हें काटो, शूलों से छेदो इनकी चमड़ी उधेड़ दो, टुकड़े करो, आँखें निकाल डालो, इनके मुँह में उबलता हुआ शीशा उड़ेल दो।

'अरे, तू क्यों नहीं बोलता? अपने पाप-कर्मों को याद कर।' इस प्रकार नरकपालों द्वारा महान् भयंकर दुःख एवं त्रास से दुःखी बने हुए और महानगर के दाह के समान जलते हुए वे नरक जीव, दुःख भोगते हुए आक्रन्द करते हैं। वह नरक स्थान उन नरक जीवों की दुःख पूर्ण चित्कारों, विलापों एवं आक्रन्दों से व्याप्त रहा है। वहाँ सर्वत्र अनिष्ट ध्वनियाँ ही निकलती रहती है।

विवेचन - उपरोक्त सूत्र में नरकों के महान् दुःखों का दिग्दर्शन कराया गया है। कितनी भयानक वेदना होती है-नरकों में। इस महावेदना का विचार करके ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पापकर्मों के दुष्परिणाम को जानकर, प्रथम से ही सावधान रहने वाले, अपनी आत्मा को बचा लेते हैं। आगमकार महर्षि अपनी चाणी द्वारा भव्य जीवों को सावधान करते हैं कि - 'हे मोहान्ध जीव! संभल! तू अपने दुराचार से अपनी ही घात कर रहा है। आज तुझे जो पाप मीठा लग रहा है, वह कच्चा पारा खाने के समान है। वह फूटकर जब भयानक कोढ़ के रूप में निकलता है, तब कैसी दुर्दशा होती है? इसी प्रकार पापकर्मों का परिणाम भी इतने दारुण रूप में भोगना पड़ता है।'

'किं ण जंपसि सराहि पावकम्माइं दुक्कयाइं' - अरे ओ पापी! अब तू बोलता क्यों नहीं? तेरी जवान क्यों बन्द हो गई है? कहाँ गई तेरी वह पाप-शूरता? याद कर हे दुष्ट! तेरा वह पाप, वह दुष्कृत्य। उस समय तू पाप करके कितना प्रसन्न हो रहा था? यदि तुझे कोई समझाता, तो अपने घमण्ड और हठ में किसी की नहीं मानता था। उल्टा कुतर्क करके सन्मार्ग का खंडन और पाप-मार्ग का मंडन करता था। ले, भोग अब उसका परिणाम - यों विविध प्रकार से उनके पाप-कर्मों का स्मरण कराते हुए नरकपाल, नैरयिक को दुःख देते हैं।

शंका - नरकपाल नरक जीवों को उनके पाप का दंड देते हैं, तो क्या यह उनका कर्तव्य है, अधिकार है? उन्हें किसी महासत्ता (ईश्वर) ने नियुक्त किया है?

समाधान - नहीं, न तो उनका यह अधिकार है और न किसी महासत्ता ने उन्हें नरक जीवों को पाप का दण्ड देने के लिए नियुक्त ही किया है। वे अपनी रुचि से ही नरकों को दुःख देते हैं। नरकों को दुःख देना उनका मनोरंजन-खेल है। जिस प्रकार मनुष्य अपने मनोरंजन के लिए निशानेबाजी से गिलोल, धनुष-बाण एवं बन्दूक से आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को मारकर प्रसन्न होते हैं, हिरण, खरगोश आदि पशुओं को मारते हैं, कई गुड़ पर भविष्यों को इकट्ठी कर, हजारों भविष्यों को-अपनी इच्छा से मार डालते हैं। अहिंसक कहलाने वाले ऐसे कई जैनी भी राह चलते वृक्षों के पत्ते, पुष्प और डालियाँ आदि तोड़ते जाते हैं और उसमें सुख मानते हैं, वैसे यमकायिक-प्ररमाधामी देवों की भी इस प्रकार की रुचि होती है। उनका स्वभाव ही अनार्य, म्लेच्छ एवं असभ्य जाति के लोगों के समान है-जिनके खेल भी बीभत्स एवं क्रूर हों। पशुओं की हड्डियों को और सिंग को पहन कर खेलकूद करने

 वालों के समान ये नरकपाल भी क्रूर परिणामी होते हैं। ये एकान्त मिथ्यादृष्टि होते हैं। कर्मों के उदय से उन्हें ऐसे कार्यों में ही आनन्द आता है।

नारकों की विविध पीड़ाएं

किं ते? असिवण-दम्भवण-जंतपत्थर-सूइतल-खार वावि-कल कलंत-वेयरणि-कलंब-वालुया-जलियगुहणिरुंभणं उसिणोसिण-कंटइल्ल-दुग्गम-रहजोयण तत्तलोहमग्गमण-वाहणाणि इमेहिं विविहेहिं आउहेहिं।

शब्दार्थ - किं ते - उन नारकों की यातनाएं कैसी हैं? असिवण - असि-तलवार के समान पत्तों वाले वृक्षों का वन, दम्भवण - दर्भवन, जंतपत्थर - पत्थर के यंत्र, सूइतल - सूई की नोक से, खारवावि - खारे पानी की बावड़ी, कलकलंत वेयरणि - उबलते हुए शीशे से बहती वैतरणी, कलंबवालुया - रक्त वर्ण की तप्त रेत, जलियगुहणिरुंभणं - जलती गुफा में बन्द करके, उसिणोसिण कंटइल्ल दुग्गम रहजोयण - अत्यन्त उष्ण और कांटों से परिपूर्ण दुर्गम मार्ग में, रथ में जोत कर चलाते हैं, लोहमग्गमण वाहणाणि - वाहन में जोतकर उष्ण लोहमय मार्ग में चलाया जाता है, इमेहिं - इस प्रकार, विविहेहिं - विविध प्रकार से, आउहेहिं - आयुधों से मारे जाते हैं।

भाषार्थ - शिष्य प्रश्न करता है कि 'उन नारकों को कैसी यातनाएं दी जाती हैं?' गुरुदेव कहते हैं कि 'वे नरकपाल उन नारकों को तलवार की धार के समान तीखे पत्र वाले वृक्षों के वन में चलाते हैं। जिसकी नोक चूभती है ऐसे दर्भ के वन में चलाते हैं। पत्थर के यंत्र (कोल्हू) में डालकर पीसे जाते हैं, सूई की नोक के समान तीखे कांटों के समान स्पर्श वाली भूमि पर चलाया जाता है। क्षार युक्त पानी की बावड़ी में डाल दिया जाता है। जिसमें रांगा या सीसा जैसा उबलता हुआ पानी बह रहा है- ऐसा वैतरणी नदी में डाल दिया जाता है। कदम्ब पुष्प के समान अग्नि जैसी तप्त रक्त रेत पर चलाया जाता है। जलती हुई गुफा में बन्द करके रोंधा जाता है। अत्यन्त उष्ण एवं तीक्ष्ण कंटकों से परिपूर्ण दुर्गम मार्ग में रथ में बैल के समान जोतकर चलाया जाता है। गर्म लोहमय मार्ग में वाहनों में जोत कर चलाया जाता है। यों विविध प्रकार के शस्त्रों से उन्हें मारा जाता है।

विवेचन - पाप के कटु फल को बताने वाला यह वर्णन शब्दों में तो कम ही है। वास्तविक दुःख तो इससे भी अनन्त गुण है। ऋषीश्वर मृगापुत्र जी ने कहा है कि -

“जारिसा माणुसे लोए, ताया दीसंति वेयणा।

इत्तो अणंत-गुणिया, णरएसु दुक्खवेयणा।”

- उत्तराध्ययन १९-४

- मनुष्य लोक में जो वेदना दिखाई देती है, उससे अनन्त गुण दुःखद वेदना नरक में है।

कई पठित तर्कवादी, नारकों को होने वाली ऐसी वेदना पर अविश्वासी बनते हुए स्वच्छन्द प्रचार करते हैं। किन्तु उनकी यह चेष्टा स्व-पर अहितकारिणी है। यदि हम तटस्थ होकर सोचें, तो इस प्रकार

की महावेदना सर्वथा संभव है। हम यहां भी देखते हैं कि इस प्रकार की घास यहाँ भी है जो हाथ-पाँव में चूभने से मांस में गड़कर रक्त निकल आता है। ऐसी तीखे कंकर वाली पृथ्वी है कि जिस पर कुछ कदम चलना भी कठिन हो जाता है।

वैज्ञानिक लोग, कुत्तों, बन्दरों और मेढकों को उनके अंगों को काट-काट कर कितना दुःख देते हैं? वे अपने अनुसन्धान के लिए करते हैं, तो नरकपाल अपने मनोरंजन के लिए करते हैं।

कसाईखानों में पशुओं को काटने-मारने चीरने का बीभत्स दृश्य तो मनुष्य-लोक में भी प्रत्यक्ष है। समाचार-पत्रों में पढ़ा था कि भारत में एक ऐसा भी मनुष्य था जिसे सोये हुए मनुष्य की कनपटी पर हथोड़े की चोट करके मारने में मजा आता था। अन्त में वह पकड़ा गया और मुकद्दमा चलकर दण्ड पाया। विदेशों में ऐसे भी मनुष्य हुए जिनकी रुचि राक्षसी-नृशंस थीं। उसी प्रकार की रुचि नरकपालों की भी होती है। वे एकान्त मिथ्यादृष्टि एवं अधार्मिक ही होते हैं।

वास्तव में जिन जीवों के ऊपर पाप का भार अत्यधिक हो जाता है, उनको भोगने का स्थान नरक ही है और वैसी दारुण वेदना से ही उनके पाप का भार हल्का होता है। मनुष्य के द्वारा अथवा मनुष्य लोक में उतना दण्ड मिल ही नहीं सकता।

नारकों के शस्त्र

किं ते मुग्गर-मुसुंडि-करकय-सत्ति-हल-गय-मूसल-चक्क-कोंत-तोमर-सूल-लड्डु भिडिपा (मा) लसद्दल-पट्टिस-चम्मेट्टु-दुहण-मुट्टिय-असि-खेडग-खग्ग-चाव-णाराय-कणग-कप्पिणि-वासि-परसु-टंक-तिक्खणिम्मल-अण्णेहिं य एवमाइएहिं असुभेहिं वेउव्विएहिं पहरणसएहिं अणुबद्धतिव्वेरा परोप्परवेयणं उदीरेंति अभिहणंता।

शब्दार्थ - किं ते - वे शस्त्र कौन से हैं? मुग्गर - मुद्गर, मुसुंडि - शस्त्र विशेष-बन्दूक? करकय-करवंत, सत्ति - शक्ति, हल - प्रसिद्ध है, गय - गदा, मूसल - प्रसिद्ध, चक्क - चक्र, कोंत - कुन्त-भाला, तोमर - एक प्रकार का बाण, सूल - शूल, लड्डु - लाठी, भिडीपाल - शस्त्र विशेष, सद्दल-भाला, पट्टिस - एक प्रकार का शस्त्र, चम्मेट्टु - चर्म वेष्टित पाषाणमय शस्त्र-गोफण, दुहण - एक प्रकार का मुद्गर-घन?, मुट्टिय - मुष्टिक-एरण जैसा, असि - तलवार, खेडग - पटिया, खग्ग - खड्ग, चाव - धनुष, णाराय - बाण, कणग - एक प्रकार का बाण, कप्पिणि - कैंची, वासि - वसूला, परसु-कुठार, टंक - छेनी, तिक्खणिम्मल - तीखे और निर्मल, अण्णेहिं - अन्य भी, एवमाइएहिं - इसी प्रकार के, वेउव्विएहिं - वैक्रिय द्वारा निर्मित, असुभेहिं - अशुभ, पहरणसएहिं - सैकड़ों शस्त्रों से, अणुबद्धतिव्वेरा - तीव्र वर से बंधे हुए नारक, अभिहणंता - हनन करते हुए, परोप्परवेयणं - परस्पर-एक दूसरे को वेदना, उदीरेंति - उत्पन्न करते हैं।

भावार्थ - 'नारक जीव कैसे शस्त्रों से आघात करते हैं'? शिष्य के इस प्रश्न के उत्तर में गुरुदेव

शस्त्रों के नाम बतलाते हैं - मुद्गर, मुसुंढी, करवत, शक्ति, हल, गदा, मूसल, चक्र, कुन्त, तोमर, शूल, लाठी, भिडीपाल, भाला, चमड़ा, लिपटा हुआ पत्थर, दुहण (मुद्गर) मुष्टिक, तलवार, पटिया, खड्ग, धनुष, बाण, कैची, वसूला, कुठार और छेनी तथा इस प्रकार के अन्य भी सैकड़ों प्रकार के अत्यन्त तेज और स्वच्छ ऐसे बुरे शस्त्रों का वैक्रिय द्वारा निर्माण करके, तीव्र वैरानुबन्ध से बंधे हुए वे नारक जीव, एक दूसरे को मारते-काटते हुए असह्य वेदना उत्पन्न करते हैं।

विवेचन - मनुष्य और तिर्यच योनि में पारस्परिक द्वेष, क्रोध, वैर और मारधाड़ से विषैली बनी हुई आत्मा नरक में जाकर भी वही काम करती है। उसी कलुषित-अत्यन्त कलुषित भावनाओं में जलती-सुलगती एवं भभकती हुई अन्य जीवों को भी जलाती, भभकाती, मारती, काटती और दुःखी करती है और खुद भी कटती-मरती और छिन्न-भिन्न होती रहती है।

इस सूत्र में नारक जीवों की परस्पर मार-काट और उनके अपनी वैक्रिय-शक्ति से निर्मित शस्त्रों का उल्लेख किया गया है। नरकपाल द्वारा दिया जाता हुआ दुःख तो तीसरी नरक तक ही है। आगे एक-दूसरे आपस में लड़-कट कर दुःखी होते हैं।

तत्थ य मोगगर-पहारचुण्णिय-मुसुंढि-संभग्ग-महियदेहा जंतोवपीलणफुरंत-कप्पिया के इत्थ सचम्मका विगत्ता णिम्मूलुल्लूणकण्णोड्ड-णासिका छिण्णहत्थपाया, असि-करकय-तिक्ख-कोंत-परसुप्पहारफालिय-वासीसंतच्छित्तंगमंगा कलकलमाण-खार-परिसित्त-गाढडङ्गंतगत्ता कुंतग्गभिण्णजजरियसव्वदेहा विलोलंति महीतले विसुणियंगमंगा।

शब्दार्थ - तत्थ - नरक में, मोगगरपहारचुण्णिय - मुद्गर से मार कर उनके शरीर को चूर-चूर कर दिया जाता है, मुसुंढि संभग्ग - मुसुंढी से शरीर के टुकड़े कर दिये जाते हैं, महियदेहा - शरीर को दही के समान मथा जाता है, जंतोवपीलणफुरंतकप्पिया - कोल्हू जैसे यंत्र में पीले जाने के कारण उनके शरीर के अंगोपांग कटकर कम्पित होते हैं, के इत्थ - वहाँ कई जीवों के, सचम्मका विगत्ता - सारे शरीर का चमड़ा उधेड़ दिया जाता है, णिम्मूलुल्लूणकण्णोड्डणासिका - मूल सहित कान, ओंठ और नासिका काट दिये जाते हैं, छिण्णहत्थपाया - हाथ और पांव काट डालते हैं, असिकरकयतिक्खकोंतपर-सुप्पहारफालिय - किसी के शरीर को तलवार, आरी, तीखे भाले एवं कुल्हाड़ी के प्रहार से फाड़-चूर दिया जाता है, वासीसंतच्छित्तंगमंगा - उनके शरीर को वसुले से छिला जाता है, कलकलमाणखार-परिसित्तगाढडङ्गंतगत्ता - कलकल आवाज करता हुआ, उबलता हुआ क्षार जल डालकर उनका शरीर जलाया जाता है, कुंतग्गभिण्ण - भाले से भेद कर, जजरियसव्वदेहा-सारे शरीर को जर्जरित कर दिया जाता है, विसुणियंगमंगा - मार-पीटकर उनका शरीर फुला दिया जाता है। ऐसे उत्कृष्ट एवं घोर दुःख से पीड़ित होकर नारक जीव, महीतले - पृथ्वीतल पर, विलोलंति-लोटते और तड़पते रहते हैं।

भावार्थ - मुद्गर से मार-कूट कर नारक जीवों का शरीर चूर-चूर कर दिया जाता है, मुसुंडी से टुकड़े कर दिये जाते हैं, शरीर को मथ दिया जाता है, यंत्र में पैर कर छूँदा जाता है और वे छिन्न टुकड़े तड़पते रहते हैं। चमड़ी उधेड़ दी जाती है। उनके कान, नाक और ओंठ काटकर निर्मूल कर दिये जाते हैं। उनके हाथ और पाँव काटकर फेंक दिये जाते हैं। किसी के तलवार के वार से टुकड़े किये जाते हैं, तो किसी के आरे से चीर कर और किसी के कुल्हाड़ी से फाड़कर टुकड़े किये जाते हैं। भाले से भेदन और वसूले से छिलकर अंगोपांग के छिलके उतारे जाते हैं। उबल कर कलकल शब्द करते हुए शरीर युक्त गर्म पानी का देह पर सिंचन करके उन्हें जलाया जाता है। भाले से भेद-भेदकर उनके सारे शरीर को जर्जरित किया जाता है। मारपीट से हुए सुजन एवं फफोलों से उनका शरीर फूल कर मोटा हो जाता है। इस प्रकार के घोरातिघोर दुःख से पीड़ित होकर वे नारक जीव, पृथ्वी पर लोटते-तड़पते रहते हैं।

विवेचन - पूर्व सूत्र में शस्त्रों का वर्णन आया है। उन शस्त्रों से नारक जीव को किस प्रकार की भयंकरतम एवं घोरातिघोर वेदना सहन करनी पड़ती है, वह इस सूत्र में बताई गई है। यह वेदना नरकपालों के द्वारा भी होती है और पारस्परिक संघर्ष से भी।

तत्थ य विग-सुणग-सियाल-काक-मज्जार-सरभ-दीविय-वियग्घग-सहुल-सीहदप्पिय-खुहाभिभूएहिं णिच्चकालमणसिएहिं घोरा रसमाण-भीमरूवेहिं अक्कमित्ता दढदाढागाढ-डक्क-कड्डिय-सुतिक्ख-णह-फालिय-उद्धदेहा विच्छिप्यंते समंतओ विमुक्कसंधिबंधणा वियंगियंगमंगा कंक-कुरर-गिद्ध-घोर-कट्टुवायसगणेहि य पुणो खरथिरदढणक्ख-लोहतुंडेहिं उवइत्ता पक्खा हय-त्तिक्ख-णक्ख विक्किण्ण जिब्भंछिय-णयणणिहओलुग्गविगय-वयणा उक्कोसंता य उप्पयंता णिप्पयंता भमंता।

शब्दार्थ - तत्थ - वहाँ, विग - भेड़िया, सुणग - कुत्ता, सियाल - गीदड़, काक - कौआ, मज्जार - बिल्ला, सरभ - अष्टापद, दीविय - चीता, वियग्घग - व्याघ्र, सहूलसीह - शार्दूलसिंह, दप्पिय खुहाभिभूएहिं - ये सभी जानवर दर्पयुक्त तथा भूख से पीड़ित, णिच्चकालं - सदाकाल, अणसिएहिं - भूखे रहते हैं, घोरा - वे बड़े घोर-भयावने, रसमाण भीमरूवेहिं - गर्जनादि शब्द करते हुए भयंकर रूप वाले, अक्कमित्ता - आक्रमण करके, दढदाढागाढडक्ककड्डियसुतिक्खणहफालियउद्धदेहा - अपनी दृढ़तम दाढ़ाओं से पकड़ कर खिंचते हुए अपने तीखे नाखों से नारक जीवों के शरीर को चीरते हैं, विमुक्कसंधि-बंधणा वियंगियंगमंगा - इनके द्वारा नारकों के शरीर की सन्धियाँ ढीली और अंग विकल कर दिये हैं, समंतओ - चारों ओर से, विच्छिप्यंते - फेंक दिये जाते हैं, पुणो - फिर, कंक-कुरर-गिद्ध - इन प्रसिद्ध नाम वाले पक्षी, घोरकट्टुवायसगणेहि - घोर कष्ट देने वाले कौओं का झुंड, खरथिरदढणक्खलोहतुंडेहिं - कठोर, दृढ़ एवं स्थिर नाखून तथा लोह जैसी चोंच है जिनकी ऐसे पक्षियों का समूह, उवइत्ता - उन तड़पते हुए नारकों पर टूट पड़ता है, पक्खाहय - पंखों से आहत करते

हैं, तिव्ख-णक्ख-विविक्कण जिव्भंछिय णयण - तीखे नखों से उनकी जीभ और आँखें नोच लेते हैं, णिहओ लुग्गविगयवयणा - निर्दयता के साथ उनके मुख को विकृत कर देते हैं, उक्कोसंता - ऐसे घोर दुःख से दुःखी होकर वे नारक रुदन करते हैं, उप्पयंता - ऊपर उछलते हैं, णिप्पयंता - नीचे गिरते हैं, भमंता - चक्कर काटते हैं।

भावार्थ - नरक में भेड़िये, कुत्ते, भृगाल, कौए, बिल्ले, अष्टापद, चीते, व्याघ्र और शार्दूलसिंह आदि भयंकर प्राणी दर्पयुक्त बने हुए वे भूख से पीड़ित होकर सदैव खाने के लिए तत्पर रहते हैं। वे अपनी-अपनी बोली से तीव्रतम गर्जनादि करते हुए भयंकर बनकर नारक जीवों पर आक्रमण करते हैं। फिर वे अपनी कठोर और दृढ़तम दाढ़ाओं से उन्हें पकड़ कर शरीर को तोड़ते और तीक्ष्ण नाखुनों से चीरते हैं। वे हिंस्र-पशु, नारकों के शरीर को रगदोल कर समस्त सन्धियाँ (जोड़) ढीले कर देते हैं और समस्त अंगों को विकृत कर डालते हैं तथा इधर-उधर फैंक देते हैं। उन पर चारों ओर से कंक, कुरर, गिद्ध और कौओं का समूह टूट पड़ता है और अपनी वज्र-तुल्य तीक्ष्ण चोंचों को उन छटपटाते हुए नारक जीवों के शरीर में घोंप-घोंपकर भेदन करते हैं। अपने तीक्ष्ण पंखों के तलवार के समान तेज झपाटों से छेदन करते हैं। अपने तीखे नाखुनों से उनकी जीभ नोचते और आँखें निकाल लेते हैं। वे निर्दय पक्षी, उन नारकों के मुख को विकृत कर देते हैं। इस प्रकार के घोर दुःखों से पीड़ित होकर वे नारक जीव, रुदन करते हैं, उछलते-गिरते और चक्कर लगाते हैं।

नारकों की मरने के बाद की गति

पुब्बकम्मोदयोवगया, पच्छाणुसएणं डञ्जमाणा णिदंता पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं तर्हि तर्हि तारिसाणि ओसण्णे चिक्कणाइं दुक्खाइं अणुभवित्ता तओ य आउक्खएणं उव्वट्टिया समाणा बहवे गच्छंति तिरिय-वसर्हि दुक्खुत्तरं सुदारुणं जम्मणमरण-जरावाहि-परियट्टणारहट्टं जल-थल-खहयर-परोप्पर विर्हिसण-पवंचं इमं च जगपागडं वरागा दुक्खं पावेति दीहकालं ।

शब्दार्थ - पुब्बकम्मोदयोवगया - पूर्वभव के कर्मों के उदय से, पच्छाणुसएणं - पश्चात्ताप से, डञ्जमाणा - जलते हुए, तर्हि तर्हि - वहाँ-वहाँ-उन-उन स्थानों में, तारिसाइं - उस प्रकार के, पुरेकडाइं - पूर्व में किये हुए, पावाइं कम्माइं - पाप कर्मों की, णिदंता - निन्दा करते हैं, ओसण्ण चिक्कणाइं - अतिशय चिकने-बड़ी कठिनता से छोड़े जा सके-ऐसे दुर्भेद्य, दुक्खाइं - दुःखों को, अणुभवित्ता - भोग कर, तओ य - उसके बाद, आउक्खएणं - नरकायु का क्षय होने पर, उव्वट्टिया समाणा - नरक से निकले हुए, बहवे - बहुत-से, गच्छइं - जाते हैं, तिरियवसर्हि - तिर्यच योनि में, दुक्खुत्तरं - महान् दुःखों वाली और अत्यन्त दीर्घ काल तक की स्थिति वाली, सुदारुण - अत्यन्त दारुण दुःख देने वाली, जम्मणमरण - जन्म-मरण, जरावाहि - जरा और व्याधि के, परियट्टणारहट्टं - रहट के

समान चक्कर, जल-थल-खहयर - जलचर, थलचर और खेचर के, परोप्पर विहिंसण - परस्पर हिंसक कृत्य का, पवंचं - प्रपंच-विस्तार चलता है, जगपागडं - जगत् में प्रत्यक्ष, वरागा - बिचारे, दुक्खं पावेति- दुःख पाते हैं, दीहकालं - दीर्घकाल तक।

भावार्थ - पूर्वभव में बांधे हुए कर्मों के उदय से घोरतम दुःख भोगते हुए वे नारक पछताते हुए सोचते हैं कि हमने पूर्वभव में उन स्थानों पर ऐसे पापकर्मों का संचय क्यों कर लिया, जिससे हमें ऐसे असह्य दारुण दुःख भोगने पड़े। वे उन पाप-कृत्यों की निन्दा करते हैं और पश्चात्ताप से जलते हैं। वे नरक-भव में अपने दृढ़तम एवं घोर कर्मों का दुखानुभव करते हुए वहाँ का आयु पूर्ण करते हैं। नरकायु क्षय होने पर बहुत-से जीव नरक से निकल कर तिर्यच योनि में जाते हैं। वे तिर्यच योनि में भी अत्यन्त दुःख वाली और अत्यन्त दीर्घकाल (अनन्तकाल) वाली स्थावरकाय में जाकर छेदन-भेदनादि एवं क्षुद्र-भवादि में दारुण दुःख भोगते रहते हैं और जन्म-मरण व्याधि, रोग तथा भवभ्रमण सम्बन्धी दुःख भोगते ही रहते हैं। जलचर, स्थलचर और नभचर तिर्यचों में आपस में ही लड़-झगड़, आघात-प्रत्याघात से उत्पन्न शारीरिक और मानसिक दुःख भोगते रहते हैं। कुत्ता-बिल्ली, सर्प, नेवले, सर्प-मयूर आदि के एक-दूसरे को नष्ट कर देने जैसी लड़ाइयाँ संसार में प्रत्यक्ष दिखाई दे रही हैं। इस प्रकार ये जीव बिचारे दीर्घकाल तक दुःख भोगते रहते हैं।

विवेचन - नरक में दुःख भोगते हुए नारकों को अपने पूर्व-भव के दुष्कृत्य याद आते हैं। वे सोचते हैं कि "मैंने स्वल्प सुख के लिए अथवा कषाय पर अंकुश नहीं रखकर, आवेशित होकर कितने पापकर्मों का उपार्जन कर लिया? हाँ, उस समय मैं क्यों इतना मूढ़ मिथ्यात्वी और महापापी बन गया? उस समय मेरी बुद्धि क्यों मारी गई? हाँ, धिक्कार है मेरी उस अधमाध्रम बुद्धि और पापी-कृत्य को-" इस प्रकार अपने पापकर्मों की निन्दा करते हैं। सम्यग्दृष्टि नारक तो अपने ज्ञान से ही जान लेते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि नारक, परमाधामी देव अथवा सम्यग्दृष्टि नारक के कहने से जानते हैं। वैसे कई मिथ्यादृष्टि नारक भी करणी का फल मानते हैं।

नारक भव की परम्पर वैर-विरोध एवं मारकाट की परिणति से उस आत्मा की वह अशुभ लेश्या, नरक छोड़ने पर भी न्यूनाधिक कायम रहती है और मनुष्य-तिर्यच में आकर वह कषाय की आग पुनः सतेज हो जाती है। ऐसी आत्माएं बहुत कम होती हैं, जिनका विवेक जाग्रत होकर कषाय की आग को दबाती रहती है। वे आत्माएं नरक से निकल कर प्रशस्त हो जाती हैं और उत्थान का मार्ग पकड़ लेती हैं। शेष असंख्य आत्माएं तो अपने को निर्दोष और दूसरों को दोषी मानकर लड़ती-झगड़ती एवं दुःखी होती है।

नरक में से निकलने वाली वे आत्माएं बहुत कम होती हैं, जो मनुष्य-भव पाती हैं। तिर्यच-भव पाने वाली बहुत अधिक-असंख्य गुण होती हैं।

तिर्यच योनि के दुःख

किं ते? सीउण्ह-तणहा-खुह-वेयण-अप्पईकार-अडवि-जम्मणाणिच्च-भउव्विग्गवास-जग्गण-वह-बंधण-ताडण-अंकण-णिवायण-अट्टिभंजण-णासाभेयप्पहारदूमण-छविच्छेयण-अभिओग-पावण-कसंकुसार-णिवाय-दमणाणि-वाहणाणि य।

शब्दार्थ - किं ते - वे कौन से दुःख हैं?, सीउण्ह - शीत उष्ण-सर्दी-गर्मी, तणहा - प्यास, खुह - क्षुधा, वेयण - वेदना, अप्पईकार - प्रतिकार रहित, अडविजम्मण - अटवी में जन्म होना, णिच्च - सदैव, भउव्विग्गवास - भय और उद्वेगपूर्ण स्थान में रहना, जग्गण - जागते रहना, वहबंधण-वध और बन्धन, ताडणअंकण - मार-पीट और अंकन-तपाये हुए लोहे से डाम लगाकर चिह्न बनाना, णिवायण - खड्डे आदि में गिरा देना, अट्टिभंजण - हड्डी तोड़ देना, णासाभेय - नासिका में छेद करना, पहार - लाठी आदि से प्रहार, दूमण - संतप्त करना, छविच्छेयण - अवयवों को काट देना, अभिओग पावण - बलात्कार पूर्वक काम में जोड़ना, कसंकुसार णिवाय दमणाणि - चाबुक, अंकुश और आरा-डंडे में लगी हुई शूल-के प्रहार से दमन करना, वाहणाणि - भार वहन कराना।

धिवेचन - तिर्यच योनि के दुःखों को जानने के लिए शिष्य गुरुदेव से पूछता है - 'भगवन्! तिर्यच-योनि में किस बात का दुःख है?' गुरुदेव बतलाते हैं - हे शिष्य! तिर्यच-योनि में पहला दुःख तो सर्दी-गर्मी का है। वहाँ उनके रहने के लिए सुरक्षित स्थान-घर आदि नहीं है। इसलिए वे जीव सर्दी-गर्मी और वर्षा के दुःख से पीड़ित होते ही रहते हैं।

क्षुधा-पिपासा का दुःख-जब गर्मी के दिन होते हैं, तो वन में भी कोसों दूर तक पानी नहीं मिलता। बिचारे पशु, प्यास के दुःख से दुःखी होकर पानी के लिए भटकते ही रहते हैं। कई भटकते-भटकते ही मर जाते हैं। किसी को उस जलाशय पर पानी पीने के लिए आया हुआ सिंह जैसा बलवान् पशु मारकर खा जाता है और कई रोगी, वृद्ध एवं अशक्त पशु जलाशय तक नहीं पहुँच पाने के कारण यों ही प्यास का भयंकर दुःख सहते हुए आर्तध्यान पूर्वक मर जाते हैं।

गाय, बैल, भैंस, भैसा आदि पालतु पशु जब अति वृद्ध हो जाते हैं और किसी काम के योग्य नहीं रहते हैं, तो उनकी साल-संभाल भी कम हो जाती है। कई स्वार्थी मनुष्य उन्हें घर से निकाल देते हैं। वे इधर-उधर गलियों में गिर पड़ते हैं। उनसे स्वयं उठा नहीं जाता। वे प्यास के दुःख से पीड़ित होते रहते हैं। जब पानी की बहुत तंगी होती है, तो वैसे समय में उन मूक बेकार पशुओं को कोई नहीं पूछता। उनके सामने पनिहारी पानी भरकर आती है, उसके देखकर उनके मन में आशा उत्पन्न होती है कि यह मुझे पानी पिलाएगी। उनका मन शीघ्र ही भर-पेट पानी पीने के लिए तालावेली करता है, किन्तु जब वह पनिहारी उनके सामने से होकर निकल जाती है, तो उनके दुःख का पार नहीं रहता। वे हताश प्राणी बहुत दुःख वेदते हैं। उसी प्रकार भूख का दुःख भी है।

जन्म का दुःख भी पशुओं को बहुत होता है। वन में रहने वाली हिरनी, बाघिन सियालिनी, लोमड़ी आदि गर्भिणी होती है, उनका प्रसवकाल होता है, तो कौन उनका जच्चाकर्म करता है? कौन उनकी सेवा-शुश्रूषा एवं परिचर्या करता है? रोग होने पर कौन औषधी देता है? उनके दुःखों का प्रतिकार करने वाला कौन है? कोई नहीं। यदि साथी मृग, बाघ, चीता आदि हो, तो वे भी क्या कर सकते हैं? खड़े-खड़े देखने व चिन्ता करने के अतिरिक्त उनके पास उस दुःखी प्राणी के दुःख का प्रतिकार करने का कोई उपाय नहीं होता।

तिर्यचों के सामने भय का वातावरण बना ही रहता है। सिंह की गर्जना या गन्ध मात्र से वन के सैकड़ों प्राणी भयभीत रहते हैं। उनका वह भय बना ही रहता है। चलते-फिरते खाते-पीते और सोते समय भी भय लगा रहता है-कहीं आस-पास दुबक कर बैठा हुआ चीता लपक कर हमें दबोच नहीं ले। कहीं हमारे बच्चे को नहीं खा जाये। सर्प को नेवले और मयूर आदि का, छोटे-मोटे, कीड़ों-मकोड़ों को मुर्गे-तीतर आदि पक्षियों का और पशुमात्र को निर्दय शिकारी मनुष्यों और पारधि-बहेलिया आदि हिंसक धन्धा करने वाले मनुष्यों का भय सदैव बना रहता है। अब तो बन्दरों, मेढकों, सूअरों, मुर्गों, अंडों और मत्स्यादि जलचरों को सरकार का भय भी बहुत बड़ा लग गया है। कुंथु से लगाकर हाथी और सिंह तक को मनुष्य का भय है। बिचारे जीवों को खाते, पीते, सोते और किलोल करते हुए को गोली मारकर ढेर कर देते हैं। आकाश में उड़ते पक्षियों को मारकर गिरा देते हैं। बड़े-बड़े कल्लखाने खोलकर काटे जाते हैं। तिर्यचों के लिए तिर्यच और मनुष्य दोनों का भय है। वन में भी भय और बस्ती में भी भय। पद-पद पर भय बना हुआ है। उन बिचारों के लिए सुख की नींद कहाँ?

वध के दुःख के साथ बन्धन का दुःख भी बहुत है। गाय, बैल, घोड़ा, गधा, खच्चर, हाथी आदि पशुओं और तोता, मैना, मुर्गा, बत्तख, तीतर आदि पक्षियों के लिए बन्धन का दुःख लगा ही रहता है। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए उन्हें जीवनभर बन्धन में रखकर दुःख देता है। कोई सवारी के लिए बन्धन में डालता है, तो कोई दूध, कृषि और भार ढोने के लिए और कोई मारकर खाने के लिए बन्धन में जकड़ते हैं। अब तो औषधि-निर्माण तथा शरीर विज्ञान का अध्ययन करने के लिए भी पशुओं को बन्दी बनाकर देश निकाला देते हैं। वहाँ उन्हें कठोरतापूर्वक बन्धन में जकड़ कर अंग-प्रत्यंग पर छुरी चलाई जाती है। खून खींचा जाता है, हाथ-पाँव काटे जाते हैं और वे बन्धन में जकड़े हुए घोर दुःख भोगते रहते हैं।

मनुष्यों द्वारा चिह्नित किये जाते हैं। फौजी भोड़ों के फिछले पाँव पर गरम लोहे से दागते हुए दो-तीन बड़े अक्षर बनाकर अधिकृत राज्य या वर्ग का चिह्न बनाया जाता है। पशुओं की पहचान के लिए भी चिह्न बनाये जाते हैं। धर्म-सांड के परिचय के लिए चांद-सूर्य का अंकन किया जाता है। गाय और भैंस के कान सुन्दर बनाने के लिए चीर दिये जाते हैं।

बलवान पशु, निर्बल अशक्त और रोगी पशु को धक्का देकर खड़े में गिरा देता है, जहाँ से

निकलना कठिन हो जाता है। यदि अंगभंग हो जाये, गम्भीर चोट लगे, तो वहीं तड़प-तड़प कर मर जाते हैं। उनकी साल-संभाल करने वाला कोई नहीं मिलता।

मनुष्य अपना स्वार्थ सधता नहीं देखकर या किसी कारण से क्रुद्ध होकर पशु को इतनी जोर से मारता है कि उसकी हड्डियाँ भी टूट जाती हैं। कोई लंगड़ा हो जाता है, तो किसी की पसली टूट जाती है।

पशु को वश में रखने के लिए उसकी नासिका को बंधकर उसमें रस्सी डालते हैं और वह रस्सी मनुष्य अपने हाथ में रखता है। रस्सी डालते समय बैल या ऊंट को इतना जकड़ दिया जाता है कि जिससे वह अपना बचाव भी नहीं कर सकता और चुपचाप शूल भोंक कर नासिका फोड़ने और रस्सी डालने की तीव्र वेदना सहता रहता है। इस नकेल के द्वारा मनुष्य उस बलवान् पशु को अपने वश में रखता है और मनचाहे काम लेता है। नकेल के खिंचने से पशु को वेदना होती है, परन्तु उसकी वेदना को कौन देखे? मनुष्य उसके सुख-दुःख का विचार नहीं करता।

मारते-पीटते, संतापित करते, क्रम करने के लिए विवश करते, यदि पशु थका हुआ अशक्त, रोगी और भारवहनादि काम के अयोग्य हो, तो भी मनुष्य उसकी दयनीय दशा को नहीं देखता और अपने स्वार्थ के लिए उसे काम में लगा देता है। यदि अशक्ति के कारण वह भार ढोकर चल नहीं सकता या शक्ति से अधिक भार होने के कारण वहन करना दुभर होता है, तो मनुष्य उस पर प्रहार करता है। निर्दय बनकर उसे पीटता है। शूल भोंकता है, चाबुक के जोरदार झपाटे बरसाता है और भार ढोने के लिए विवश करता है। मनुष्य स्वयं सुख चाहता है, किन्तु अपने अधीनस्थ पशु की सुख-सुविधा नहीं देखता। अपनी अत्यन्त निर्दयता के कारण ही मनुष्य ऐसे दुःखों से भरपूर नरक भव और तिर्यच भव पाता है।

मायापिड्विष्यओग-सोय-परिपीलणाणि य सत्थग्गिविसाभिघाय-गल-गवलावलण-मारणाणि य गलजालुच्छिष्यणाणि य पडलण-विकप्पणाणि य जावज्जीविगबंधणाणि य, पंजरणिरोहणाणि य सयूहणिद्धाडणाणि य धमणाणि य दोहिणाणि य कुर्दडगलबंधणाणि य वाडगपरिवारणाणि य पंकजलणिमज्जणाणि य वारिप्पवेसणाणि य ओवायणिभंग-विसमणिवडणदवग्गिजालदहणाई य।

शब्दार्थ - मायापिड्विष्यओग - माता-पिता वियोग, सोयपरिपीलणाणि - शोक से प्रपीडित (अथवा श्रोत-नासिकादि बंधन से पीडित), सत्थग्गिविसाभिघाय - शस्त्र, अग्नि और विष आदि के अभिघात से, गलगवलावलणमारणाणि - गर्दन और सिंग को मरोड़कर मारने रूप, गलजालुच्छिष्यणाणि - मछली आदि के गले में कांटा फंसाकर अथवा जाल में फांसकर निकालना, पडलण - पचाना, विकप्पणाणि - काटा जाना, जावज्जीविगबंधणाणि - जीवन पर्यन्त बांधे रखकर, पंजरणिरोहणाणि - पिंजरे बन्द रखकर, सयूहणिद्धाडणाणि - यूथ से पृथक् रखकर, धमणाणि -

पेट में वायु भरकर, दोहणाणि - दूध दुहकर, कुदंडगलबंधणाणि - गंले में दंड (डिंगरा) बांधकर, वाडगपरिवारणाणि - बाड़े में घेरकर, पंकजलाणिमञ्जणाणि - कीचड़ युक्च जल में प्रवेश कराकर, वारिष्यवेशणाणि - जल में प्रवेश करवा कर, ओवायणिभंग - अंग-भंग होकर, विसमाणिवडणा - विषम स्थान से गिराकर, दवगिगजालदहणाई - वन में दावाग्नि की ज्वाला से जल कर।

भावार्थ - तिर्यचों को माता-पिता का वियोग जन्य दुःख सहन करना पड़ता है। वे शोक से पीड़ित रहते हैं। उन्हें शस्त्र, अग्नि और विष के असह्य आघात सहन करने पड़ते हैं। उनकी गर्दन मरोड़ दी जाती है। सींग मोड़कर मृत्यु जैसा दुःख दिया जाता है। मछलियों के गले में कांटा फंसाकर और जाल में फंसाकर पकड़ा व मारा जाता है। लोग उन जीवों को पकाते और काटते हुए घोरतम दुःख देते हैं। उन्हें स्वजातीय झुंड से पृथक् कर और पिंजरे में बन्द करके जीवनभर के लिए बन्दी बना देते हैं। गाय आदि के गले में डिंगरा बांध कर उसका चलना कठिन कर देते हैं। उनके पेट में वायु भरकर दुःखी किये जाते हैं। बाड़े में घेर दिये जाते हैं। कीचड़ भरे हुए पानी में उतार दिये जाते हैं। बरबस पानी में उतारे जाते हैं। विषम स्थान से गिराकर अंगभंग कर दिया जाता है। वे तिर्यच, वन के दावानल में जलकर दुःखी होते हैं।

विवेचन - तिर्यच जीवों के विविध प्रकार के दुःखों का वर्णन करते हुए सूत्रकार ने बहुत-से दुःख तो मनुष्य-कृत बताये हैं। इन दुःखों का सम्बन्ध मुख्यतः संज्ञी तिर्यचों से है।

वन-विहार पशुओं के सिंहादि से भयभीत होकर इधर-उधर भागने से भी (भटक जाने से) माता-पिता का विरह हो जाता है। किन्तु मनुष्य तो अपने स्वार्थ की खातिर बछड़ों को गाय, भैंस, घोड़ी, बकरी आदि से पृथक् करके दुःखी करते हैं। मांसाहारी लोग, इन्हें मार खाते हैं और बछड़े मातृ-वियोग में तड़पते रहते हैं। कोई माता से बछड़ों को छिनकर मार डालते हैं, कोई स्वयं बलि दे देते हैं, तो कोई पैसे के लालच में भैंसे और बकरी के बच्चे को बलिदान के लिए बेच देते हैं। इस प्रकार इन प्राणियों को माता-पिता और बछड़े तथा समूह का विरह दुःख सहना पड़ता है। वे वियोग के शोक में पीड़ित होकर रुदन करते रहते हैं।

बैल आदि पर क्रुद्ध होकर, नाथ की रस्सी खींचकर गर्दन मोड़ने और इस प्रकार बांध कर दंड देने की निर्दयता की जाती है। सींगों को सुन्दर बनाने के लिए मोड़ा जाता है। अधिक लम्बे, तीखे और सहज ही किसी के लगने या झाड़ी में अटकने वाले सींगों को काट दिया जाता है, जिससे पशु को लम्बे समय तक वेदना होती रहती है। कभी सींगों में कीड़ा लगकर पशु की मृत्यु का कारण भी बन जाता है।

मनुष्य अपने विनोद के लिए तोता, मैना, हिरण, घन्दर, खरगोश आदि को बन्दी बना लेता है। उसका वह बन्दीपन जीवनपर्यन्त चलता है। गाय, भैंस, घोड़ा आदि जितने पालतु पशु हैं वे सब सदैव के लिए बन्दी बने रहते हैं। चिड़ियाघर (अजायबघर) में अनेक प्रकार के पक्षी और सिंह, व्याघ्र, चीता, भालू, रोज तथा सर्प आदि उरपरिसर्प भी बन्दी बनाकर रखे जाते हैं।

खेतों और बगीचों में जाकर फसल को हानि पहुँचाने वाली अथवा भाग कर पूर्व स्थाच-पर चली जाने वाली गाय के गले में गलदंड (डिंगरा) भी बांधा जाता है, जिससे वह भाग नहीं सकती।

पंकजलणिमज्जणाणि - कीचड़ युक्त पानी में चलाये जाने या दलदल में फँस जाने से भी महान् दुःख होता है। भैंस आदि पशु, गर्मी से घबराये हुए ठण्डक पाने के लिए ऐसे पानी में जाकर गिरे कि जिसमें कीचड़ अधिक हो। उनका सारा शरीर कीचड़ से लथपथ हो जाता है, फिर वह कीचड़ सूख जाने पर चमड़ी को सिकोड़ता है और नया दुःख उत्पन्न कर देता है। कमजोर एवं वृद्ध भैंस आदि ऐसे स्थान पर कीचड़ में फँस जाती हैं और उसी में तड़प-तड़प कर मर जाती है।

बैलों को गाड़ी, रथ आदि में जोतकर तथा घोड़ों और गंधों को कीचड़ में भार खींचते हुए चलाया जाता है, जिससे पशुओं को भारी दुःख होता है। उनकी हड्डियाँ खींच जाती हैं, आँखें बाहर निकल जाती हैं, श्वास उखड़ जाता है और जीवन दुःख में घुलकर समाप्त हो जाता है। जब सर्दी जोरदार पड़ रही हो, हिम-वर्षा हो रही हो और मनुष्य घर में भी गर्म कपड़े पहनकर और कम्बल-रजाई आदि ओढ़कर सिगड़ी के ताप में रहता हो, उस समय पशुओं को खुले में रखना या उन्हें चलाना और बर्फ के समान ठण्डे पानी में होकर वाहन खींचने के लिए विवश करना, कितना दुःखदायक होता होगा? ऐसी भीषण सर्दीयुक्त वर्षा में बिचारे वनचर पशुओं की क्या दशा होती होगी?

जब विशाल वन में अग्नि लग गई हो या किसी ने लगा दी हो और उस महाग्नि की चपेट में कोसों दूर तक का वन आ गया हो, आक की ज्वालाएं आकाश छू रही हों, धुएँ के बादल छा कर जीवों का श्वास रुंध रहा हो, ऐसे भीषणतप उपद्रव में चींटी से लगाकर सिंह और हाथी तक के प्राणों पर संकट आ जाता है। सांप, बिच्छु इत्यादि हजारों प्रकार के पशु-पक्षियों, बच्चों और अंडों का सामूहिक श्मशान बन जाता है। तिर्यंच योनि में ऐसे अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं।

एवं ते दुक्ख-सय-संपलित्ता णरगाओ आगया इहं सावसेसकम्मा तिरिक्ख-पंचंदिएसु पाविंति पावकारी कम्माणि पमाय-राग-दोस-बहु-संचियाइं अईव अस्साय-कक्साइं।

शब्दार्थ - एवं - इस प्रकार, ते - वे, णरगाओ आगया - नरक से आये हुए जीव, तिरिक्ख पंचंदिएसु - तिर्यंच पंचेन्द्रिय में उत्पन्न होकर, दुक्खसयसंपलित्ता - सैकड़ों प्रकार के दुःखों से संतप्त रहते हैं और, इहं - यहाँ, सावसेसकम्मा - अपने बचे हुए कर्मों का फल भोगते हैं, पावकारी कम्माणि - वे पापकारी कर्म करने वाले प्राणी, पमाय-रागदोस बहुसंचियाइं - प्रमाद राग और द्वेष से बहुत-से-कर्मों का संचय करके, अईव - अत्यन्त, अस्सायकक्कसाइं - दारुण दुःख एवं कठोर कष्टों को पाविंति - प्राप्त करते हैं।

भावार्थ - इस प्रकार नरक से निकलकर तिर्यंच में आये हुए वे जीव, सैकड़ों प्रकार के दुःखों से संतप्त रहते हैं और बचे हुए पाप-कर्मों को भोगते रहते हैं। वे पाप करने वाले जीव अपने प्रमाद, राग

और द्वेष से बहुत-से कर्मों का संचय करके इस तिर्यच पंचेन्द्रिय योनि में अत्यन्त दुःखदायक और कर्कश-कठोर कष्टों को प्राप्त होते हैं।

विवेचन - नरक में भुगतने योग्य तीव्रतम पाप-कर्मों का फल भोगने के बाद जब वे कर्म हल्के हो जाते हैं-तिर्यच गति के योग्य रह जाते हैं, तब वे जीव, नरकायु समाप्त होने पर, तिर्यच गति में आते हैं और दुःखमय जीवन व्यतीत करते हैं।

चौरिन्द्रिय जीवों के दुःख

भमर-मसग-मच्छिमाइएसु य जाइकुलकोडि-सयसहस्सेहि णवहि चउरिदियाणं तहि तहि चैव जम्पणमरणाणि अणुहवंता कालं संखिज्जं भमंति णेरइयसमाणतिव्व-दुक्खा फरिसरसण-घाण-चक्खु-सहिया।

शब्दार्थ - भमरमसगमच्छिमाइएसु - भमर मशक मक्खी आदि, जाइकुलकोडि - जाति की कुलकोटियाँ, सयसहस्सेहि - शतसहस्र=लाख, णवहि - नौ, चउरिदियाणं - चौरिन्द्रिय, तहि तहि चैव-उन सभी में, जम्पणमरणाणि - जन्म-मरण, अणुहवंता - अनुभव करते हुए, कालं संखिज्जं - संख्यात काल, भमंति - भ्रमण करते हैं, णेरइय-समाण - नैरयिक के समान, तिव्वदुक्खा - तीव्र दुःख, फरिस रसणघाणचक्खुसहिया - स्पर्श, रस, घ्राण और चक्षु सहित होते हैं।

भावार्थ - चार इन्द्रिय वाले भ्रमर मशक (मच्छर) और मक्खी आदि जाति के जीवों की कुल कोटियाँ नौ लाख हैं। ये जीव, स्पर्श, रसना, घ्राण और चक्षु-इन चार इन्द्रियों से युक्त होते हैं। उन सभी जाति और कुलों में जन्म-मरण करते हुए वे पापी जीव, संख्यात काल तक नारक जीवों के समान तीव्र दुःखों का वेदन करते हैं।

जाति - उत्पत्ति का वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार (कुल) के जीव उत्पन्न होते हैं। चौरिन्द्रिय की जाति दो लाख है।

कुल - एक जाति में उत्पन्न विविध प्रकार के जीव जैसे - गोबर, विषा आदि अशुचि या गीली मिट्टी में एक ही स्थान पर विविध प्रकार के सम्पूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते हैं। एक ही माता से वर्णादि की भिन्नता लिए हुए सन्तति उत्पन्न होती है, वह विविधता कुल रूप मानी जाती है।

आयु-स्थिति - चौरिन्द्रिय जीव की आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट छह माह हैं और काय-स्थिति उत्कृष्ट संख्यात काल की बताई है। यह संख्यात काल संख्यात हजार वर्ष का है, ऐसा प्रज्ञापना पद १८ की टीका में लिखा है।

तेइन्द्रिय जीवों के दुःख

तहेव तेइंदिएसु कुंधु-पिप्पीलिया-अंधिकादिएसु य जाइकुलकोडि-सयसहस्सेहि

अट्टहिं अणूणएहिं तेइंदियाणं तहिं तहिं चेव जम्मणमरणाणि अणुहवंता कालं संखेज्जगं भमंति णेरइयसमाणतिव्वदुक्खा फरिस-रसण-घाण-संपउत्ता ।

शब्दार्थ - तहेव - इसी प्रकार, तेइंदिएसु - तेइन्द्रिय प्राणियों की, कुंथुपिप्पीलियाअंधिकादिएसु-कुंथु-पिप्पीलिका-चींटी-कीड़ी, अंधिका-दीमक आदि, जाइकुल - जाति कुल, कोडिसयसहस्सेहिं अट्टहिं - कुल कोटियाँ आठ लाख, अणूणएहिं - अन्यून-पूरी, तहिं तहिं चेव - उन सब में, जम्मणमरणाणि - जन्म-मरण, अणुहवंता - अनुभव करते हुए, कालं संखेज्जगं भमंति - संख्यात काल तक भ्रमण करते हैं, णेरइयसमाण - नैरयिकों के समान, तिव्वदुक्खा - तीव्र दुःख, फरिस-रसण-घाण-स्पर्श, रसन, घ्राण, संपउत्ता - युक्त ।

भावार्थ - इसी प्रकार कुंथु, चींटी, दीमक आदि तेइन्द्रिय प्राणियों की जाति की कुल-कोटियाँ पूरी आठ लाख हैं। वे बार-बार उन्हीं में जन्म-मरण करते हुए और नैरयिक के समान तीव्र दुःखों का अनुभव करते हुए संख्यात काल तक उसी में भ्रमण करते रहते हैं। वे जीव, स्पर्श, रसन और घ्राण इन्द्रिय से युक्त हैं।

बेइन्द्रियों के दुःख

गंडूलय-जलूय-किमिय-चंदणगमाइएसु य जाइकुलकोडिसय-सहस्सेहिं सत्तहिं अणूणएहिं बेइंदियाणं तहिं तहिं चेव जम्मणमरणाणि अणुहवंता कालं संखेज्जगं भमंति णेरइयसमाण-तिव्वदुक्खा फरिस-रसण-संपउत्ता ।

शब्दार्थ - गंडूलय - गंडूल-गिडोला, जलूय - जोंक, किमिय - कृमि-छोटे कीड़े, चंदणगमाइएसु - चन्दनक-अक्ष आदि, जाइकुलकोडि - जाति की कुलकोटियाँ, सयसहस्सेहिं सत्तहिं-सात लाख, अणूणएहिं - अन्यून-पूरी, बेइंदियाणं - बेइन्द्रिय की, तहिं तहिं चेव - उन्हीं में, जम्मणमरणाणि - जन्म-मरण, अणुहवंता - अनुभव करते हुए, कालं संखेज्जगं - संख्यात काल, भमंति - भ्रमण करते हैं, णेरइयसमाणतिव्वदुक्खा - नैरयिक के समान तीव्र दुःख, फरिसरसणसंपउत्ता-स्पर्श और रसना युक्त ।

भावार्थ - गंडूलक, जोंक, कृमि एवं चन्दनक आदि बेइन्द्रिय जीवों की जाति की कुल कोटियाँ पूरी सात लाख हैं। वे उन्हीं जाति-कुलों में जन्म-मरण करते और नारक जीवों के समान तीव्र दुःखों का अनुभव करते हुए संख्यात काल तक उन्हीं में भ्रमण करते रहते हैं। वे स्पर्श और रसना, इन दोनों इन्द्रियों से युक्त हैं।

एकेन्द्रिय जीवों के दुःख

पत्ता एगिंदियत्तणं वि य पुढवि-जल-जलण-मारुय-वणप्फइ सुहम-बायरं च

पञ्चतमपञ्चतं पत्तेयसरीरणाम-साहारणं च पत्तेयसरीर-जीविएसु य तत्थवि कालमसंखेज्जगं भमंति अणंतकालं च अणंतकाए फासिंदियभावसंपउत्ता दुक्खसमुदयं इमं अणिट्ठं पावंति पुणो पुणो तहिं तहिं चेव परभवतरुगणगहणे ।

शब्दार्थ - पत्ता - प्राप्त, एगिंदियत्तणं - एकेन्द्रियत्व, पुब्बवि - पृथ्वी, जल - पानी, जलण - जलने वाली अग्नि, मारुथ - वायु, वणप्फइ - वनस्पति, सुहुमबायरं - सूक्ष्म-बादर, पञ्चतमपञ्चतं - पर्याप्त-अपर्याप्त, पत्तेयसरीरणाम साहारणं - प्रत्येक शरीर नाम और साधारण, पत्तेयसरीरजीविएसु - प्रत्येक शरीर के जीवन में, तत्थवि - वहाँ भी, कालमसंखेज्जगं - असंख्यकाल तक, भमंति - भ्रमण करते हैं, अणंतकालं - अनंत काल, अणंतकाए - अनंतकाय में, फासिंदियभावसंपउत्ता - स्पर्शन इन्द्रिय भाव युक्त, दुक्खसमुदयं - दुःख समूह को, इयं - इस, अणिट्ठं - अनिष्ट, पावंति - प्राप्त करते हैं, पुणो पुणो - बार-बार, तहिं तहिं - वहाँ, परभवतरुगणगहणे - तरुगण-वनस्पतिकाय रूप भव में जन्म-मरण करते हुए।

भावार्थ - एकेन्द्रियत्व में-पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति में सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर नाम और साधारण-शरीर नाम को प्राप्त होकर वे वनस्पति में प्रत्येक शरीर के जीवन में (प्रत्येक शरीरपने) असंख्यात काल तक भ्रमण करते हैं और अनन्तकाय में अनन्तकाल भ्रमण करते हैं। वे जीव बार-बार वनस्पतिकाय में ही जन्म-मरण करते हुए अनिच्छनीय दुःख समूह को प्राप्त करते हैं। इन जीवों के एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है।

एकेन्द्रिय - जिन जीवों के मात्र स्पर्शन इन्द्रिय ही हो, जीभ, नासिका, आँख और कान नहीं हों, ऐसे पृथ्वीकायादि पांच स्थावर के जीव।

सूक्ष्म - सूक्ष्म नाम-कर्मा के उदय से जो पृथिव्यादि स्थावरकाय के जीव अत्यन्त सूक्ष्म हों, जो चर्म-चक्षु से दिखाई नहीं दें।

बादर - बादर नामकर्म के उदय से जिन पृथिव्यादि स्थावर जीवों का शरीर स्थूल हो अर्थात् सूक्ष्म-शरीरी से विशेष बड़ा हो। ऐसे बादर जीव, स्थावरकाय के अतिरिक्त बेइन्द्रियादि त्रसकाय के भी होते हैं। सूक्ष्म जीव तो केवल स्थावरकाय में ही होते हैं, त्रस में नहीं। किन्तु त्रस जीवों में और बादर स्थावरकाय जीवों में भी इतने बारीक जीव होते हैं कि जिन्हें हम देख नहीं सकते। सम्पूर्च्छिम मनुष्य बारीक-बहुत छोटे होते हैं, वे हमें दिखाई नहीं देते, फिर भी वे बादर हैं।

पर्याप्तक - पर्याप्त नामकर्म के उदय से जीव का पर्याप्तक होना। कुल पर्याप्तियाँ छह हैं - १. आहार पर्याप्ति २. शरीर पर्याप्ति ३. इन्द्रिय पर्याप्ति ४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति ५. भाषा पर्याप्ति और ६. मनःपर्याप्ति। इनमें से एकेन्द्रिय जीवों के प्रथम की चार पर्याप्तियाँ होती हैं और बेइन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के मन को छोड़कर पांच तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के सभी-छह।

अपर्याप्तक - जब तक अपनी जाति के योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण रूप से नहीं बांध ली जातीं, तब

तक जीव अपर्याप्तक रहते हैं। यह अपर्याप्तकपन अन्तर्मुहूर्त तक ही रहता है। अन्तर्मुहूर्त के बाद पर्याप्तक हो जाते हैं। क़ई जीव अपर्याप्तक अवस्था में ही मर जाते हैं।

प्रत्येक शरीरी - एक शरीर में एक ही जीव वाले 'प्रत्येक-शरीरी' कहलाते हैं। सभी जाति के जीवों में प्रत्येक शरीरी हैं। एक वनस्पतिकाय ही ऐसी है कि इसमें प्रत्येक के सिवाय साधारण शरीरी जीव भी होते हैं।

साधारण शरीरी - वे जीव जो एक ही शरीर में अनन्त हों। वनस्पतिकाय के जीवों में साधारण शरीरी जीव भी होते हैं। इनको 'निगोदिये जीव' भी कहते हैं। जीवों के पिण्डभूत शरीर को 'निगोद' कहते हैं। इस लोक में असंख्य सूक्ष्म निगोद हैं और सारे लोकाकाश में भरे हुए हैं। बादर निगोद कन्दमूल आदि जमीकन्द और वृक्ष की कोंपलें - अत्यन्त मुलायम अवस्था वाली वनस्पति इत्यादि में सूई के अग्रभाग पर आवे उतनी वनस्पति में अनन्त जीव होते हैं।

पूर्वाचार्य कहते हैं कि - लोकाकाश के जितने (असंख्य) प्रदेश हैं, उतने ही सूक्ष्म निगोद के गोले हैं। प्रत्येक गोले में असंख्यात निगोद हैं और प्रत्येक निगोद में अनन्त जीव हैं।

भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान के समय (काल का सूक्ष्मतम अंश) को एकत्रित करने पर जितने हों, उनसे अनन्तगुण जीव, एक-एक निगोद में होते हैं।

अनन्तकाय - साधारण शरीरी जीवों को अनन्तकाय भी कहते हैं।

असंख्यात काल - पांचों स्थावरकाय के प्रत्येक शरीरी जीवों की कायस्थिति उत्कृष्ट असंख्य काल, असंख्य अवसर्पिणी असंख्य उत्सर्पिणीकाल जितना है।

अनन्त काल - साधारण वनस्पति का उत्कृष्टकाल अनन्त है और अनन्त उत्सर्पिणी अनन्त अवसर्पिणी, अनन्त कालचक्र की है। पूर्वाचार्यों का मत है कि निगोद के जीवों में ऐसे जीव भी अनन्त हैं, जो निगोद से कभी बाहर निकले ही नहीं और निकलेंगे भी नहीं। उन्हें 'अव्यवहार राशि' के जीव कहते हैं।

भगवती सूत्र शतक २८ उ. १ में जीवों के पापोपार्जन के स्थान की प्ररूपणा करते हुए आठ विकल्प बतलाये हैं। उसमें पहला भेद - "सख्ये वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा" - अर्थात् सभी तिर्यच योनि में थे। शेष सातों भेदों में भी तिर्यच योनि तो है ही। इस प्रकार तिर्यच योनि का निवास स्थान सर्वाधिक है और ऐसी उत्कृष्टम कायस्थिति मात्र निगोद में ही है।

कु हाल-कु लिय-दालण-सलिल-मलण-खुं भण-रुं भण-अणलाणिल-विविहसत्थ-घट्टण-परोप्पराभिहणणमारणविराहणाणि य अकामकाइं परप्पओगोदीर-णाहिं य कज्जप्पओयणेहिं य पेस्सपसुणिमित्तं-ओसहाहार-माइएहिं उक्खणण उक्कत्थण-पयण-कुट्टण-पीसण-पिट्टण-भज्जण-गालण-आमोडण-सडण-फुडण-

**भंजण-छेयण-तच्छण-विलुंचण-पत्तञ्जोडण-अग्गिदहणाइयाइं, एवं ते भवपरं-
परादुक्ख-समणुबद्धा अडंति संसारबीहणकरे जीवा पाणाइवायणिरया अणंतकालं ।**

शब्दार्थ - कुदाल-कुलिय-दालण - कुदाल और हल से विदारण करना, सलिल - पानी में, मलण - मर्दन करना, खुंभण - क्षुब्ध करना, रुंभण - अवरुद्ध, अणल - अग्नि, अणिल - वायु, विविहसत्थ - विविध प्रकार के शस्त्र, घट्टण - संघटन-हनन, परोप्पराभिहणण - परस्पर एक-दूसरे का हनन, मारण - मारन, विराहणाणि - अनेक प्रकार से विराधना, अकामकाइं - बिना प्रयोजन, परप्पओगोदीरणाहिं - दूसरों के प्रयोग एवं उदीरणा से, कज्जप्पओयणेहिं - कार्य एवं प्रयोजन से, पेस्सपसुणिमित्तं - नौकर और पशुओं के लिए, ओसहाहारमाइर्हिं - औषधि और आहार आदि के लिए, उक्खणण - उखाड़ना, उक्कत्थण - छाल उतारना, पयण - पकाना, कुट्टण - कूटना-खांडना, पीसण - पीसना, पीटण - पीटना, भज्जण - भुनना, गालण - गलाना, आमोडण - मरोड़ना, सडण-स्वतः फटना, फुडण - टुकड़े होना, भंजण - तोड़ना, छेयण - छेदन करना, तच्छण - छीलना, विलुंचण - नोचना, पत्तञ्जोडण - पत्रादि तोड़कर गिरना, अग्गिदहणाइयाइं - आग में जलाना आदि एवं - इस प्रकार, ते - वे, भवपरंपरा - भवों की परम्परा में, दुक्खसमणुबद्धा - दुःखों से युक्त, अडंति - भ्रमण करते हैं, संसारबीहणकरे - भयंकर संसार में, जीवा - जीव, पाणाइवायणिरया - प्राणातिपात में रत, अणंतकालं - अनन्तकाल तक ।

भावार्थ - पृथ्वीकाय में उत्पन्न जीव कुदाल एवं हल से विदारण किये जाते हैं। अप्काय में जीवों का मर्दन किया जाता है, आलोडन से क्षुब्ध किया जाता है और प्रवाह रोक कर रुंधन भी किया जाता है। तेठकाय और वायुकाय में जीवों का स्वकाय और परकाय रूप विविध शस्त्रों से हनन किया जाता है, ये जीव परस्पर एक-दूसरे का हनन करते हैं, मारते हैं। ये सब दुःख बिना किसी प्रयोजन के भी दूसरों के हनन-चलनादि व्यापार और उदीरणा से होते हैं और नौकर और पशु आदि के लिए खाने पीने तथा औषधि आदि कार्य तथा प्रयोजन से हनन किया जाता है। वनस्पतियाँ उखाड़ी जाती हैं, उनकी छाल उतारी जाती है, पकाना, कूटना, पीसना, पीटना, आग में भुनना, गलाना, मरोड़ना आदि क्रिया से तथा फटने, टुकड़े होने, टूटने, छेदन करने, छीलने, नोचने, पत्र-पुष्पादि झड़कर गिराने आदि क्रियाओं से जीवों की घात की जाती है। अग्नि में जलाने आदि अनेक प्रकार से जीवों की हिंसा में रत रहने वाले जीव, जन्म-मरण की परम्परा में दुःख भोगते हुए अनन्तकाल तक इस भयंकर संसार में भटकते रहते हैं।

विवेचन - उपरोक्त सूत्र में पृथ्वीकाय से लगाकर वनस्पतिकाय तक के पांचों स्थावरकाय जीवों को अपने दुष्कर्मों के उदय से प्राप्त होने वाले दुःख के निमित्तों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। जीव-हिंसा के फलस्वरूप पापी जीव, नरक में दुःख भोगने के बाद तिर्यंच योनि में भी उनकी दुःख परम्परा चालू रहती है। यह उपरोक्त वर्णन का सार है।

मनुष्य भव के दुःख

जेवि य इह माणुसत्तणं आगया कर्हि वि णरगा उव्वट्टिया अधण्णा ते वि य दीसंति पायसो विकयविगलरूवा खुज्जा वडभा य वामणा य बहिरा काणा कुंटा पंगुला विउला य मूका य मम्मा य अंधयगा एगचक्खू विणिहयसंचिल्लया वाहिरोगपीलिय-अप्पाउय-सत्थबज्झ-बाला कुलक्खणउकिण्णदेहा दुब्बल-कुसंधयण-कुप्पमाण-कुसंठिया कुरूवा किविणा य हीणा हीणसत्ता णिच्चं सोक्खपरिवज्जिया असुह दुक्खभागी णरगाओ इहं सावसेसकम्मा उव्वट्टिया समाणा ।

शब्दार्थ - जे - जो, इह - इस, माणुसत्तणं - मनुष्यत्व, आगया - प्राप्त हुए, कर्हि वि - किसी प्रकार, णरगा - नरक से, उव्वट्टिया - निकल कर, अधण्णा - अधन्य-हीन-निन्दनीय, दीसंति-दिखाई देते हैं, पायसो - प्रायः, विकयविगलरूवा - विकृत एवं विकल-अपूर्ण रूप वाले, खुज्जा - कूबड़े, वडभा - टेढ़े शरीर वाले, वामणा - वामन-बहुत ही छोटे, बहिरा - बहरे, काणा - काने, कुंटा-टूटे हाथ वाले, पंगुला - लंगड़े, विउला - अल्पांग, मूका - गूंगे, मम्मा - अस्पष्ट बोलने वाले, अंधयगा - अन्धे, एगचक्खू विणिहय - एक आँख से रहित, संचिल्लया - दोनों आँखों से रहित, वाहिरोगपीलिय - व्याधि एवं रोग से पीड़ित, अप्पाउय - अल्प आयु, सत्थबज्झा - शस्त्र से वध किये हुए, बाला - मूर्ख, कुलक्खणउकिण्णदेहा - कुलक्षणों से मंडित हुए शरीर वाले, दुब्बल - दुर्बल, कुसंधयण - बुरे संहनन वाले, कुप्पमाण - बेडोल, कुसंठिया - बुरे संस्थान-आकार वाले, कुरूवा - कुरूप, किविणा - कृपण-दीन, हीणा - हीन, हीणसत्ता - सत्वहीन, णिच्चं सोक्ख परिवज्जिया - सुख से सदैव वंचित रहने वाले, असुह दुक्खभागी - अशुभानुबन्धी दुःखों से युक्त, णरगाओ - नरक से, इहं - यहाँ, सावसेसकम्मा - शेष रहे हुए पाप-कर्मों के फलस्वरूप, उव्वट्टिया समाणा-निकल कर ।

भावार्थ - उन हिंसक जीवों में से जो पापी जीव, किसी प्रकार नरक से निकल कर, मनुष्य-लोक में उत्पन्न होकर, मानव शरीर प्राप्त करते हैं। वे भी प्रायः विकृत शरीर, विकलांगी, कूबड़े, वामन, टेढ़े अंग वाले, बहरे, गूंगे, काने, अन्धे, टूटे हाथ और लंगड़ी टाँग वाले होते हैं। कोई ठीक तरह से बोल भी नहीं सकते। उनकी वाणी अस्पष्ट होती है। कई कुष्ठादि व्याधि और ज्वरादि रोग से पीड़ित होते हैं। कई थोड़ी ही आयु में मर जाते हैं। कोई शस्त्र-प्रहार से वध किये जाते हैं। कई मनुष्यों का शरीर कुलक्षणों से भरा हुआ है। कई दुर्बल, कुसंहननी, बुरी आकृति वाले, बेडोल, कुरूप, दीन, हीन एवं शक्ति रहित होते हैं। वे अशुभानुबन्धी-पापकर्मों का दुःखरूप फल भोगते हुए सुख से सदा वंचित रहते हैं। वे नरक से निकल कर अपने अवशेष पापकर्मों का फल भोग रहे हैं।

विवेचन - इस सूत्र में उन्होंने मनुष्यों का वर्णन है जो नरक से निकल कर आये हैं या नरक से

तिर्यच गति में होकर मनुष्य हुए हैं। पुण्य-फल संचय करके देवगति में गये और वहाँ से आये हुए मनुष्यों का सम्बन्ध इस सूत्र से नहीं है।

नरक से निकलने वाले सभी जीव इस प्रकार की दुर्दशा वाले नहीं होते। कई जीव अपने वैसे पापकर्मों का फल वहीं भोगकर और मनुष्य-गति में आकर उत्तम स्थिति को प्राप्त होते हैं। कोई तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव आदि विशिष्ट आत्माएं नरक से निकल कर मनुष्य गति में आती हैं और मनुष्य लोक में सभी के लिए आदर-पात्र बनती हैं।

उपरोक्त सूत्र में उन्हीं महापापियों का वर्णन है, जिनके जीवन में मार-काट, हिंसा, हत्या, क्रूरतादि पाप ही पाप हो और नरक के घोर दुःख भोगने पर भी पाप-कर्मों का खजाना खाली नहीं हुआ हो। वे पापी जीव नरकायु पूरा करके शेष रहे हुए पाप-कर्मों का फल यहाँ भोगते हैं। उनका यह दुःखमय मानव-भव, उन शेष रहे हुए पाप-कर्मों का परिणाम है। इसी से वे शारीरिक, मानसिक, वाचिक हीनता, अभावजन्य पीड़ा और रोग-शोकादि दुर्दशा से युक्त दिखाई देते हैं। दरिद्रता भी पाप-कर्म का ही फल है। मनुष्यों में जो दुःख क्लेशादि हैं, ये सब पाप-कर्मों का परिणाम है।

इस सूत्र में पाप-कर्म के फलस्वरूप व्याधि, रोग, दुर्बलता एवं शस्त्राघात से दुःख होना, सुख से वंचित रहना और दरिद्र रहना बतलाया है। इस प्रकार की विषम दशा कर्म के फलस्वरूप ही प्राप्त होती है। जो लोग यह कहते हैं कि-रोगादि तथा दरिद्रतादि का सद्भाव कर्म के फलस्वरूप नहीं है, उन्हें इस सूत्र पर विचार करना चाहिए। वास्तव में अनुकूलता या प्रतिकूलता जीव के अपने कर्म के विपाक के अनुसार होती है।

उपसंहार

एवं णरगं तिरिक्ख-जोणिं कुमाणुसत्तं च हिंडमाणा पावंति अणंताइं दुक्खाइं पावकारी। एसो सो पाणवहस्स फलविवागो। इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भयो बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुंचई ण य अवेदयित्ता अत्थि हु मोक्खो त्ति एवमाहंसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवरणागधेज्जो कहेसी य पाणवहस्स फलविवागं। एसो सो पाणवहो चंडो रुद्धो खुद्धो अणारिओ णिग्घणो णिसंसो महब्भओ बीहणओ तासणओ अणज्जाओ उक्खेयणओ य णिरवयक्खो णिद्धम्मो णिप्पिवासो णिक्कलुणो णिरयवास-गमणणिधणो मोहमहब्भयपवडुओ मरणवेमणसो। पढमं अहम्मदारं सम्पत्तं त्ति बेमि ॥ १ ॥

शब्दार्थ - एवं - इस प्रकार, णरगं - नरक, तिरिक्खजोणिं - तिर्यच योनि, कुमाणुसत्तं - कुमानुषत्व, हिंडमाणा - भ्रमण करते हुए, पावंति - प्राप्त होते हैं, अणंताइं-दुक्खाइं - अनन्त दुःखों

को, पावकारी - पाप करने वाले, एसो - यह, सो - वह, पाणवहस्स - प्राणिवध का, फलविवागो - फलभोग, इहलोइओ - इस लोक, परलोइओ - परलोक में, अप्पसुहो - सुख रहित अथवा अल्पसुख, बहुदुक्खो - बहुत दुःखों वाला, महब्भयो - महाभयकारी, बहुरयप्पगाढो - बहुत से दोषों से भरा हुआ, दारुणो - दारुण-रौद्र, कक्कसो - कर्कश-कठोर, असाओ - सुख रहित, वाससहस्सेहिं - हजारों वर्षों में, मुंचई - छूटने वाला, ण - नहीं, अवेदधित्ता - फल भोगे बिना, अत्थि - अस्तित्व, मोक्खो - मोक्ष, त्ति - इति, एवमाहंसु - इस प्रकार, जायकुलणंदणो - ज्ञातकुल नन्दन-ज्ञातकुल को आनन्द देने वाले, महप्पा - महात्मा, जिणो उ - जिन, वीरवरणामधेज्जो - वीरवर-महावीर नाम वाले, कहेसी- कहा है, पाणवहस्स - प्राणवध, फलविवागं - फलविपाक, एसो - यह, सो - वह, पाणवहो - प्राणवध, चंडो - प्रचण्ड, रुद्धो - रौद्र, खुद्धो - क्षुद्र, अणारिओ - अनार्य, णिग्घणो - निर्घृण, णिसंसो- नृशंस-क्रूर, महब्भओ - महाभयानक, बीहणओ - डरावना, तासणओ - त्रासोत्पादक, अणजाओ - अन्याययुक्त, उव्वेयणओ - उद्वेग उत्पन्न करने वाला, णिरवयक्खो - निरपेक्ष-जीवों के प्राणों के प्रति उपेक्षित, णिद्धम्मो - धर्म रहित, णिप्पिवासो - स्नेह रहित, णिक्कलुणो - करुणा रहित, णिरयवासगमणणिधणो - नरक में गमन करने की सामग्री का भंडार, मोहमहब्भय - मोहरूपी महाभय का, पवहुओ - बढ़ाने वाला, मरणवेमणसो - मृत्यु रूप दीनता देने वाला, त्ति बेमि - ऐसा मैं कहता हूँ, पडमं - प्रथम, अहम्मदारं - अधर्मद्वार, सम्मत्तं - समाप्त।

भावार्थ - इस प्रकार जीवों की हिंसा करने वाले पापी जीव, नरक-तिर्यंच और कुत्सित मनुष्य भव में भ्रमण करते हुए अनंत दुःखों को प्राप्त होते हैं। उस प्राणवध का यह फल-विपाक है, जो इस लोक और परलोक में प्राप्त होता है। प्राणवध करने वाले पापी जीवों को पापकर्म से सुख तो कुछ भी नहीं मिलता अथवा पाप करते समय बहुत ही अल्प (वह भी कुत्सित) सुख मिलता है, किन्तु दुःख तो बहुत अधिक भोगना पड़ता है। यह प्राणवध महाभय का दाता है। दोष-समूहों से भरपूर है। हिंसा का पाप बड़ा ही दारुण, कठोर एवं दुःखमय है। यह पाप हजारों वर्षों तक भोगने पर छूटता है। बिना भोगे छुटकारा नहीं हो सकता।

ज्ञातकुल नन्दन महान् आत्मा महावीर जिनेश्वर ने प्राणवध का फल इस प्रकार कहा है। यह प्राणवध, प्रचंड, रौद्र, क्षुद्र, अनार्य, निर्घृण, नृशंसता से परिपूर्ण, महाभय का कारण, बीभत्स, त्रास उत्पन्न करने वाला है, अन्याय युक्त है, उद्वेग उत्पन्न करने वाला है। प्राणियों के प्राणों की उपेक्षा करने वाला, अधर्म, स्नेह-रहित एवं करुणा से शून्य है। महामोह एवं भय को बढ़ाने वाला है। यह मृत्यु-भय रूप दीनता उत्पन्न करने वाला है। प्राणवध का पाप, नरकावास की ओर ले जाने वाला अशुभ कर्मों के भंडार रूप है। ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - अठारह पापों में से सबसे पहला पाप-प्राणातिपात-हिंसा नामक प्रथम आस्रव द्वार का उपसंहार करते हुए आगमकार महर्षि बतलाते हैं कि हिंसाजन्य घोर पाप का करने वाला, नरक-तिर्यंच

और कुत्सित मनुष्यत्व में घोरतम दुःखों को भोगता है। पाप का छोटा-सा बीज जब फल रूप में प्रकट होता है, तब कितना भयानक होता है, यह इस अध्ययन में स्पष्ट किया गया है। हिंसा के भयंकर परिणाम का विचार करके सुखार्थीजन, इसके त्यागी बनें और अपनी आत्मा को महान् दुःखों और दुर्दशा से बचावें तथा स्व-पर रक्षक बनें, यही सूत्रकार महर्षि का उपदेश है।

कुमानुषत्व - मनुष्य सम्बन्धी उच्च गति-सुगति एवं शरीर पाकर भी जो विकलांग, अपूर्णांग, नष्टांग, कुरूप, बेडोल, रोगी, सत्वहीन, सामर्थ्यहीन, बुद्धिहीन, अशोभनीय, अदर्शनीय, अश्रवणीय, जाति-कुल से हीन एवं अभावों से पीड़ित दशा कुमानुषत्व है। यह मनुष्य सम्बन्धी दुर्गति है।

अल्पसुख-बहुदुःख - विषय-सुख की प्राप्ति के लिए अथवा क्रोधादि को सफल बनाकर सन्तुष्ट होने रूप अल्प सुख का कुफल हजारों-लाखों गुणा अधिक-बहुत दुःख भोगना पड़ता है।

चंड - प्रचण्ड, क्रोधातुर, उष्णता एवं रक्तिमता से पूर्ण। यम के समान भयानक।

रौद्र - भयंकर, भीषण, क्रूर। दारुण विपाकयुक्त।

क्षुद्र - अधम, नीच, दुष्टजनों द्वारा आचरित।

अनार्य - म्लेच्छजन, पापकृत्य करने वाला, अपवित्र एवं अप्रशस्त आचरण वाला, उत्तम एवं श्रेष्ठ आचार से रहित।

निर्बुण - पाप के प्रति घृणा से रहित-निर्दय।

नुशंस - हिंसकता, क्रूरता, कठोरता एवं घातकता युक्त।

निष्पिपासक - प्राणियों के प्रति स्नेह-मैत्री-भाव से रहित। प्राणियों के दुःख क्लेश एवं संताप की अपेक्षा नहीं रखने वाला। प्राणियों के हित से उदासीन।

अधर्मद्वार नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध

का

प्राणीवध नामक प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण

मूषावाद नामक दूसरा अधर्म द्वार

जंबू! * बिड़यं अलियवयणं लहुसग-लहुचवल-भणियं भयंकरं दुहकरं अयसकरं वेरकरगं अरइ-रइ-रागदोस-मणसंकिलेस-विद्यरणं अलिय-णियडिसाइजोयबहुलं णीयजणणिसेवियं णिस्संसं अप्पच्चयकारगं परम-साहुगरहणिज्जं परपीलाकारगं परमकिण्हलेस्ससहियं दुग्गइविणिवाय-विवड्डुणं भवपुणब्भवकरं चिरपरिचिय-मणुगयं दुरंतं कित्तियं बिड़यं अहम्मदारं ।

शब्दार्थ - जंबू - हे जम्बू!, बिड़यं - दूसरा, अलियवयणं - अलीक-मिथ्या वचन, लहुसगलहुचवल - गुण एवं गौरव से अत्यन्त हीन और अति चपल, भणियं - भाषित, भयंकरं - डरावना, दुहकरं-दुःख उत्पन्न करने वाला, अयसकरं - अपयशकारी - निन्दित, वेरकरगं - वैर-शत्रुता उत्पन्न करने वाला, अरइरइरागदोसमणसंकिलेसविद्यरणं - रति, अरति, राग, द्वेष और मन में क्लेश बढ़ाने-फैलाने वाला, अलीय - अलीक-शुभ फल से रहित-निष्फल, णियडि - सत्य के लिए ढक्कन-दबाने वाला अथवा एक झूठ को दूसरे झूठ से दबाने वाला आच्छादन, साइजोयबहुलं - अविश्वास का बहुत बड़ा स्थान, णीयजणणिसेवियं - नीच जनों द्वारा सेवित, णिस्संसं - निन्दनीय अथवा क्रूर, अप्पच्चयकारगं - अप्रतीति कारक-विश्वास-विनाशक, परमसाहुगरहणिज्जं - उत्तम साधुओं द्वारा निन्दित, परपीलाकारगं-दूसरों के लिए पीड़ा-दुःखकारक, परमकिण्हलेस्ससहियं - उत्कृष्ट कृष्ण-लेश्या युक्त, दुग्गइविणिवायविवड्डुणं - दुर्गतिगमन में वृद्धि करने वाला—बार-बार दुर्गति में ले जाने वाला, भवपुणब्भवकरं - बार-बार पुनर्भव कराने वाला, चिरपरिचयमणुगयं - लम्बे काल से परिचित और लगातार साथ रहने वाला, दुरंतं - जिसका फल बड़ी कठिनाई से पूरा हो या जो परिणाम में दारुण हो, कित्तियं - कहा है, बिड़यं - दूसरा, अहम्मदारं - अधर्म द्वार ।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी जी महाराज श्री जम्बू स्वामी जी से कहते हैं कि हे जम्बू! दूसरा अधर्मद्वार मूषावाद है। जिन जीवों में गुणों की हीनता है, जिनमें गौरवशाली गुण नहीं हैं और जो चंचल हैं, वे मिथ्या-भाषण करते हैं। मूषावाद बड़ा भयानक अधर्म है। दुःखों का सर्जक है। अपयशकारी है। इस पाप से वैर-विरोध बढ़ता है। रति-आसक्ति, अरति-अरुचि, राग-द्वेष और संक्लेश की वृद्धि होती है। मूषावाद का शुभ फल नहीं होता। मूषावाद सत्य को ढकने वाला है। एक झूठ को ढकने के लिए दूसरा झूठ उत्पन्न होता है। असत्यवाद नीच लोगों द्वारा सेवित है। असत्य भाषण करने वाला की प्रतीति नहीं रहती। मूषावाद रूपी अधर्म, उत्तम साधु पुरुषों द्वारा निन्दनीय है। झूठ, दूसरे जीवों के लिए पीड़ाकारी होता है। झूठ के मूल में बहुत काली लेश्या रहती है। झूठ का पाप दुर्गतिगमन में वृद्धि करता

* "इह खलु जंबू" - पाठ भी कुछ प्रतियों में है।

है। भव परम्परा बढ़ाता है। झूठ का पाप, पाप ही से परिचय करवाता हुआ बहुत लम्बे काल तक जीव के साथ लगा रहता है। इसका अन्त होना बड़ा कठिन है। इसका परिणाम दुःखदायी होता है। यह दूसरा अधर्मद्वार कहा गया है।

दिवेचन - 'प्राणातिपात' नामक प्रथम अधर्म द्वार पूर्ण होने के बाद उपरोक्त सूत्र में 'मृषावाद' नामक दूसरे अधर्मद्वार का प्ररूपण हुआ है। जहाँ प्राणवधरूप प्रथम पाप रहता है, वहाँ उसका सम्बन्धी मृषावाद भी रहता है। मृषावाद की उत्पत्ति क्रोध, मान, माया और लोभरूपी कषाय-चतुष्टय से होती है। मृषावाद का पाप दुराशयपूर्वक होता है। इसके प्रभाव से मृषावादी और जिसके लिए झूठ बोला जाये उसे मानसिक क्लेश होता है ❖ असत्य भाषण किसी सत्य को ढकने-छुपाने के लिए होता है।

णियडि - मायाचारपूर्वक किसी को हानि पहुँचाना, गूढ़ मानस वृत्ति, दांभिकपन, बकवृत्ति।

णीयजणणिसेवियं - मृषावाद का सेवन नीच लोग करते हैं। जो सदाचारी उत्तम मनुष्य होते हैं, वे असत्य का आचरण नहीं करते।

अप्पच्चयकारगं - असत्य भाषण करने वाले की प्रतीति नहीं होती, विश्वास उठ जाता है और लोग उसे विश्वासघाती मानते हैं।

मृषावाद के नाम

तस्स य णामाणि गोण्णाणि होति तीसं। तं जहा - १. अलियं २. सडं ३. अणजं ४. मायामोसो ५. असंतगं ६. कूडकवडमवत्थुगं च ७. णिरत्थयमवत्थयं च ८. विद्देसगरहणिज्जं ९. अणुजुगं १०. कक्कणा य ११. वंचणा य १२. मिच्छापच्छा-कडं च १३. साई उ १४. उच्छणं १५. उक्कूलं च १६. अट्टं १७. अब्भक्खाणं च १८. किक्विसं १९. वलयं २०. गहणं च २१. मम्मणं च २२. णूमं णिययी २४. अपच्चओ २५. असंमओ २६. असच्चसंघत्तणं २७. विवक्खो २८. अवहीयं २९. उवहिअसुद्धं ३०. अवलोवोत्ति। अवि य तस्स एयाणि एवमाइयाणि णामधेज्जाणि होति तीसं, साब्जस्स अलियस्स वइजोगस्स अणोगाइं।

शब्दार्थ - तस्स - उसके, णामाणि - नाम, गोण्णाणि - गुणनिष्पन्न, होति तीसं - तीस हैं, तं जहा - वे इस प्रकार हैं -

१. अलियं - अलीक। असत्य-भाषण रूप। शुभ फल से रहित।

❖ 'बो भालते दोषमविद्यमानं, सतां गुणानां ग्रहणे च मूकः ॥

सः पापभाक् स्यात् स विनिन्दकश्च, यशोबधः प्राणवधादगरीवान् ॥ १ ॥ यशस्तिलक चम्पू अर्थात्-जो अविद्यमान दोष कहता है एवं मिथ्या दोषोरोपण करता है, सज्जनों के गुणवर्णन में मूक (गूंगा) रहता है। वह पापी होता है। वह निन्दक कहा जाता है। किसी की कीर्ति का घात करना प्राणवध से भी बढ़कर है।

२. शठ - शठ, छलपूर्वक आचरण किया जाता है, इस कारण शठ है।

३. अणज्जं - अनार्य। आर्यजन असत्य नहीं बोलते। अनार्य लोग असत्य-भाषण करते हैं, अतएव मृषावाद का तीसरा नाम 'अनार्य' है।

४. मायामोसो - मायामृषा। कपट पूर्वक झूठ बोलने के कारण मृषावाद का नाम 'मायामृषा' है।

५. असंतगं - असत्क। जिसका अस्तित्व नहीं अथवा जो जिस रूप में नहीं, उसे उस रूप में बतलाने के कारण असत्क।

६. कूडकवडमवत्थुगं - कूट-कपट-अवस्तुक। झूठ और कपट के साथ असद्भूत वस्तु को सद्भूत बतलाने वाला।

७. गिरत्थयमवत्थयं - निरर्थक एवं अयथार्थ-सत्यार्थ से रहित। जिसमें से सत्य निकल गया है ऐसा।

८. विदेसगरहणिज्जं - विद्वेषगर्हणीय। द्वेषयुक्त होने के कारण निन्दनीय अथवा द्वेष और निन्दा का कारण।

९. अणुज्जुगं - अनृजुक - सरलता से रहित।

१०. कक्कणा - कल्कन-पाप का कारण।

११. वंचणा - वंचना-ठगाई।

१२. मिच्छापच्छाकडं - मिथ्यापश्चात्कृत-ज्ञानीजनों द्वारा तिरस्कृत।

१३. साई - साति-अविश्वास का स्थान।

१४. उच्छण्णं - उच्छन्न-अपने दोष और दूसरों के गुण को ढकने वाला। इस शब्द का दूसरा रूप 'उच्छूतं' भी है जिसका अर्थ-अन्य-अर्थ भाषण या न्यूनाधिक भाषण रूप उत्सूत्रभाषण।

१५. उक्कूलं - उक्कूल। सद्मार्ग के तट-मर्यादा से च्युत करने वाला।

१६. अट्टं - आर्त। स्व-पर को पीड़ित करने वाला अथवा आर्तध्यान का उत्पादक।

१७. अब्भक्खाणं - अभ्याख्यान=झूठा दोषारोपण करने वाला।

१८. किव्विसं - कित्विष=पाप का उत्पादक या पाप से भरा हुआ।

१९. वलयं - वलय=चक्कर। वक्रतायुक्त, कुटिल।

२०. गहणं - गहन। जिसे समझना कठिन, जिसका सही भाव न जाना जा सके।

२१. मम्मणं - मन्मन=अस्पष्ट।

२२. णूमं - नूम=सत्य को छुपाने वाला।

२३. णियथी - निकृति=कपट को छुपाने वाला।

२४. अप्पच्चओ - अप्रत्यय=अप्रतीतिकारक, अविश्वसनीय।

२५. असंमओ - असम्यक्=अयथार्थ।

२६. असच्चसंघत्तणं - असत्यसंघत्व=असत्य परम्परा को बढ़ाने वाला।

२७. विवक्खो - विपक्ष=सत्य का विरोधी-शत्रु।

२८. अवहीय - अपधीक=निन्दित बुद्धि वाला। इस शब्द का दूसरा रूप 'उवहियं'-औपधिक है, जिसका अर्थ-माया का घर। इसका अन्य रूप 'आणाइयं' - आज्ञातिक-जिनाज्ञा का उल्लंघन है।

२९. उवहिअसुद्धं - उपधिअशुद्ध=माया के कारण अशुद्ध अथवा सावद्य होने से अपवित्र।

३०. अवलोवो - अपलोपक=वस्तु के सद्भाव का लोपक।

अवि य - इस मृषावाद के और भी, तस्स - उसके, एयाणि एवमाईणि - ये उपरोक्त और इसी प्रकार के, णामधेज्जाणि - नाम, होति - हैं, तीसं - तीस, सावज्जस्स - सावद्य-पाप के, अलियस्स - मृषा-झूठ के, वड्ढजोगस्स - वचन-योग के, अणेगाइं - अनेक।

मृषावाद के उपरोक्त ३० नाम इसकी भिन्न-भिन्न विशेषताओं को प्रकट करते हैं। सूत्रकार कहते हैं कि मृषावाद के पाप को स्पष्ट करने के लिए इन तीस नामों के अतिरिक्त अन्य अनेक नाम हैं।

मृषावादी

तं च पुण वयंति केइ अलियं पावा असंजया अविरया कवडकुडिल-
कडुयचडुलभावा कुद्धा लुद्धा भया य हस्सट्टिया य सक्खी चोरा चार-भडा खंडरक्खा
जियजूयकरा य गहियगहणा कक्ककुरुगकारगा, कुलिंगी उवहिया वाणियगा य
कूडतुलकूडमाणी कूडकाहावणोवजीविया पडगार-कलाय-कारुइजा वंचणपरा
चारियचाडुयार-णगरगुत्तिय-परिचारगा दुट्टुवाइसूयगअणबलभणिया य
पुव्वकालियवयणदच्छा साहसिया लहुस्सगा असच्चा गारविया असच्चट्टावणाहिचित्ता
उच्चच्छंदा अणिगगाहा अणियत्ता छंदेणमुक्कवाया भवंति * अलियाहिं जे अविरया।

शब्दार्थ - तं - उस, पुण - फिर, केइ - कितनेक, अलियं - मिथ्या वचन, पावा - पापी,
असंजया - असाधु, अविरया - अविरत, कवडकुडिलकडुयचडुलभावा - कपट के कारण कुटिल
कटु एवं चंचल चित्त वाले, कुद्धा - क्रोधी, लुद्धा - लुब्ध-लोभी=गूढ़, भया - स्वयं भयभीत अथवा
भय उत्पन्न करने वाले, हस्सट्टिया - हैसी करने वाले, सक्खी - झूठी साक्षी देने वाले, चोरा - चोर,
चारभडा - गुप्तचर, खंडरक्खा - खण्ड-रक्षक-शुल्कपाल=राजस्व लेने वाले, जियजूयकरा - जुएं में
हारे हुए जुआरी, गहियगहणा - बन्धक रखे हुए आभूषणों को दबाने वाले, कक्ककुरुगकारगा -
कल्कगुरुककारक-मायाचार से पूर्ण भरे हुए, कुलिंगी - कुतीर्थिक, अवहिया - छल करने वाले,
वाणियगा - व्यापारी, कूडतूलकूडमाणी - खोटे नाप-तोल करने वाले, कूडकाहावणोवजीविया -
कूटकार्षापण-नकली सिक्के के द्वारा आजीविका करने वाले, पडगार कलाय कारुइजा - कपड़ा बुनने

* "अलियाहिं जे अविरया"-इतना पाठ पूज्य श्री घासीलालजी म. वाली प्रति में नहीं है, किन्तु टीका आदि में है।

वाले, सोने का काम करने वाले-सुनार, रंगरेज या कारीगर, वंचणपरा - ठगाई करने वाले, चारिय - दलाल, चाटुयार - खुशामदी, णगरगोत्तिय - नगर रक्षक, परियारगा - मैथुन सेवन करने के लिए स्त्रियों को बहकाने वाला, दुद्रुवाइ - दुष्टवाद-खोटा पक्ष लेने वाला, सूयग - चुगली करने वाला, अणबलभणिया - ऋण से दबे हुए ऋणि, पुव्वकालिय-वयणदच्छा - दूसरे के अभिप्राय को जानकर वचन बोलने में निपुण, साहसिया - साहस करने वाले, लहुस्सगा - हल्के, अधम-नीच लोग, असच्चा-दुर्जन, गारविया - घमंडी, असच्चद्वावणाहिचिता - असत्य की स्थापना करने के विचार वाले, उच्चच्छंदा - स्वयं को उत्कृष्ट बताने के इच्छुक, अणिग्गहा - स्वच्छंदी, निरंकुश, अणियत्ता - नियम रहित, छंदेणमुक्कपाया - बिना विचारे इच्छानुसार बोलने वाले, भवंति - होते हैं, अलियाहिं - मृषावाद से, जे - जो, अविरया - निवृत्त नहीं है।

भावार्थ - जो पापी मनुष्य असत्य भाषण करते हैं, वे असंयत (इन्द्रियों पर नियंत्रण रहित) अविरत (पापों में प्रवृत्त) हैं। उनका मन कपट के कारण कुटिल एवं चंचल होता है। क्रोधी, लोभी, विषयों में गृह्य एवं भयभीत व्यक्ति अथवा दूसरों को भयभीत करने वाले झूठ बोलते हैं। कई दूसरों की हैसी करने के लिए झूठी बातें बनाते हैं। कई झूठी साक्षी देकर अपना हित साधते हैं या दूसरों का अहित करते हैं। चोर, गुप्तचर, राजस्व प्राप्त करने वाले, जुआरी दूसरों की धरोहर दबाने वाले मायावी, कुतीर्था, व्यापारी, खोटे नाप-तोला करने वाले, नकली सिक्का चलाने वाले, बुनर, स्वर्णकार, रंगारे, दलाल आदि दूसरों को ठगने के लिए मिथ्या वचन बोलते हैं। खुशामदी (चापलूस) व्यक्ति किसी की प्रशंसा करने के लिए झूठ बोलते हैं। नगर-रक्षक भी अपने प्रयोजन से असत्य भाषण करते हैं। व्यभिचारी अथवा व्यभिचार से आजीविका करने वाले भी मृषावादी होते हैं। मिथ्यापक्ष के पक्षकार, चुगलखोर, ऋणी, दूसरों का अभिप्राय जानने अथवा दूसरों का अभिप्राय जानकर वचन बोलने में प्रवीण मनुष्य, साहसपूर्ण कार्य करने वाले, नीच, दुर्जन, अभिमानी, झूठ को सत्य के रूप में बताने वाले, अपने-आपको सर्वोत्कृष्ट बताने की कामना वाले, स्वच्छन्दाचारी, नियमों की उपेक्षा करने वाले, बिना विचारे बोलने वाले एवं जूठ से अविरत जीव मृषावादी होते हैं।

विवेचन - इस सूत्र में मृषावादी जीवों के मृषावाद का कारण बतलाया गया है। मृषावादी असंयत अविरत ही होते हैं। जो संयमी एवं पापों से सम्यक् प्रकार से विरत हैं, उनके मिथ्या-भाषण करने का कारण नहीं रहता। मृषावादी के मन में क्रोधादि कषाय एवं हास्यादि मो-कषाय का तीव्र उदय रहता है। इसी से प्रेरित होकर मिथ्या-भाषण करते हैं।

कुतीर्था के मिथ्यात्व का उदय रहता है। उसकी दृष्टि में विकार होता है। मिथ्यात्व के साथ मृषावाद एवं अविरति का सम्बन्ध होता ही है। जो साधु हैं और मृषावाद से विरत हो चुके हैं, वे ही इस पाप से बचते हैं।

मृषावादी-नास्तिकवादी का मत

अवरे णत्थिगवाइणो वामलोयवाइ भणंति-णत्थिजीवो, ण जाइ इह परे वा लोए, ण य किंचिवि फुसइ पुण्णपावं, णत्थि फलं सुकयदुक्कयाणं, पंचमहाभूइयं सरीरं भासंति, हे वायजोगजुत्तं। पंच य खंधे भणंति केइ, मणं य मणजीविया भणंति, वाउजीवोत्ति एवमाहंसु सरीरं साइयं सणिधणं, इह भवे एगभवे तस्स विप्पणासम्मि सव्वणासोत्ति, एवं जंपंति मुसावाइ। तम्हा दाण-वय-पोसहाणं तव-संजम-बंधे-कल्लाणमाइयाणं णत्थिफलं, ण वि य पाणवहे अलियवयणं ण चेव चोरिक्ककरणं परदारसेवणं वा सपरिग्गह-पावकम्मकरणं वि णत्थि किंचि ण णेरइय-तिरिय-मणुयाणजोणी, ण देवलोगो वा अत्थि ण य अत्थि सिद्धिगमणं, अम्पापियरो णत्थि ण वि अत्थि पुरिसकारो, पच्चक्खाणमवि णत्थि, ण वि अत्थि कालमच्चू य, अरिहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा णत्थि, णेवत्थि केइ रिसओ धम्माधम्मफलं च णवि अत्थि किंचि बहुयं च श्रोवणं वा, तम्हा एवं विजाणिरुण जहा सुबहु इंदियाणुकूलेसु सव्वविसएसु वट्टह णत्थि काइ किरिया वा अकिरिया वा एवं भवंति णत्थिगवाइणो वामलोयवाइ।

शब्दार्थ - अवरे - दूसरे, णत्थिगवाइणो - नास्तिकवादी, वामलोयवाइ - वामलोकवादी-वाममार्गी-भौतिकवादी, भणंति - कहते हैं कि, णत्थि - नहीं, जीवी - जीव, ण जाइ - नहीं जाता, इह परे - इस-लोक पर-लोक, ण य - नहीं, किंचिवि - कुछ भी, फुसइ - स्पर्श करता है, पुण्णपावं - पुण्य और पाप, फलं - फल, सुकयदुक्कयाणं - सुकृत दुष्कृत का, पंचमहाभूइयं - पांच महाभूत का, सरीरं - शरीर है, भासंति - कहते हैं, वायजोगजुत्तं - वायु के योग से शरीर युक्त है, पंच - पांच, खंधे-स्कन्ध, केइ - कोई, मण - मन ही, मणजीविया - मन को ही जीव मानने वाले, वाउजीवोत्ति - वायु जीव है, एवमाहंसु - इस प्रकार कहते हैं, सरीरं - शरीर, साइयं - सादि-आदियुक्त-नया उत्पन्न होने वाला, सणिधणं - निधन-विनाश होने वाला, इहभवे - इस भव, एगभवे - एक ही भव, तस्स - उसके, विप्पणासम्मि - विनाश होने पर, सव्वणासोत्ति - सर्वनाश हो जाता है, जंपंति - कहते हैं, मुसावाइ - मृषावादी, तम्हा - इसलिए, दाणवय-पोसहाणं - दान, व्रत और पौषध, तव-संजम-बंधे-कल्लाणमाइयाणं - तप, संयम, ब्रह्मचर्यादि कल्याणकारी अनुष्ठानों का, णत्थिफलं - फल नहीं होता, पाणवहे - प्राणवध, अलियवयणं - मृषावाद, चोरिक्ककरणं - चोरी करना, परदारसेवणं - पर-स्त्री गमन, सपरिग्गह - परिग्रह रखना, पावकम्मकरणं - पापकर्म करने का, णेरइय - नैरयिक, तिरिय - तिर्यच, मणुयाणजोणी - मनुष्यों की योनि, देवलोगो - देवलोक, अत्थि - अस्तित्व, णत्थि-

नहीं है, सिद्धिगमणं - मुक्ति गमन-सिद्धिगति, अम्मापियरो - माता-पिता, पुरिसकारो - पुरुषार्थ, पच्चक्खाणमधि - प्रत्याख्यान भी, कालमच्चू - काल से मृत्यु, अरिहंता - अरिहंत, चक्कवट्टी - चक्रवर्ती, बलदेवा - बलदेव, वासुदेवा - वासुदेव, णेवत्थि - अस्तित्व नहीं, रिसओ - ऋषि का धम्माधम्म फलं - धर्म और अधर्म का फल, बहुयं - बहुत, थोवां - थोड़ा, तम्हा - इसलिए, विजाणिऊण - जान कर, इंदियाणुकूलेसु - इन्द्रियों के अनुकूल, सव्वविसएसु - सभी विषयों में, वड्डह - प्रवृत्ति करनी चाहिए, णत्थिकाइ - कोई नहीं, किरिया - क्रिया, अकिरिया - अक्रिया।

भावार्थ - अन्य साममार्गी (लोकायतिक मत वाले) नास्तिकवादी कहते हैं कि-जीव नहीं है और न जीव इस लोक या परलोक में जाता है। जीव, पुण्य और पाप का स्पर्श भी नहीं करता। शुभ करणी का शुभफल भी नहीं है और पापकृत्य का कटुफल भी नहीं है। यह शरीर पांच महाभूतों से बना हुआ है और वायु के योग से क्रियाशील है।

कई पांच स्कन्ध बतलाते हैं और मन को ही जीव कहते हैं। कोई कहते हैं-वायु ही जीव है। शरीर उत्पत्तिशील और विनष्ट होने वाला है। भव भी यह एक ही है। इस शरीर के नष्ट होने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है। वे मृषावादी लोग कहते हैं कि-जब कुछ भी नहीं है, तो दान, व्रत, पौषध, तप, संयम, ब्रह्मचर्य आदि कल्याणकारी अनुष्ठानों का कुछ भी फल नहीं होता। प्राणवध, मृषावाद, चोरी, पर-स्त्री गमन और परिग्रह रखना आदि पाप का कुछ भी फल नहीं होता। नरक, तिर्यंच और मनुष्य-यौनि प्राप्त करना भी कर्म-फल नहीं है। न देवलोक है, न सिद्धगति है। माता-पिता भी नहीं हैं। पुरुषार्थ और प्रत्याख्यान भी नहीं है। काल से मृत्यु होना भी असत्य है। अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और ऋषि भी नहीं हैं। धर्म और अधर्म का फल न थोड़ा है और न बहुत। किंचित्मात्र भी नहीं है। इस प्रकार जानकर इन्द्रियों के अनुकूल सभी विषयों में अपनी इच्छा के अनुसार प्रवृत्ति करनी चाहिए। इस प्रकार वामलोकवादी नास्तिक लोग कहते हैं।

विवेचन - पूर्व सूत्र में विषय और कषाय के वश होकर असत्य बोलने वालों का परिचय दिया गया है। वे जीव अनन्तानुबन्धी आदि कषाय के वशीभूत होकर झूठ बोलते हैं। अब सूत्रकार मिथ्यात्व-मोहनीय के उदय से मृषावाद बोलने वाले का वर्णन करते हैं। कुतीर्थियों में प्रथम स्थान नास्तिकवादी का है। नास्तिक मत्तावलम्बी तो जीव को ही नहीं मानता। वह कहता है- 'इस दृश्यमान शरीर से भिन्न "जीव" या "आत्मा" नाम की कोई अदृश्य वस्तु ही नहीं है और न इसे सिद्ध करने वाला कोई आधार-प्रमाण ही है।' नास्तिकवादी केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं। परन्तु आत्मा अरूपी है, इसलिए प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती।

जब वे जीव ही नहीं मानते, तो लोक-परलोक क्यों मानने लगे? नास्तिकवादी ही जीव को इस लोक में आने वाला और परलोक में जाने वाला मानते हैं। जीव की मान्यता के साथ ही लोक-परलोक की संगति हो सकती है। अतएव उनके मत में जीव ही नहीं और जीव के लिए यह लोक और परलोक

भी नहीं। इसी प्रकार पुण्य और पाप भी नहीं मानते। पुण्य और पाप की मान्यता भी जीव के साथ ही सम्बन्ध रखती है। जो पाप और पुण्य मानते हैं, वे जीव को और उसके परलोक को भी मानते हैं और पाप-पुण्य के फलस्वरूप नरक और देवलोक भी मानते हैं। जो जीव का ही अस्तित्व नहीं मानते, उनको पाप-पुण्य और उसका फल मानने की आवश्यकता ही नहीं है।

इसी प्रकार सुकृत-शुभ करणी (उत्तम आचार) और दुष्कृत - पापकृत्य (दुराचार) का फल भी वे नहीं मानते। इस मान्यता का मूल स्वामी-जीव ही नहीं, उसका अमरत्व-शाश्वतपन ही नहीं और पुण्य-पाप ही नहीं, तो भले-बुरे कर्मों का फल और उससे प्राप्त स्वर्ग-नरक का अस्तित्व भी नहीं। मूल नाश के बाद शेष के लिए प्रश्न ही नहीं उठता।

उन वामलोकवादी-शून्यवादी-लोकायत मतवालों का कहना है कि यह शरीर पांच महाभूत से बना है। पांच महाभूत ये हैं - पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। इन पांच महाभूतों से बने हुए शरीर में हड्डी आदि कठिन भाग पृथ्वी का अंश है, रक्तादि अप-भूत का अंश है, उष्णता अग्नि का, श्वासोच्छ्वासादि चलन अंश वायु का और छिद्र रूप आकाश तत्त्व है। इन पांच भूतों से ही शरीर बना है और यह सारा क्रिया-कलाप इन्हीं से होता है। इन से भिन्न कुछ भी नहीं है। इन पांच भूतों का संयोग भी स्वभाव से ही होता है और वियोग भी स्वभाव से ही होता है। स्वभाव से सिवाय अन्य कोई कारण नहीं है।

बौद्ध मतानुयायी कहते हैं कि - पांच स्कन्ध हैं-१. रूप २. वेदना ३. विज्ञान ४. संज्ञा और ५. संस्कार। पृथिव्यादि एवं रूपादि-रूप-स्कन्ध हैं। सुख-दुःख उभय-वेदना-स्कन्ध हैं। रूपादि का ज्ञान-विज्ञान-स्कन्ध है। यह अमुक है, इत्यादि नाम, रूप-संज्ञा-स्कन्ध है। पुण्य-अपुण्यादि धर्मसमुदाय-संस्कार-स्कन्ध है। बस ये पांच स्कन्ध ही सब कुछ हैं। इनसे भिन्न जीव या आत्मा नहीं है। बौद्धों में पांच स्कन्धों के अतिरिक्त मन को मानने वाला पक्ष भी है। कोई मतवादी मन को ही आत्मा मानते हैं। वे 'मनोजीविक' हैं।

कोई श्वासोच्छ्वास रूप वायु को ही जीव मानते हैं। ये कहते हैं कि प्राणवायु से ही शरीर की प्रवृत्ति होती है। यही जीवन है। वायु के निकल जाने पर मृत्यु हो जाती है। यह शरीर सादि है और विनाशशील है। इसकी उत्पत्ति और विनाश होता है। यह उत्पत्ति और विनाशरूप शरीर ही भव है। बस यह एक ही भव है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भव-परभव नहीं है। इस भव के नष्ट होने के साथ सब कुछ नष्ट हो जाता है।

असद्भाववादी का मत

इमं वि बिईयं कुदंसणं असब्भाववाइणो पण्णवेति मूढा-संभूओ अंडगाओ लो गो सयंभूणा सयं य णिम्मिओ एवं एयं अलियं पयंपंति।

शब्दार्थ - इमं वि - इस, बिईयं - दूसरे, कुदंसणं - कुदर्शन का, असब्भाव-वाइणो -

 असद्भाववादी, पण्णवेति - कहते हैं, मूढा - मूर्ख, संभूओ - उत्पन्न हुआ, अंडगाओ - अंडे से, लोको-
 लोक, स्वयंभूणा - स्वयंभू ने, सयं - खुद ने, णिम्मिओ - बनाया, एवं - इस प्रकार, एयं - यह भी,
 अलियं - मिथ्या, पर्यंपति - कहते हैं।

भावार्थ - दूसरे कुदर्शनी असद्भाववादी हैं। वे मूढ यों कहते हैं कि - यह लोक अंडे से उत्पन्न हुआ है। स्वयंभू ने खुद ने इस लोक का निर्माण किया है, इस प्रकार कहने वाले भी मिथ्यावादी हैं।

विवेचन - वामलोकवादी-लोकायत के बाद दूसरे कुदर्शनी असद्भाववादी का उल्लेख किया है। असद्भाववादी का मत है कि पहले कुछ भी नहीं था। पृथ्वी आदि महाभूत भी पहले नहीं थे। जैसे - "तैत्तिरीय उपनिषद्" द्वितीयवल्ली सप्तम अनुवादक के प्रारम्भ में ही कहा है - 'असद्भा इदमग्र आसीत्' - यह जगत् पहले असद् रूप था।

उपरोक्त असद्भाववादी के सिवाय अन्य कहते हैं कि -

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणं। अप्रतर्क्यमधिज्ञेयं, प्रसुप्तप्रिव सर्वतः ॥ १ ॥
 तस्मिन्नेकार्णवीभूते, नष्टस्थावरजंगमे। नष्टामरने चैव, ग्रनष्टे राक्षसोरगे ॥ २ ॥
 केवलं गच्छरीभूते, महाभूतविवर्जिते। अचिन्त्यात्मा विभूस्तत्र, शयानस्तप्यते तपः ॥ ३ ॥
 तत्र तस्य शयानस्य, नाभेः पद्मं विनिर्गतं। तरुणार्कबिम्बनिभं, ह्यं कांचनकर्णिकम् ॥ ४ ॥
 तस्मिन् पद्मे भगवान्, दण्डयज्ञोपवीतसयुक्तः। ब्रह्मा तत्रोत्पन्नस्तेन जगन्मातरः सृष्टः ॥ ५ ॥
 अदिति सुरसंधानां, दितिरसुराणां मनुर्मनुष्याणां। विनता विहंगमानां, माता विश्वप्रकाराणाम् ॥ ६ ॥
 कद्रुः सरीश्रुपानां, सुलसा माता च नागजातिनां। सुरभिश्चतुष्पदानामिला पुनः सर्वबीजानाम् ॥ ७ ॥

- यह जगत् केवल अन्धकार से आच्छादित अर्णव रूप था। इसमें प्रज्ञा, तर्क, लक्षण, योग कुछ भी नहीं था। सर्वत्र सुप्तावस्था के समान सुनसान था। स्थावर, जंगम, देव, मनुष्य, नाग आदि सभी नष्ट थे, यह केवल छिद्ररूप था। इसमें महाभूत भी नहीं थे। इसमें अचिन्त्यात्मा विभु, शैया में रहकर तप करते थे। उनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ, वह मध्याह्न के सूर्य-बिम्ब के समान सोने की कर्णिकामय था। उस कमल में से दण्ड और यज्ञोपवित युक्त जगत्कर्ता भगवान् ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उनके द्वारा जगत् की ये माताएं उत्पन्न हुईं-अदिति माता से सुर, दिति से असुर, मनु से मनुष्य, विनता से पक्षी, कद्रु से सरीसृप, सुलसा से नाग, सुरभि से चतुष्पद, पृथ्वी से सभी बीजों की उत्पत्ति हुई।

अन्यत्र कहा है कि पहले केवल पानी ही पानी था। उसमें एक अंडा था। उसी अण्डे से स्वयंभू ने इस लोक को बनाया।

'स्वयंभू' का अर्थ=जो अपने-आप हो। किसी अन्य शक्ति के बिना स्वयं अपने-आप ही बना हो। स्वयंभू शब्द से ब्रह्मा, विष्णु और महेश का भी ग्रहण हुआ है। वैष्णव लोग, स्वयंभू का अर्थ 'विष्णु', शैव लोग 'शिव' और सृष्टिवादी 'ब्रह्मा' ग्रहण करते हैं। किन्तु विशेष प्रसिद्धि ब्रह्मा की ही है। अमरकोष में इस प्रकार का अर्थ हुआ है -

“ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः, परमेष्ठी पितामहः।

हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयंभूश्चतुराननः ॥” (१-१६)

अंड सृष्टि का स्वरूप “छान्दोग्योपनिषद्” (३-१९) में इस प्रकार बताया है-

“असदेवेदमग्र आसीत्” - सृष्टि के पूर्व प्रलयकाल में यह जगत् असत्-अव्यक्त नाम रूप था।

“तत्सदासीत्” - वह असत् जगत् सत्-नाम रूप कार्य के अभिमुख हुआ।

“तत्सम भवत्” - अंकुरभूत बीज के समान क्रम से कुछ स्थूल बना।

“तदाण्डं निरवर्तत” - बाद में वह अंडे के रूप में बना।

“तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत” - वह एक वर्ष पर्यन्त अंड रूप ही रहा।

“तन्निरभिद्यत्” - उसके बाद वह अण्डा फूट गया।

“ते आण्डकपाले रजतं च सुवर्णञ्चा भवताम्” - अण्डे का एक कपाल चांदी का और एक सोने का बना।

“तद्यद् रजतं सेयं पृथ्वी” - चांदी का कपाल पृथ्वी बनी।

“यत्सुवर्णं सा द्यौः” - सोने का कपाल ऊर्ध्वलोक बना।

“यज्जरायु ते पर्वता” - जो गर्भ का वेष्टन था उसके पर्वत बने।

“यदुल्बं स मेघो नीहारः” - जो गर्भ का सूक्ष्म परिवेष्टन था, वह मेघ और तुषार बना।

“या धमनयः ता नद्यः” - जो धमनियाँ थीं, वे नदियाँ बन गईं।

“यद्दास्तेयमुदकम् स समुद्रः” - जो मूत्राशय का पानी था, वह समुद्र बना।

“अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यः” - फिर अंडे में से जो गर्भरूप में उत्पन्न हुआ वह सूर्य हुआ।

“तं जायमानंघोषा उलूलवोऽनूद निष्ठन्तसर्वाणि च भूतानि” - सूर्य के जन्म के समय महा उद्घोष हुए और सभी प्राणी उत्पन्न हुए।

“सर्वे च कामारतस्त्रात्तस्योदयं” - उन प्राणियों को विभिन्न इच्छाएँ उत्पन्न होने लगीं।

अंडे से उत्पन्न सृष्टि का उपरोक्त वर्णन “छान्दोग्योपनिषद्” अध्ययन ३ खंड १९ में लिखा है। यह अंडसृष्टि स्वयंभूकृत है, ऐसा ‘मनुस्मृति’ में लिखा है। यथा -

“तदण्डमभवद्भूमं, सहस्रांशुसमप्रभम्।

तस्मिंजज्ञे स्वयं ब्रह्मा, सर्वलोकपितामहः ॥” (१-९)

- स्वयंभू के संकल्प से वह बीज सूर्य के समान अतीव उज्वल प्रभा वाला सोने का अंडा बना। तदनन्तर उस अंडे में भगवान् स्वयंभू योग-शक्ति से पूर्वधृत प्रकृतिमय सूक्ष्म शरीर छोड़कर सर्वलोक पितामह ब्रह्मा के रूप में उत्पन्न हुआ।

“तस्मिन्नण्डे स भगवानुधित्वा परिवत्सरम्।

स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥”

वह भगवान् अंडे में ब्रह्मा के एक वर्ष तक निरन्तर रहता रहा और अन्त में उसने अपने ही संकल्प रूप ध्यान से उस अंडे के दो टुकड़े किये।

“ताभ्यां स सकलाभ्यां च, दिवं भूमिं च निर्ममे।

मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावर्षा स्थानां च शाश्वतम् ॥” (मनु० १-१३)

- तत्पश्चात् भगवान् ने उस दो टुकड़ों में से ऊपर के टुकड़े से स्वर्ग और नीचे के टुकड़े से भूमि बनाई। मध्य भाग से आकाश और आठ दिशाएं तथा पानी का शाश्वत स्थान-समुद्र बनाया।

इसके बाद तत्त्वसृष्टि का वर्णन किया गया है।

ब्रह्मा ने स्वयंभू परमात्मा में से सत्-असत् मन का सृजन किया। मन से अहंकार.....ब्रह्मा ने अपने शरीर के दो टुकड़े किये। एक का पुरुष और दूसरे आधे टुकड़े की स्त्री बनाई और स्त्री में विराट पुरुष का निर्माण किया। (१-३२)

सूत्रकृतांग श्रु० १ अ० १ उ० गाथा ७ में भी-“सयंभुणा कडे लोए” और गाथा ८ में - “एगे आह अंडकडे जगे” से कुदर्शनी का उल्लेख किया है। वह उपरोक्त मान्यता का निर्देश है। गाथा के उत्तरार्द्ध में कहा है कि - ‘असो तत्तमकासी य अयाणंतां मुसं वदे’ - वे तत्त्व को नहीं समझते हैं और अज्ञानयुक्त ही मिथ्या भाषण करते हैं।

सर्वप्रथम यह सिद्धान्त ही असत्य है कि असत् में से सत् उत्पन्न होता है। असत् में से सत् की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। असत् अपने-आप में सत् का कारण नहीं बन सकता। यदि मनुष्य पशु-पक्षी आदि अपने माता-पिता अथवा उत्पत्ति स्थान से उत्पन्न नहीं होकर आकाश से टपक पड़ते हों, तो असत् अथवा असद्भाव में से सत् या सद्भाव उत्पन्न हो सकता है। किन्तु यह बात ही असत्य है। असद्भाववादी किसी न किसी वस्तु का सद्भाव तो मानते ही हैं। कोई अन्धकार, गच्छर-छिद्र=आकाश और उसमें विभु को तप करते हुए मानते हैं। कोई पानी और अंडा मानते हैं। इस प्रकार सद्भाव मानकर भी असद्भाव-असत् बतलाना-वदतोव्याघात है-अपनी ही बात से आप असत्यवादी सिद्ध होना है।

अन्धकार और गच्छर था, तो आकाश और पृथ्वी भी थे ही। बिना आकाश और पृथ्वी के न अंधकार का सद्भाव हो सकता है, न गच्छर ही। पानी और अण्डा भी पृथ्वी पर ही रह सकते हैं। विभु भी बिना पृथ्वी और आकाश के कहां रह सकता है? विभु तप करता है, तो किसी की आराधना करता है। उसके आराध्य का अस्तित्व भी होना ही चाहिए। शरीर वाले विभु के माता-पिता भी होना चाहिए। बिना माता-पिता के विभु की उत्पत्ति कैसे हुई और बिना शरीर के तप भी कैसे हो सकता है? वह विभु सकर्मक ही हो सकता है। अकर्मक के न तो शरीर होता है और न तप की आवश्यकता होती है। अतः उपरोक्त मान्यता असत्य है।

लोक शाश्वत है। अनादि है। इसका अभाव कभी नहीं हुआ। अतएव संसार को असद्भाव कहना अथवा अण्डे या स्वयंभू द्वारा निर्मित कहना-असत्य भाषण है।

प्रजापति का सृष्टि सर्जन

पथावङ्गणा इस्सरेण य कयं ति केइ, एवं विण्हुमयं कसिणमेव य जगं ति केइ, एवमेगे वयंति मोसं एगे आया अकारओ वेदओ य सुकयस्स दुक्कयस्स य करणाणि कारणाणि सब्बहा सब्बहिं च णिच्चो य णिक्किओ णिग्गुणो य अणुवलेवओ ति विय एवमाहंसु असब्भावं ।

शब्दार्थ - पथावङ्गणा - प्रजापति-ब्रह्मा ने, य - और, इस्सरेण - ईश्वर ने, कयंति - किया-लोक बनाया, केइ - कोई, एवं - इसी प्रकार, विण्हुमयं - विष्णुमय, कसिणमेव - समस्त, जगं - संसार, एवमेगे - इसी प्रकार कोई, वयंति - कहते हैं, मोसं - मृषा, एगे - एक, आया - आत्मा, अकारओ - अक्रिय, वेदओ - वेदता-फल भोगता, सुकयस्स - सुकृत, दुक्कयस्स - दुष्कृत, करणाणि - इन्द्रियाँ, कारणाणि - कारण, सब्बहा - सर्वथा, सब्बहिं - सभी काल में, णिच्चो - नित्य, णिक्किओ - निष्क्रिय, णिग्गुणो - निर्गुण, अणुवलेवओ - निर्लेप, एवमाहंसु - इस प्रकार कहते हैं, असब्भावं - असदभाव ।

भावार्थ - कोई कहते हैं कि प्रजापति (ब्रह्मा) ने यह लोक बनाया। कोई कहते हैं कि ईश्वर ने लोक का निर्माण किया। कोई कहते हैं-यह सारा जगत् विष्णुमय है। कोई कहते हैं कि आत्मा एक ही है। वह अक्रिय है और सुकृत-दुष्कृत का फल भोगता है। इन्द्रियाँ पुण्य-पाप की कारण हैं। आत्मा सभी काल में सर्वथा नित्य, निष्क्रिय, निर्गुण और निर्लेप है। इस प्रकार असदभाववादी कहते हैं।

विवेचन - अंड और स्वयंभू सृष्टि के अतिरिक्त कोई मत, प्रजापति द्वारा सृष्टि-निर्माण होना बतलाते हैं। इनमें भी मत-भिन्नता है। जैसे -

'कृष्ण-यजुर्वेद तैत्तिरेय ब्राह्मण' में प्रजापति के सृष्टि-निर्माण का क्रम इस प्रकार बतलाया है-

“आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् । तेन प्रजापतिरभ्रम्यत् । कथमिदं स्यादिति । सो पश्यत्पुष्करपर्णं तिष्ठत् । सोऽमन्यत् । अस्तिवैतत् । यस्मिन्निदमधितिष्ठतीति । स वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत् । स पृथिवी मध आच्छत् । तस्या उपहत्योदमज्जत् । तत्पुष्करपर्णेऽप्रथयत् । यदप्रथयत् । तत्पृथिवी पृथिवित्वम् ।” (१-१-३-७)

अर्थ - सृष्टि के पूर्व यह जगत् जलमय था। इसलिए प्रजापति ने तप किया और विचार किया कि यह जगत् किस प्रकार बने। इतने में प्रजापति को एक कमल-पत्र दिखाई दिया। उसे देखकर उन्होंने तर्क किया कि इसके नीचे भी कुछ होना चाहिए। फिर प्रजापति ने वराह (सूर) का रूप धारण किया और पानी में डुबकी लगाई। ठेठ नीचे भूमि तक पहुँचकर और दाढ़ से कुछ गीली मिट्टी लेकर ऊपर आया। वह मिट्टी कमल-पत्र पर फैलाई। वह मिट्टी पृथ्वी बन गई। यही पृथ्वी का पृथ्वीपन है।

इसके बाद पर्वत नगर आदि बनाने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त इसी 'कृष्ण यजुर्वेद तैतरेय ब्राह्मण' में दूसरा क्रम इस प्रकार बतलाया है-

“इदं वा अग्ने नैव किञ्चनासीत्। न द्यौरासीत्। न पृथिवी। नान्तरिक्षम्। तदस देव सन् मनोऽकु रुतस्यामिति। तदतप्यत। तस्मात्तेपानाद्धूमोऽजायत। तद्भूयोऽतप्यत। तस्मात्तेपानादग्निरजायत। तद्भूयोऽतप्यत। तस्मात्ते पानाज्योति रजायत। तद्भूयोऽतप्यत तस्मात्तेपानादर्धिरजायत.....। (२-२-९)

अर्थ - सृष्टि के पूर्व यहाँ कुछ भी नहीं था, न तो स्वर्ग था, न पृथ्वी और न अन्तरिक्ष ही था (असत् ही असत् था)। उस असत् को सत् रूप बनने की इच्छा हुई और उसने तप किया। उस तप करने वाले से धूम उत्पन्न हुआ। फिर तप किया और अग्नि उत्पन्न हुई। फिर तप किया तो ज्योति उत्पन्न हुई। पुनः तप किया तो ज्वाला उत्पन्न हुई। पुनः तप करने से ज्वाला का प्रकाश फैला।

इस प्रकार तप करते-करते प्रकाश से बड़ी ज्वाला, फिर वह धुआँ बादल के समान घनरूप बना, जो परमात्मा का वस्तिस्थान (मूत्राशय) बना। उसका भेदन किया गया, तो वह समुद्र बन गया। समुद्र, मूत्राशय से बना, इसलिए उसका पानी कोई नहीं पीता।

एक ही शास्त्र में ये दो भिन्न मत व्यक्त हुए। प्रथम मत कहता है कि सृष्टि के पूर्व जल ही जल था और प्रजापति को कमल का पत्ता दिखाई दिया, फिर प्रजापति ने सूअर का रूप बनाकर जल में डूबी हुई पृथ्वी की मिट्टी निकालकर कमल-पत्र पर बिछा दी और वह पृथ्वी बन गई। दूसरा मत कहता है कि - नहीं, जल नहीं था, मात्र अज्ञत् ही था। असत् ने तप करके धूम अग्नि आदि उत्पन्न किया। पानी तो प्रजापति के मूत्र रूप में बाद में उत्पन्न हुआ। अब तीसरी मजेदार कल्पना देखिये -

“तद्वा इदमपः सलिलमासीत्। सो रोदित्प्रजापतिः। स कस्माअज्ञि....। २-२-९)

अर्थ - अथवा सृष्टि के पूर्व यह जगत् पानी रूप था। यह देखकर प्रजापति रोने लगा। रोने का कारण यह था कि इस पानी से मैं सृष्टि किस प्रकार उत्पन्न करूँगा ?

प्रजापति के दुःखपूर्ण रुदन से उसकी आँखों से आँसू गिरे। वे आँसू पानी पर जम गए और उससे पृथ्वी बन गई।

उपरोक्त मत के अतिरिक्त उपरोक्त शास्त्र में (७-१-५) एक यह मत भी है कि -

“आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्। तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भुत्वाऽचरत्.....।

अर्थात् - पहले पानी ही था। प्रजापति वायुरूप से उस पानी पर फिरने लगा। उसने पानी के नीचे पृथ्वी देखी और वराह का रूप बनाकर पानी में से पृथ्वी निकाल लाया। उसके बाद वराह रूप छोड़कर प्रजापति विश्वकर्मा बना।

इसके सिवाय उपरोक्त सूत्र के ५-७-५ में-पानी में प्रजापति के 'अहुति' देखने का उल्लेख है।

'कृष्ण यजुर्वेद' के अतिरिक्त 'शुक्ल यजुर्वेद माध्यंदिनी संहिता' में कुछ अन्य मत ही व्यक्त

हुआ है। उसमें (१४-३०-२८) लिखा है कि प्रजापति ने प्राणाधिष्ठायक देवों के साथ स्तुति करके प्रजा उत्पन्न की। उसने पहले वाणी के साथ स्तुति की, जिसमें प्रजापति के गर्भ रह गया और प्रजा उत्पन्न हुई।

“बृहदारण्यक’ उपनिषद में तो प्रजापति की सृष्टि का घृणित रूप दिखाया गया है। यथा -

“स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छत्। स हैता वानास यथा स्त्री पुमांसी संपरिष्वक्ती स इममेवात्मानं द्रुधाऽपायत्ततः पतिश्य पत्नी चा भवतां.....मनुष्या अजायन्त।”

(१-४-३)

अर्थ - एकाकी प्रजापति को चैन नहीं पड़ा। वह दूसरे की इच्छा करने लगा। वह आलिंगित स्त्री-पुरुष युगल के समान बड़ा हो गया। बाद में प्रजापति ने अपने दो भाग किये। एक भाग पति और दूसरा भाग पत्नी रूप हुआ। पुरुष भाग ने स्त्री-भाग के साथ क्रीड़ा की, जिससे मनुष्य उत्पन्न हुए।

“साहेयमीक्षांचक्रे कथं नु मात्मनः एव जनयित्वा संभवति हंत तिरोऽसानीति सा गौरभवदृषभ इतरस्तां समेवाभवत् ततो गावोऽजायन्त। वडवेतराभवदश्ववृष इतरः। गर्दभीतरा गर्दभइतरस्तां समेवाभवत्तत एकशफमजायत.....यदिदं किंच मिथुन मापीपिस्त्रिकाभ्यस्तत्सर्वं मसृजत्।”

(१-४-४)

अर्थ - स्त्री भाग का नाम शतरूपा रखा गया। उसने विचार किया - “मैं प्रजापति की पुत्री हूँ। मुझे उसने उत्पन्न किया है। पिता के साथ पुत्री का समागम स्मृति से निषिद्ध है। यह क्या अकृत्य हो गया? अब मैं कहाँ जाकर छिपूँ?” इस प्रकार सोचकर वह गाय बन गई। तब प्रजापति ने बैल बनकर उसके साथ संभोग किया, जिससे गायें उत्पन्न हुईं। शतरूपा घोड़ी बनी, तो प्रजापति ने घोड़ा बनकर समागम किया और अश्वसृष्टि हुई। इसी प्रकार शतरूपा गधी, बकरी, भेड़ आदि बनी, तो प्रजापति गधा, बकरा, भेड़ा आदि बनकर संभोग करता रहा और वैसी प्रजा उत्पन्न होती रही। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी के युगल बनते-बनते चींटियों तक की उत्पत्ति हो गई।

कैसी घृणित कल्पना की गई है? इसके सिवाय ‘एतरेय ब्राह्मण’ (३-३-९) की कल्पना है कि-

“प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत्। तमृश्यो भूत्वा रोहितं भूतासभ्यैत्तं देवा अपश्यन्नकृतं वै प्रजापतिः करोतीति ते तमैच्छन्त्य एन मारिष्यत्येतमन्योऽन्यस्मिन्नाविन्दं.....।

अर्थ - प्रजापति ने अपनी पुत्री को पत्नी बनाने का विचार किया। उसने मृग बनकर लाल-वर्ण वाली मृगीरूप पुत्री के साथ संभोग किया। यह देवों ने देखा। देवों ने सोचा-प्रजापति अकृत्य कर रहा है। इसलिए इसे मार डालना चाहिए।

देवगण प्रजापति को मारने योग्य व्यक्ति को ढूँढने लगे। उनमें कोई भी ऐसा समर्थ नहीं था। इसलिए जो देव उग्र एवं घोर शरीर वाले थे, वे सभी मिलकर एक महान् शरीरधारी देव बने। उसका नाम ‘रुद्र’ रखा गया। वह शरीर भूतों से निष्पन्न हुआ, इसलिए उसका दूसरा नाम - ‘भूतवत्’ या

‘भूतपति’ भी प्रसिद्ध हुआ। फिर देवों ने रुद्र से कहा ‘तू प्रजापति को बाण मारकर छेद दे।’ रुद्र ने प्रजापति को बाण मारा। मृगरूप बना हुआ प्रजापति बाण के आघात से अधोमुख हो, उछल कर ऊँचा गया और मृगशिर नक्षत्र के रूप में आकाश में रह गया। रुद्र ने मृगरूप प्रजापति का पीछा किया और वह भी मृगव्याध के तारे के रूप में आकाश में रह गया। लालवर्ण वाली मृगी थी, वह भी रोहिणी नक्षत्र के रूप में आकाश में रह गई। ये सब आज तक एक-दूसरे के पीछे आकाश में घूम रहे हैं।

इस प्रकार प्रजापति की सृष्टि रचना की कई कल्पनाएं हैं। ये सब कल्पनाएं अज्ञान-मूलक एवं कपोलकल्पित हैं। मनुष्यों और पशुओं के समान वेदोदय से अभिभूत होकर-मोहान्ध होकर अनैतिक कर्म करने वाला और अपने ही सृजित देवों के द्वारा निन्दित एवं प्रताड़ित व्यक्ति भी क्या परमात्मा माना जा सकता है? वास्तव में इस प्रकार की मान्यता भी मृषावाद ही है।

ईश्वरवादी

प्रजापति के बाद सूत्रकार ने ‘इसरेण य कयं ति केइ’ शब्द से ईश्वर कर्ता की कल्पना का उल्लेख किया है। ‘सूत्रकृतांग’ में भी - “ईसरेण कडे लोए” से ईश्वर-कर्तृत्ववादी का उल्लेख हुआ है। ईश्वरवादी अपने ईश्वर को जगत् का उपादान कारण नहीं, किन्तु निमित्त कारण मानते हैं। न्यायदर्शन में बताया है कि - ‘ईश्वर मनुष्यों के कर्म का फल देता है। मनुष्यों का प्रयत्न निष्फल न हो जाये, इसलिए ईश्वर कर्मफल देते हैं। मनुष्यों को जो कर्मफल मिलता है, वह ईश्वर-प्रेरित है। बिना ईश्वरीय व्यवस्था के जगत् अव्यवस्थित हो जाता है।’

न्याय भाष्यकार वात्स्यायन का मत है -

“गुणविशिष्टमात्मान्तरमीश्वरः। तस्यात्मकल्पात् कल्पान्तरानुपपत्तिः। अधर्म-मिथ्याज्ञानप्रमादहान्या धर्मज्ञानसमाधिसम्पदा च विशिष्टमात्मान्तरमीश्वरः तस्य च धर्मसमाधिफल-मणिमाद्यष्टविधमैश्वर्यं संकल्पानुविधायो चास्यधर्मः प्रत्यात्मवृत्तीन् धर्माधर्म-संचयान् पृथिव्यादीनि च भूतानि प्रवर्तयति।”

अर्थ - गुण विशेष से युक्त आत्मा ही ईश्वर है। ईश्वर आत्म-तत्त्व से पृथक् नहीं है। ईश्वर में अधर्म, मिथ्याज्ञान तथा प्रमाद नहीं है। धर्म-ज्ञान और समाधि-सम्पदा से वह युक्त है अर्थात् धर्म, ज्ञान तथा समाधि विशिष्ट आत्मा ही ईश्वर है। धर्म तथा समाधि के फलस्वरूप अणिमादि आठ प्रकार के ऐश्वर्य से वह युक्त है। ईश्वर के संकल्पमात्र से धर्म उत्पन्न होता है, किसी प्रकार के क्रियानुष्ठान से नहीं। ईश्वर का वह धर्म ही प्रत्येक आत्मा के धर्माधर्म संचय की तथा पृथ्वी आदि भूतों की प्रवृत्ति कराता है।

‘स्कन्ध पुराण’ में ईश्वर स्वयं अपना परिचय इन शब्दों में देता है -

“ईश एवाहमत्यर्थं न च मामीशते परः। ददामि च सदैश्वर्यमीश्वरस्तेन कीर्त्यते ॥”

अर्थात् - मैं सभी के ऊपर अत्यन्त सामर्थ्य रखता हूँ। मुझ पर किसी की सत्ता नहीं है। मैं ही हूँ, जो अपने भक्तों को अणिमादि ऐश्वर्य दे सकता हूँ। इसीलिए मैं 'ईश्वर' कहलाता हूँ।

उपरोक्त उल्लेख में ईश्वरवादी का मन्तव्य स्पष्ट होता है। स्वयंभू ब्रह्मा और प्रजापति तो सृष्टि के स्वयं सजर्क-उत्पादक बनते हैं, किन्तु ईश्वर निमित्त मात्र रहता है। इस सृष्टि से ईश्वर से भी प्रजापति अत्यन्त शक्तिशाली हुआ, जो स्वयं विश्वकर्मा बन गया। वास्तव में यह भी कल्पना मात्र है।

विष्णुमय जगत्

विष्णुमय जगत् की मान्यता में कहा जाता है कि -

“जलेविष्णुः स्थलेविष्णुः, विष्णुः पर्वतमस्तके।

ज्वालामालाकुले विष्णुः, सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥”

अर्थात् - जल, स्थल, पर्वत के शिखर, अग्नि और वनस्पति आदि सभी में विष्णु है। यह सारा जगत् ही विष्णुमय है। यथा -

पृथिव्यामाप्यहं पार्थ वायावगनी जलेप्यहं।

सर्वभूतगतश्चाहं, तस्मात् सर्वगतोऽस्म्यहम् ॥

हे पार्थ! मैं पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल और समस्त भूतों में हूँ। इसलिए मैं सभी में हूँ।

इसके अतिरिक्त अन्य कई उल्लेख हैं, जिनमें सारा संसार विष्णुमय बतलाया गया है।

पापी, हत्यारा, व्यभिचारी आदि में जो विष्णु है, वही, पुण्यात्मा, धर्मी और दयालु में भी है। दुराचारी में भी और सदाचारी में भी। कीड़ी, कुंजर, देव, नारक सभी में एक ही विष्णु की मान्यता स्पष्ट ही मिथ्या है। कौन सुझ मानेगा कि कल्लखाने में बैठकर पशुओं को निर्दयतापूर्वक काटने वाला और जगत् का ईश्वर ये दोनों एक ही हैं?

एकात्मवाद-अद्वैतवाद

एकात्मवादी भी मानते हैं कि समस्त संसार में केवल एक ही आत्मा है। वह सर्वव्यापक है। उनका कहना है कि -

“एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः।

एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥”

अर्थ - एक ही भूतात्मा प्रत्येक भूत-सभी प्राणियों में व्यवस्थित है। वह जल के पृथक्-पृथक् हजारों-लाखों घड़ों में प्रतिबिम्बित होते हुए चन्द्रमा के समान एक होकर भी बहुत दिखाई देता है।

वेदान्तियों का यह एकात्मवाद भी मिथ्या है, क्योंकि आत्मा भिन्न-भिन्न अनन्त हैं। यद्यपि स्वरूपापेक्षा समानत्व की दृष्टि से-संग्रहनय से-एक आत्मा कहा जा सकता है, तथापि द्रव्यापेक्षा सभी आत्माएं भिन्न एवं पृथक् हैं और अनन्त हैं। उन सबकी परिणति भिन्न है। कोई कुंथुए जैसा छोटा, तो

कोई हाथी के समान बड़ा, कोई मनुष्य, कोई पशु, पक्षी, सरीसृप, नारक और देव। कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई प्रसन्नचित्त तो कोई शोक-मग्न। कोई जन्मता है, तो कोई मरता है। कोई धर्मात्मा है, तो कोई पापात्मा। कोई पति है, तो कोई पत्नी, पुत्र, पुत्री, भगिनी आदि। कोई शोषक है, तो कोई शोषित, कोई स्वामी है, तो कोई सेवक, कोई धनाढ्य है, तो कोई दरिद्र। इस प्रकार विविध रूपों में जीवात्मा अपना भिन्नत्व प्रदर्शित कर रहे हैं। वह सर्वत्र एक ही आत्मा कैसे हो सकता है? चन्द्रबिम्ब का दृष्टान्त भी अनुपयुक्त है। चन्द्र-बिम्ब तो सभी जलाशयों और जलपात्रों में एक-सा ही दिखाई देता है, किन्तु प्राणियों की स्थिति एक सी नहीं होकर विभिन्न प्रकार की है। अतएव एकात्मवाद अथवा अद्वैतवाद भी असत्य है।

अकर्तृत्ववादी

आत्मा को एकान्त अकर्ता मानने वाले सांख्य भी मृषावादी हैं, क्योंकि आत्मा प्रत्यक्ष रूप में सकर्ता—हलन-चलन-खान-पानादि करता हुआ और मन से चिंतन करता हुआ देखा और अनुभव किया जाता है। आत्मा हिंसादि पाप और दानादि पुण्य तथा अहिंसादि धर्म का कर्ता और इनके फल का भोग करने वाला है। पुण्य-पाप का अकर्ता मानकर भी फल का भोक्ता मानना तो बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति मानना है, जो असत्य है। फल-भोग माना, तो उसका कारण पाप-पुण्य का कर्ता भी मानना ही पड़ेगा।

केवल इन्द्रियों को ही कर्ता मानकर आत्मा को अकर्ता मानना भी असत्य है, क्योंकि आत्मा शरीर और इन्द्रियों से भिन्न नहीं, किन्तु कर्तृचित् भिन्न है तथा परिणामी है।

आत्मा को सर्वथा नित्य मानना भी असत्य है। सर्वथा नित्य मानने पर सुख-दुःख, बन्ध-मोक्ष, गत्यान्तर, भवान्तर, जन्म-मरण आदि का अभाव मानना पड़ेगा।

वास्तव में आत्मा परिणामी नित्य है। वह नित्य - शाश्वत रहता हुआ भी विविध पर्यायों में परिणत होता रहता है। द्रव्यापेक्षा नित्य होते हुए भी नई पर्यायें उत्पन्न होती रहती हैं और पुरानी पर्यायें नष्ट होती रहती हैं। आत्मा उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य युक्त है। इसे एकान्त नित्य मानना असत्य है ✧।

— “अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः।

अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्म, आत्मा कापिलदर्शने ॥”

✧ टीकाकार ने विवेचन में - 'श्रीमद्भगवद्गीता' अ. के २ श्लोक २३, २४ “नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि.....” “अच्छेद्यो.....” को उद्धृत कर नित्यवाद का निरसन किया। किन्तु मेरे विचार से यह विशेष विचारणीय है, क्योंकि द्रव्यापेक्षा तो हम भी आत्मा को नित्य मानते हैं और गीताकार का कथन भी द्रव्यापेक्षा ही है। आगे श्लोक २७ में—“जातस्य हि भ्रुवो मृत्युर्भुवं जन्म मृतस्य च।” इसमें उत्पाद और व्यय रूप पर्याय भी स्वीकार की है। इसलिए उपरोक्त श्लोक को एकान्त नित्यवाद का प्रवर्तक एवं समर्थक नहीं कहा जा सकता। यद्यपि गीता के अन्य स्थलों से एकात्मवाद भी झलकता है, परन्तु उद्धरित श्लोक तो द्रव्यापेक्षा ही स्वरूप बतलाता है।

अर्थ - आत्मा अमूर्त, चेतन, भोक्ता, नित्य, सर्वव्यापी, क्रिया-रहित, अकर्ता, निर्गुण और सूक्ष्म है, ऐसा कपिल-दर्शन का सिद्धान्त है।

'सांख्य कारिका' में कहा है कि -

“तस्मान्बध्यते नापि मुच्यते नापि संसरति, कश्चित्।

संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः॥”

अर्थ - न कोई बंधता है, न मुक्त होता है और न कोई संसार में परिभ्रमण करता है। बन्ध, मोक्ष और परिभ्रमण तो नाना प्रकार के आश्रय वाली प्रकृति को ही होते हैं।

नित्यवादियों का उपरोक्त सिद्धान्त भी असत्य है। संयोग-सम्बन्ध से आबद्ध आत्मा को एकान्त मुक्त मानना असत्य है। जीवों में विभिन्नता, ज्ञान-अज्ञान में वैविध्यता, रुचि, अवस्था, दशा, वेदन आदि में अन्तर प्रत्यक्ष बतला रहा है कि प्रत्येक आत्मा बद्ध है। उदय और क्षयोपशम की भिन्नता प्रत्यक्ष देखी जाती है। रूपान्तर, अवस्थान्तर, ज्ञानान्तर, वेदान्तर आदि प्रत्यक्ष बतला रहे हैं कि आत्मा एकान्त नित्य नहीं, किन्तु विविध प्रकार के परिणामों से परिणत होता हुआ नित्यानित्य है।

बन्ध, वेदन, गत्यंतर, भोग, रति, अरति आदि सब प्रकृति के ही होते हों और आत्मा सर्वथा अक्रिय एवं निर्लिप्त रहती हो, तो आत्मा में तदनुरूप परिणति, अनुभव, अध्यवसाय एवं वेदनादि नहीं होना चाहिए। किन्तु वैसा होना सभी के अनुभव की बात है। अतएव प्रत्यक्ष से ही असत्य है।

यदि केवल प्रकृति में ही हलन-चलनादि होते हों, तो मुर्दे शरीर में भी होना चाहिए। किन्तु यह बात भी असत्य है। आत्मयुक्त शरीर ही क्रिया करता है। वह क्रिया अत्य-प्रेरित होने के कारण आत्मा निष्क्रिय नहीं, सक्रिय है। आत्मा के कर्ता होने से ही बुद्धि में परिवर्तन होता है, चिन्तनादि होता है।

पूर्वरूप का त्याग और उत्तररूप का ग्रहण, अपरिणामी नित्य में नहीं हो सकता, न सुख-दुःख का वेदन (भोग) ही हो सकता है। पूर्व रूप का त्याग और उत्तर रूप का स्वीकार आत्मा को परिणामी एवं सक्रिय सिद्ध करता है। अतएव आत्मा को नित्य, अपरिणामी एवं निष्क्रिय मानना मिथ्या है।

आत्मा निर्गुणी और निर्लेप भी नहीं है। उसमें ज्ञान, उपयोग चेतनादि गुण हैं और रागद्वेषादि एवं ज्ञानावरणादि युक्त है। अतएव आत्मा को निर्लेप मानना भी मिथ्या है।

जैनियों में भी जो एकान्त निश्चयवादी हैं और आत्मा को एकान्त अकर्ता, अभोक्ता निर्बन्ध, निर्लिप्तादि मानते हैं, वे मृषावादी हैं। यदि आत्मा सर्वथा निर्लिप्त हो, तो फिर किसी भी प्रकार की साधना की आवश्यकता ही नहीं रहती। निर्गुणी और निर्लेप आत्मा का प्रकृति क्या कर सकती है? यदि निर्लिप्त आत्मा को भी प्रकृति, क्रोधादि में अथवा अज्ञानादि में लिप्त कर दें, तो यह भी मानना पड़ेगा कि पुरुष (आत्मा या परमात्मा) से प्रकृति (जड़) जोरदार हुई, जो आत्मा को विविध भावों एवं रूपों में परिणत कर देती है। अतएव यह मान्यता भी असत्य है।

मृषावाद

जं वि इहं किंचि जीवलोए दीसइ सुकयं वा दुकयं वा एयं जदिच्छाए वा सहावेण वावि दइवतप्यभावओ वावि भवइ। णत्थेत्थ किंचि कयगं तत्तं लक्खणविहाणणियत्तीए कारियं एवं केइ जंपंति इड्डिरस-सायागारवपरा बहवे करणालसा परूवेति धम्मवीमंसएणं मोसं।

शब्दार्थ - जं वि - जो भी, इहं - इस, किंचि - कुछ, जीवलोए - जीवलोक में, दीसइ - दिखाई देते हैं, सुकयं - सुकृत, दुकयं - दुष्कृत, एयं - यह, जदिच्छाए - यदृच्छा से, सहावेण - स्वभाव से, वावि - अथवा, दइवतप्यभावओ - दैव-भाग्य के प्रभाव से, भवइ - होता है, णत्थेत्थ - नहीं है, किंचि - कुछ भी, कयगं - कृतक, तत्तं - तत्त्व, लक्खणविहाणणियत्तीए - लक्षण विधान और नियति से, कारियं - किये गये हैं, जंपंति - कहते हैं, इड्डि-रस-साया-गारवपरा - ऋद्धि, रस और साता के गर्व में गृद्ध बने, बहवे - बहुत-से, करणालसा - कर्तव्य में आलसी, परूवेति - प्ररूपणा करते हैं, धम्मवीमंसएणं - धर्म के विमर्श से, मोसं - मृषा।

भावार्थ - कोई ऋद्धि, रस और साता के गौरव में लिप्त बने हुए वादी कहते हैं कि - इस जीवलोक में जो कुछ सुकृत और दुष्कृत दिखाई देता है, यह सब यदृच्छा (अकस्मात्) से या स्वभाव से अथवा नियति के प्रभाव से है। पुरुषार्थ से उत्पन्न करने योग्य कुछ भी वस्तु नहीं है। नियति के द्वारा पदार्थों का लक्षण और विधान किया गया है अर्थात्-पदार्थ के स्वरूप और भेदों को उत्पन्न करने वाली नियति है। इस प्रकार कहने वाले वादी सम्यक् चारित्र में पुरुषार्थ करने में आलसी हैं। बहुत-से लोग धर्म की आलोचना करके, धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म बतलाते हुए मिथ्या प्ररूपणा करते हैं।

धिवेचन - सूत्रकार अब यदृच्छावादियों के मिथ्यावाद का उल्लेख करते हैं। यदृच्छा का अर्थ- 'इच्छानुसार' होता है। बिना किसी कारण के जो अकस्मात् हो जाये, अपने-आप बन जाये, अर्थात् बिना किसी निमित्त के कार्य होना- 'यदृच्छावाद' है। दैववाद-भवितव्यतावाद का समावेश भी इसी में होता है *। यदृच्छावादी मानता है कि जिसको जो मिलता है या बिछुड़ता है अथवा सुख-दुःख जीवन-मरणादि सभी कार्य अपने आप ही होते रहते हैं। वे यहाँ काकतालीय न्याय देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार ताड़फल का गिरना और कौए का आना अकस्मात् ही होता है, उसी प्रकार सभी कार्य बिना किसी कारण के अकस्मात् बनते रहते हैं। इसमें कोई अन्य शक्ति कारण नहीं बनती और न

* टीकाकार ने लिखा- 'यदृच्छावादीनो यथा-सर्व इश्वरेच्छया-यदृच्छया निष्पद्यते न कोऽपि कर्ता.....यह कुछ समझ में नहीं आता, क्योंकि इश्वरेच्छा मानने पर तो कर्ता-निमित्त मानना पड़ता है। किन्तु यदृच्छावादी किसी निमित्त को नहीं मानता, अतएव विचारणीय है।

पुरुषार्थ ही कारण बनता है। इस प्रकार अपने मत का प्रदर्शन करते हुए वे नास्तिकवादी लोग उपदेश करते हुए कहते हैं कि -

दान, व्रत, पौषध, तप, संयम और ब्रह्मचर्यादि कल्याणकारी अनुष्ठानों का सेवन करके कष्ट उठाने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इन अनुष्ठानों का कोई फल नहीं है। पर-भव में प्राप्त होने वाले फल का भोक्ता कोई आत्मा है ही नहीं, तो दान-व्रतादि का पालन व्यर्थ ही है। इसी प्रकार प्राणी-वध, मृषावाद, चोरी करना, पर-स्त्री गमन करना और परिग्रह रखने से कोई पापकर्म नहीं होता। वे मानते हैं कि यह सब स्वभाव से ही होता है, कर्म से नहीं। जैसे -

‘कण्टकस्य प्रतीक्षणात्वं, मयूरस्य विचित्रता।

वर्णाश्च ताम्रचूडानाम्, स्वभावेन भवन्तिहि ॥’

- कांटे की तीक्ष्णता, मयूर-पंखों की विचित्रता और मुर्गे के पंखों के रंग, ये सब स्वभाव से ही होते हैं।

प्रत्येक वस्तु की अपने स्वभाव के अनुसार ही उत्पत्ति, वृद्धि और स्थिति और विनाश होता है। आम के बीज में से आम ही निकलता है, नौबू नहीं। गाय से गधा, घोड़ा या हाथी उत्पन्न नहीं होता। स्वभाव के अनुसार ही सब कुछ होता है। स्वभाव के प्रतिकूल कुछ भी नहीं हो सकता। लोक में जो कुछ हो रहा है, हुआ और आगे जो कुछ होगा, वह सब स्वभाव का ही परिणाम है।

इस प्रकार स्वभाववादी नास्तिक कहते हैं। वे जीव, कर्म, गति-आगति, लोक-परलोक, पुण्य-पाप और धर्माधर्म नहीं मानकर केवल स्वभाव को ही मानते हैं। यह उनका मृषावाद है। प्रत्येक कार्य किसी को लिए हुए होता है। विविधता एवं विचित्रता अपने-अपने कारण से उत्पन्न होती है केवल स्वभाव से नहीं होती।

स्वभाववादी यह नहीं सोचता कि केवल वस्तु -स्वभाव से ही कार्य सिद्धि नहीं होती, पुरुषार्थ, काल आदि कारण भी आवश्यक हैं। आम के बीज में फल देने का स्वभाव होते हुए भी बिना पुरुषार्थ और काल आदि के फल नहीं मिलता। यदि उस बीज को कोई आग पर रख दे, तो वह और उसका स्वभाव जलकर नष्ट हो जाता है। यदि पत्थर या लकड़ी अथवा पेटी में पड़ा रहे तो भी स्वभाव फलप्रद नहीं होता। जब माली उसे भूमि में बोएगा, उचित समय पर पानी आदि देगा और विनाशक तत्वों से रक्षा करेगा, तभी वह स्वभाव, काल परिपक्व होने पर फल देगा। वह फल भी माली के हाथ में होगा, तो मिलेगा अन्यथा उसेक पुरुषार्थ का फल कोई दूसरा ही भोगेगा।

औषधि में रोग मिटाने का, भोजन में क्षुधा शान्त करने का और पानी में प्यास बुझाने का स्वभाव होते हुए भी पुरुषार्थ के बिना कार्य-साधक नहीं बनते। अतएव स्वभाववादी का एकान्तवाद मिथ्या है, उसका वाद-मृषावाद है।

नास्तिक लोग नरक तिर्यंच मनुष्य और देवलोक भी नहीं मानते और सिद्ध गति के प्रति भी ये नास्तिक ही हैं। ये लोग कहते हैं कि माता-पिता का नाता भी नहीं है। उत्पत्तिमात्र कारण से माता-पिता का नाता मानना और उनको सेव्य बतलाना असत्य है। मनुष्यादि की उत्पत्ति भी स्वभाव से ही होती है। उत्पन्न होने वाला अपने स्वभाव से किसी भी स्त्री-पुरुष के योग से उत्पन्न हो सकता है। इसमें माता-पिता की कल्पना करना और उनका ऋण मानकर सत्कार-सेवादि करना व्यर्थ है।

नास्तिकों का उपरोक्त कथन भी असत्य है। क्योंकि उत्पत्ति तो अन्य सचित्त-अचित्त पदार्थों की भी होती है, जैसे-शरीर से यूका (जूं) लीख, मांकड़, नारू, कृमि आदि सचेतन जीव भी उत्पन्न होते हैं और मल-मूत्र-श्लेष्मादि अचित्त पदार्थ भी। किन्तु इन सबके प्रति जनक की पुत्र-भावना-वात्सल्य नहीं होता। पुत्र के प्रति गर्भकाल से ही हितकामना, स्नेह-सम्बन्ध एवं अपनत्व रहता है। इसी भावना से माता-पिता, पुत्र का पालन-पोषण और रक्षण करते हैं। सन्तान के हित के लिए चिन्तित रहते और अपना भोग देते हैं। अतएव माता-पिता की श्रेष्ठता सेव्यता एवं पूज्यता मानना उचित ही है। यदि नास्तिकों को माता-पिता का स्नेह एवं वात्सल्य प्राप्त नहीं होता, तो वे यूका, मत्कुण और कृमि के समान तड़पकर मर जाते। उनके खान-पान, वस्त्र, औषधि एवं शिक्षादि से पोषण, रक्षण एवं संवर्धन का कार्य नहीं होता। अतएव माता-पिता और उनके प्रति सन्तान के कर्तव्य तथा उसका फल मानना उचित एवं सत्य है।

'नियतिवादी' - नियतिवाद को 'दैव' या 'भवितव्यतावाद' भी कहते हैं। नियतिवादी नास्तिक कहते हैं कि - पुरुषार्थ, कर्म, काल, स्वभावादि से कुछ भी कार्य नहीं होता, जो भी कार्य होता है, वह भवितव्यता से ही होता है। कहा है कि -

“प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः? सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा।

भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने, नाभाव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः ॥”

- वही होता है जो नियति के बल से प्राप्त होने योग्य है, चाहे वह शुभ हो या अशुभ। प्राणी चाहे कितना ही प्रयत्न करे, जो होने वाला है, वह अवश्य होता है और नहीं होने वाला कदापि नहीं होता।

अकेली भवितव्यता को ही सबकुछ मानकर यह वादी, पुरुषार्थ आदि सभी कारणों का निषेध करता है। इसका तर्क है कि यदि पुरुषार्थ ही से सब कुछ होता है, तो पुरुषार्थ तो सभी लोग करते हैं, फिर फल सबको समान रूप से क्यों नहीं मिलता? सभी उद्यमी मनुष्य सुखी ही होना चाहिए, दुःखी कोई नहीं रहना चाहिए। बहुत-से लोग उद्योग करते हुए भी दुःखी देखे जाते हैं। इसका यही कारण है कि नियति उनके अनुकूल नहीं है। नियति - भवितव्यता को अन्यथा करने की शक्ति किसी में भी नहीं है। यह सर्वोपरि एवं स्वयंभू है। यथा -

“उदयति यदि भानुः पश्चिमायां दिशायां ।

प्रचलति यदि मेरुः शीततां यातित वन्हिः ॥

विकसति यदि पद्मं, पर्वताग्रं शिलायां ।

तदपि न चलतीयं, भाविनी कर्मरेखा ॥”

- (यद्यपि सूर्य पूर्व दिशा में ही उदय होता है, तथापि किसी कारण) सूर्य, पश्चिम में उदय हो जाय, स्थिर सुमेरु पर्वत चलायमान हो जाये, उष्णस्वभावी अग्नि शीतल हो जाये, पर्वत पर रहीं हुई शिला पर कमल उत्पन्न हो जाय, ये सब अनहोने कार्य कभी दैवयोग से हो भी जाये, परन्तु भावीभाव की जो कर्म रेखा खींच गई, वह कभी अन्यथा नहीं होती।

नियति का नियम अपरिवर्तनीय है। काल, स्वभाव या पुरुषार्थ किसी की भी शक्ति नहीं जो नियति को अन्यथा कर सके। नियति की प्रतिकूलता से पुरुषार्थ का फल व्यर्थ हो जाता है, विपरीत हो जाता है और बिना पुरुषार्थ के ही कोई दूसरा उस फल को प्राप्त कर लेता है।

सपेरे के एक पिटारे (करंडिये) में सांप बन्द था और दूसरे में सपेरे का सामान तथा खाने-पीने की चीजें। एक चूहा मिष्टान्न की सुगन्ध से आकर्षित होकर आधा और पिटारा काटने लगा। चूहे को मिष्टान्न खाने की लालसा थी। वह शीघ्रता से काटने लगा। उस पिटारे में रहा हुआ बन्दी सांप भूखा था, वह स्वतंत्र होने के लिए छटपटा रहा था। अचानक पिटारा कटा, चूहा पिटारे में घुसा, उधर सर्प मुंह खोले तैयार ही था। चूहे को गटक गया और उसी मार्ग से बाहर निकल कर चल दिया। चूहे के लिए पुरुषार्थ का फल विपरीत-विनाशक हुआ और उसके पुरुषार्थ का फल सांप को देहरा मिला। भूख मिटी और स्वतंत्रता मिली। सांप बिना पुरुषार्थ के ही फल पा गया। यह सब नियति का ही प्रभाव है। कहा है कि -

कान्तं वक्ति कपोतिका कुलतया, नाथान्तकालोऽधुना ।

व्याधोऽधो धृतचापसज्जितशरः श्येनः, परिभ्राम्यति ॥

इत्थं चिन्तयतोः सदष्ट इषुणा, श्येनोऽपि तेनाहत ।

स्तुर्णं तौ तु यमालयं प्रतिगती, दैवी विचित्रा गतिः ॥ १ ॥

- एक कबूतर के जोड़े को ऊपर से बाज झपटकर हड़पना चाहता था और नीचे शिकारी बाण मारकर गिराने के लिए निशाना साधे हुए था। कपोतिका अपने पति से कहती है - 'हे नाथ! अब अपना अन्तकाल आ गया। इस दोहरे संकट से हम बच नहीं सकेंगे। वे दोनों चिन्ता-मग्न थे कि बिल में से एक सर्प निकला और शिकारी के पांव में डसा। शिकारी विचलित हो गया। उसके हाथ कम्पित हो गए और बाण छूटकर बाज के जा लगा। बाण लगने से बाज मर गया और सांप के विष से शिकारी भी मर गया। इस प्रकार कबूतर का जोड़ा सुरक्षित रह गया। यह दैवी-भवितव्यता की विचित्र गति है।

फिर नियतिवादी कहता है -

“प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः, किं कारणं ? दैवमलंघनीयं।

तस्यान्न शोचामि न विस्मयामि, यदस्मदीयं नहि तत्परेषाम् ॥”

- मनुष्य को जो प्राप्त होने वाला है, वही मिलता है, अन्य नहीं मिलता। इसका क्या कारण है?—क्योंकि भवितव्यता अलंघनीय=अनिवार्य होती है। इसलिए न तो चिंता करनी चाहिए और न आश्चर्य ही करना चाहिए।

और भी कहा है कि -

“सा सा संपद्यते बुद्धिर्व्यवसायश्च तादृशः।

सहायास्तादृशा ज्ञेया, यादृशी भवितव्यता ॥”

- जीव की जैसी भवितव्यता होती है, वैसी ही बुद्धि हो जाती है, प्रयत्न भी वैसा ही होता है और सहायता भी उसी प्रकार की प्राप्त होती है।

इस प्रकार नियतिवादी अपने एकान्तवाद का प्रचार करता हुआ असत्य भाषण करता है।

वास्तव में नियति कोई स्वतंत्र शक्ति नहीं है। यह भी पुरुषार्थ का परिणाम है। पुरुषार्थ से नियति का निर्माण हुआ है। जीव के द्वारा बांधे हुए शुभाशुभ निकाचित कर्म से ही नियति=भवितव्यता बनती है। यह नियति पुरुषार्थ की अपेक्षा रखती ही है और पुरुषार्थ के बिना नियति सफल भी कैसे हो सकती है? भोजन सामने रखा है, खाने की इच्छा भी है, किन्तु हाथ से उठाकर मुंह में रखने और चबाकर गले के नीचे उतारने रूप पुरुषार्थ किया जाएगा तभी भवितव्यता सफल होगी। यदि हाथ से उठाकर मुंह में नहीं रखा जाएगा, तो भवितव्यता बरबस पेट में नहीं पहुँचा देगी। अतः नियतिवाद को भी पुरुषार्थ=उद्योग=उद्यम की अपेक्षा मानना ही चाहिए। भवितव्यता अनुकूल होने पर भी उद्यम होने पर ही वस्तु की प्राप्ति होती है - ‘उद्यमे नास्ति दारिद्र्यं’। बिना पुरुषार्थ के तो संमुख उपस्थित रत्नों का ढेर भी प्राप्त नहीं हो सकता। अतएव नियतिवाद भी असत् पक्ष है।

एकांत नियतिवादी गोशालक-मति देव और भगवान् महावीर के उपासक सुश्रावक कुण्डकौलिक का, सम्वाद उपासकदसा सूत्र अध्ययन ६ में है। देव ने नियतिवाद का पक्ष उपस्थित करते हुए कहा था-

“सभी पदार्थ भावीभाव के अनुसार बनते हैं। किसी के करने-धरने से कुछ नहीं होता।” इसके उत्तर में कुण्डकौलिक ने कहा-

‘यदि सभी भाव निग्रति से ही बनते हैं और पुरुषार्थ से कुछ भी नहीं होता, तो तुम्हें यह देव सम्बन्धी ऋद्धि कैसे प्राप्त हो गई? क्या बिना पुरुषार्थ के ही मिल गई?’

- “हाँ, भवितव्यता से ही मिली है” - देव ने अपने पक्ष का निर्वाह करते हुए कहा।

- 'यदि तुम्हें नियति से ही यह देवर्द्धि प्राप्त हुई है, तो अन्य जीवों को-मनुष्यों, पशु-पक्षियों और कीड़ों-मकोड़ों को ऐसी ऋद्धि क्यों नहीं मिली? उनकी भवितव्यता में कौन बाधक बना?'

इस प्रश्न ने देव को अवाक् कर दिया। वह निरुत्तर हो गया। वह समझ गया कि इस विभ्रता का कारण प्रत्येक प्राणी का पुरुषार्थ है। भगवान् महावीर ने कुंडकौलिक के इस उत्तर की प्रशंसा की।

उपासकदसा सूत्र के ७ वें अध्ययन में नियतिवादी गोशालकमति सद्दालपुत्र से स्वयं भगवान् महावीर का वाद हुआ था। भगवान् महावीर, कुंभकार सद्दालपुत्र की कुंभकार शाला में ठहरे थे। अन्यदा कुंभकार अपने मिट्टी के बरतन सुखाने के लिए धूप में रख रहा था, तब भगवान् महावीर ने उससे पूछा-

“सद्दालपुत्र! ये मिट्टी के बरतन कैसे बने-किसने बनाये?”

“भगवन्! यह पहले मिट्टी थी। मिट्टी में पानी मिला, चाक पर चढ़ा और बरतन बन गए” - सद्दाल ने अपने सिद्धान्त का निर्वाह करते हुए कहा।

“सद्दालपुत्र! ये पात्र पुरुषार्थ-उद्यम से बने या बिना किसी के उद्यम किये, यों ही बन गए”- भगवान् ने फिर पूछा।

“भगवन्! ये पात्र बिना पुरुषार्थ के ही बन गए। इनके बनने में पुरुषार्थ नहीं लगा।”-अपने मत का बचाव करते हुए कुंभकार ने कहा।

“सद्दालपुत्र! इन बरतनों को कोई उठा कर ले जाये, चुरा ले या तोड़-फोड़ दे, तो तुम चुपचाप रहोगे? इन्हें बचाने का प्रयत्न नहीं करोगे? उस चुराने या तोड़-फोड़ करने वाले पर तुम क्रोध नहीं करोगे? फिर सुनो-यदि कोई कामुक व्यक्ति तुम्हारी पत्नी-अग्निमित्रा के साथ कुकर्म करने की चेष्टा करे, तो क्या तुम भवितव्यता को पकड़े रहकर चुप ही रहोगे” - भगवान् महावीर ने प्रबल युक्ति उपस्थित की।

- “भगवन्! मैं चुप कैसे रहूँगा? मैं उस दुराचारी को मारूँगा, पीटूँगा और उसका प्राणान्त भी कर दूँगा।” - किंचित् आवेश के साथ सद्दालपुत्र ने कहा।

- “सद्दालपुत्र! ऐसा करना तो तुम्हारे मान्य नियतिवाद के विरुद्ध होगा। जब बरतनों का बनना-बिगड़ना, चोरी जाना, टूटना और तुम्हारी पत्नी के साथ कुकर्म करना-ये सब नियतिवाद के आधीन हैं। इनमें किसी का कुछ भी पुरुषार्थ नहीं है, तो तुम किसी दूसरे को दण्ड कैसे दे सकते हो? तुम्हें तो अपने सिद्धान्त के अनुसार चुप ही रहना चाहिए। यदि तुम क्रुद्ध होकर दण्ड देते हो, तो तुम्हारा सिद्धान्त मिथ्या ठहरता है”-भगवान् ने नियतिवाद की एकान्तता का खोखलापन सिद्ध किया।

सद्दालपुत्र नियतिवाद में रहे हुए मिथ्यात्व को समझ गया और उसका त्याग करके भगवान् का उपासक बन गया।

टीकाकार ने यहाँ कालवाद का भी उल्लेख किया है। कालवादी कहता है कि -

“कालः सृजति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः ।

कालः सुप्तेषु जागर्ति, कालो हि दुरतिक्रमः + ॥”

- काल ही भूतों (जीवों) को बनाता है, काल ही नष्ट करता है और जब सारा जगत् सोता रहता है, तब काल ही सदा जाग्रत रहता है। काल-मर्यादा का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता।

संसार में अनेकवाद चले और चल रहे हैं। कौी काल को महत्त्व देता है, तो कोई स्वभाव को और कोई कर्म, पुरुषार्थ, नियति, प्रकृति और ईश्वर आदि को महत्त्व देता है। जैन दर्शन काल आदि पाँचों समवायों को मानता है। पूर्वाचार्य ने कहा है कि -

“कालो सहाय नियई पुष्यकयं पुरिसकारणेगता।

मिच्छत्तं ते चेष उ समासओ होति सम्पत्तमिति ॥”

- काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकर्म और पुरुषकार-पराक्रम, ये पृथक्-निरपेक्ष हों, तो मिथ्यात्व हैं, किन्तु वे ही सब मिलकर सम्यक्त्व ह्ये जाते हैं।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न वादी, सृष्टि-निर्माण आदि विषयों में मिथ्या प्ररूपणा करके मृषावाद नाम का दूसरा पाप करते हैं।

झूठा दोषारोपण करने वाले निन्दक

अवरे अहम्मओ रायदुदुं अब्भक्खाणं भणंति अलियं चोरोत्ति अचोरयं करेत्तं डापरिउत्ति वि य एमेव उदासीणं दुस्सीलोत्ति य परदारं गच्छइत्ति मइलित्ति सीलकलियं अयं वि गुरुतप्पओ त्ति। अण्णे एमेव भणंति उवाहणंता मित्तकलत्ताइं सेवंति अयं वि लुत्तधम्मो इमोवि विस्संभवाइओ पावकम्मकारी अगम्मगामी अयं दुरप्पा बहुएसु य पावगेसु जुत्तोत्ति एवं जंपंति मच्छरी। भद्दगे वा गुणकित्ति-णेह-परलोय-णिप्पिवासा एवं ते अलियवयणदच्छा परदोसुप्पायणप्पसत्ता वेढेंति। अक्खाइय बीएणं अप्पाणं कम्मबंधणेण मुहरी असमिक्खियप्पलावा।

शब्दार्थ - अवरे - दूसरे, अहम्मओ - अधर्म से, रायदुदुं - राज्य-दुष्ट-राज्य विरुद्ध, अब्भक्खाणं - अभ्याख्यान-दोषारोपण, भणंति - बोलते हैं, अलियं - मिथ्या, चोरोत्ति - चोर कहते,

+ यह श्लोक 'महाभारत' आदिपर्व (१। २४८, २४९) में इस प्रकार है -

“कालःसृजति भूतानि, कालःसंहरते प्रजा। संहरन्तं प्रजाःकालं, कालःशमयते पुनः ॥

कालोहि कुरुते भावान्, सर्वलोके शुभाशुभान्। कालः सक्षिपते सर्वाः प्रजा विसृजते पुनः ॥

अर्थ - काल भूतों का सर्जन करता है, काल ही प्रजा का संहार करता है। उस संहारक काल को काल ही शान्त करता है। समस्त लोक के शुभाशुभ भावों को काल ही उत्पन्न करता है और समस्त प्रजा का संहारण भी काल ही करता है और फिर वही सर्जन भी करता है।

अचोरियं करंतं - जो चोरी नहीं करता, डामरिउत्ति - कलह करने वाला बतलाते हैं, एमेव - इसी प्रकार, उदासीणं - जो उदासीन-तटस्थ हैं उसे, दुस्सीलोत्ति - दुश्चरित्र-दुराचारी कहते हैं, परदारंगच्छइत्ति - पर-स्त्री के साथ गमन करता है, मइलित्ति - मलिन करते हैं, सीलकलियं - शील से युक्त को, अयं - यह, गुरु-तप्पओ - गुरु तल्पक-दुर्विनीत अथवा गुरु-पत्नी गामी, अण्णे - अन्य-दूसरे, भणंति - कहते हैं, उवाहणंता - उपधन्त=प्रतिष्ठा या आजीविका का नाशक, मित्तकलत्ताइ - मित्र की पत्नी का, सेवन्ति - सेवन करता है, लुत्तधम्मो - धर्मलुप्त-धर्मशून्य या धर्म रहित, इमोवि - यह, विस्संभवाइओ- विश्वासघाती, पावकम्मकारी - पापकर्म करने वाला, अगम्मगामी - अगम्यगामी, दुरप्पा - दुरात्मा, बहुएसु - बहुत ही, पावगेसु - पापों से, जुत्तोत्ति - युक्त हैं, जंपंति - कहते हैं, मच्छरी - मत्सरी-जलनशील=डाह करने वाला, भद्दगे - भद्रपरिणामी, गुणकित्तिणेह - गुण, कीर्ति, स्नेह, परलोय - परलोक की, णिप्पिवासा - इच्छा से रहित, अलियवयणदच्छा - झूठ बोलने में दक्ष-चतुर, परदोसुप्पायणप्पसत्ता - दूसरों पर दोषारोपण करने में आसक्त, वेहेंति - वेष्टयंति-लपेटते हैं, अक्खाइय बीएणं - अक्षतिक बीज-अक्षय दुःख के कारणभूत, अप्पाणं - आत्मा को, कम्मबंधणेण - कर्म-बन्धनों से, मुहरी - मुखरी-वाचालता, असमिक्खियप्पलावा - बिना सोचे वचन बोलने वाले।

भावार्थ - कितने ही लोग अधर्म से प्रेरित होकर राज्य-विरुद्ध बोलते हैं। दोषारोपण करते हैं। जो चोरी नहीं करता, उस पर वे झूठा दोष मढ़कर 'चोर' कहते हैं। तटस्थ एवं उदासीन व्यक्ति को वे लड़ाकू-झगड़ा करने वाला और क्लेश बढ़ाने वाला कहते हैं। वे सदाचारी को दुराचारी कहते हैं और कहते हैं कि - यह पर-स्त्री गामी है। इस प्रकार वे उसके जीवन को मलिन बतलाते हैं। उसकी प्रतिष्ठा गिराने का प्रयत्न करते हैं। किसी के लिए कहते हैं कि - यह गुरु-दुर्विनीत (गुरु को कष्ट देने वाला) अथवा गुरु-पत्नी का भोग करने वाला है। कई लोग दूसरे की प्रतिष्ठा को नष्ट करने या आजीविका से वंचित करने के लिए यों कहते हैं कि - 'यह मनुष्य अपने मित्र की पत्नी से गमन करता है, यह धर्म-शून्य अथवा धर्मलोपक है, यह विश्वासघाती है, यह पापी है, यह अगम्यगामी (माता, भगिनी, साध्वी आदि के साथ गमन करने वाला) है। यह दुरात्मा (दुष्ट आत्मा=अधम जीव) है और अमुक व्यक्ति बहुत-से पाप कृत्यों से भरा हुआ है। इस प्रकार दूसरों से डाह करने वाले, किसी का हित-सुख सहन नहीं कर सकने वाले जलनशील लोग, मिथ्या बोलते हैं। वे मिथ्यावादी लोग, भद्रपुरुषों को दोषी बतलाते हैं। वे स्वयं गुण, कीर्ति, स्नेह और परलोक की इच्छा से रहित होते हैं। वे मिथ्याभाषण करने में निपुण, दूसरों पर दोषारोपण करने में रत-आसक्त और बड़े वाचाल होते हैं। वे अक्षय-दृढ़तम कर्मबन्धनों से अपनी आत्मा को लिप्त करके जकड़ लेते हैं।

विवेचन - कई लोगों में दूसरों की निन्दा करने की रुचि होती है। वे अपनी इस अधम रुचि के वशीभूत होकर सच्चे, सदाचारी और गुणवान् व्यक्तियों की भी निन्दा करते हुए उन पर झूठे दोष मढ़ते हैं। उन्हें उन सद्गुणियों की प्रतिष्ठा एवं उन्नति सहन नहीं होती। वे दूसरों का उत्थान देखकर जलते

हैं। उनके मन में डाह उत्पन्न होती है। इसलिए वे उन पर झूठे दोषारोपण करते हुए मृषावाद का पाप करते हैं।

रायदुद्रु - राजदुष्ट-राज्य एवं राजा के लिए अहितकारी, अवांछनीय, जनहित, न्याय, नीति, शांति एवं सुरक्षा को क्षति पहुँचाने वाला। जनता में पतन के कारण ऐसी पापी प्रवृत्ति बढ़ाने वाला।

भद्गे - भद्रक-सरल स्वभावी, स्वच्छहृदयी, कूड़-कपट-छल-प्रपंचादि रहित। सीधे-सादे मनुष्य।

लोभजन्य अनर्थकारी झूठ

णिक्खेवे अवहरंति परस्स अत्थम्मि गढियगिद्धा अभिजुंजति य परं असंतएहिं लुद्धा य करंति कूडसक्खित्तणं असच्चा अत्थालियं च कण्णालियं च भोमालियं च तह गवालियं च गरुयं भणंति अहरगइगमणं अण्णं पि य जाइरूवकूलसीलपच्चयं मायाणिउणं चवलपिसुणं परमदुभेयगमसगं विद्देसमणत्थकारगं पावकम्ममूलं दुद्धिं दुस्सुयं अमुणियं णिल्लज्जं लोयगरहणिज्जं वहबंधपरिकिलेसबहुलं जरामरण-दुक्खसोयणिम्मं असुद्धपरिणामसंकिलिं भणंति।

शब्दार्थ - **णिक्खेवे** - निक्षेपक-धरोहर रखने वाला, **अवहरंति** - हरण करते हैं, **परस्स** - दूसरों को, **अत्थम्मि** - अर्थ-धन में, **गढियगिद्धा** - अत्यन्त लुब्ध, **अभिजुंजति** - अभियोग-आरोप लगाते हैं, **असंतएहिं** - मिथ्या दोषों का, **लुद्धा** - लुब्ध-आसक्त, **करंति** - करते हैं, **कूडसक्खित्तणं** - झूठी साक्षी, **असच्चा** - असत्य, **अत्थालियं** - अर्थालीक-धन के लिए झूठ, **कण्णालियं** - कन्यालीक-कन्या सम्बन्धी झूठ, **भोमालियं** - भूमि सम्बन्धी मृषा, **गवालियं** - गाय-भैंसादि सम्बन्धी असत्य, **गरुयं** - बहुत भारी-महान् अनर्थकारी, **भणंति** - कहते हैं, **अहरगइगमणं** - अधोगति की ओर गति कराने वाला, **अण्णं** - अन्य भी, **जाइरूवकूलसील** - जाति रूप, कुल, शील, **पच्चयं** - प्रत्ययक-संबन्धी, **मायाणिउणं** - माया में निपुण अथवा माया के कारण, **चवल** - चंचल, **पिसुणं** - पिशुन-चुगलखोर, **परमदुभेयगमसगं** - परमार्थ का भेदन करने वाला असत्य, **विद्देस** - विद्देश, **मणत्थकारगं** - अनर्थकारी, **पावकम्ममूलं** - पापकर्मों का मूल, **दुद्धिं** - दुर्दृष्ट-दुष्ट दृष्टि वाला, **दुस्सुयं** - दुःश्रुत-नहीं सुनने योग्य, **अमुणियं** - अमुणित-अज्ञात, **णिल्लज्जं** - निर्लज्ज, **लोयगरहणिज्जे** - लोक में निन्दित, **वहबंध** - वध और बन्धन, **परिकिलेस** - क्लेश, **बहुलं** - अधिकता से, **जरामरणदुक्ख** - बुढ़ापा और मृत्यु के दुःख, **सोयणिम्मं** - शोक का कारण, **असुद्धपरिणाम** - बुरे भाव, **संकिलिं** - क्लेश का कारण, **भणंति** - बोलते हैं।

भावार्थ - झूठे लोग दूसरों की धरोहर (धन) दबाने के लिए असत्य भाषण करते हैं और दूसरों

⊙ 'मायाणिगुण' पाठ भी है, जिसका अर्थ किया है-निन्दारूप माया युक्त होने के कारण निर्गुण-स्व-पर-हित वर्जित।

पर झूठा दोषारोपण करते हैं। धन में लुब्ध बने हुए वे झूठी साक्षी भी देते हैं। महान् अनर्थकारी ऐसे धन के लिए, कन्या के लिए, भूमि सम्बन्धी और गाय, बैल, भैंस आदि के विषय में झूठ बोलते हैं। ये सभी प्रकार के झूठ अधोगति में ले जाने वाले हैं। इसके अतिरिक्त वे जाति, कुल, रूप और शील के विषय में भी लोगों में असत्य प्रचार करते हैं। कोई माया-निपुण है-लोगों को छल से ठगने में कुशल है, चपल है और कोई चुगलखोर है।

मिथ्या-भाषण परमार्थ (मोक्ष) मार्ग को नष्ट करने वाला है, विद्वेष उत्पन्न करने वाला है, द्वेष वर्द्धक है, अनर्थकारी है और पापकर्मों का मूल है। असत्यवाद और कुदृष्टियुक्त है। मिथ्या-भाषण तो सुनने के योग्य भी नहीं होता। कूड़ भाषण, समझ में नहीं आने योग्य होता है। मिथ्याभाषी लोग लज्जा-रहित होते हैं। वे लोक में निन्दनीय होते हैं। असत्य-भाषण का परिणाम दंड, वध, बन्धन (कारागार) और क्लेश की बहुलता वाला होता है। इसके फलस्वरूप जीव जरा, मृत्यु और शोकजनक अवस्था के दुःख भोगता रहता है। मिथ्या-भाषण बुरे परिणाम तथा संक्लेश का कारण है।

विवेचन - पूर्व सूत्र में दूसरों पर मिथ्या दोषारोपण करने वाले मृषावादियों का परिचय दिया गया है। इस सूत्र में लोभवश छल-प्रपंच कर मिथ्या-भाषण करने वालों का उल्लेख है। जो मृषावादी हैं, वे मायाचारी भी होते हैं। जान-बूझकर बोले हुए झूठ में माया छुपी हुई रहती है। वह माया-मृषा, उस कूटभाषी को अधोगति में ले जाती है। ऐसे मायाचारी लोग मोक्ष-मार्ग के नाशक-लोपक और पापमार्ग के पोषक होते हैं। ऐसे माया-निपुण एवं चालाक लोग सीधे-सादे मनुष्यों को ध्रम में डालकर सत्-पथ से वंचित कर देते हैं। इस प्रकार पाप का फल बहुत दुःखदायक होता है।

असत्य से सत्य=शुभ की प्राप्ति नहीं हो सकती। असत्य से अशुभ ही मिलता है और उसका परिणाम भी अशुभ-दुःखदायक होता है। असत्योच्चारण करते समय मन में माया की काली छाया होती है-कुटिलता होती है। वह मायाचारी दूसरों को संक्लेश-हानि पहुँचाने के लिए मन में जाल बुनता है। उसकी वह मानसिक संक्लेश्यता परिपक्व हो जाने पर खुद को संक्लेशमय (क्लेश से परिपूर्ण) बना देती है-गुणित दर गुणित बढ़कर।

असत्य-भाषण में असत्य लेखन और असत्य संकेत का भी समावेश हो जाता है। जिस प्रकार असत्य-भाषण पाप और दुःखदायक है, उसी प्रकार असत्य लेखन और असत्य संकेत भी है। इनका समावेश भी असत्य-भाषण में ही हो जाता है। अपनी असत्य बात-मुंह से बोलकर सुनाई जाये, पत्र आदि पर लिखकर या संकेत से बताई जाये। इन सब का आशय अपने भाव दूसरों को समझाना है और यह कार्य भाषण के समान लिपि एवं संकेत से भी हो सकता है।

अर्थालीक - अर्थ (धन) सोना, चांदी आदि धातु, रुपया-पैसा आदि सिक्का, मणि, मोती, रत्न, आभूषण, वस्त्रादि, भूमि, घर, गाय, भैंस आदि पशु इत्यादि के लिए झूठ बोलना। स्वार्थवश (मतलब गांठने के लिए) झूठ बोलना।

भोमालीक - भूमि प्राप्त करने अथवा बेचने के लिए झूठ बोलना। अच्छी को बुरी, बुरी को अच्छी बतलाना।

कन्यालीक - कन्या देने या प्राप्त करने में असत्य-भाषण करना, दोष को गुण अथवा गुण को दोष बतलाना।

गवालीक - गाय, भैंस, बैल, घोड़ा आदि पशुओं के विषय में असत्य बोलकर स्वार्थ साधना।

परमार्थ भेदक - परम अर्थ-उत्कृष्टतम प्रयोजन, विशुद्धतम ध्येय अर्थात् मोक्ष का उद्देश्य। आत्मा को परमात्म दशा प्राप्त कराने का लक्ष्य। इस परमार्थ का भेदक=मोक्ष-मार्ग को नष्ट करने वाला। मोक्ष-मार्ग से जीवों को हटाने का प्रयत्न करने वाला। धर्म के नाम से अधर्म का प्रचार करने वाला-परमार्थ-भेद है।

दुर्दृष्ट - जिसकी दृष्टि बुरी है, जो मिथ्यादृष्टि है, जो कुमार्ग दिखाने वाला है। जो अधर्म को धर्म के रूप में देखता और दूसरों को दिखाता है।

दुःश्रुत - जिसके वचन सुनने योग्य नहीं। सत्यवादी एवं धर्मात्मा जिसके वचन सुनना नहीं चाहते।

अमुणियं - अमुणित (अज्ञात) जिसका आशय समझ में नहीं आ सके। मायाचारी झूठे व्यक्ति के शब्दों के पीछे जो भाव होता है, वह सुनने वालों की समझ में नहीं आता।

जरा - बुढ़ापा। वैसे बुढ़ापा सभी लम्बी आयु वालों को आता है, किन्तु पापकर्मों के विशेष उदय वाले जीव के युवावस्था में भी जरा जैसी दशा प्राप्त हो जाती है। वह युवावस्था में भी बुढ़ापे-सी अवस्था का अनुभव करता है। उसका युवावस्था में भी अंग-प्रत्यंग शिथिल, रोगग्रस्त एवं जीर्णरहते हैं। इस प्रकार पापोदय वाले जीवों को जरावस्था का दुःख चिरकाल पर्यन्त रहता है।

उभय-घातक

अलियाहिसंधि-सण्णिविट्ठा असंतगुणुदीरया य संतगुणणासगा य हिंसा भूओवघाइयं अलियं संपउत्ता वयणं सावज्जमकुसलं साहुगरहणिज्जं अहम्मजणणं भणंति अणभिगय-पुण्णपावा पुणो वि अहिगरण-किरिया-पवत्तगा बहुविहं अणत्थं अवमहं अप्पणो परस्स य करेति।

शब्दार्थ - अलियाहि संधि सण्णिविट्ठा - जिनका आशय मिथ्या होता है वे, असंतगुणुदीरया-जिनमें गुण नहीं हैं, उनमें गुण बताने वाले, संतगुणणासगा - जिनमें जो गुण हैं, उनके नाशक-लोपक, हिंसा भूओवघाइयं - जीवों की हिंसा तथा उपघात करने वाले, अलियं संपउत्ता - झूठ बोलने में प्रवृत्त, वयणं - वचन, सावज्जं - सावद्य-पापकारी, अकुसलं - अहितकारी, साहुगरहणिज्जं - सज्जनों द्वारा गर्हित, अहम्मजणणं - अधर्मजनक, भणंति - बोलते हैं, अणभिगय - अनभिज्ञ, पुण्णपावा - पुण्य

और पाप से, पुण्योवि - फिर भी, अहिकरणकिरिया - अधिकरण क्रिया के, पवत्तग्न - प्रवर्तक, बहुविहं- बहुत प्रकार से, अणत्थं - अनर्थ, अवमद्दं - विनाश, अप्पणो परस्स - अपना और दूसरों का, करेति - करते हैं।

भावार्थ - जिनका आशय ही मिथ्या है, ऐसे झूठे लोग अपने प्रिय की झूठी प्रशंसा करते हैं। उनमें जो गुण नहीं है, वे बताकर उन दुर्गुणियों को गुणवान् कहते हैं और गुणवानों को निर्गुणी या दुर्गुणी बताकर सद्गुणों का विनाश करते हैं। अथवा दुर्गुणों को गुण और गुणों को दुर्गुण बता कर सद्गुणों का विनाश करते हैं। जिन वचनों के बोलने से प्राणियों की हिंसा होकर विनाश होता है, ऐसा घातक एवं पापकारी वचन बोलने में वे मिथ्याभाषी लोग तत्पर रहते हैं। जो वचन अहितकारी हैं, सज्जनों द्वारा गर्हित (निन्दित) हैं, अधर्म के उत्पादक हैं, ऐसे मिथ्या वचन बोलते हैं। वे पाप और पुण्य से अनभिज्ञ और अधिकरणों (पापोपार्जन के साधनों) की क्रिया में प्रवृत्ति करने-कराने के प्रवर्तक, बहुत प्रकार से अनर्थ एवं विनाश करते हैं।

विवेचन - जिनका अभिप्राय ही मिथ्या एवं पापपूर्ण है, ऐसे झूठे लोग, सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा, सदाचारी को दुराचारी और दुराचारी को सदाचारी, साधु को असाधु और असाधु को साधु, पाप को पुण्य और पुण्य को पाप, धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म-इस प्रकार बुरे को भला और भले को बुरा कहते-प्रचारित करते रहते हैं।

सद्गुणों का नाश - मृषावादी सद्गुणों का नाशक होता है। वह दुराचारियों को सदाचारी बताकर प्रचारित करता है। भोले लोग उसकी बातों में आकर उस दुराचारी पर विश्वास करके श्रद्धा करते हैं। परन्तु जब उन्हें वास्तविकता का पता लगता है, तो उनके मन से सद्गुणों के प्रति रही हुई आस्था नष्ट हो जाती है। पीतल को सोना बताकर ठगने वाले के प्रति श्रद्धा कब तक रह सकती है? वह ठगाई उसे सच्चे और सदाचारी से भी दूर रखती है। इस प्रकार मृषावादी सद्गुणों का नाशक होता है।

उभय घात - मृषावादी यदि यह समझता हो कि मेरे झूठ बोलने से दूसरे की ही हानि होती है, मेरी कुछ भी हानि नहीं होती, मैं तो लाभ में ही रहता हूँ, तो उसकी ऐसी समझ भी मिथ्या है। सर्वप्रथम उस झूठे एवं खोटे आशय वाले की आत्मा ही मलिन होती है। जिस आत्मा में पापपूर्ण-वंचनायुक्त भाव उठे, वह तो उसी समय पाप का अर्जन करके भारी हो चुकी। दूसरों का अपकार तो उसके बाद की बात है और निश्चित नहीं है। यदि विपक्षी का अहित नहीं होना है, तो वह झूठे मनुष्य की चालबाजी और वाक्-छल में नहीं आ कर बच जाएगा। किन्तु वह मनुष्य तो पापपूर्ण भावना से अपनी आत्मा को भारी बना ही लेगा और उभय-घातक हो जायेगा।

पाप का परामर्श देने वाले

एवमेयं जंपमाणा महिससूकरे य साहिति घायगाणं, ससयपसयरोहिए य साहिति

वागुराणं, तित्तिर-वडुग-लावगे य कविंजल-कवोयगे य साहिति साउणिणं, झस-मगर-कच्छभे य साहिति मच्छियाणं, संखंकेखुल्लए य साहिति मगराणं, अयगर-गोणसमंडलिदव्वीकरे मउली य साहिति वालवीणं, गोहा सेहग सल्लग-सरडगे य साहिति लुद्धगाणं, गयकुलवाणरकुले य साहिति पासियाणं, सुग-बरहिण-मयणसाल-कोइल-हंसकूले सारसे य साहिति पोसगाणं, वहबंधजायणं च साहिति गोम्मियाणं, धण-धण्ण-गवेलए य साहिति तक्कराणं, गामगर-णगरपट्टणे य साहिति चारियाणं, पारघाइ य पंथघाइयाओ य साहिति गंठिभेयाणं कयं च चोरियं साहिति णगरगुत्तियाणं । लंछण-णिलंछण-धमण-दूहण-पोसण-वणण-दवण-वाहणाइयाइं साहिति बहूणि गोमियाणं, धाउ-मणिसिलप्पवाल-रयणागरे य साहिति आगरीणं, पुप्फविहिं फलविहिं च साहिति मालियाणं, अघमहुकोसए य साहिति वणचराणं ।

शब्दार्थ— एवमेयं - इस प्रकार, जंपमाणा - बोलते हुए, महिस - भैंस, सूकरे - सूअर, साहिति-प्रतिपादन करते हैं-कहते हैं, घायगाणं - घातक, ससय-पसय रोहिए - शशक-खरगोश, प्रशय-मृग, रोहित-मृग विशेष, वागुराणं - व्याधों-घातकों को, तित्तिर - तीतर, वडुग - बटेर, लावगे - लावक, कविंजल - कपिंजल, कवोयको - कपोत, साउणिणं - शाकुनिक-शिकारी-पारधि, झस-मगर-कच्छभे - मछली, मगर, कछुए, मच्छियाणं - मछलियों को, संखंके - शंख और अंक-शीप, खुल्लए-धुल्लक-कोडियों को, मगराणं - मगर रगे, अयगर - अजगर, गोणस - गोनस-एक प्रकार का साँप, मंडलि - मंडलाकार गोल पड़ा रहने वाला साँप, दव्वीकरे - दर्वीकर-फणधारी साँफ, मउली - मुकुली-बिना फण वाला साँप, वालवीणं - सपेरे, गोहा - गोह, सेहग - सेहक, सल्लग - शल्यक, सरडगे - गिरगिट, लुद्धगाणं - लुब्ध को, गयकुल - गजकुल, वाणरकुले - वानरकुल-समूह को, पासियाणं - पाश लगाकर पकड़ने वाले, सुग - शुक-तोता, बरहिण - मयूर, मयणसाल - मदनशाल, कोइल - कोकिल, हंसकूले - हंसों का समूह, सारसे - सारस, पोसगाणं - पोषकों को, वहबंधजायणं - वध बन्धन और यातना देने का, गोम्मियाणं - गुप्तिपाल-अपराधी का निग्रह करने वाला कोतवाल, धण-धण्णगवेलए - धन-धान्य और गाय तथा भेड़ आदि के, तक्कराणं - तस्करों को, गामा-गर-णगर-पट्टणे - गांव, आकर, नगर और पट्टन, चारियाणं - गुप्तचरों को, पारघाइ - मार्ग के अन्त में पथिकों को मारने का, पंथघाइ - मार्ग के मध्य में पथिकों को मारने का, गंठिभेयाणं - गांठ काट कर लूटने वाले, कयं - किया हुआ, चोरियं - चोरी को, णगरगुत्तियाणं - नगर-रक्षकों को, लंछण - बैल आदि के अंग काटकर चिह्न बनाना, णिलंछण - बैल, घोड़ा आदि को बधिया करना, धमण - भैंस आदि के पेट में वायु भरना, दूहण - दूध निकालना, पोसण - पोषण करना, वणण - बछड़े आदि का परिवर्तन करना, दवण - अग्नि से जलाना-डाम लगाना, वाहणाइयाइं - वाहन में जोड़ना, बहूणि-

बहुत ही, गोमियाणं - गाय आदि के पालकों को, धाउ-मणि-सिलप्पवालरयणागरे - धातु, मणि, शिला, प्रवाल और रत्नों को, आगरीणं - खान खोदने वालों को, पुष्कविहिं - फूलों की विधि, फलविहिं - फल विधि मालियाणं - मालियों को, अग्घमहुकोसए - मधु की उत्पत्ति का स्थान-मधुकोष तथा मूल्य, वणचराणं - वनचरों को।

भावार्थ - इस प्रकार मृषावादी लोग विवेकहीन होकर भैंसे, सूअर आदि जीवों की घात करने वाले वधियों को साधते हैं, उन्हें परामर्श देते हैं। मृग, शशक आदि अन्य पशुओं को जाल में फँसाकर मारने एवं आजीविका चलाने वाले व्याधों (शिकारियों) को साधते हैं। उन्हें पशुओं को पकड़ने आदि की विधि तथा उनको प्राप्त करने का स्थान बतलाते हैं और उनको ऐसा परामर्श देते हैं कि जिससे उनका कार्य सिद्ध हो जाये अर्थात् शिकारी लोग पशु-वध का पाप सरलता से कर सकें। इस प्रकार की शिक्षा वे मृषावादी जीव देते हैं। पक्षियों का शिकार करने वाले पारधियों को तीतर, बटेर, लावक, कपिंजल, कपोत आदि पकड़ने की चालाकीपूर्ण विधि बतलाते हैं। मच्छ, मगर, कच्छप और मछलियाँ आदि जलचर जीवों को पकड़ने-मारने आदि की शिक्षा देते हैं। समुद्रादि जलाशयों में घुसकर शंख, शीप (जिनमें मोती होते हैं) और कोड़ियाँ प्राप्त करने का परामर्श देते हैं और सपेरों को विविध प्रकार के फणधर या बिना फण वाले साँप, अजगर पकड़ने को तैयार करते हैं। गोह, सेहक, शल्यक आदि भुजपरिसर्प को प्राप्त करने या मारने का मार्ग बतलाते हैं। पक्षियों और हाथियों, बन्दरों आदि को फँसाने की शिक्षा देते हैं। पोषक को तोता, मैना, मयूर, कोकिल, हंस और झारस आदि पक्षियों को प्राप्त कर पोषण करने आदि की विधि बतलाते हैं। आरक्षकों को अपराधियों का वध करने, पकड़ कर बन्दी बनाने और यातना देने की प्रेरणा देते हैं। चोरों और डाकुओं को चोरी और डकैती करके दूसरों का धन-धान्य और गाय-बैल आदि पशु लूट लेने को प्रेरित करते हैं। गुप्त रूप से विचरण कर टोह लेने वाले (और अवसर पाकर लूट लेने वाले) को ग्राम आकर (खान) नगर * और पट्टन आदि का भेद बतलाते हैं। गाँठकट्टों को, पथिकों को मार्ग में ही अथवा मार्ग के अन्त तक पहुँचते घात करने की चालाकी समझाते हैं। नगर रक्षकों को चोरी का भेद बतलाते हैं। गाय, बैल, घोड़ा आदि के अंगोपांग को चीरकर चिह्नित करने, बैल आदि बधिया (नपुंसक) करने, भैंस आदि के पेट में (विशेष दूध प्राप्त करने के लिए) वायु भरने, दूध दुहने पुष्ट बनाने, बछड़े का एक दूसरी गाय आदि से परिवर्तन करने, लोह-शलाका तप्त कर डाम लगाने, गोपालकों को गाड़ी हल आदि में बैलों को जोड़ने आदि अनेक प्रकार की पापकारी बातें बतलाते हैं। खान खुदने वालों को लोहादि धातु, मणि, शिला और प्रवालादि रत्न का स्थान तथा प्राप्त करने की विधि बतलाते हैं। मालियों को विविध प्रकार के पुष्प-फलादि लगाने, उत्पन्न करने और विकसित करने की प्रेरणा करते हैं, विधि बतलाते हैं। वनवासी मनुष्यों को मधुकोष (शहद के छत्ते) जमाने और उनमें से मधु प्राप्त करने की शिक्षा देते हैं।

❖ मूल शब्द 'नकर' है, जिसका अर्थ किया है- 'जहाँ कर (चुंगी) नहीं है।' किन्तु आजकल यह अर्थ लुप्त हो गया है।

विवेचन - जिन मनुष्यों की पाप में रुचि है, जिनके विचार पापमय रहा करते हैं, वे दूसरों को पाप की शिक्षा देने, पाप की विधि बताने और पाप में जोड़ने का प्रयत्न करते रहते हैं। कुछ लोगों की ऐसी आदत होती है कि बिना किसी स्वार्थ के भी पर-पीड़न की प्रेरणा करते रहते हैं। वे विवेक-विकल मनुष्य, अनर्थदण्ड से अपना और दूसरों का अहित करते हैं। बहुत-से लोगों की आजीविका ही ऐसे विशेष प्रकार के पापों से चलती है और बहुत-लोग तो पाप-रुचि के कारण ही पापोत्तेजक परामर्श देते रहते हैं। विवेक की कमी के चलते कई आर्य एवं अहिंसक-परम्परा में उत्पन्न व्यक्ति भी हिंसाकारी वचन बोलते हैं। अनीति एवं दुराचार में प्रवृत्त होने की विधि बतलाते हैं और अकारण ही स्वयं पाप में पड़ते हैं तथा दूसरों को भी पाप में पटकते हैं।

सच्चाईं पि - यदि वह पापी-परामर्श सत्य हो, तो भी वह मृषावादयुक्त है। वैसे परामर्श से इच्छित काम बनता हो, तो भी पापयुक्त-हिंसा एवं दुराचार वाला होने के कारण बोलने योग्य नहीं होता, फिर भी अज्ञानी जन बोलते हैं।

जंताइं विसाइं मूलकम्मं आहेवण-आविंघण-आभिओग-मंतोसहिप्पओगे चोरिय-परदारगमण-बहुपावकम्मकरणं उक्खंधे गामघाइयाओ वणदहण-तलागभेयणाणि बुद्धिविसविणासणाणि वसीकरणमाइयाइं भय-मरण-किलेसदोस जणणाणि भावबहुसंकिलिडुमलिणाणि भूयघाओवघाइयाइं सच्चाइं वि ताइं हिंसगाइं वयणाइं उदाहरंति।

शब्दार्थ - **जंताइं** - उच्चाटनादि करने वाले यंत्रों-मंत्रों अथवा जलयंत्र आदि यंत्रों-कलों, **विसाइं** - विष का, **मूलकम्मं** - जड़ी-बूटी के प्रयोग से गर्भपात करने का, **आहेवण** - आक्षेपण-क्षोभ उत्पन्न करने के लिए, **आविंघण** - आवर्धन-मंत्र प्रयोग से शत्रुता बढ़ाने, **आभिओग** - आभियोग्य-वशीकरण प्रयोग का, **मंतोसहिप्पओगे** - मंत्र और औषधी का प्रयोग करने का, **चोरिय-परदारगमण** - चोरी और पर-स्त्री गमन, **बहुपावकम्मकरणं** - बहुत ही पापकृत्य करने का, **उक्खंधे** - छलपूर्वक विपक्षी सेना-का विनाश करने, **गामघाइयाओ** - गांव के घातक को, **वणदहण** - वन को जलाने, **तलागभेयणाणि** - तालाब को तोड़ने-फोड़ने विषयक, **बुद्धिविसविणासणाणि** - बुद्धि का विनाश करने अथवा विक्षिप्त बनाने वाले विषयों का, **वसीकरणमाइयाइं** - वशीकरण करने वाले मंत्रों का, **भय-मरण-किलेस-दोसजणणाणि** - भय, मृत्यु, क्लेश और दुःख उत्पन्न करने वाले, **भाव-बहुसंकिलिडुमलिणाणि** - अत्यन्त संक्लिष्ट होने के कारण मलिन भाव, **भूयघाओवघाइयाइं** - प्राण, भूत, जीव और सत्व का घात-उपघात करने वाले, **सच्चाइं** - सत्य भी, **ताइं** - उन, **हिंसगाइं** - हिंसाकारी, **वयणाइं** - वचनों को, **उदाहरंति** - कहते हैं।

भावार्थ - वे पाप-भावना वाले दुराशयी लोग, यंत्रों (छोटे जलयंत्रों-फव्वारों) या बड़े यंत्रों-दैत्याकार मिलों आदि स्थापित करने की सलाह देते हैं, उनमें सफलता प्राप्त करने का मार्ग बतलाते हैं अथवा मंत्र-तंत्रादि से किसी को विक्षिप्तादि से हानि पहुँचाने में योग देते हैं। विष-प्रयोग कर कुत्तों, चूहों या मनुष्यादि को मारने-नष्ट करने की प्रेरणा देते हैं। विधवा, कुमारिका अथवा संतान की अनिच्छुक स्त्री का गर्भ गिराने जैसा दुष्ट कर्म करने की विधि बतलाते हैं। जनसमूह में क्षोभ, वैर आदि फैलाने में अपनी वाणी का प्रयोग कर पाप बढ़ाते हैं। वशीकरणादि मंत्र एवं औषधी का प्रयोग कर विपक्ष की हानि करने का गूढ़ परामर्श भी देते हैं। चोर को चोरी करने, व्याभिचारी को व्याभिचार में प्रेरित करने, सेना में विद्रोह भड़काने अथवा विपक्ष से मिलकर स्व-पक्ष को नष्ट करवाने का कुचक्र चलाते रहते हैं। कहीं किसी ग्राम के निवासियों पर रुष्ट होकर, गांव को जलाकर भस्म करने का षड्यंत्र करते हैं, तो कहीं गुप्त रूप से घातकों को भेजकर सोते हुए मनुष्यों को मरवाने की पाप-जाल गूथते हैं। कोई वन को जलाकर साफ करने अथवा वन जलाकर सफाई करने की देवी से मन्त लेने और जला डालने की शिक्षा देते हैं। कोई तालाब, नदी का बांध या अन्य जलाशय तोड़कर पानी बहाने की दुष्ट चाल चलने की उत्तेजना देते रहते हैं, जिससे शत्रु-पक्ष के धन-जन और पशुओं की हानि हो जाये। कोई मंत्र-तंत्र का प्रयोग कर विपक्षी की बुद्धि विकृत करने-नष्ट करने के लिए उकसाते हैं। कोई वशीकरणादि मंत्र साधने का उपदेश करते हैं, कोई मारण-उच्चाटनादि से भय, क्लेश, मारणादि दोष उत्पन्न करने वाले वचनों का व्यापार करते हैं। उनके भाव बहुत ही क्लिष्ट-कलुषित और अत्यन्त मलिन होते हैं। वे दुष्टाशयी लोग, जीवों की घात करने वाले वचनों का व्यवहार करते हैं। कभी उनके वचन सत्य भी हों और उस पाप से उन्हें तात्कालिक पौद्गलिक लाभ हो भी जाता हो, फिर भी उस लाभ की अपेक्षा उन खुद के आत्मा की हानि असंख्य गुनी हो जाती है और दूसरों को दुःख, शोक, परिताप एवं मरण होता है। इस प्रकार तात्कालिक सत्य (अनूकूल दिखाई देने वाला पाप, परिणाम में) तो महान् असत्य (दुःखदायक) ही होता है। अतएव वह यत्किंचित् लाभ भी परिणाम में हानि ही है।

हिंसक उपदेश-आदेश

पुट्टा वा अपुट्टा वा परतत्तियवावडा य असमिक्खियभासिणो उवदिसंति, सहसा उट्टा गोणा गवया दमंतु परिणयवया अस्सा हत्थी गवेलग-कुक्कुडा य किजंतु किणावेह य विक्केह पहय य सयणस्स देह पियह दासी-दास-भयग-भाइल्लगा य सिस्सा य पेसगजणो कम्मकरा य किंकरा य एए सयणपरिजणो य कीस अच्छंति भारिया भे करित्तु कम्मं गहणाइं वणाइं खेतखिलभूमिवल्लराइं उत्तणघणसंकडाइं डञ्जतु-सूडिजंतु या रुक्खा, भिजंतु जंतभंडाइयस्स उवहिस्स कारणाए बहुविहस्स

 य अट्टाए उच्छू दुज्जंतु पीलिज्जंतु य तिला, पयावेह य इट्टकाउ मम घरट्टयाए खेत्ताइं कसह कसावेह य लहुं गाम-आगर-णगर-खेड-कब्बडे णिवेसेह अडवीदेसेसु विउलसीमे पुप्फाणि य फलाणि य कंद-मूलाइं कालपत्ताइं गिणहेह, करेह संचयं परिजणट्टयाए साली वीही जवा य लुच्चंतु मलिज्जंतु उप्पणिज्जंतु य लहुं य पविसंतु य कोट्टागारं ।

शब्दार्थ - पुट्टा वा - पूछने पर, अपुट्टा वा - बिना पूछे, परतत्तियवावडा - दूसरे प्राणियों के तपन-जलन की चिन्ता नहीं करने वाले, असमिक्खियभासिणो - बिना विचारे बोलने वाले, उवदिसंति-उपदेश देते रहते हैं, सहसा - अचानक-एकदम, उट्टा - ऊंट, गोणा - बैल, गवया - गाय या रोझ, दमंतु-दमन करो, परिणयवया - वय प्राप्त-युवावस्था वाले, अस्सा - अश्व, हत्थी - हाथी, गवेलग - भेड़, कुक्कुडा - मुर्गे, किज्जंतु - क्रय करो, किणावेह - क्रय करवाओ, विक्केह - बेच दो, पयह - पकाओ, सयणस्स - स्वजनों को, देहं - देओ, पियह - पियो, दासीदास - दासी दास, भयग - भृत्य, भाइल्लगा - भागीदार, सिस्सा - शिष्य, पेसगजणो - प्रेषकजन-जिन्हें कार्यवश भेजा जाता है, कम्मकरा - कार्य करने वाले, किंकर - किंकर-नौकर, सयणपरिजणो - स्वजन-परिजन, किस अच्छंति - किसलिए रहते हैं? भारिया भे - पत्नी भी, कम्मं - करे, गहणाइं - गहन, वणाइं - वन, खेतखिलभूमिवल्लराइं - हल से जोते या बिना जोते हुए धान बोने के वन, उत्तणघणसंकडाइं - घास से सघन एवं सकड़ी बनी हुई भूमि को, डग्गंतु - जला दो, सूडिज्जंसु - उखड़वाओ, रुक्खा - वृक्षों को, भिज्जंतु - काटो, जंतभंडाइयस्स - यंत्र पात्र आदि को, उवहिस्स - उपकरण, कारणाए - करने के लिए, बहुविहस्स - बहुत प्रकार से, अट्टाए - के लिए, उच्छू - गने को, दुज्जंतु - काटो, पीलिज्जंतु - पीलो, तिला - तिलों को, पयावेह - पकाओ, इट्टकाउ - ईंटें, मम - मेरे, घरट्टयाए - घर बनाने के लिए, खेत्ताइं-कसह कसावेह - खेतों को जोतो और जुतवाओं, लहुं - शीघ्र, ग्राम आगर-णगर-खेड-कब्बडे - ग्राम, नगर, आकर, खेड, कर्बट, णिवेसेह - बसाओ, अडवीदेसेसु - वन प्रदेश-अटवी के खाली स्थान में, विउलसीमे - विपुल-विस्तृत सीमा में, पुप्फाणि - फूल, फलाणि - फल, कंदमूलाइं - कन्द मूल आदि, कालपत्ताइं - यथासमय, गिणेह - ग्रहण करो, करेह संचयं - संग्रह को, परिजणट्टयाए - परिजनों के लिए, साली - शालि, वीही - ब्रीहि, जवा - जौ को, लुच्चंतु - काटो, मलिज्जंतु - मसलो, उप्पणिज्जंतु - उफनो, लहुं - शीघ्र, पविसंतु-भरो, कोट्टागारं-कोठों और घरों में।

भावार्थ - दूसरे जीवों के दुःख संताप का विचार ही नहीं करने वाले और बिना सोच-विचार के ही बोलने वाले अज्ञानीजन पर-पीड़ाकारी वचन बोल देते हैं। किसी के पूछने पर अथवा बिना पूछे ही सहसा उपदेश करते हुए कहते हैं कि - "इस ऊंट या इन ऊंटों का दमन करो, बैल और जंगली पशु रोझ आदि को बाँधो, यह घोड़ा युवावस्था अथवा वाहन के योग्य अवस्था वाला है, यह हाथी, भेड़ और मुर्गा आदि अच्छा है, इसे तुम खुद क्रय कर लो या दूसरे को भेजकर खरीदवा लो, इसे बेच दो,

वह पकाओ और अपने परिवार को दे दो। यह मदिरा पिओ। ये तुम्हारे सेवक, सेविकाएं, दास, भृत्य, भागीदार, शिष्य, सन्देशवाहक और कार्य करने वाले किसलिए हैं? ये आलसी होकर बैठे रहते हैं। तुम इनसे काम क्यों नहीं लेते? तुम अपनी पत्नी से भी काम लो। वह खा-पीकर यों ही पड़ी रहती है।

ये गहन वन और मूंज-कांस आदि से भरे हुए खेतों और बिना जोती भूमि की झाड़ी को आग से जलाकर साफ करो, वृक्षों को कटवा दो, इन वृक्षों की लकड़ी से अनेक प्रकार के पात्र, यंत्र, वाहन और आसनादि साधन बन जायेंगे। गन्ने को काटो और पैर कर रस निकालो, तिलों को पीरलो। घर बनाने के लिए ईंटें पकाओ, खेतों की जुताई करो और नौकरों से भी करवाओ। वन में बहुत लम्बी-चौड़ी भूमि खाली पड़ी है। उस पर गांव बसाओ। वहाँ नगर बसा दो। उस स्थान पर शीघ्र ही खान खुदवाओ और खेड़-कबट बसाओ।

इन फूलों, फलों और कन्दमूल का समय परिपक्व हो चुका है, अब इन्हें तुड़वा-निकलवाकर परिवार के लिए संग्रह करो। शालि, ब्रीहि, जौ आदि धान्य परिपक्व हो गया है। अब इसे काट लो, फिर मसल और उपन कर साफ कर लो तथा अपने कोठों और वखारों में भर दो।

विवेचन - इस सूत्र में पर-पीड़क, परोपघातक उपदेश-आदेश देने वालों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार के आदेश-उपदेश स्वार्थ से भी होते हैं और बिना स्वार्थ के-वाचालता, दाक्षिण्यता, पाप-प्रियता, लोकैषणा, गतानुगतिकता और अज्ञानतादि अनेक कारणों से होते हैं।

स्वार्थवश दास-दासी अथवा परिजनों से आजीविकादि के लिए कार्य करवाना, भरण-पोषणादि के लिए आरम्भ करने का आदेश देना, अपने दुधारु एवं वाहनादि के पशुओं को आवश्यकतानुसार अनुशासन में रखने के लिए बांधने आदि की अनुज्ञा देना-अर्थ-दण्ड है। पाप का सेवन होते हुए भी सीमित मात्रा में-आवश्यकतानुसार हो, तो वह अर्थ-दण्ड है। किन्तु अनावश्यक पर-पीड़क प्रेरणा करना, उपदेश-आदेश देना-अनर्थ दण्ड है।

बहुत-से लोग बिना प्रयोजन के ही अपने-आप दूसरों को परामर्श अथवा आज्ञा देकर पापकर्म करने की प्रेरणा देते हैं। कई अपनी दाक्षिण्यता प्रकट करने के लिए ऐसे परामर्श देकर उनके हितैषी बनने का दिखावा करते हैं। वे यह नहीं सोचते कि मेरी प्रेरणा, मेरे आदेश, अन्य जीवों के लिए कितने दुःखदायक एवं विनाशक होंगे? मैं व्यर्थ ही पापकारी उपदेश-आदेश देकर अन्य जीवों के लिए दुःख, संताप, पीड़ा और मृत्यु का कारण बनूँ? पाप-रुचि के कारण वे ऐसे पर-पीड़क उपदेश-आदेश देते रहते हैं। ऐसे लोग एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों को प्रसन्न रखने के लिए सैकड़ों हजारों यावत् अनन्त जीवों के घातक बन जाते हैं।

देशविरत श्रावक अनर्थ-दण्ड से बचता है और अर्थ-दण्ड भी कम करता है, सर्वविरत श्रमण तो अर्थ और अनर्थ सभी प्रकार के दण्ड-पाप एवं पाप-युक्त वचन से बचता है। जिनकी दृष्टि विशुद्ध नहीं, जो अज्ञान-ग्रस्त हैं, वे वचन-विवेक से रहित हैं।

युद्धादि के उपदेश-आदेश

अप्यमहउक्कोसगा य हम्मंतु पोयसत्था सेण्णा णिज्जाउ जाउ डमरं घोरा वट्टंतु य संगामा पवहंतु य सगडवाहणाइं उवणयणं चोलगं विवाहो जण्णो अमुगम्मि य होउ दिवसेसु करणेसु मुहुत्तेसु णक्खत्तेसु तिहिसु य अज्ज होउ ण्हवणं मुइयं बहुखज्जपिज्जकलियं कोउगं विण्हा-वणगं संतिकम्माणि कुणह सिसि-रवि-गहोवराग-विसमेसु सज्जणपरियणस्स य णियगस्स य जीवियस्स परिरक्खणड्डयाए पडिसीसगाइं य देह दह य सीसोवहारे विविहोसहिमज्जमंस-भक्खण्ण-पाण-मल्लानुलेवण-पईवजलि-उज्जलसुगंधि-धूवावगार-पुप्फ-फल समिद्धे पायच्छित्ते करेह, पाणाइवायकरणेणं बहुविहेणं विवरीउप्पायदुस्सुमिण-पावसउण-असो-मग्गहचरिय-अमं गल-णिमित्त-पडिघायहेउं, वित्तिच्छेयं करेह, मा देह किंचि दाणं, सुट्ठु हओ सुट्ठु छिण्णो भिण्णोत्ति उवदिसंता एवंविहं करेति अलियं मणेण वायाए कम्मुणा य अकुसला अणज्जा अलियाणा अलियधम्म-णिरया अलियासु कहासु अभिरमंता तुट्ठा अलियं करेत्तु होइ य बहुप्पयारं।

शब्दार्थ - अप्य-मह-उक्कोसगा - अल्प मध्यम और उत्कृष्ट-छोटी, मछेली और बड़ी, हम्मंतु - नष्ट कर दो, पोयसत्था - पोतसार्थ-नौकादल अथवा नौका स्थिति जनसमूह, सेणा णिज्जाउ-सेना निकले-प्रयाण करे, जाउडमरं - युद्ध भूमि में जाये, घोरा - भयंकर, वट्टंतु - करे, संगामा - संग्राम, पवहंतु - चलने दो, सगडवाहणाइं - गाड़ियों और वाहनों को, उवणयणं - उपनयन-यज्ञोपवित संस्कार, चोलमं - चूड़ाकर्म-बालक का प्रथम मुण्डन, विवाहो - विवाह, जण्णो - यज्ञ, अमुगम्मि - अमुक, होउ - होना चाहिए, दिवसेसु - दिन, करणेसु - करण में, मुहुत्तेसु - मुहूर्त में, णक्खत्तेसु - नक्षत्र में, तिहिसु - तिथि में, अज्ज - आज ही, ण्हवणं - स्नान, मुइयं - मुदित-प्रमुदित होकर, बहुखज्जपिज्जकलियं - बहुत-से खाद्य और पेय बनाकर, कोउगं - कौतुक-रक्षा के लिए पोटली अथवा सूत्र बन्धन, विण्हावणगं - विस्नापनक-स्नान विशेष, संतिकम्माणि - शांति कर्म, कुणह - करो, सिसि-रवि-गहोवराग - चन्द्र-सूर्य ग्रहण पर, विसमेसु - विषम-अमंगल कारक होने पर, सज्जणपरियणस्स-स्वजन-परिजन के, णियगस्स - निज के, जीवियस्सपरिरक्खणड्डयाए - जीवन की रक्षा के लिए, पडिसीसगाइं - अपने मस्तक जैसा, देह - दो, दह - दो, सीसोवहारे - शीर्षोपहार-मस्तक की भेंट-बलि, विविहोसहि - विविध प्रकार की औषधियाँ, मज्ज-मंस - मद्य और मांस, भक्खण्णपाण - भक्ष्य अन्न-पानी, मल्लानुलेवण - माल्यानुलेपन-सुगन्धित माला और चन्दनादि का विलेपन, पईव जलि - जलता हुआ दीपक-आरति आदि, उज्जल - अत्यंत-उच्च प्रकार का, सुगंधिधूवावगार -

सुगन्धित धूप का आग पर डालना, पुष्प-फलसमिद्धे - पुष्प और फल के साथ, पायच्छित्ते करेह - प्रायश्चित्त करो, पाणाइवायकरणेणं - प्राणातिपात-हिंसा करके, बहुविहेणं - अनेक प्रकार से, विवरीउप्पाय - विपरीत उत्पात, दुस्सुमिण - दुःस्वप्न, पाव सउण - अशुभ शकुन, असोमग्गहचरियं- असौम्य-क्रूर ग्रह चल रहे हैं, अमंगलणिमित्त - अमंगल के निमित्त का, पडिग्घायहेउं - प्रतिघात-नष्ट करने के लिए, वित्तिच्छेयं - वृत्तिच्छेदन-आजीविका नष्ट करना, करेह - कर दो, मा देह - मत दो, किंचि दाणं - कुछ भी दान, सुदुहओ - अच्छा मारा, सुदुच्छिण्णोभिण्णोत्ति - अच्छा काटा और अच्छा भेदन किया, उवदिसंता - उपदेश करते, एवमंविह - इस प्रकार, करेत्ति - करते हैं, अलियं - मिथ्या, मणेणवायाए कम्मणा - मन-वचन और काय-क्रिया से, अकुसला - अकुशल, अणज्जा - अनार्य, अलियाणा - मिथ्याचारी, अलियधम्मणिरथा - मिथ्याधर्म में रत-आसक्त, अलियासु कहासु - मिथ्या कथा में, अभिरमंता - रमण करते हुए, तुद्धा - सन्तुष्ट रहते हुए, अलियं करेत्तु - मिथ्या कार्य करते हैं, बहुप्पयारं - बहुत प्रकार से।

भावार्थ - मिथ्या एवं हिंसक उपदेश-आदेश देते हुए वे अज्ञानीजन कहते हैं कि - 'शत्रुओं की छोटी, मध्यम श्रेणी की और बड़ी नौकाओं को तोड़-फोड़ कर नष्ट कर दो और अपनी सेना को बढ़ाओ, जो समर-भूमि में जाकर घोर संग्राम करें। सैन्य-सामग्री से भरे हुए गाड़े आदि वाहनों को आगे चलने दो।'

'अब बालक का चूड़ाकर्म कर दो। बालक किशोरावस्था में आ गया है, अब इसका यज्ञोपवित्त संस्कार कर दो। तुम्हारा पुत्र अथवा पुत्री विवाह के योग्य हो गए हैं, अब इनका विवाह शीघ्र ही कर दो। अमुक दिन, करण मुहूर्त, नक्षत्र और तिथि में यज्ञ होना चाहिए। सौभाग्य एवं समृद्धि के लिए आज प्रमोदयुक्त स्नान होना चाहिये अथवा संतति वृद्धि के लिए वर्धू को स्नान करवाना चाहिए। विपुल मात्रा में अन्न-पानी आदि भोज्य सामग्री तैयार करवाओ और अभिमन्त्रित जल से स्नान, रक्षाकर्म तथा शांतिकर्म करो। चन्द्र और सूर्य पर राहु का ग्रहण लग गया है। इनके दुष्प्रभाव को नष्ट करने के लिए अनुष्ठान करो। रात्रि में बुरे स्वप्न आये, उन्हें व्यर्थ करने के लिए शांतिकर्म करवाओ। स्वजन-परिजन और अपने निज के जीवन की रक्षा के लिए आटे का मुण्ड (मस्तक) बनाकर महाभाया-चण्डिका को भेंट चढ़ाओ। विविध प्रकार की औषधियों और मद्य-मांस से युक्त भोजन-अन्न-पानी का भोग तथा सुगन्धित माला, चन्दनलेप, धूप-दीप (आरत्रिक) पुष्प-फलादि के साथ बकरे आदि पशु का मस्तक देव को चढ़ाओ। इस प्रकार बहुविध प्राणों का बलिदान कर प्रायश्चित्त करो। तुमने उत्पात देखे हैं, तुम्हें अनिष्टकारी स्वप्न आते हैं, शकुन भी तुम्हें बुरे हुए हैं, तुम पर क्रूर ग्रहों का उपद्रव है। इन सभी अमंगलों एवं अनिष्टकारी संभावनाओं के निवारण के लिए पशु का बलिदान करो।

अमुक की आजीविका नष्ट कर दो। उसे कुछ भी मत दो। तुमने उसे मार-पीटकर अच्छा ही किया है। उसकी नाक-कान आदि काट लिये यह बहुत अच्छा किया। भाले या तीर से उसका भेदन करके तुमने श्रेष्ठ कार्य किया है।'

इस प्रकार मन, वचन और शरीर की अशुभ क्रिया से मिथ्या आचरण करने वाले अनार्य, अकुशल, मिथ्यामत के अनुयायी लोग, असत्य उपदेश करते हैं। वे असत्य-कथा कहते एवं मिथ्या प्रचार करते तथा उन्हीं में लीन रहते हुए सन्तुष्ट रहते हैं और बढ़-चढ़कर, असत्य उपदेश-आदेश करते रहते हैं।

विवेचन - पूर्व सूत्र में वर्णित मिथ्या एवं हिंसक उपदेश-आदेश का वर्णन इस सूत्र में भी हुआ है। इसमें युद्ध को प्रेरणा तथा चूड़ाकर्म, विवाह आदि गृहस्थ सम्बन्धी संस्कार, अनिष्ट ग्रह, अशुभ स्वप्न और शकुन आदि के परिहार एवं शांति के लिए देवी-देवता को भोग-समर्थनादि में अज्ञानी लोगों के द्वारा बोले जाते हुए असत्य वचनों के प्रकार बतलाये गये हैं।

मृषावाद का भयानक फल

तस्स य अलियस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढंति, महब्भयं अविस्सामवेयणं दीहकालं बहुदुक्खं संकडं णरयतिरियजोणिं, तेण य अलिएण समणुबद्धा आइद्धा पुणब्भवंधयारे भमंति भीमे दुग्गइवसहिमुवगया। ते य दीसंति इह दुग्गया दुरंता परवस्सा अत्थभोगपरिवज्जिया असुहिया फुडियच्छवि-बीभच्छ-विवण्णा, खरफरुसविरत्तज्जामज्जूसिसरा, णिच्छाया, लल्लविफलवाया, असक्कयमसक्कया अगंधा अचेयणा दुभगा अकंता काकस्सरा हीणभिण्णघोसा विहिंसा जडबहिरंधया* य मम्मणा अकंतविकयकरणा, णीया णीयजणणिसेविणो लोयगरहणिज्जा भिच्चा असरिसजणस्स पेस्सा दुम्मेहा लोय-वेय-अज्जप्पसमयसुइवज्जिया, णरा धम्मबुद्धिवियला। अलिएण य तेणं पडज्जमाणा असंतएण य अवमाणण-पिट्ठिमंसाहिव्खेव-पिसुण-भेयण-गुरुबंध-वसयण-मित्तवक्खारणाइयाइं अब्भक्खाणाइं बहुविहाइं पावेंति अमणोरमाइं हिययमणदूमगाइं जावजीवं दुरुद्धराइं अणिट्ठ-खरफरुसवयण-तज्जण-णिब्भच्छण दीणवयण-विमणा कुभोयणा कुवाससा कुवसहीसु किलिस्संता णेव सुहं णेव णिव्वुइं उवलभंति अच्चंतविउलदुक्ख-सयसंपलित्ता *।

शब्दार्थ - तस्स - उस, अलियस्स - मिथ्या भाषण का, फलविवागं - फल विपाक को, अयाणमाणा - नहीं जानते हुए, वड्ढंति - बढ़ाते हैं, महब्भयं - महाभयकारी, अविस्सामवेयणं -

* जडबहिरमूया-पाठ भी मिलता है।

* संपउत्ता-पाठ भी है।

विश्राम-रहित-निरन्तर-वेदना-दुःख भोग, दीहकालं लम्बे समय तक, बहुदुःखं - बहुत दुःखों से, संकडं-परिपूर्ण, णरयतिरिजयोणिं - नरक और तिर्यच योनि को, तेण - उस, अलिण्ण - मृषावाद से, समणुबद्धा - बंधे हुए, आइद्धा - उस कर्म से युक्त, पुणब्भवंधयारे - पुनर्भवरूपी अन्धकार में, भमंति-भ्रमण करते रहते हैं, भीमे - भयंकर, दुग्गइवसहिमुवगया - दुर्गति में निवास करते हुए, ते - वे, दीसंति-दिखाई देते हैं, इह - इस लोक में, दुग्गया - दुर्गत-बुरी अवस्था में, दुरंता - उनके दुःखों का कठिनाई से अन्य होता है या नहीं होता, परवस्सा - वे पराधीन रहते हैं, अत्थभोग-परिवर्जिता - अर्थभोग वर्जित-धन और उससे प्राप्त भोगों से वंचित रहते हैं, असुहिया - सुख से रहित, पुडियच्छवि - बिवाई, दाद आदि रोगों से जिनकी चमड़ी छिद-भिद कर विकृत हो गई है, बीभच्छ - बीभत्स-भयानक, त्रिवण्णा-बुरे वर्ण-रूप वाले, खरफरुस विरत्तञ्जामञ्झूसिरा - कर्कश स्पर्श वाले दुर्ध्यानी मलिन एवं निःसार शरीर वाले, णिच्छाया - शोभा से रहित, लल्लविफलवाया - अव्यक्त एवं निष्फल वचन वाले, असक्कयमसक्कया - शरीर के संस्कार तथा सत्कार से रहित-वंचित, अगंधा - सुगन्ध रहित-दुर्गन्धयुक्त, अचेयणा - सुचेतना-सद्बुद्धि से रहित, दुभगा - दुर्भागी, अकंता - अकान्त-अनिच्छनीय, काकस्सरा-कौए के समान अप्रिय स्वर वाले, हिण्णभिण्णघोसा - हीन-अधम एवं भिन्न-अटकती हुई-टूटती हुई बाली वाले, विहिंसा - दूसरों के द्वारा मारे-पीटे जाने वाले, जडबहिरंभया - मूर्ख, बहरे और अन्धे, मम्मणा - अस्पष्ट बोली है जिनकी, अकंतविकयकरणा - अशोभनीय एवं विकृत इन्द्रियों वाले, णीया - नीच, णीयजणसेविणो - नीचे लोगों की संगति वाले, लोयगरहणिज्जा - लोगों द्वारा निन्दित, भिच्चा - भृत्य-नौकर, असरिसजणास्सपेस्सा - अपने से नीचे व्यक्ति के नौकर-गुलाम, दुम्मेहा - दुर्बुद्धि वाले, लोयवेथ-अञ्जप्पसमयसुइवज्जिया - लोकाभिर्भर्ता शास्त्र, वेद शास्त्र, आध्यात्मिक शास्त्र तथा सिद्धान्तों से वर्जित, णरा - नर, धम्मबुद्धिवियला - धर्म बुद्धि से विकल, अलिण्ण - अलिकवाद रूपी अग्नि से, तेण - उस, पडञ्जामाणा - जलते हुए, असंतएण - अशान्त, अवमाणण-अपमान, पिट्ठिमंसाहिक्खेव - पृष्ठिमांस-परोक्ष में दोषारोपण करना, अधिकेष=धिक्कारवाद का पात्र, पिसुणभेयण - चुगलखोरों द्वारा स्नेह सम्बन्ध तुड़वाना, गुरुबंधवसयणमिसवक्खारणाइयाइं - गुरुजन, बान्धवजन-स्वजन और मित्रादि द्वारा दुर्वचनों से अपमानित होते, अब्भक्खाणाइं - दोषारोपण करते, बहुविहाइं - अनेक प्रकार के, पावैति - प्राप्त करते हैं, अमणोरमाइं - अत्यन्त अरुचिकर, हिययमणदूमगाइं - हृदय और मन को दुःखकारी, जावजीवं - जीवन पर्यन्त, दुरुद्धराइं - कठिनता से उद्धार होने योग्य, अणिट्ठुखरफरुसवयण - अत्यन्त अनिष्ट और कठोर वचनों से, तज्जण - तर्जना से, णिब्भच्छण - निर्भत्सना-डांट फटकार से, दीणवयणविमणा - दीनतायुक्त मुख और दुःखित मन, कुभोयणा - कुभोजन, कुवाससा - कुवस्त्र, कुवसहिसु - बुरे स्थान पर रहना, किलिस्संता - क्लेशित होते, णेव सुहं - शरीर सुख नहीं, णुव्वुइं - मानसिक शांति, उवलभंति - प्राप्त होते अच्छंत - अत्यन्त, विउल - विपुल, दुक्खसयसंपउत्ता - सैकड़ों दुःखों से संतप्त बने रहते हैं।

भावार्थ - उस मृषावाद के दुःखदायक फलभोग को नहीं जानते हुए वे मिथ्यावादी लोग, भयंकरतम वेदनायुक्त नरक और तिर्यच गति के अशुभ कर्म बढ़ाते हैं और उन पापकर्मों से बंधे हुए वे वहाँ उत्पन्न होकर दीर्घकाल पर्यन्त दुःख परम्परा से परिपूर्ण जीवन बिताते हैं। वहाँ उन्हें विश्रांति प्राप्त नहीं होती। वे निरन्तर दुःख ही दुःख में पीड़ित होते रहते हैं और पुनर्भव रूपी अन्धकार में भटकते रहते हैं। वे मिथ्यावादी लोग इस लोक में भी दुरावस्था में दिखाई देते हैं उनकी दुःख परम्परा का अन्त नहीं आता। वे सदैव पराधीन ही रहते हैं। वे दरिद्री लोग धन एवं भोग साधनों से वंचित रहते हैं। उनके जीवन में सुख अथवा सुखदायक मित्रादि का योग ही नहीं मिलता। उनके शरीर का स्पर्श-चमड़ी, बिवाई, दाद, खाज, फोड़े और घाव आदि से विकृत तथा फटी हुई रहती है। उनके शरीर का वर्ण भी खराब होता है। स्पर्श भी कर्कश एवं कठोर होता है। शरीर मलिन निःसार दुर्गन्ध युक्त एवं अशोभनीय होता है। उनकी बोली अस्पष्ट, अटकती हुई और हार्दिकभाव स्पष्ट करने में असमर्थ होती है। उनकी वाणी निष्फल होती है। वे सत्कार-सम्मान से रहित तथा अपमानित रहते हैं। उनकी आत्म-चेतना (ज्ञान-चेतना) कुंठित रहती है। वे दुर्भागी (हतभागी) अनिच्छनीय तथा घृणित होते हैं। उनका स्वर कौए के समान अप्रिय होता है। उनकी ध्वनि हीन, धीमी और टूटी-फूटी होती है। वे मूर्ख, बहरे, अन्धे और अशोभनीय तथा विकृत इन्द्रिय वाले होते हैं। वे स्वयं नीच-नीचकुलोत्पन्न होते हैं और उनकी संगति भी नीच लोगों से रहती है। वे लोगों द्वारा घृणित एवं निन्दित होते हैं। वे पापोदय के कारण अपने से भी अधम माने जाने वाले मनुष्य के दास रूप में रहकर जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी बुद्धि भी पाप पूर्ण होती है। उत्तम विचार उनके मन में उत्पन्न ही नहीं होते वे महाभारतादि लौकिक अथवा आचारांगादि लोकोत्तर शास्त्रों एवं सिद्धान्तों से वंचित रहते हैं। उन दुर्बुद्धियों में धर्म सम्बन्धी विचार ही उत्पन्न नहीं होते। वे सदैव अनुपशान्त (अशांत) रहते हुए मिथ्या विचारों की आग में जलते ही रहते हैं। उनका प्रत्येक स्थान पर अपमान होता रहता है। पीठे-पीछे भी उनकी निंदा होती रहती है। उन पर दोषारोपण होते रहते हैं। चुगलखोर लोग उनकी चुगली करके स्नेहियों से सम्बन्ध तुड़वा देते हैं। उनके गुरुजन बन्धु-बान्धव, स्वजन-परिजन और मित्रजन उन्हें कठोर वचन सुनाते रहते हैं। वे मृषावाद रूपी पाप के उदय वाले जीव, उपेक्षणीय एवं घृणित होते हैं। लोग उनके साथ इस प्रकार के वचनों का व्यवहार करते हैं कि जिससे उनके हृदय एवं मन को आघात लगे, संताप उत्पन्न हो, वे खिन्न बने रहें और उन पर कलंक लगे। उनके दुःखों की समाप्ति शीघ्र नहीं होती। वे जीवनपर्यन्त दुःखी रहते हैं। उनका दुःखों से छुटकारा हीना कठिन हो जाता है। वे पापी जीव, दूसरों के द्वारा अत्यन्त कठोर वचनों से डराये-धमकाये और फटकारे जाते हैं। दुःखानुभव से उनका मुख दीन और मन विकल रहता है। उन्हें खाने में भोजन भी अच्छा नहीं मिलता। बुरे अपथ्यकारी एवं पोषणहीन भोजन से वे कुछ क्षुधा बुझाते रहते हैं। उनके पहनने के वस्त्र भी हीन एवं अपर्याप्त होते हैं। उनके रहने का स्थान भी बुरा होता है। वे अनेक प्रकार से क्लेशित रहते और सैकड़ों प्रकार के बड़े-बड़े दुःख सहते हुए संतप्त रहते

हैं। उनके जीवन में न तो कभी शारीरिक सुख होता है और न मानसिक। वे अपने मृषावाद के पाप का दुःखदायक फल भोगते ही रहते हैं।

विवेचन - इस सूत्र में मृषावाद रूपी पाप का दुःखदायक फल बतलाया है। पाप का फल दुःखदायक ही होता है। वह दुःख शारीरिक, वाचिक और मानसिक होता है। अनेक प्रकार की बहुमुखी प्रतिकूलता भी पाप का परिणाम है, और सुख सामग्री रूप धन-धान्यादि का अभाव, दरिद्रता एवं विपन्नता भी। धन-धान्यादि की सम्पन्नता पुण्य का परिणाम है, तो विपन्नता पाप का फल होता है। यह बात भी इस फल-विधान से सिद्ध होती है। जो विचारक कहते हैं कि-धन-धान्यादि की विपन्नता पाप का फल नहीं, उन्हें इस सूत्र में आये हुए-अर्थ-भोग-परिवर्जिता.....दुभगा.....भिच्चा.....पेस्सा कुभोयणा कुवसया कुवसहिंसु आदि शब्दों पर विचार करके अपना भ्रम दूर करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि इच्छित अर्थ-भोगादि पौद्गलिक सामग्री का अभाव भी पाप का फल है। इसके विपरीत इच्छित धनादि की प्राप्ति पुण्य का फल है। इस प्रकार कर्म-सिद्धान्त पर विश्वास रख कर पाप का त्याग करना चाहिए।

भगवान् से कहा हुआ

एसो सो अलियवयणस्स फलविवाओ इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कओ असाओ वास-सहस्सेहिं मुच्चइ, ण अवेयइत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवरणामधेज्जो कहेसि य अलियवयणस्स फलविवागं।

शब्दार्थ - एसो - यह, अलियवयणस्स - मिथ्या वचन का, फलविवाओ - फल-विपाक है, इहलोइओ - इस लोक का, परलोइओ - परलोक सम्बन्धी, अप्पसुहो - सुख नहीं, बहुदुक्खो - बहुत दुःखदायक, महब्भओ - महाभयंकर, बहुरयप्पगाढो - बहुत-सी कर्म रूपी रज से गाढ़ बना हुआ, दारुणो - दारुण, कक्कओ - कर्कश, असाओ - असातारूप, वाससहस्सेहिं मुच्चइ - हजारों वर्षों में छुटकारा हो ऐसा, ण - नहीं, अवेयइत्ता - बिना भुगते, अत्थि हु - होता, मोक्खोत्ति - मुक्ति, एवमाहंसु - इस प्रकार, णायकुलणंदणो - ज्ञात-कुल-नन्दन, महप्पा - महात्मा, जिणो - जिन, वीरवरणामधेज्जो - महावीर नाम से प्रख्यात, कहेसि - कहा, अलियवयणस्स - मिथ्या वचन का, फलविवागं - फल विपाक।

भावार्थ - मिथ्या-भाषण का यह इहलौकिक और पारलौकिक फल-विपाक है। इसमें सुख का तो लेश भी नहीं है और दुःख बहुत ही भरा रहता है। इसका फल महाभयंकर और अत्यन्त कर्मरज से युक्त होता है। पाप का फल अत्यन्त दारुण कठोर और असाता रूप होता है। हजारों वर्षों तक फल भोगने से इससे छुटकारा होता है। बिना फल भोगे पाप के परिणाम से मुक्ति नहीं हो सकती।

ज्ञातृकुल नन्दन, जिनेश्वर, महान् आत्मा भगवान् महावीर ने, मिथ्या-भाषण का यह कटुकतम फल-विपाक कहा है।

विवेचन - मिथ्या-भाषण का महान् अनिष्टकारी फल हजारों-लाखों वर्षों तक अत्यन्त दुःखपूर्वक भोगना पड़ता है। पाप का फल भुगते बिना मुक्ति नहीं हो सकती। मिथ्या-भाषण का अत्यन्त दुःखदायक फल, ज्ञातृ-कुल-नन्दन (ज्ञातृ-कुलोत्पन्न आनंदकारी) महान् आत्मा (परमात्मा) जिनेश्वर भगवान् महावीर ने प्राणियों के हित के लिए बतलाया है। इस पाप का त्याग करने से जीव सुखी होता है।

उपसंहार

एयं तं बिईयं पि अलियवयणं लहुसग-लहुचवल-भणियं भयंकरं दुहकरं अयसकरं वेरकरगं अरइरइ-रागदोस-मणसंकिलेस-वियरणं अलिय-णियडि-साइजोगबहुलं णीयजणणिसेवियं णिस्संसं अप्पच्चयकारगं परम-साहुगरहणिज्जं परपीलाकारगं परमकण्हलेस्ससहियं दुग्गइ-विणिवाय-वड्डुणं पुणब्भवकरं चिरपरिचियमणुगयं दुरुत्तं ।

॥ बिईयं अहम्मदारं समत्तं ॥

शब्दार्थ - एयं - यह, बिईयं - दूसरा, अलियवयणं - मिथ्या-भाषण का, लहुसग-लहुचवलभणियं - छोटे और अति चपल मनुष्यों द्वारा बोला जाता, भयंकरं - भयंकर, दुहकरं- दुःखकारी, अयसकरं - अयश-निन्दाकारी, वेरकरगं - वैर उत्पन्न करने वाला, अरइरइ - अरतिरति, रागदोसमणसंकिलेसवियरणं - राग-द्वेष और मानसिक संक्लेश वर्द्धक, अलियणियडि साइजोग बहुलं- मिथ्यावाद गूढ माया के अत्यधिक प्रयोग वाला है, णीयजणणिसेवियं - नीच लोगों द्वारा सेवित-आचरित है, णिस्संसं - नृशंस-क्रूर है, अप्पच्चयकारगं - अप्रतीतिकारक है, परमसाहुगरहणिज्जं - उत्तम साधुओं द्वारा निन्दित है, परपीलाकारगं - दूसरे जीवों को पीड़ा उत्पन्न करने वाला है, परमकण्हलेस्ससहियं - परम कृष्णलेश्या से युक्त है, दुग्गइ विणिवायवड्डुणं - दुर्गति में गमन शक्ति का बढ़ाने वाला है, पुणब्भवकरं - पुनर्भव कराने वाला है, चिरपरिचियमणुगयं - चिर-लम्बे काल से परिचित-जाना-पहचाना और साथ आने वाला है, दुरुत्तं - कठिनाई से अन्त आने योग्य है, अहम्मदारं - अधर्मद्वार, समत्तं - समाप्त हुआ।

भावार्थ - यह मिथ्या-भाषण रूप दूसरा द्वार है। तुच्छ और चंचल मनुष्यों द्वारा झूठ बोला जाता है। मिथ्या-भाषण भयंकर एवं दुःखदायक है, अयशकारी है, वैर-विरोध बढ़ाने वाला है। अरति-रति-रागद्वेष एवं मानसिक क्लेश बढ़ाने वाला है और गूढतम माया का अधिक प्रयोग कराने वाला है। यह मूषावाद नीच लोगों द्वारा आचरित है, क्रूरतायुक्त है और अप्रतीति (अविश्वास) का जनक है। उत्तम

साधुजनों ने मिथ्या-भाषण की निन्दा की है। झूठ वचन दूसरे जीवों को पीड़ा उत्पन्न करता है। यह परम कृष्णलेश्या से युक्त होता है। इस पाप से दुर्गति की ओर गमन करने की शक्ति बढ़ती है। मिथ्यावाद से भव-परम्परा बढ़ती है। जीव से यह पाप बहुत लम्बे काल (अनादि) से परिचित है और साथ ही चलने वाला है। इसका अन्त आना अत्यन्त कठिन है।

विवेचन - दूसरे अधर्मद्वार का उपसंहार करते हुए सूत्रकार मिथ्या-भाषण की भयंकरता बतलाते हुए पुनः कहते हैं कि सर्वज्ञ-सर्वदर्शी जिनेश्वर भगवंत महावीर द्वारा प्ररूपित यह मिथ्यावाद रूपी पाप भयंकर है। इसका सेवन करने वाले जीवों को अत्यन्त दारुण दुःख भोगना पड़ता है। झूठ बोलने वालों की इस लोक में प्रतीति नहीं होती। उनकी बात पर कोई विश्वास नहीं करता। झूठा व्यक्ति लोक में हीन दृष्टि से देखा जाता है। झूठ से वैर, विरोध, रागद्वेष और क्लेश बढ़ता है। इससे दूसरे जीवों को दुःख होता है। मिथ्या-भाषण, कूड़-कपट और दम्भ के मानसिक दलदल से उत्पन्न होता है। झूठे की भावना अत्यन्त क्लुषित होती है। यह पाप दुर्गति की ओर तीव्रता से ले जाने वाला है। इससे नीचगति में वृद्धि होती है और जन्म-मरण रूपी भव-परम्परा बढ़ती रहती है। पाप और उसका दुःखदायक परिणाम जीव के अनादि काल से साथ ही लगा हुआ है। इस पाप के दुःखदायक फल से छुटकारा होना अत्यन्त कठिन है। उत्तम पुरुषों-श्रेष्ठ साधु-महात्माओं ने मिथ्या-भाषण की निन्दा की है।

चिरपरिचियमणुगयं - चिर परिचित एवं अनुगत-जीव, पाप के साथ अत्रादिकाल से परिचित है और पूर्व का परिचित पाप, वर्तमान में भी पाप की ओर गति करवाता है। यह गति आगे भी बढ़ती रहती है। जीव, पाप से परिचित होने के कारण पाप प्रिय हो जाता है। यह विभाव स्वभाव जैसा बन जाता है और साथ ही लगा रहता है। सम्यग् पुरुषार्थ से ही पाप-परम्परा नष्ट होती है और पाप-परम्परा का उच्छेद ही सुख के भव्य भण्डार का उद्घाटक है।

॥ मृषावाद नामक दूसरा अधर्मद्वार सम्पूर्ण ॥

अदत्तादान नामक तीसरा अधर्मद्वार

अदत्त का परिचय

जंबू! तइयं च अदिण्णादाणं हरदह-मरणभय-कलुस-तासण-परसंतिग-अभेज्ज-लोभमूलं कालविसमसंसियं अहोऽच्छिण्ण-तण्हपत्थाण-पत्थोइमइयं अकित्तिकरणं अणज्जं छिहमंतर-विहुर-वसण-मग्गण-उस्सव-मत्त-प्पमत्त पसुत्त-वंचणक्खवण-घायणपरं अणिहुयपरिणामं तक्कर-जणबहुमयं अकलुणं रायपुरिस-रक्खियं सया साहु-गरहणिज्जं पियजण-मित्तजण-भेय-विविप्पइकारगं रागदोसबहुलं पुणो य उप्पूरसमरसंगामडमर-कलिकलहवेहकरणं दुग्गइविणिवायवड्डुणं-भवपुणब्भवकरं चिरपरिचिय-मणुगयं दुरंतं। तइयं अहम्मदारं।

शब्दार्थ - जंबू - हे जम्बू, तइयं - तीसरा, अदिण्णादाणं - बिना दी हुई वस्तु लेना, हर - हरण करना, दह - जलाना, मरण - मार डालना, भय - डराना, कलुस - क्लेशित करना, तासण - त्रास देना, परसंतिग - पराये धन में, अभेज्ज - रौद्रध्यान युक्त, लोभमूल - लोभ का मूल, कालविसमसंसियं - विषम काल और विषम स्थान में, अहोऽच्छिण्णतण्हपत्थाणपत्थोइमइयं - जिनकी अधोगति की ओर प्रस्थान करने वाली तृष्णा अच्छिन्न है, जिनकी बुद्धि अधोगति में ले जाने वाली है, अकित्तिकरणं - अकीर्ति-गिदा कारक है, अणज्ज - अनार्य है, छिह - छिद्र करना या देखना-भीत में संध लगाना, अंतर - ताक में रहना, विहुरवसणमग्गण - कष्ट एवं उपद्रव करने की योजना अथवा ताक में रहना, उस्सव - लग्नादि उत्सव, मत्तप्पमत्त - मद्यपानादि से मत्त-असावधान, पसुत्त - सोये हुए, वंचणक्खवण - वंचित कर उच्चाटन या धबराहट उत्पन्न कर, घायणपरं - घात करने में तत्पर, अणिहुयपरिणामं - अशान्त परिणाम वाले, तक्करजणबहुमयं - चोर लोगों के द्वारा अतिमान्य, अकलुणं - करुणा से रहित, रायपुरिसरक्खियं - जनरक्षार्थ राज्य-पुरुषों से निषिद्ध, सया साहुगरहणिज्जं - साधुजनों द्वारा सदैव निन्दित, पियजण मित्तजण-भेय-विविप्पइकारगं - प्रिय एवं मित्रजनों से भेद उत्पन्न करने वाला और प्रीति का नाशक, राग दोसबहुलं - राग-द्वेष से भरपूर, पुणो य-फिर यह, उप्पूर - प्रचूर, समरसंगामडमर - जनसंहारक संग्राम एवं विग्रह का स्थान, कलिकलहवेहकरणं - उग्र एवं भयानक क्लेश एवं पश्चात्ताप जनक, दुग्गइ-विणिवायवड्डुणं - दुर्गति का वेग बढ़ाने वाला, भवपुणब्भवकरं - जन्म-मरण बढ़ाने वाला, चिरपरिचिय - चिर-अनादि काल से परिचित, मणुगयं - अनुगत-साथ रहा हुआ, दुरंतं - जिसका अत्यन्त कठिनाई से अन्त हो, अहम्मदारं - अधर्मद्वार।

भावार्थ - गणधर भगवान् सुधर्मा स्वामी जी महाराज अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं - "हे जम्बू! यह अदत्तादान नाम का तीसरा अधर्मद्वार है।" दूसरे की वस्तु का हरण कर लेना, उनके घर, खलिहान आदि जला देना, भयभीत करना, मार डालना आदि पापकर्म के कारण यह अदत्तादान दूसरों के हृदय में क्लेश एवं त्रास उत्पन्न करने वाला है। दूसरे के धन को हरण करने के दुर्ध्यान (रौद्रध्यान) से युक्त लोभ ही इसका मूल है। यह मध्यरात्रि आदि विषम-काल और गहन वन आदि विषम-स्थान की अपेक्षा रखता है। धन-लोभ और उससे उत्पन्न अदत्तादान रूपी पापेच्छा अधोगति की ओर ही बढ़ाने वाली है। उनकी बुद्धि पाप की ओर ही प्रवृत्त रहती है।

अदत्तादान, अकीर्ति (निंदा) का कारण है। अनार्यकर्म है। सदा छिद्रगवेषण एवं ताक-झांक की वृत्ति वाला है। दूसरों की विपत्ति, उपद्रव अथवा कठिनाई का योग ढूँढकर (हाथ मारने वाला है) वह विवाह आदि उत्सवों, मेलों और समारोहों में संलग्न, राग-रंग में मदमत्त बने हुए मनुष्यों में घात लगा कर चोरी करने की इच्छा वाला, नींद में सोये हुए मनुष्यों की वस्तु चुराने वाला घबराहट, व्यग्रता एवं उत्सुकता उत्पन्न करके, अन्यत्र ध्यान लगाकर, अपहरण करने वाला मनुष्यों का जीवन समाप्त कर धन लेने वाला और इस प्रकार के अनेक प्रपंच करके दूसरों का धन-धान्यादि लेने वाला दुष्ट परिणामी होता है।

यह चौर्यकर्म, अन्य बहुत-से तस्करों द्वारा सम्मत है। चोर के मन में करुणा नहीं होती। चोरों से राज्य के जन-धन की रक्षा करने के लिए राज्य-पुरुष (पुलिस) सदैव तत्पर रहते हैं (अथवा राज-पुरुष, जिन पर सदा दृष्टि रखते हैं) चौर्यकर्म, उत्तम पुरुषों द्वारा सदैव निन्दनीय है। चौर्यकर्म अपने इष्ट-मित्र एवं प्रियजनों की प्रीति एवं मैत्री का नाश करने वाला है। राग-द्वेष से भरपूर है। बहुत-से मनुष्यों का विनाश, विग्रह एवं युद्ध का उत्पत्ति स्थान है। भयंकर क्लेश एवं पश्चात्ताप का जनक है। दुर्गति गमन की शक्ति बढ़ाने वाला है। जन्म-मरण से भव-परम्परा बढ़ाने वाला है। यह पाप, संसार-रत आत्मा के अनादि परिचित है और सदा साथ रहने वाला है। इस पाप का अन्त आना अत्यन्त कठिन है। यह तीसरा अधर्मद्वार है।

विवेचन - दूसरे अधर्मद्वार का स्वरूप बतलाने के बाद आगमकार क्रमागत अदत्तादान नामक तीसरे अधर्मद्वार का स्वरूप बतलाते हैं।

अदत्तादान - जिस वस्तु का स्वामी कोई दूसरा हो, जो दूसरों के अधिकार की हो, जिसके लेने से न्याय-नीति का उल्लंघन होता हो और किसी जीव को कष्ट होता हो-वह अदत्तादान है। शास्त्रकारों ने अदत्त के चार भेद बतलाए हैं - १. स्वामी-अदत्त २. जीव-अदत्त ३. तीर्थंकर-अदत्त और ४. गुरु-अदत्त।

१. स्वामी-अदत्त - जिस वस्तु का जो स्वामी हो, उसकी आज्ञा के बिना ही वह वस्तु लेना-स्वामी-अदत्त है।

२. जीव-अदत्त - सजीव वस्तु को ग्रहण करना, काम में लेना, भोगोपभोग करना, सचित्त पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जीवों की विराधना करना, काटना, तोड़ना, मारना यावत् किंचित् भी कष्ट देना-जीव-अदत्त है। उस काय-शरीर के वे जीव स्वामी हैं। उनकी आज्ञा नहीं है कि कोई उन्हें काम में ले। अतएव यह जीव-अदत्त है।

३. तीर्थकर-अदत्त - जिनेश्वर देव की आज्ञा के विपरीत प्रवृत्ति करना, निषिद्धाचरण करना।

४. गुरु-अदत्त - गुरु एवं ज्येष्ठ की आज्ञा एवं मर्यादा के विपरीत आचरण करना। गुरु की अनुज्ञा लिए बिना ही स्वच्छन्द प्रवृत्ति करना।

अदत्तादान का पाप भी हिंसा और मृषा के समान भयंकर है। इसमें पूर्व के दोनों पापों का भी निवास रहता है। इस पाप का मूल लोभकषाय में है। लोभ से ही तृष्णा बढ़ती है और महामोहनीय कर्म रूप घोर पाप करवा देती है। यह अदत्तग्रहण सामान्य वस्तु से-एक तिनके से लगाकर राष्ट्रव्यापी होता है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की भूमि एवं राज्य हड़पने के लिए तत्पर रहता है, भयंकर युद्ध करते हैं और लाखों करोड़ों मनुष्यों का विनाश कर देते हैं। अदत्तादान पाप की भयंकरता सूत्रकार स्वयं बतला रहे हैं।

अदत्त के तीस नाम

तस्स य णामाणि गोण्णाणि होति तीसं तं जहा-१. चोरिककं २. परहडं ३. अदत्तं ४. कूरिकडं ५. परलाभो ६. असंजमो ७. परधणम्मि गोही ८. लोलिककं ९. तक्करत्तणं त्ति य १०. अवहारो ११. हत्थलहुत्तणं १२. पावकम्मकरणं १३. तेणिककं १४. हरणविप्पणासो १५. आदियणा १६. लुंपणा धणाणं १७. अप्पच्चओ १८. अवीलो १९. अक्खेवो २०. खंवो २१. विक्खेवो २२. कूडया २३. कुलमसी य २४. कंखा २५. लालप्पणपत्थणाय २६. आससणाय वसणं २७. इच्छामुच्छाय २८. तणहागोही २९. णियडिकम्मं ३०. अप्परच्छंति वि य। तस्स एयाणि एवमाईणि णामधेज्जाणि होति तीसं अदिण्णादाणस्स पावकलिकलुस-कम्मबहुलस्स अणोगाइं।

शब्दार्थ - तस्स - उसके, णामाणि - नाम, गोण्णाणि - गुणनिष्पन्न, होति - हैं, तीसं - तीस, तं जहा - जैसे - १. चोरिककं - चौरिक्य-चुराना-चोरी का कार्य करना, २. परहडं - परहत-दूसरों के द्रव्य का हरण करना, ३. अदत्तं - अदत्त-बिना दिये ही दूसरे की वस्तु लेना, ४. कूरिकडं - क्रूरकृत-क्रूरतापूर्ण कार्य, ५. परलाभो - परलाभ-पराये लाभ को अपना बना लेना-पर-द्रव्य को प्राप्त करना, ६. असंजमो - असंयम-दुराचार-सदाचार का नाश, ७. परधणम्मि गोही - परधन गृद्धि-पराये धन में आसक्त, ८. लोलिककं - लौल्य-पर-द्रव्य में लोलुपता ९. तक्करत्तणं त्ति य - तस्करता, १०. अवहारो-अपहार-पराई वस्तु को गुप्त रूप से लेकर अपनी बनाना, ११. हत्थलहुत्तणं - हस्तलघुत्व-हाथ की सफाई से-चालाकीपूर्वक लूटना, १२. पावकम्मकरणं - पापकर्म करण-पापाचरण करना, १३. तेणिककं -

स्तेनिका-चौर्यकर्म, १४. हरणविष्णुणासो - हरणविष्णुणास-दूसरे के धन का हरण करके नष्ट करना, १५. आदियणा - आदान-स्वामी की अनुमति बिना लेना, १६. लुंपणा धणाणं - धनलोपन-दूसरे के धन को हरण करके छुपा देना १७. अप्पच्चओ - अप्रत्यय-अविश्वास १८. अवीलो - अवपीड़न-दूसरों को पीड़ा उत्पन्न करने वाला १९. अक्खेवो - आक्षेप-दूसरे के हाथ से द्रव्य का हरण करना, २०. खेवो-क्षेप-दूसरे से धन लेकर फेंकना २१. विक्खेवो - विक्षेप-दूसरे के धन को विशेष रूप से अपने स्थान पर डालना, २२. कूडया - कूटता-कपटतायुक्त द्रव्य हरण २३. कुलमसी य - कुलमपी-कुल को कलंकित करने वाला, २४. कंखा - कांक्षा-पर-द्रव्य की इच्छा २५. लालप्पणा पत्थणाय - लालपन प्रार्थना-चोरी करके स्वीकार नहीं करना और दीन वचनों से प्रार्थना करना २६. आससणाय वसणं - आशसनाय व्यसन-मृत्यु जैसे भय का जनक व्यसन-भयंकर लत २७. इच्छामुच्छाय - इच्छा मूर्च्छा-चौर्यकर्म करने की घृणित इच्छा एवं आसक्ति २८. तण्हागेही - तृष्णागृद्धि-पर वस्तु प्राप्त करने की अत्यन्त आसक्ति एवं लुब्धता २९. णियडिकम्मं - नियतिकर्म अथवा निकृतिकर्म-कूड कर्म-मायाचार, ३०. अप्परच्छंति वि य - अपरोक्ष-धनवान् के परोक्ष में किया जाने वाला कुकर्म, एयाणि - ये, एवमाईणि- इस प्रकार के इत्यादि, णामधेजाणि - नाम, अदिण्णादाणस्स - अदत्तादान के, पावकलिकलुस - विग्रह और क्लेश की कालिमायुक्त पाप, कम्मबहुलस्स - कर्मबन्ध की अधिकता वाला-अशुभ कर्म का भण्डार, अणेगाईं - अनेक नाम।

विवेचन - इस सूत्र में अदत्तादान रूपी पाप के गुण-निष्पन्न तीस नाम बताये गये हैं। अन्त में आगमकार ने कहा है कि इसी प्रकार इस पापकर्म को बताने वाले अन्य नाम भी हो सकते हैं। किन्तु वे होंगे इसके पापी-कृत्य एवं उसके परिणाम को विभिन्न अपेक्षाओं से बताने वाले।

अब आगे के सूत्र में चौर्यकर्म करने वाले का वर्णन किया जाता है।

चौर्यकर्म के विविध प्रकार

ते पुण करंति चोरियं तक्करा परदव्वहरा छेया, कयकरणलद्धलक्खा साहसिया लहुस्सगा अइमहिच्छलोभगच्छा दहरओवीलका य गेहिया अहिमरा अणभंजग-भग्गसंधिया रायदुडुकारी य विसयणिच्छूढ-लोकबज्जा उहोहग-गामघायग-पुरघायग-पंथघायग-आलीवग तित्थभेया लहुहत्थसंपउत्ता जूडकरा खंडरक्ख-त्थीचोर-पुरिसचोर-संधियेच्छा य गंधीभेयग-परधण-हरण-लोमावहारा अक्खेवी हडकारगा णिम्महगगूढ-चोरग-गोचोरग-अस्सचोरग दासीचोरा य एकचोरा ओकडूग-संपदायग-उच्छिपग-सत्थघायग-बिलचोरीकारगा * य णिग्गाहविष्पलुंपगा बहुविहतेणिवक्क-हरणबुद्धी एए अण्णे य एवमाईं परस्स दव्वाहि जे अविरया।

* 'बिलकोलीकारगा' - पाठ भेद।

शब्दार्थ - पुण - फिर, करेति - करते हैं, चौरियं - चोरी, तक्करा - तस्कर-चोर, परदव्य-हरा-पराये द्रव्य का हरण करने वाले, छेया - चोरी में निपुण, कयकरणलद्धलवखा - चौर्यकर्म करने के अभ्यासी एवं अवसर के जानने वाले, साहसिया - साहसिक-हिम्मतवान, लहुस्सगा - तुच्छता से युक्त, अइमहिच्छ लोभगच्छा - अत्यन्त तृष्णा वाले, लोभ में गृद्ध, दहरओवीलका - बोलने और दूसरों पर विश्वास जमाने में चतुर, गेहिया - पराये धन में गृद्ध, अहिमरा - सामने आये हुए को मारने वाले, अणभंजग - लिये हुए ऋण को नहीं लौटाने वाले, भग्गसंधिया - सेंध लगाने वाले-अथवा दिये हुए वचन को तोड़ने वाले, रायदुडुकारी - राज्य-भंडार लूटने वाले अथवा राज्य के विरुद्ध आचरण करने वाले, विसयणिच्छूडलोकबञ्जा - देश से निकाले हुए, जनता द्वारा बहिष्कृत, उद्दोहग - जनद्रोही, घातक अथवा वन को जलाने वाला, गामघायग - ग्राम को नष्ट करने वाले, पुरघायग - नगर विध्वंसकारी, पंथघायग - पथिकों को मारने वाले, आलीवग - घरों में आग लगाने वाले, तित्थभेया - तीर्थभेदक-तीर्थ-यात्रियों को लूटने वाले अथवा नदी आदि के घाट को नष्ट करने वाले, लहुहत्थसंपडत्ता - हाथ की सफाई से लूटने वाले, जूइकरा - जुआ खेल कर धन हरने वाले, खंडरक्खत्थीचोर - खंड-रक्षक-चुंगी अधिकारी भी चोरी करते हैं और स्त्री भी चोरी करती है, पुरिसचोर - पुरुष भी चोर होते हैं, संधिच्छेया-घरों में सेंध लगाकर चोरी करते, गंधीभेयग - गाँठ खोलकर या जेब काटकर चोरी करने वाले, परधणहरण - पराये धन का हरण करने वाले, लोमावहारा - प्राण लूटकर धन लेने वाले, अक्खेवी - मंत्रादि से अभिभूत-विश्वस करके-भ्रमित करके लूटने वाले, हडकारगा - बल से दबाकर-जबरन लूटने वाले, गिम्महग - मनुष्यों का मर्दन करके चोरी करने वाले, गूढचोरग - गुप्त रूप से-प्रच्छन्न रहकर लूटने वाले, गोचोरग - गाय-बैल चुराने वाले, अस्सचोरग - घोड़ों को चुराने वाले, दासीचोरग - दासी के चोर, एकचोर - अकेले ही चोरी करने वाले, ओकहुग - दूसरे चोरों को भी साथ लेकर डाका डालने वाले, संपदायग - चोरों को भोजनादि देकर चोरी के लिए प्रेरित करने वाले, उच्छियग - चोरों को या चोरी के धन को छुपाने वाले, सत्थघायग - सार्थ के घातक, बिलचोरी कारगा - गीदड़ आदि की बोली-बोलक-भय उत्पन्न कर लूटने वाले अथवा विश्वासोत्पादक वचन बोलकर लूटने वाले, गिग्गाहविप्पलुंपगा - जो राज्याधिकारियों से भी पकड़े नहीं जा कर तथा धोखा देकर बच जाते हैं, बहुविहतेणिककहरणबुद्धि - अनेक प्रकार से चोरी करने में जिनकी बुद्धि तीक्ष्ण है, एए - ये, अण्णे-अन्य, एवमाइ - इसी प्रकार, परस्स दव्वाहि - दूसरों के द्रव्य से, जे अविरया - जो विरत नहीं।

भावार्थ - चोरी करने वाले पराये धन को उड़ाने में निपुण होते हैं। वे चौर्यकर्म के अभ्यासी तथा उचित अवसर के ज्ञाता होते हैं। वे साहसिक होते हैं। उनकी भावना अत्यन्त भ्रुद होती है। वे अत्यन्त लोभी होते हैं। वे मीठे या अनुकूल वचन बोलकर और विश्वास जमा कर दूसरों को उगने में बड़े कुशल होते हैं। उनकी रुचि एकमात्र धन में ही होती है। कोई सामने आने वालों को लूटता है, कोई ऋण लेकर (या ब्याज का लोभ देकर) दूसरों का धन दबा लेते हैं। कोई दूसरों के घरों में सेंध लगा

(दीवार फोड़) कर चोरी करते हैं, कोई राज्य-भण्डार लूटते हैं (अथवा राज्य के नियम को लोप कर द्रव्य हरण करते हैं)। ऐसे चोरों को देश निकाला दिया जाता है और जनसाधारण से भी वे बहिष्कृत हो जाते हैं। चोर लोग अपना आतंक जमाने के लिए अथवा अपनी सुविधा के लिए वन को जला देते हैं। कोई चोर ग्राम को उजाड़ देते हैं। कोई डाकुओं का समूह नगर का ध्वंश कर देता है। कई बटमार हो कर पथिकों को लूटते हैं। कई चालाक मनुष्यों का ध्यान हटाने के लिए किसी घर में आग लगा देते हैं और जब लोग आग बुझाने जाते हैं, तब वे सूने घरों में लूट लेते हैं। कोई तीर्थयात्री बनकर अन्य यात्रियों को लूट लेते हैं। कोई हाथ की सफाई में इतने चतुर होते हैं कि दृष्टि के सामने चोरी कर लेने पर भी मालूम नहीं होने देते। कई द्युत खेलकर चालाकी से दूसरों का धन मार डालते हैं। कई चुंगी अधिकारी, जनरक्षक या कोषाधिकारी होकर भी चोरी करते हैं। कई स्त्रीवेश में चोरी करते हैं अथवा स्त्रियों से चोरी करवाते हैं अथवा स्त्रियों को उड़ाकर और उन्हें बेचकर धन प्राप्त करते हैं। कोई पुरुष का हरण कर धन की मांग करते हैं। कई गांठ और जेब काटकर धन उड़ा लेते हैं। कई निर्दयी चोर, मनुष्यों के प्राण लेकर ही धन लेते हैं।

कोई मंत्रादि से बुद्धि विभ्रम करके लूट लेते हैं। कोई अधिकारी अपने अधिकार का दबाव डालकर धन निकलवाते हैं। कोई मनुष्यों के मर्म स्थानों का मर्दन कर संज्ञा-शून्य करके लूट लेते हैं। कई चोर गुप्त रहकर (दूसरों के द्वारा) लूटते हैं। कोई गाय चुराते हैं, तो कोई घोड़े चुराते हैं। कुछ चोर दासियों को चुरा लेते हैं। कई चोर अकेले ही चोरी करते हैं और कई दूसरे को साथ लेकर चोरी करते हैं या अन्य चोरों से चोरी करवाते हैं। कुछ लोग स्वयं तो चोरी करने नहीं जाते, किन्तु चोरी करने वालों के सहायक बनते हैं। उन्हें भोजनादि देते हैं और चोर या चोरी के माल को छुपाते हैं। कुछ डाकू, व्यापारियों के सार्थ को लूटते हैं। कोई गीदड़ की बोली बोलकर भय उत्पन्न करके लूटते हैं। वे भागने और छुपने में इतने कुशल होते हैं कि राज्याधिकारियों की पकड़ में भी नहीं आते। चोर लोग अपने चौर्यकर्म में दक्ष एवं निपुण होते हैं। ये और अन्य अनेक प्रकार के चोर होते हैं। उन चोरों को दूसरों का द्रव्य हरने-अदत्त ग्रहण करने का त्याग नहीं होता।

विवेचन - उपरोक्त सूत्र में चोरों को चौर्यकर्म के प्रकार बतलाये हैं।

तित्थभेया - तीर्थयात्रियों को लूटने वाले अथवा तीर्थ स्थानों पर रहकर यात्रियों का धन चुराने वाले अथवा तीर्थ-यात्रियों के समूह से किसी को पृथक् कर लूटने वाले। तीर्थ स्थान को भंग कर तीर्थ के धन का हरण करने वाले। नदी आदि जलाशय के घाट को तोड़ने वाले।

खण्डरक्षक - खण्डरक्षक-चुंगी अधिकारी। यहाँ विभागाधिकारी, जनरक्षक और कोषरक्षक भी ग्रहण किये जा सकते हैं। रक्षक पद पर रहकर जो चोरी करते-करवाते व घूस लेते हैं, वे इस भेद में चोर हैं।

स्त्रीचोर - स्त्रियाँ भी चोरी करती हैं। स्त्रियाँ स्त्रीसमूह में मिलकर अथवा पुरुष को मोहित कर

चोरी करती है अथवा स्त्री रूप बनाकर चोरी करना या स्त्रियों को उड़ाकर ले जाना और अन्यत्र बेचकर धन प्राप्त करना।

पुरुषचोर - पुरुषों का हरण करके उसके घर वालों से धन प्राप्त करना।

हडकारग - हठपूर्वक धन निकलवाने वाले। अपने अधिकार का प्रभाव डालकर अथवा किसी प्रकार का आरोप लगाकर धन हड़पना-घूस (लांच) लेना।

गूढचोर - प्रच्छन्न चोर। स्वयं गुप्त रहकर चोरी करने वाला, जिस पर किसी का सन्देह भी नहीं हो सके।

गोचोर - गाय का चोर। यहाँ गाय, बैल, भैंस आदि पशु भी ग्रहण किये जा सकते हैं और भेड़-बकरी भी। कुक्कुट चोर भी इसी भेद में आ सकते हैं।

दासीचोर - किसी रूपवान् दासी का हरण करने वाले अथवा स्त्री का हरण कर दासी रूप से रखने वाले अथवा दासी रूप में बेचकर धन प्राप्त करने वाले। इस भेद में दासचोर भी आ सकते हैं। गुलामों की बिक्री के चलते ऐसी चोरियाँ बहुत होती थीं। कहीं-कहीं बच्चे उड़ाने की घटनाएं भी होती हैं, यह भी इसी भेद में है।

धन के लिए राजाओं का आक्रमण

विउलबलपरिगहा य बहवे रायाणो परधणम्मि गिद्धा सए व दब्बे असंतुद्धा परविसए अहिहणंति ते लुद्धा परधणस्स कज्जे चउरंगविभत्त-बलसमग्गा णिच्छियवर-जोहजुद्धसद्धिय-अहमहमिइदप्पिएहिं सेण्णेहिं संपरिवुडा पउमसगडसूइचक्कसागर-गुरुलवूहाइएहिं अणिएहिं उत्थरंता अभिभूय हरंति परधणाइं।

शब्दार्थ - विउलबलपरिगहा - विपुल बल एवं परिवार से युक्त, बहवे - बहुत से, रायाणो - राजा, परधणम्मि - पराये धन में, गिद्धा - गृह-आसक्त, सए व दब्बे - अपने द्रव्य में, असंतुद्धा - असंतुष्ट, परविसए - दूसरों की भूमि के विषय में, अहिहणंति - आक्रमण करते हैं, हनन करते हैं, लुद्धा - गृह, कज्जे - कार्य में, चउरंगविभत्तबलसमग्गा - हाथी, घोड़े, रथ और पदाति इस प्रकार चार अंगों से युक्त सेना का वर्ग बनाकर-व्यूह रचकर, णिच्छियवरजोहजुद्धसद्धिय - निश्चित-विश्वस्त योद्धाओं को साथ लेकर लड़े जाने वाले, युद्ध में प्रीति रखने वाले, अहमहमिइदप्पिएहिं - "मैं वीर हूँ"- इस प्रकार गर्वोक्ति से युक्त, सेण्णेहिं संपरिवुडा - सेना से युक्त होकर, पउमसगडसूइचक्कसागरगुरुलवूहाइएहिं - पद्मव्यूह, शकटव्यूह, शूचिकाव्यूह चक्र व्यूह सागरव्यूह और गरुड़व्यूह आदि की रचना करते हैं, अणिएहिं - अपनी सेना के द्वारा, उत्थरंता - शत्रु सेना को चारों ओर से घेर लेते हैं, अभिभूय - पराजित करके, हरंति - हरण करते हैं, परधणाइं - दूसरे के धन को।

भावार्थ - राजा-महाराजा भी अपने प्राप्त धन एवं राज्य में संतुष्ट नहीं रहकर दूसरे राजाओं के

धन एवं राज्य में लुब्ध हो जाते हैं। वे बल और विशाल परिवार सहित दूसरे देश एवं राज्य का घात करने में तत्पर होते हैं। वे अपने विश्वस्त योद्धाओं को साथ लेकर युद्ध करने की तैयारी करते हैं। हाथियों, घोड़ों, रथों और पदाति रूप चतुरंगिनी सेना को लेकर वे दूसरे के राज्य पर चढ़ाई करते हैं। 'मैं वीर हूँ, योद्धा हूँ, अजेय हूँ' - इस प्रकार का गर्व करने वाले सैनिकों के साथ वे युद्ध करने के लिए प्रयाण करते हैं। फिर पद्मव्यूह, शकटव्यूह, शूचिकाव्यूह, चक्रव्यूह, सागरव्यूह और गरुड़व्यूह आदि व्यूह की रचना करके शत्रु-सेना को चारों ओर से घेर लेते हैं और पराजित करके उसकी संपत्ति का हरण कर लेते हैं।

विवेचन - राजाओं का अपनी सम्पत्ति, वैभव एवं राज्य-सीमा का अतिक्रमण करके दूसरे राज्य की सीमा एवं संपत्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न करना भी डाकूपन है। राज्य-लिप्सा के कारण वे युद्ध की रचना करते हैं। हजारों-लाखों मनुष्यों और हाथी-घोड़े आदि पशुओं को मार डालते हैं। अन्य चोर छुपकर चोरी करते हैं, तब राजा-महाराजा प्रकट रूप से आक्रमण करके दूसरे राज्य की सम्पत्ति और भूमि लूटते हैं। अपनी प्राप्त सम्पत्ति, वैभव और राज्य सीमा में संतुष्ट नहीं रहकर दूसरों की सम्पत्ति एवं राज्य पर ललचना और आक्रमण करके लूट लेना भी अदत्त ग्रहण रूप पाप है।

युद्ध के लिए शस्त्र-सज्जा

अवरे रणसीसलद्धलक्खा संगामंसि अइवयंति अण्णद्धबद्धपरियर-उप्पीलिय चिंधपट्टगहियाउहपहरणा माढिवर-वम्मगुंडिया, आविद्धजालिया कवचकंकडइया उरसिरमुह-बद्ध-कंठतोणमाइयत्तिवरफलहर-चिय-पहकर-सरहसरखरचावकरकरंछिय-सुणिसिय-सरवरिसचडकरगमुयंत-घणचंड-वेगधाराणिवायमगे अणेगधणुमंडलग-संधिवा-उच्छलियसत्तिकणग-वामकरगहिय-खेडगणिम्मल-णिककट्टुखग्ग-पहरंत-कौत-तोमर-चक्क-गया-परसु-मूसल-लंगल-सूल-लउल-भिंडमाला-सब्बल-पट्टिस-चम्पेट्टु दुघण-मोट्टिय - मोगगर-वरफलह - जंत-पत्थर-दुहण-तोण-कुवेणी-पीढकलियईलीप-हरण-मिलिमिलिमिलंत-खिप्पंत-विज्जुजल-विरचिय-समप्पहणभतले फुडपहरणे महारणसंखभेरिवरतूर-पउर-पडुपहडाहयणिणाय-गंधीर-पांदिय पक्खुभिय-विउलघोसे हय-गय-रह-जोह-तुरिय-पसरिय-उद्धतत-मंधकार-बहुले कायर-णर-णयणहिययवाउलकरे।

शब्दार्थ - अवरे - दूसरे कुछ राजा, रणसीसलद्धलक्खा - अनेक संग्रामों में विजय प्राप्त किये हुए, संगामंसि - संग्राम में, अइवयंति - स्वयं जाते हैं, अण्णद्धबद्धपरियर - सन्नद्ध-युद्ध सामग्री से सज्ज और बद्धपरिकर-कवच और पट्ट से बद्ध-रक्षित हो, उप्पीलियचिंधपट्ट - मस्तक पर चिह्न पट

बांधकर, गहियाउहपहरणा - शस्त्र ग्रहण करते हैं, माडिवरवम्मगुंडिया - रक्षा के कवच आदि उत्तम साधन से शरीर को वेष्टित करते हैं, आविद्धजालिया - लोह कंचुक-जालिका से वेष्टित होता है, कवयकंकडइया - लोहे का कांटेदार कवच धारण करते हैं, उरसिरमुहबद्धकंठतोण - उनकी पीठ पर ऊँचे मुँह वाले बाणों से भरा हुआ तूणीर बंधा रहता है, माइयत्ति - इस प्रकार वे युद्ध में आते हैं, वरफलहरचिय-पहकर-सरहसखरचावकर करंछिय सुणिसिय सरवरिस-चडकरगमुयंत-घणचंड-वेगधारा णिवायमग्गे - ढाल आदि से युक्त, सेना की रचना करके, हर्ष एवं वेग युक्त, हाथ में अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र लेकर, भयंकर शब्द करते हुए अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से इस प्रकार करते हैं कि जैसे अत्यन्त तेज धारा के साथ मेघ बरस रहा हो, अणेगधणुमंडलग्ग-संधिवा-उच्छलिय-ससिकणग - अनेक धनुष, बहुत-सी तलवारों और बहुत-से त्रिशूल और बाण, शत्रु पर प्रहार करने के लिए ऊपर उठे हुए दिखाई देते हैं, वामकरगहियखेडग - बायें हाथ से ढाल ग्रहण कर, णिम्मलणिककडुखग्ग - तीक्ष्ण निरावरण एवं चमकते हुए क्रूर खड्ग लिए हुए योद्धा, पहरंत-कोंत-तोमर-चक्क-गया-परसु-मूसल-लंगल-सूल-लउल-भिंड-माला - प्रहार करने में तत्पर ऐसे-कुन्त, तोमर, चक्र, गदा, कुठार, मूसल, हल, शूल, लाठी, भिंडमाल, सब्बल-पट्टिस-चम्पेडु-दुघण-मोद्धिय-मोगगर - भाला, पट्टिस, चर्मपट्ट-चमडे से मढ़ा हुआ पाषाणमय शस्त्र मुद्गर, मौष्टिक से, वरफलिह-जंत-पत्थर-दुहण-तोण-कुवेणी-पीढकलिय - परिघ, यंत्रपत्थर-गोफण आदि से फेंके गये पत्थरों से दुघण-मुद्गर विशेष शरधि, कुवेणी-पीढकलित-पीठ यंत्र से युक्त, ईलीपहरण - दुधारी तलवार, भिलिमिलिमिलंत खिप्यंत विजुज्जल विरचिय समप्पहणभतले - अत्यन्त चमकीले, प्रभायुक्त तथा आकाश में चमक कर गिरती हुई बिजली के समान चंचल दिखाई देने वाले, फुडपहरणे - शस्त्र स्पष्ट दिखाई देते हैं, महारण - बड़े संग्राम में, संखभेरि वर-तूर-पउर-पडुपहडाहयणिणाय-गंभीरणंदिय-शंख, भेरी, तूर्य्य और ढोल नगाड़े आदि के बजाने से निकली हुई गम्भीर ध्वनि से हर्षित, पवखुभिय-विउल घोसे - वीरों के सिंहनाद से तथा क्षुभित हुए कायरों की चित्कारी और आर्तनाद से कालोहलपूर्ण, हय-गय-रह-जोह-तुरिय-पसरिय-उद्धत-तमंधकार बहुले - दौड़ते हुए घोड़े, हाथी, रथ और योद्धाओं के पांवों से उठी हुई धूल के कारण आकाश में व्याप्त हो जाने से संग्राम भूमि अन्धकार से परिपूर्ण होती है, कायर-णर-णयण-हिययवाउलकरे - वह युद्ध भूमि कायर मनुष्य के हृदय और नेत्र को व्याकुल कर देती है।

भावार्थ - कई युद्ध में विजय प्राप्त किये हुए कुछ अन्य राजा आदि संग्राम में जाते हैं। वे कवच, कमरपट्टा, मस्तक पर चिह्नंकित पट्ट (टोप जैसा पट्ट जो लैलाट और मस्तक की रक्षा करता है) धारण करते हैं और अनेक प्रकार के शस्त्र ग्रहण करते हैं। वे शरीर की रक्षार्थ उत्तम प्रकार के कवच पहनते हैं। लोहमय जालिका और कांटेदार कवच धारण करते हैं। ऊँचा मुँह किये हुए बाणों से भरे हुए तूणीर उनकी छाती पर बंधा रहता है। वे ढाल आदि से युक्त होकर सेना की व्यूह रचना करते हैं। हर्ष और

उत्साह से हाथ में अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र लेकर, भयंकर शब्द करते हुए बाणवर्षा करते हैं, जैसे-बादलों द्वारा घनघोर बाणवर्षा की जा रही हो। वे युद्धप्रिय योद्धा, अनेक धनुष, तलवारें बहुत-से त्रिशूल और बाण ऊँचे उठाकर शत्रु पर प्रहार करने के लिए तत्पर रहते हैं। वे बायें हाथ में ढाल ग्रहण करके दाहिने हाथ में ऐसे खड्ग ग्रहण करते हैं-जो म्यान से निकाल लिये गये हों और जिनकी स्वच्छता चमचमाहट करती हुई चकाचौंध करती दिखाई देती हो। उनके शस्त्र-कुन्त, तोमर, चक्र, गदा, कुठार (फरसा) मूसल, हल, शूल, लाठी, भिंडमाल, भाला, पट्टिस, चर्मपट, मुद्गर, मौष्टिक, परिध, यंत्र-पत्थर, द्रुघण, शरधि, कुवेणी, पीठफलित और दुधारी तलवार आदि शस्त्र जो अत्यन्त चमकीले और आकाश से चमक कर गिरती हुई बिजली के समान प्रभायुक्त एवं चंचल दिखाई देते हैं। उस महासंग्राम में शंख, भेरी, तूर्य्य, ढोल और नगाड़े आदि के बजाने से होती हुई गंभीर ध्वनि हर्षित योद्धाओं के सिंहनाद तथा क्षुभित एवं भयाक्रांत कायरों के आर्त्तनाद एवं चित्कार से वहाँ कोलाहल उत्पन्न हो जाता है। दौड़ते हुए घोड़े, हाथी, रथ और योद्धाओं के पांवों से उठी हुई धूल, आकाश मंडल पर इतनी छा जाती है कि जिससे दिन में सूर्य का प्रकाश भी दबकर अन्धकार छा गया हो। ऐसी युद्ध-भूमि कायर मनुष्यों के हृदय को व्याकुल कर देती है।

विवेचन - उपरोक्त सूत्र में दूसरों के अधिकार के धन, धान्य और पृथ्वी आदि तथा भोग-साधनों को बलात् ग्रहण करने के लिए किये जाने वाले युद्ध में प्रयोग में आने वाले अस्त्र-शस्त्र तथा योद्धाओं की शस्त्र-सज्जा का वर्णन है और युद्धभूमि के वीभत्स वातावरण का उल्लेख किया गया है।

युद्ध-स्थल की वीभत्सता

विलुलियउक्कड-वर-मउड-तिरीड-कुंडलोडुदाम्माडोविया पागड-पडाग-उसियङ्गय-वेजयंतिचामरचलंत-छत्तंधयारगंभीरे हयहेसिय-हत्थि-गुलुगुलाइय-रहघणघणाइय-पाइकहरहराइय-अप्फाडिय-सीहणाया, छेलिय-विघुदुक्कुडुकंठ-गयसहभीमगज्जिए, सयराह-हसंत-रुसंत-कलकलरवे आसूणियवयणरुद्धे भीम-दसणाधरोदुगाढदट्टे सप्पहारणुज्जयकरे अमरिसवसतिव्वरत्तणिहारितच्छे वेरदिट्टि-कुद्ध-चिट्ठिय-तिवलि-कुडिलभिउडि-कयणिलाडे वहपरिणयणरसहस्स-विक्कम-वियंभियबले। वगंत-तुरगरह-पहाविय समरभडा आवडियछेयलाघव-पहारसाहिया समूसविय-बाहु-जुयलं मुक्कट्टहासपुक्कंतबोल-बहुले।

शब्दार्थ - विलुलिय - ढीले हो जाने से हिलते हुए, उक्कडवरमउ - उत्तमोत्तम मुकुट, तिरीड - किरिट-कलंगी-तुरा-मस्तक पर धारण करने का भूषण, कुंडल - कानों में पहनने का आभूषण, उडुदाम-नक्षत्र-माला के समान आभूषण, आडोविया - चमक रहे, पागड - प्रकट, पडाग - पताका,

उसियङ्गय - ऊँची उठी हुई ध्वजा, वेजयंती - विजय-सूचक ध्वजा, चामरंचलंत - चलते हुए चामर, छत्र - छत्र, अंधयारगंभीरे - अन्धकार से, गम्भीर-गहन बना हुआ, हयहेसिय - घोड़ों की हिनहिनाहट, हत्थिगुलगुलाइय - हाथियों की गुलगुलाहट-चिंघाड़ना, रहघणघणाइय - रथों की घनघनाहट, पाइयकहरह-राइय - पदाति सैनिकों की हरहराहट की ध्वनि, अप्फाडिय - भुजाओं का आस्फालन करते हुए-ताल ठोकना, सीहणाया - सिंहनाद करते हुए, छेलिय - चित्कार करना, विघुट्ट-वकुट्टकंठगयसह भीमगजिए - विरूप घोष एवं उत्कृष्ट नाद से तथा आनन्द व्यक्त करने वाली कण्ठ से निकली महाध्वनि से मेघ के समान महान् गर्जना हो रही है, सयराह - एक साथ, हसंत - हँसते, रुसंत-रुष्ट हुए, कलकलरवे - कलकल-कोलाहल हो रहा है, आसूणियवयणरुदे - क्रोधित हो अपने मुंह को फुलाकर रौद्र रूप बनाये हुए, भीमदसणाधरोट्टगाढदट्टे - भयंकर भ्रुकुटि चढ़ाकर क्रोध से अपना ओठ दाँतों से चबाता है, सप्पहार-णुजयकरे - प्रहार करने के लिए जिनके हाथ उठे हुए हैं, अमरिसवसतिष्वरत्तणिद्धारितच्छे - क्रोध से किसी के नेत्र अत्यन्त फैलकर लाल हो जाते हैं, वेरदिट्टिकुद्ध - वैर भाव से क्रोधित बने हुए, चिट्टियतिवलि - ललाट में त्रिवली-तीन रेखाएं पड़ी हुई है, कुडिलभिउडिकय-णिलाडे - कुटिल-डेढ़ी भ्रुकुटि उनके ललाट पर तनी हुई है, वहपरिणय - वध करने में तत्पर बने हुए, णरसहस्स - हजारों मनुष्य, विक्कमवियंभियबले - विक्रम-पराक्रम से प्रकट हुआ है बल जिनका, वरगंततुरगरहपहाविय समरभडा - घोड़े रथ और पदाति सैनिक बड़े वेग से दौड़ते हैं, आवडियछेयलाघवपहारसाहिया - योद्धागण शीघ्रता एवं चपलता पूर्वक शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करते हैं, समूसवियबाहुजुयलं - हर्षातिरेक से जिनकी दोनों भुजाएं ऊपर उठी हुई हैं, मुक्कट्टहास-पुक्कंतबोलबहुले-मुक्त अट्टहास-खुलकर हँसते हुए एवं पुकारने से बहुत ही कोलाहल पूर्ण बने हुए।

भावार्थ - युद्धोन्मत्त राजाओं के मस्तक के उन्नत मुकुट, किरीट और कुंडल अस्थिर बने हुए-हिलते हुए नक्षत्रमाला के समान चमक रहे हैं। फरफराती हुई ध्वजाएं और विजय की सूचना देती हुई ऊँची पताकाएँ (आफनी छाया से) छत्र एवं चामर के समान लगती हैं और उससे उत्पन्न अन्धकार से गंभीरता व्याप्त हो गई हैं। घोड़े हिनहिना रहे हैं, हाथी गुलगुलाहट कर रहे हैं, रथों की घनघनाहट हो रही है। पदाति सेना, हरहराहट करती हुई ताल ठोकती है और सिंहनाद करती है। आनन्द-सूचक महाघोष करती है। ये सभी ध्वनियाँ मिलकर मेघ के समान घोर गर्जना सुनाई देती है। वीरों के एक साथ हँसने तथा क्रोधित होकर ललकारने से घोर कोलाहल उत्पन्न हो गया है। क्रोधित होकर फुलाये हुए मुंह से वे वीर भयंकर दिखाई देते हैं। कोई भ्रुकुटि चढ़ाकर कुपित हुआ अपने होठ को दाँतों से चबाता हुआ दिखाई दे रहा है, किसी के हाथ, शत्रु पर प्रहार करने के लिए ऊपर उठे हुए हैं, क्रोध के कारण किसी के नेत्र अत्यन्त लाल और बड़े दिखाई देते हैं और अपने शत्रु पर क्रोध करने के कारण किसी के ललाट पर त्रिवली (तीन रेखाएं) बन गई हैं। युद्धरत हजारों मनुष्य दूसरों को मारने का ही भाव लिए हुए हैं। आवेश के कारण उनके शरीर में अधिक बल दिखाई देता है। युद्धस्थल में घोड़े, रथ

और पदाति सैनिक बड़े वेग से दौड़ते हैं। योद्धागण शीघ्रतापूर्वक अपने शत्रु पर शस्त्र प्रहार करते हैं। अपने प्रहार की सफलता देखकर वे दोनों हाथ ऊपर उठाकर अट्टहास करते हैं। इस कारण भी वहाँ कोलाहल उत्पन्न होता है।

फलफलगावरणगहिय-गयवरपत्थित-दरियभडखल-परोप्परपलग्गजुद्धगव्विय-विउसियवरासिरोस-तुरियअभिमुह-पहरितछिण्णकरिकर-विभंगियकरे अवइड्ढुणि-सुद्धभिण्णफालियपगलियरुहिर-कयभूमि-कहमचिलिचिल्लपहे कुच्छिदालिय-गलितरुलितंणिभेल्लंतंत-फुरुफुरंत-अविगल-मम्माहय-विकयगाढदिण्णपहार-मुच्छित-रुलंतवेभलविलावकलुणे हयजोहभमंत-तुरग-उहाममत्तकुंजर-परिसंकिय-जणणिब्बुकच्छिण्णधय-भग-रहवरणडुसिरकरिकलेवराकिण्ण-पतित-पहरण-विकिण्णाभरण-भूमिभागे णच्चंत-कबंधपउरभयंकर-वायस-परिलेंत-गिद्धमंडल-भमंतच्छायंधकार-गंभीरे। वसुवसुहविकंपियव्व-पच्चक्ख-पिउवणं परमरुहबीहणं दुप्पवेसतरं अहिवयंति संगामसंकडं परधणं महंता।

शब्दार्थ - फलफलगावरणगहिय - शस्त्र-प्रहार को रोकने के लिए चर्मावरित फलक-ढाल लिये हुए, गयवरपत्थित - शत्रु के हाथी पर चढ़ते हैं, दरियभडखल - दुष्ट योद्धा अपने बल से गर्वित बने हुए, परोप्परलग्ग - एक दूसरे को मारने के लिए परस्पर युद्ध करते हैं, जुद्धगव्विय - युद्ध कौशल से गर्वित बने हुए, विउसियवरासिरोसतुरिय - अपनी खुली तलवारें लिए और क्रोध से तप्त बने हुए शीघ्र ही, अभिमुहपहरितछिण्णकरिकर - प्रहार कर के हाथी ज़ी-सूंड काट कर विभंगियकरे - अंगहीन कर देते हैं अथवा हाथ काट देते हैं, अवइड्ढु - बाणों से बेधे गए, णिसुद्ध - नीचे गिराये हुए, त्रिशूलादि से भेदे और कुठारादि से फाड़े हुए, पगलियरुहिर - झरते हुए रक्त से, कयभूमि-कहमचिलिचिल्लपहे - भूमि कीचड़ युक्त हो कर मार्ग चिकने बन गए हैं, कुच्छिदालिय - विदारित कुक्षि-पेट से, गलित - रक्त बहता है, रुलितंणिभेल्लंतंत - आँते पेट से बाहर निकल गई हैं, फुरुफुरंत-कम्पित हो रहे हैं, अविगल - विकल-शून्य हो रही है, मम्माहयविकयगाढदिण्णपहार- मर्मस्थान में हुए प्रबल प्रहार से, मुच्छित - मूच्छित, रुलंत - भूमि पर लोटते हुए, वेभल - व्याकुल हो, विलावकलुणे - करुणाजनक विलाप करते हैं, हयजोहभमंततुरग - जिनके योद्धा मारे गए हैं, ऐसे भटकते हुए घोड़े, उहाममत्त-कुंजर - मदोन्मत्त हाथी, परिसंकियजण - जिन्हें देख कर मनुष्यों को शंका होती है, णिब्बुकच्छिण्णधय भगगरहवर - रथों की ध्वजाएं टूट कर गिर गईं और बहुत-से रथ भी नष्ट हो गए हैं णडुसिरकरिकलेवराकिण्ण - जिनके मस्तक कट गये हैं, ऐसे बहुत-से हाथियों के शरीर से भूमि पटी हुई है, पतितपहरण - गिरे हुए अस्त्र-शस्त्रों से, विकिण्णाभरणभूमिभागे - भूमि पर बिखरे हुए आभरणों से, णच्चंतकबंधपुर - बहुत से मस्तक रहित धड़ नाचते हुए दिखाई देते हैं,

भयंकरवायसपरिलेतगिद्धमंडलभमंतच्छायंधकारगंभीरे - मांसलोलुप भयंकर कौओं और गिद्धों के झुण्डों के मंडराने से व्याप्त अंधकार के कारण भयंकर बने हुए, वसुवसुहविकंपियव्व - देवों और पृथ्वी को कम्पित करने वाले, पच्चक्खपिउवणं - प्रत्यक्ष पितृवन-श्मशान भूमि जैसे, परमरुद्धबीहणगं - जो अत्यन्त रौद्र एवं भयानक हो रही है, दुप्पवेसतरगं-जिसमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है, अहिवयंति-प्रवेश करते हैं, संगामसंकडं - गहन युद्ध में, परधणं महंता - पराये धन में लुब्ध होने वाले।

भावार्थ - कोई बलवान् अपनी चमकती हुई नग्न तलवार ले कर शत्रु के हाथी पर चढ़ जाते हैं और अपनी शक्ति का परिचय देते हैं। वे गर्वोन्मत्त होते हैं। कुछ योद्धा शत्रु के साथ मल्लयुद्ध करते हैं। कोई वीर युद्ध में गर्वोन्मत्त हो कर हाथ में तलवार लिए अपने अभिमुख शत्रु पर चपलता पूर्वक प्रहार करते हैं, कई तलवार से हाथी की सूंड काट कर अंगहीन बना देते हैं। कोई भाले से किसी का पेट फोड़ देते हैं। रक्त के बहने से भूमि पर कीचड़ हो जाता है और मार्ग चिकने (फिसलने योग्य) हो जाते हैं। किसी का पेट फाड़ डालने से रक्त बहता है और आंते बाहर निकल पड़ती है। गाढ़ प्रहार के कारण किसी की इन्द्रियाँ फड़फड़ाहट करती (कम्पित होती) है और किसी की इन्द्रियाँ शून्य हो जाती हैं। मर्मस्थान में प्रहार होने से कोई छटपटा रहा है। कोई घायल हो कर असह्य वेदना के कारण करुणाजनक रुदन कर रहा है। जिनके सवार मागे गये हैं, ऐसे-हाथी-घोड़े और मदोन्मत्त हाथी, इधर-उधर भटक रहे हैं, जिन्हें देख कर शंका एवं भय होता है। बहुत-से रथों की पताकाएं कट कर गिर गई हैं। कितने ही रथ भी नष्ट हो गए हैं। जिनके मस्तक कट गए हैं - ऐसे हाथियों के शरीरों से भूमि पटी हुई दिखाई देती है। नीचे गिरे हुए शस्त्र और आभूषण इधर-उधर बिखरे दिखाई देते हैं। जिन वीरों के मस्तक कट गये हैं, उनके धड़ इधर-उधर नाचते हुए दिखाई देते हैं। मांसलोलुप भयंकर कौओं और गिद्धों के झुण्ड के झुण्ड आकाश में घूमने से, अन्धकार हो जाने के कारण वह स्थान भयंकर हो जाता है। देवों और पृथ्वी को प्रकम्पित करने की शक्ति रखने वाले और पराये धन को हड़पने की इच्छा रखने वाले राजा आदि व्यक्ति, ऐसी युद्धभूमि में प्रवेश करते हैं-जो प्रत्यक्ष ही पितृभूमि-श्मशान भूमि के समान है तथा परम रौद्र एवं भयंकर है, जिसमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है।

विवेचन - इस सूत्र में युद्ध की विभीषिका का लोमहर्षक स्वरूप बताया गया है। लोभ के वशीभूत होकर मनुष्य, दूसरों का धन हरण करने के लिए बड़े-बड़े युद्ध का समर्थन करके मानव-संहार करता है। यह सब अदत्तादान रूप तीसरे अधर्म-पाप का परिणाम है।

अवरे पाइक्कचोरसंधा सेणावई-चोरवंद-पागड्डिका य अडवी-देसदुग्गवासी कालहरितरत्तपीतसुविकल-अणेगसयचिंध-पडुबद्धा परविसए अभिहणंति लुद्धा धणस्स कज्जे।

शब्दार्थ - अवरे - अन्य, पाइक्कचोरसंधा - पैदल चल कर चोरी करने वाले चोरों का समूह, सेणावई - सेनापति, चोरवंदपागड्डिका - चोरों के समूह को प्रोत्साहित करते हैं, अडवीदेस -

अटवी-वन में, दुर्गवासी - दुर्गम स्थान-अथवा दुर्ग में रहने वाले, कालहरितरत्तपीतसुविकल - काले, हरे, लाल, पीले और श्वेत वर्ण वाले, अणेगसयचिंध-पट्टबद्धा - सैकड़ों चिह्नपट अपने मस्तक पर बांधने वाले, परविसए - दूसरों के देशों का, अभिहणंति - घात करते हैं, लुब्धा - लुब्ध बने हुए, धणस्स कज्जे - धन को चुराने के लिए।

भावार्थ - उपरोक्त युद्धप्रिय वीरों के अतिरिक्त अन्य पैदल चल कर चोरी करने वाले चोरों के समूह भी होते हैं। कई ऐसे सेनापति भी होते हैं, जो चोरों को चोरी करने के लिए प्रोत्साहन देते हैं। यह चोरों का समूह वन में तथा दुर्गम स्थानों में या दुर्ग में रहते हैं। उनके काले, हरे, लाल, पीले और श्वेत वर्ण के सैकड़ों चिह्नपट्ट होते हैं, जिन्हें वे अपने मस्तक पर धारण करते हैं। दूसरों के धन में लुब्ध बने हुए वे चोर-समूह, चोरी करने के लिए दूसरों के प्रदेश में घुस कर धन का हरण करते हैं और लोगों का घात करते हैं।

समुद्री डाके

रयणागरसागरं उम्मीसहस्समाला-उलाउल-वितोयपोत-कलकलेंत-कलियं पायालसहस्स * वायवसवेगसलिल-उद्धम्ममाणदगरयरयंधकारं वरफेणपउर-धवल-पुलंपुल-समुट्टियट्टहासं मारुयविच्छुभमाणपाणियं जलमालुप्पीलहुलियं अवि य समंतओ खुभिय-लुलिय-खोखुब्भमाण-पक्खलिय-चलिय-विउलंजलचक्कवाल-महाणईवेगतुरियआपूरमाणगंभीर विउल-आवत्त-चवल-भममाणगुप्पमाणुच्छलंत-पच्चोणियत्त-पाणियपधावियखर-फरुस-पयंडवाउलियसलिल-फुट्टं त वीडकल्लोलसंकुलं महामगं-मच्छ-कच्छभोहार-गाह-तिमि-सुंसुमार-सावय-समाहय-समुद्धायमाणकपूर-घोरपउरं कायरजण-हियय-कंपणं घोरमारसंतं महब्भयंभयंकरं यड्भयं उत्तासणगं अणोरपारं आगासं चेव णिरवलंबं।

शब्दार्थ - रयणागरसागरं - रत्नाकर सागर-रत्नों के भण्डार रूप समुद्र, उम्मीसहस्समाला - हजारों लहरों-तरंगों की पंक्तियों से, उलाउलवितोयपोतकलकलेंतकलियं - व्याकुल होने के कारण भग्न हुए-या मीठा जल चुक जाने से जलयान के यात्री बहुत कोलाहल करते हैं, उस कोलाहल से युक्त, पायालसहस्स - हजारों पाताल-कलशों के, वायवसवेग - वायु से वेग युक्त हुए, सलिलउद्धम्ममाणदगरयरयंधकारं - पानी की उछलती हुई तरंगों के समूह के अन्धकार हो गया है जहाँ, वरफेणपउरधवलपुलंपुल - स्वच्छ श्वेत ऐसे प्रचुर फेन से निरन्तर, समुट्टियट्टहासं - अट्टहास उत्पन्न होने से, मारुय - वायु से, विच्छुभमाणपाणियं - क्षुब्ध-डोलायमान बना हुआ पानी,

* "पायालकलससहस्स" - पाठ, पूज्य श्री घासीलालजी म. सा. वाली प्रति में है।

जलमालुष्पीलहुलियं - जलतरंगों जिसमें नई उत्पन्न हो रही हैं, अवि य समंतओ - और चारों ओर से जो, खुभिय - क्षुब्ध, लुलिय - तट से टकराता हुआ, खोखुब्माणपक्खलियचलिय - क्षुभित, चलित, विउल-जलचक्कवाल - पानी के बड़े-बड़े चक्रवाल-भंवर, महाणईवेग - महानदी का वेग, तुरियआपूरमाण - शीघ्र ही उसे भर रही है, गंभीरविउल आवत्त - जिसमें बड़े गम्भीर आवर्त-चक्र-भंवर होते हैं, चवलभममाण - चपलता से घूमता हुआ, गुप्पमाणुच्छलंत - व्याकुलतापूर्वक उछलते हुए, पच्चोलियत्तपाणिय - और नीचे गिरते हुए प्राणी अथवा पानी, पधाविय - प्रधावित-शीघ्रतापूर्वक बढ़ती हुई, खरफरुसपयंडवाउलियसलिल - कर्कश कठोर एवं प्रचण्ड रूप से पानी को मथित किया, फुट्टंतवीइकल्लोलसंकुलं - टकरा कर भिन्न हुई तरंगों वेगपूर्वक बहती हैं, महामगरमच्छकच्छ-भोहारगाहतिमि - बड़े-बड़े मगरमच्छ, कच्छप, ओहार, ग्राह, तिमि, सुंसुमार-सावयसमाहय - सुंसुमार, श्वापद आदि परस्पर संघर्षरत हैं, समुद्दायमाणकपूरघोरपउरं - और प्रहार करने के लिए उग्र रूप से वेगपूर्वक धावा करते हैं कायरजणहिययकंपणं - जो कायर मनुष्यों के हृदय को कम्पित कर देता है, घोरमारसंतं - घोर शब्द करता हुआ, महब्भयं - महाभयजनक, भयंकरं - भयंकर, पइभयं-भयदायक, उत्तासणगं - त्रासदायक, अणोरपारं - जिसका पार नहीं, आगासं चव-आकाश के समान, णिरवलंबं - आलम्बन रहित।

भावार्थ - जलयान द्वारा विदेशों से व्यापारार्थ जाने वाले धनवान् व्यापारियों को समुद्री डाकू लूटने के लिए समुद्र में प्रवेश करते हैं। वह समुद्र महान् भयंकर है। उसमें हजारों तरंगें उठती रहती हैं। समुद्र की भयानकता देख कर या मार्ग भूल जाने से अथवा मीठा पानी समाप्त हो जाने के कारण भयोत्पादक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे उनमें कोलाहल होता है। समुद्र में रहे हुए हजारों पाताल-कलशों में प्रचण्ड वायु प्रकोप उठ जाने से भी समुद्र के जल में तरंगें उठने लगती हैं। वे तरंगें इतनी वेगपूर्वक उठ कर आकाश पर छा जाती हैं कि जिससे अन्धकार हो जाता है। समुद्र में इधर-उधर तैरते हुए श्वेत जल-फेनों को देखने से ऐसा आभास होता है कि जैसे समुद्र अट्टहास करता हो। प्रबलता से चलते हुए वायु के आघात से समुद्र का जल हिलोरें लेता ही रहता है। वायु वेग से क्षुभित हो कर उछला हुआ जल, टकरा कर भयंकर शब्द करता है। वेगपूर्वक बढ़ता हुआ जल (ज्वार) पीछे हट कर (भाटा) चला जाता है। फिर जल जंतुओं से भी समुद्र का पानी क्षुभित स्खलित एवं चलित होता रहता है। समुद्र में अनेक स्थानों पर बड़े-बड़े चक्रवाल (भंवर) होते हैं। अत्यंत वेग पूर्वक आता हुआ गंगा आदि नदियों का पानी समुद्र को भरता रहता है। समुद्र के जल में बड़े-बड़े गंभीर आवर्त होते हैं (जिनमें गया हुआ यान शीघ्र नष्ट हो जाता है। ये आवर्त महान् भयानक एवं विनाशक होते हैं) उन भंवरों में चक्कर काटता हुआ पानी बड़ी तेजी से उछलता है और बहुत-से जल जंतु उस जल के साथ उछलते हुए व्याकुल होते हैं और ऊपर-नीचे होते हुए लौटते रहते हैं। जल-जंतुओं को व्याकुल करने वाली जल-तरंगें अत्यन्त कर्कश कठोर एवं प्रचण्ड बनकर वेगपूर्वक दौड़ने लगती हैं। बड़े-बड़े मगरमच्छ,

कच्छप, ओहार, ग्राह, तिमि, सुंसुमार स्वापद (व्याघ्र के समान हिंसक जीव) आदि परस्पर आक्रमण करने के लिए दौड़ते हुए समुद्र के जल को क्षुब्ध करते हैं। इस प्रकार घोर शब्द करता हुआ समुद्र, कायरजनों के हृदय को कम्पित कर देता है। वह महान् भय का जनक, अत्यन्त भयंकर, भयप्रद एवं त्रासदायक है। आकाश के समान अवलम्बन से रहित उस सागर का किनारा दिखाई नहीं देता।

उप्यायणपवण-धणिय-णोल्लिय उवरुवरितरंगदरिय-अइवेग-वेग-चक्खु-पहमुच्छरंतं कच्छइ-गंभीर-विउल-गजिय-गुंजिय-णिग्घायगरुयणिवडिय सुदीहणीहारि-दूरसुच्चंत-गंभीर-धुगुधुगंतसइं पडिपहरुंभंत-जक्ख-रक्खस-कुहंड-पिसायरुसिय-तज्जाय-उवसग्ग-सहस्संकुलं बहुप्पाइयभूयं विरइयबलिहोम-धूव-उवयारदिण्ण-रुहिरच्चणाकरणपयत-जोगपययचरियं परियंत-जुगंत-कालकप्पोवमं दुरंतं महाणई णईवई-महाभीमदरिसणिज्जं दुरणुच्चरं विसमप्पवैसं दुक्खुत्तारं दुरासयं लवण-सलिलपुण्णं असियसिय-समूसियगेहि हत्थतरकेहिं वाहणेहिं अइवइत्ता समुहमज्जे हणंति, गंतूण-जणस्स-पोए परदव्वहरा णरा।

शब्दार्थ - उप्याइयपवण - उत्पात करने वाले वायु-आंधी, धणियणोल्लिय - अतिशय वेगवान्, उवरुवरि - एक-दूसरी पर गिरती हुई, तरंगदरिय अइवेग - तरंगमालाएं अतीव वेगपूर्वक, वेगचक्खुपह-मुच्छरंत - वह वेग दृष्टि पथ को ढक देता है, कच्छइ - कहीं-कहीं, गंभीरविउलगजियगुंजिय - अत्यन्त गंभीरतापूर्वक गर्जन होता है, कहीं गुंजन होता है, णिग्घाय-गरुयणिवडियं - कोई भारी वस्तु आकाश से गिरी हो, सुदीहणीहारि - उसकी सुदीर्घ प्रतिध्वनि, दूरसुच्चंतगंभीरधुगुधुगंतसइं - धुगुधुग ध्वनि करती हुई बहुत दूर तक फैलती है, पडिपहरुंभंत - पथिकों के मार्ग को रोकने वाले, जक्खरक्खसकुहंडपिसायरुसिय - यक्ष, राक्षस, कुहंड-कुष्पांड-व्यंतर विशेष-पिशाच रुष्ट होकर, तज्जाय उवसग्ग-सहस्स-संकुलं - उत्पन्न किये हुए हजारों उपसर्ग से व्याप्त, बहुप्पाइयभूयं - जहाँ बहुत-से उत्पाद होते हैं, विरइय-बलिहोम-धूवउवयार दिण्णरुहिरच्चणा करणपयत-जोगपयय-चरियं - कहीं बलिकर्म, हवन, धूप, उपचार और रुधिर समर्पण से देव की अर्चना-पूजा होती है और भेंट चढ़ाने आदि तथा यागोचित क्रियाएं होती हैं, परियंतजुगंतकालकप्पोवमं - युग का अन्त करने वाले कल्पांत-विनाश काल के समान, दुरंतं - जिसका अन्त बड़ी कठिनाई से हो, महाणईणईवई - गंगादि महानदी और अन्य नदियों का जो पति है, महाभीमदरिसणिज्जं - जो देखने में महान् भयंकर है, दुरणुच्चरं - जिसमें जाना महाकठिन है, विसमप्पवैसं - जिसमें प्रवेश करना अति कठिन है, दुक्खुत्तारं - जिससे पार होना कठिन एवं दुःखपूर्ण है, दुरासयं - जिसका आश्रय भी दुःखमय है, लवणसलिलपुण्णं - खारे पानी से भरा हुआ, असियसियसमूसियगेहि - जिस पर काले और श्वेत वस्त्र के पाल बांधे हुए हैं ऐसे, हत्थतरकेहिं - जो वेगपूर्वक चलने वाला है ऐसे, वाहणेहिं - वाहन-

जलयान से, अइवइत्ता - आरूढ़ होकर, समुद्रमन्त्रे हर्णाति - समुद्र के मध्य में घात करते हैं, गंतूण - जाकर, जणस्सपोए - पोत में रहे हुए मनुष्यों-व्यापारियों को, परदव्वहरा णरा - पराये धन को हरण करने वाले लोग।

भावार्थ - जब समुद्र में महावायु-आंधी आदि का उपद्रव होता है, तब ऊँची-ऊँची तरंगमालाएं बड़े वेग से दौड़ती हुई मनुष्यों के दृष्टि-पथ को रोक देती हैं। उसमें ऐसी गम्भीर एवं भयंकर ध्वनि उत्पन्न होती है कि जैसे मेघगर्जना हो रही हो या कहीं बिजली कड़क कर गिरी हो अथवा कोई बड़ी भारी वस्तु ऊपर से गिरी हो। वह दीर्घ ध्वनि धुग-धुग करती हुई व्यापक क्षेत्र में पैल जाती है। ऐसे समय यानमार्ग के अवरोधक ऐसे यक्ष, राक्षस, कुष्मांड, पिशाच आदि रुष्ट हो कर घोर शब्द करते हुए हजारों प्रकार से उपद्रव करने लगते हैं। इसके भय का निवारण करने के लिए कहीं बलिकर्म किया जाता है, तो कहीं हवन किया जाता है, कोई धूप आदि से पूजा करता है, तो कोई किसी प्राणी की हत्या कर के उसके रक्त को देव के अर्पण करता है। यों अनेक प्रकार से देव को प्रसन्न करने की क्रियाएं की जाती हैं। इन सब कारणों से समुद्र को युगान्तकारी-कल्पान्तकारी-विनाशक की उपमा दी गई है। समुद्र का पार पाना अत्यन्त कठिन होता है। समुद्र, गंगा आदि महानदियों और अन्य छोटी-बड़ी नदियों का पति है। वह देखने में भी महाभयानक है। इसमें प्रवेश करना और गमन करना भी भयानक है। बड़ी कठिनाई से तथा दुःखपूर्वक इसे पार किया जाता है। समुद्र खारे पानी से भरा हुआ है। जो चोर-डाकू दूसरों के धन को हरण करना चाहते हैं, वे जलयानों पर सवार होते हैं, उनके पोतों पर वस्त्र के काले और धोले पाल चढ़े रहते हैं। उनके यान बड़े वेगपूर्वक चलते हैं। वे समुद्र में जा कर जहाजों के व्यापारियों को मार कर उनका धन-माल लूट लेते हैं।

विवेचन - उपरोक्त सूत्र में समुद्र जैसे उपद्रव पूर्ण भयानक स्थान पर की जाती हुई लूट का वर्णन किया गया है। समुद्री लुटेरे धन के लिए कितना दुःसाहस करते हैं, कितना लोमहर्षक वर्णन है यह।

ग्रामादि लूटने वाले

णिरणुकंपा णिरवयक्खा गामागर-णगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोण-मुह-पट्टणासम-णिगम-जणवए य धणसमिद्धे हर्णाति थिरहिय य छिण्णलज्जा-बंदिग्गह-गोग्गहेय गिण्हंति दारुणमई णिविक्कवा णियं हर्णाति छिंदंति गेहसंधिं णिविक्खत्ताणि य हरंति धणधण्णदव्वजायाणि जणवयकुलाणं णिग्घणमई परस्स दव्वार्हिं जे अविरया।

शब्दार्थ - णिरणुकम्पा - अनुकम्पा से रहित, णिरवयक्खा - परलोक की अपेक्षा से रहित, गामागर-णगर-खेड-कब्बड - ग्राम, आकर, नगर, खेड, कबट, मडंब-दोणमुह - मडंब, द्रोणमुख, पट्टणासम - पत्तन, आश्रम, णिगम-जणवए - निगम जनपद, धणसमिद्धे - धन से समृद्ध, हर्णाति - मारते हैं, थिरहिय य - स्थिर-कठोर हृदय वाले, छिण्णलज्जा - जिनकी लज्जा नष्ट हो चुकी, बंदिग्गह-

बन्दीगृह, गोग्गहे य गिण्हंति - गाय आदि को ग्रहण कर चोरी करते हैं, दारुणमई - दारुण मति वाले, णिविकवा - कृपा भाव से रहित, णियं - निज - स्वजनों को भी, हणंति - मार डालते हैं, छिंदंति - काट डालते हैं, गेहसंधिं - घर की सन्धि, णिविखत्ताणि - भूमि में सुरक्षित रखे हुए, हरंति - हरण कर लेते हैं, धणधणणदव्वजायाणि - धन-धान्य आदि द्रव्य जाति को, जणवयकुलाणं - देश के कुलों-सम्पन्न गृहों को, णिग्घणमई - निर्दय बुद्धि वाले-कूर, परस्सदव्वाहिं - दूसरों के द्रव्य को, जे - जो, अविरया - अविरत।

भावार्थ - जिनके मन में परभव का विचार नहीं, जो अनुकम्पा से रहित हैं-ऐसे पराये धन में लुब्ध चोर ग्राम, आकर, नगर, खेड, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, निगम एवं जनपद में जो धनवान् एवं समृद्धजन हैं, उन्हें मार डालते हैं और उनका धन ले लेते हैं। इन लुटेरों का हृदय स्थिर (कठोर) होता है। ये लज्जा से रहित होते हैं। ये डाकू लोगों को पकड़ कर बन्दी बना लेते हैं। गाय, भैंस आदि पशुओं को चुरा लेते हैं, घर की दीवारों में संध लाकर चोरी करते हैं, भूमि आदि से सुरक्षित रखा हुआ धन चुरा लेते हैं और देश में रहने वाले धनसम्पन्न कुलों को मार कर उनका धन-धान्यादि लूट लेते हैं। पराये धन का हरण करने वाले दुष्ट मति वाले चोर, असंयत-अविरत हैं-उनकी तृष्णा असीम होती है।

विवेचन - ग्रामादि का स्वरूप इस प्रकार है-

ग्राम - छोटा गाँव, जहाँ किसानों की बस्ती अधिक होती है।

आकर - स्वर्ण, रजत आदि की खान जहाँ हो।

नगर - कर (चुंगी) से रहित, व्यावसायिक स्थान।

खेड - धूलि के प्राकार (कोट) से घिरा हुआ स्थान।

कर्बट - थोड़े मनुष्यों की बस्ती वाला गाँव।

मडम्ब - जिसके चारों ओर ढाई कोस तक कोई गाँव नहीं हो-ऐसी बस्ती।

द्रोणमुख - जिसमें जल और स्थल मार्ग से जाया जाता हो-ऐसा स्थान।

पत्तन - समस्त वस्तुओं की प्राप्ति का स्थान।

आश्रम - तापसों का निवास स्थान।

निगम - व्यापारियों का निवास स्थान।

जनपद - देश।

तहेव केई अदिण्णादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संचरंता चियकापज्जलिय-सरस-दर दड्ढ-कड्डियकलेवरे रुहिरलित्तवयण-अखय-खाइयपीय-डाइणिभमंत-भयंकरं-जंबुयक्खिक्खयंतं घूयकयघोरसहे वेयालुट्टिय-णिसुद्ध-कहकहिय पहसिय-बीहणग-णिरभिरामे अइदुब्धिगंध-बीभच्छदरिसणिज्जे सुसाण-वण-सुण्णघर-लेण-

अंतरावण-गिरिकंदर-विस-मसावय-समाकुलासु वसहीसु किलिस्संता सीयातवसोसियसरीरा दड्ढच्छवी णिरयतिरिय-भवसंकड दुक्ख-संभारवेयणिज्जाणि पावकम्माणि संचिणंता, दुल्लह-भक्खण्ण-पाणभोयणा पिवासिया झुंझिया किलंता मंस-कुणिमकंदमूल जं किचिकयाहारा उव्विग्गा उप्पुया असरणा अडवीवासं उवेति वालसय-संकणिजं ।

शब्दार्थ - तहेव - इसी प्रकार, केई - कई, अदिण्णादाणं - अदत्तादान-चोरी की, गवेसमाणा- खोज करने की ताक में, कालाकालेसु - काल एवं अकाल में, संचरंता - घूमते रहते हैं, चियकापज्जलिय - जलती हुई चिताओं में, सरस - रुधिरादि से युक्त-जिसमें से रक्त निकल रहा है, दरदड्ढ - आधे जले हुए, कड्ढियकलेवरे - कुत्ते आदि द्वारा चिताओं से निकाले हुए मृत शरीर, रुहिरलित्तवयण - जिनके मुँह रक्त से लिप्त हैं, अखयखाइयपिय - जिन्होंने शव को पूर्णरूप से खाया और रक्त पिया है ऐसी, डाइणभयंत भयंकरं - भयंकर डाकिनी भ्रमण कर रही है अथवा डाकिनी के घूमने-फिरने से जो स्थान भयंकर हो रहा है, जंबुयक्खिक्खयंतं - जहाँ शृगाल 'खी खी' शब्द कर रहे हैं, घूयकयघोरसदे - जहाँ उल्लू के घोर शब्द हो रहे हैं, वेयालुट्टियणिसुद्धकहकहिय- पंहसिय - बेतालों के किये हुए तुमुल कहकहे और अट्टहास से, बीहणग-णिरभिरामे - भयानकता एवं- अप्रियता-मनहूसी छा रही है, अइदुब्धिगंध - अत्यन्त दुर्गन्ध से युक्त, बीभच्छदरिसणिज्जे - बीभत्स-घृणास्पद दृश्य जहाँ हो रहा है, सुसाण - श्मशान में, वण - वन में, सुण्णधर - शून्य घरों में, लेण - लयन में-पर्वत के निकट बने हुए, पाषाणगृह में, अंतरावण - दो ग्रामों के मध्य बने हुए विश्रामगृह आदि में, गिरिकंदर - पर्वत की गुफा में, विसमसावयसमाकुलासु - हिंसक प्राणियों से युक्त स्थान में, वसहिंसु - बस्ती में, किलिस्संता - क्लेश सहन करते हुए, सीयातवसोसिय-सरीरा - शीत और ताप से जिनका शरीर शुष्क हो गया है, दड्ढच्छवी - जिनकी चमड़ी जल गई है, णिरयतिरियभव - नरक और तिर्यंच के भव के योग्य, संकडदुक्खसंभारवेयणिज्जाणि - संकट और दुःख समूह भोगने वाले, पावकम्माणि - पापकर्मों का, संचिणंता - संचय करते-उपार्जन करते हैं, दुल्लह - दुर्लभ हो जाता है जिनके लिए, भक्खण्ण-पाण-भोयणा - भोजन और पानी का खाना-पीना, पिवासिया - प्यास, झुंझिया - बुभुक्षित रहते, किलंता - पीड़ित हो कर, मंस-कुणिम-कंदमूल - मांस, मुर्दे का मांस और कन्दमूल, जं किचिं - जो कुछ भी, कयाहारा - खा लेते हैं, उव्विग्गा - उद्विग्न, उप्पुया - उत्सुक-धैर्य रहित, असरणा - आश्रय विहीन, अडवीवासं उवेति - वन में निवास करते हैं, वालसयसंकणिजं - सर्प आदि सैकड़ों भय से पूर्ण ।

भावार्थ - इसी प्रकार कई चोर, चोरी करने के लिए काल-अकाल में इधर-उधर घूमते ही रहते हैं। वे बस्ती से दूर भयानक स्थानों में भी घूमते रहते हैं। जैसे-श्मशान भूमि में (अथवा युद्ध-भूमि या

महामारी के स्थान पर) जहाँ शव जल रहा है, कोई मृतक शरीर कुछ जला है, कुछ नहीं जला है, किसी के शरीर में से रक्त बह रहा है, कोई रक्त से लिप्त पड़ा है, जहाँ मदमत्त डाकिनियाँ मुर्दे का मांस-भक्षण और रक्त पान करती हुई घूम रही हैं, जहाँ शृगाल 'खी खी' शब्द करते हैं, उलूक जहाँ घोर शब्द कर रहे हैं, जहाँ बेताल कहकहे लगाते हुए भयंकर अट्टहास करते हैं, इससे सर्वत्र भय एवं विमनस्कता (मनहूसी) व्याप्त हो रही है, जो अत्यन्त दुर्गन्ध से भरा हुआ और बीभत्स दिखाई दे रहा है। वे चोर ऐसे भयानक स्थान को पार करते हुए बियावान जंगल में जाते हैं और किसी सूने घर, पर्वत के निकट का स्थान, पर्वत-कन्दरा आदि भयानक स्थान, जो सिंहादि हिंसक पशुओं से युक्त है-जाते हैं और क्लेशित होते हैं। उनके शरीर सर्दी-गर्मी के ताप से शुष्क हो जाते हैं, चमड़ी जल जाती है। वे नरक और तिर्यच भव में भोगने योग्य अत्यन्त दुःख-समूह के उत्पादक ऐसे अत्यन्त पाप-कर्मों का संचय करते रहते हैं। उन्हें भोजन-पानी मिलना भी कठिन एवं दुर्लभ हो जाता है। वे बिना पानी के प्यासे ही रह जाते हैं। भूख की पीड़ा से वे बहुत दुःखी रहते हैं। भूख से पीड़ित हो कर वे पशुओं को मार कर उनका मांस अथवा मरे हुए शरीर का मांस खाते हैं। कभी कन्द-मूलादि जो कुछ मिल जाये-खा कर क्षुधा शान्त करते हैं। वे सदैव (राज्यादि भय से) उद्विग्न, उत्सुक, चंचल तथा आश्रय रहित होते हैं और सर्प आदि सैकड़ों प्रकार के भय वाले वन में निवास करते हैं।

अयसकरा तक्करा भयंकरा कास हरामोत्ति अज्ज दव्वं इइ सामत्थं करेति गुञ्जं बहुयस्स जणस्स कज्जकरणेसु विग्घकरा मत्तपमत्त-पसुत्त विसत्थ-छिह्वाइ वसणब्भुदएसु हरणबुद्धी विगव्व रुहिरमहिया परेति णरवइ-मज्जायमइक्कंता सज्जणजणदुगंछिया सकम्मोहिं पावकम्मकारी असुभपरिणया य दुक्खभागी णिच्चाइलदुहमणिव्वुइमणा इहलोए चेव किलिस्संता परदव्वहरा णरा वसणसय-समावण्णा ।

शब्दार्थ - अयसकरा - जिनका अपयश-बुराई होती है, तक्करा - तस्कर-चोर, भयंकरा - भयंकर, कास - किसका, हरामोत्ति - हरण करना चाहिए, अज्ज - आज, दव्वं - द्रव्य, इइ - इस प्रकार, सामत्थं करेति - मन्त्रणा करते हैं, गुञ्जं - गुप्त, बहुयस्स जणस्स - बहुत-से लोगों के, कज्जकरणेसु-कार्य करने में, विग्घकरा - विघ्न करते हैं, मत्तपमत्त - प्रमादी एवं मदिरा से उन्मत्त, पसुत्त - सोये हुए, विसत्थ - विश्वस्त-विश्वास करने वाले, छिह्वाइ - छिद्र पाकर-अवसर प्राप्त कर, वसणब्भुदएसु - रोगादि अवस्था, विपत्ति अथवा उत्सव आदि परिस्थिति उत्पन्न होने पर, हरणबुद्धि - धन हरण करने का विचार करते हैं, विगव्व - भेड़िये के समान, रुहिरमहिया - रुधिर-पिपासु हो कर, परेति - भ्रमण करते हैं, णरवइमज्जाय - राजा की मर्यादा का, मइक्कंता - अतिक्रमण-उल्लंघन करते हैं, सज्जणजणदुगंछिया - सज्जन जनों द्वारा निन्दित, सकम्मोहिं - अपने ऐसे कर्म से, पावकम्मकारी -

पापकर्म करने वाले, असुभपरिणया - अशुभ-पाप परिणाम युक्त, दुःखभागी - दुःख भोगने वाले, णिच्चाइलदुहमणिब्बुइमणा - इनका मन सदैव आकुल-व्याकुल अस्वस्थ तथा संताप युक्त रहता है अथवा-वे सदैव प्राणियों की स्वस्थता के नाशक एवं संतापित करने वाले होते हैं, इहलोए चेव - इस लोक में, किलिस्संता - क्लेशित रहते हैं, परदब्बहराणरा - पराये धन को हरण करने वाले वे मनुष्य-चोर, वसण-सयसमावण्णा - सैकड़ों दुःखों से पीड़ित हो कर।

भावार्थ - संसार में सर्वत्र उनकी निंदा होती है। वे भयंकर माने जाते हैं। वे अपने साधियों से चोरी करने के लिए गुप्त मंत्रणा करते रहते हैं और सोचते हैं कि 'आज किसके यहाँ चोरी की जाये, किसे लूटा जाय।' वे बहुत-से लोगों के (विवाह आदि उत्सव में) विघ्न खड़ा कर देते हैं और जो मद में मस्त हो कर अथवा यों ही सोये हुए निद्रा-मग्न तथा अपनी रक्षा के विषय में विश्वस्त रहते हैं, उन लोगों को घात लगा कर मार डालते हैं और उनका धन लूट लेते हैं। लोगों की विपत्ति-रोग अथवा मरण प्रसंग पर या लग्नादि शुभ प्रसंग पर उपस्थित जन-समूह को लूटने या चोरी करने का अवसर देखते रहते हैं। वे भेड़िये के समान मनुष्य के रक्त के प्यासे बनकर इधर-उधर फिरते रहते हैं। वे राजा की मर्यादा का भी उल्लंघन करते हैं। वे चोर लोग सदाचारियों एवं सज्जनों द्वारा सदैव निन्दित होते रहते हैं। अपने चौर्यकर्म के द्वारा वे पापकर्मों का संचय करते रहते हैं। उनकी भावनाएं अशुभ रहती हैं। वे सदैव अपनी तथा दूसरों की स्वस्थता एवं प्रसन्नता के नाशक तथा व्याकुलता संताप एवं दुःख के कारण होते रहते हैं। वे स्वयं भी दुःख भोगते हैं। पराये धन को हरण करने वाले वे चोर, इस लोक में भी सैकड़ों दुःखों से युक्त हो कर क्लेशित रहते हैं।

चोर को बन्दीगृह में होने वाले दुःख

तहेव केइ परस्स दब्बं गवेसमाणा गहिया य हया य बद्धरुद्धा य तुरियं अइधाडिया पुरवरं समप्पिया चोरग्गह-चारभडचाडुकराण तेहि य कप्पडप्पहार-णिद्धयआरक्खिय-खरफरुसवयण-तज्जण-गलच्छल्लुच्छल्लणाहिं विमणा चारगवसहिं पवेसिया णिरयवसहिसरिसं तत्थवि गोमियप्पहार-दूमणाणिब्भच्छण-कडुयवयण-भेसणगभयाभिभूया अक्खित्तणियंसणा मलिणदंडिखंडणिवसणा उक्कोडालंचपास-मग्गणपरायणेहिं दुक्खसमुदीरणेहिं गोम्मियभडेहिं विविहेहिं बंधणेहिं।

शब्दार्थ - तहेव - इसी प्रकार, परस्स - दूसरों का, दब्बं - द्रव्य, गवेसमाणा - खोज करते हुए, गहिया - पकड़े जाते हैं, हया - पीटे जाते हैं, बद्धरुद्धा - बांधे जा कर कारागार में बन्द कर दिये जाते हैं, तुरियं - त्वरित-शीघ्रतापूर्वक, अइधाडिया - दौड़ाये जाते हैं, पुरवरं - नगर में, समप्पिया - समर्पित किये जाते हैं, चोरग्गहचारभडचाडुकराण - चोरों को पकड़ने वाले चाटुकार सुभटों को,

तेहि - उन्हें, कप्पडप्पहार - चाबुक के प्रहार से, णिहय - निर्दयतापूर्वक, आरक्खिय - आरक्षित-रक्षाधिकारी, खरफरुसवयण - कटु एवं कठोर वचनों से, तज्जण - तर्जना, गलच्छल्लुच्छल्लणाहिं - गला पकड़ कर दबा देते हैं, विमणा - विमनस्क-उदास, चारगवसहिं - बन्दीगृह में, पवेसिया - प्रवेश किये हुए, णिरयवसहिसरिसं - नरकावास के समान, तत्थवि - वहाँ पर भी, गोमियप्पहार - जेलर द्वारा प्रहार, दूमणणिब्भच्छण - परितापित तथा निर्भर्त्सना से, कडुयवयण - कटुक वचन, भेसणग- भयोत्पादक, भयाभिभूया - भय से डरे हुए, अक्खित्तणियंसणा - वे निर्वस्त्र हो जाते हैं, मलिणदंडिखंडणिवसणा - मलिन तथा फटे हुए वस्त्र पहने हुए, उक्कोडालंचपास-मगगणपरायणेहिं - बन्दीगृहाधिकारी घूस में धन तथा चोरी का धन प्राप्त करने में परायण हैं, दुक्खसमुदीरणेहिं - बहुत ही दुःख देते हैं, गोम्मियभडेहिं - बन्दीगृह के अधिकारी सुभट से, विविहेहिं बंधणेहिं - विविध प्रकार के बन्धनों से।

भावार्थ - चोरी करके दूसरे के धन को हरण करने वाले चोर को राज्याधिकारी पकड़ लेते हैं, तब वे उस चोर को अनेक प्रकार के कष्ट देते हैं। वे चोर लाठियों से पीटे जाते हैं, दृढ़तापूर्वक बांधे जाते हैं और कारागृह में बन्द कर दिये जाते हैं। उन्हें शीघ्रतापूर्वक चलाया जाता है, दौड़ाया जाता है, नगर में घुमाया जाता है और अधिकारियों द्वारा कारागृह में पहुँचा दिया जाता है। कारागृह के अधिकारी (जेलर) उस चोर को चाबुक से निर्दयतापूर्वक पीटते हैं और कठोरतम वचनों से निर्भर्त्सना करते हैं। उस चोर का गला दबा कर यन्त्रणा देते हैं, इससे वह चोर उदास तथा विमनस्क हो जाता है। कारागृह में उसे नरकावास के समान दुःख दिया जाता है। कारागृह के अधिकारी उसे पीटते हैं और अत्यन्त भयावने शब्दों से उसे भयभीत करते हैं। वे उसके कपड़े उतरवा लेते हैं और मैले तथा फटे हुए कपड़े पहनने को देते हैं। कारागृह के कोई अधिकारी चोरों से घूस मांगते हैं, यदि उन्हें घूस (लांच) नहीं मिले, तो असह्य दुःख देते हैं और विविध प्रकार के बन्धनों में जकड़ कर त्रास देते हैं।

किं ते? हडि-णिगड-वालरज्जुय-कुदंडग-वरत्त-लोहसंकल-हत्थंदुय-बज्जपट्ट-दामक-णिवकोडणेहिं अणणेहिं य एवमाइएहिं गोम्मिगभंडोवगरणेहिं दुक्खसमुदीरणेहिं ☆ संकोडपोडणाहिं बज्जंति मंदपुण्णा संपुडकवाड-लोहपंजर-भूमिघर-णिरोह-कूव-चारग-कीलग-जूय-चक्कविततबंधण-खंभालण-उद्धचलण-बंधणविहम्मणाहिं य विहेडयंता अवकोडगगाह-उर-सिरबद्ध-उद्धपूरिय ● फुरंत-उरकडगपोडणा-मेडणाहिं बद्धा य णीससंता सीसावेह-उरुयावल-चप्पडग-संधिबंधण-तत्तसलाग-सुइया-कोडणाणि तच्छणविमाणणाणि य खारकडुय तित्तणावणजायणा-कारण-

☆ "दुक्खसयसमुदीरणेहिं"-पाठ भी है।

● यहाँ "असुभपरिणया य" - पाठ श्री ज्ञानविमल सूरि की वृत्ति वाली प्रति में है।

सयाणि बहुयाणि पावियंता उरक्खोडी-दीण्ण-गाढपेल्लण-अट्टिगसंभग्गसपंसुलीगा
गलकालकलोहदंड-उर-उदर-वत्थि-परिपीलिया मत्थंत-हिययसंचुण्णिणयंगमंगा
आणत्तीकिंकरेहिं केई अविराहिय-वेरिएहिं जमपुरिस-सण्णिहेहिं पहया ते तत्थ मंदपुण्णा
चडवेला-वज्झपट्टपाराइं छिव-कस-लत्तवरत्त-णेत्तप्पहारसयतालि-यंगमंगा कि
वणा लंबंत चम्मवणवेयणविमुहियमणा घणकोट्टिम-णियलजुयल संकोडियमोडिया
य कीरंति णिरुच्चारं * एया अण्णा य एवमाईओ वेयणाओ पावा पावेत्ति।

शब्दार्थ - किं ते - वे क्या हैं ? हडि - एक प्रकार का काष्ठ का बना हुआ बन्धन-खोडा,
णिगड - लोहे का बन्धन-बेड़ी, बालरज्जुय - बालों की बनी हुई रस्सी, कुदंडग - लकड़ी का बना हुआ
बन्धन विशेष जिसके अन्त में रस्सी बंधी रहती है, वरत्त - वरत्रा-चमड़े की रस्सी, लोहसंकल -
लोहे की साँकल, हत्थंदुय - लोहे की बनी हुई हथकड़ी, बज्झपट्ट - चमड़े की पट्टी, दामक - पांव बांधने
की रस्सी, णिक्कोडणोहिं - निष्कोटर्न-बन्धन विशेष, अण्णोहिं - अन्य प्रकार के, एवमाइएहिं - इसी
प्रकार के, गोम्मिगभंडोवगरणोहिं - दण्ड देने के साधनों से, दुक्खसमुदीरणोहिं - दुःख दिया जाता है,
संकोडमोडणाहिं - संकुचन और मोडन से, बज्झंति - बांधे या पीटे जाते हैं, मंदपुण्णा - मंद पुण्य वाले,
संपुडकवाड - बन्द कपाट वाली कोठरी, लोहपंजर - लोहे के पिंजरे में, भूमिघर - तल घर, णिरोह -
निरोध-रोकना, कूव - कुएं, चारग - गुप्त घर, कीलग - खीले से, जूय - जूए में, चक्क - चक्र,
वित्तबंधण - जंघा और मस्तक आदि का मर्दन किया जाना, खंभालण - खम्भे से बांधना,
उद्धलणबंधण - पाँवों को ऊपर बाँध कर लटकाना, विहम्मणाहिं - विविध प्रकार की वेदना से,
विहेडयंता - पीड़ित किये जाते हैं, अवकोडगगाढउरसिरबद्ध - गर्दन झुका कर छाती से बांध दी
जाती है, उद्धपुरिया - श्वासोच्छ्वास के भर जाने से छाती आदि का फूल जाना, फुरंतउरकडग -
अति फूल जाना और छाती में कम्पन्न होना, मोडणा - अंगों का मोड़ा जाना, मेडणाहिं - मर्दन करके
कष्ट देने से, बद्धा - बंधे हुए, णीससंता - दीर्घ श्वास लेते-हाँफते हुए, सीसावेड - मस्तक को दूढ़
बन्धन से बाँधना, उरयावल - जंघाको मोड़ना या चीरना, चप्पडगसंधिबंधण - घुटनों और कुहनी आदि
संधिस्थानों की चर्पटक से बांधना, तत्तसलागसूइया कोडणाणि - गर्म की हुई लौह शलाकाएं और
सुइयाँ चुभाई जाती हैं, तच्छणविमाणणाणि - शरीर को छिलकर दुःख देना, खारकडुयत्तिण्णावण -
लवणादि क्षार, कटु तथा तिक्त-मिर्च आदि मुख आदि में डाल कर, जायणा - यातना, कारणसयाणि-
सैकड़ों प्रकार की, बहुयाणि - बहुत-सी, पावियंता - पाते-भोगते हैं, उरक्खोडी - उनकी छाती पर
काष्ठ की भारी खोड़ी-या घोड़ी रखी जाती है, दिण्णगाढपेल्लण - फिर इधर से उधर घसीटते हैं,
अट्टिगसंभग्गसपंसुलीगा - हड्डी पसलीं टूट जाती है, गलकालकलोहदंड - गले में फँस कर जीवन

* "असंचरणा" - पाठ श्री ज्ञानविमल सूरि की वृत्ति वाली प्रति में है।

समाप्त कर देने वाले लोहे के डण्डे से, उर-उदर-वत्थि परिपीलिया - छाती पेट और गुदा स्थान को विशेष रूप से पीड़ित करते हैं, मत्थंतहिययसंचुण्णियंगमंगा - अंगोपांग मथित हो कर चूर-चूर हो जाते हैं, आणत्तीकिंकरेहि - राजाज्ञापालकों के द्वारा, केइ - कई, अविराहियवेरिएहि - बिना अपराध के ही वैर रखने वाले, जमपुरिससण्णिहेहि - यम पुरुषों के समान, पहया - आहत-दुखी, ते - वे, तत्थ-वहाँ-कारागृह में, मंदपुण्णा - अभागे, चडवेलावण्णपट्टपाराइं - थप्पड़, चमड़े के चाबुक, लोहे की कीलों से, छिवकसलत्तरत्तणेत्तप्पहारसयतालियंगमंगा - चमड़े से मढ़ी हुई बेंत, चर्मलता तथा मोटी रस्सी के सैकड़ों प्रहारों से उसके अंगोपांग को, किवणा - दीनता वाले, लंबंतचम्मवण वेयणविमुहियमणा - शरीर की चमड़ी उतर कर लटकने लगती है, घाव हो जाते हैं, उन्हें वेदना होती है, उनका मन विरक्त-उदास हो जाता है, घणकोट्टिम-णियल-जुयलसंकोडिय-मोडिया - लोहे के घण से मार कर उनके अंगोपांग तोड़ दिये जाते हैं, मोड़ दिये जाते हैं और संकुचित कर दिये जाते हैं, कीरंति करते हैं, णिरुच्चार - मल-मूत्र करना रोक दिया जाता है या रुक जाता है, एया - ऐसे, अण्णा-अन्य भी, एवमाईओ - इस प्रकार की, वेयणाओ - वेदना, पावा - पापी लोग, पावेति - भोगते हैं।

भावार्थ - शिष्य पूछता है कि वे कौन-से बन्धन हैं, जिसमें चोर जकड़े जाते हैं? गुरुदेव बन्धनों का स्वरूप बतलाते हैं-चोर को पकड़ कर काष्ठ के खोड़े में बन्द कर दिया जाता है। उसके पांवों में लोहे की बेड़ी डाल दी जाती है। ऊँट, बकरे या भेड़ के बालों की रस्सी से या कुदंडक-काष्ठमय बन्धन जिसके सिरे पर रस्सी बांध कर कसा जाता है, मोटी रस्सी या लोहे की सांकल से जकड़ा जाता है, लोहे की हथकड़ी से हाथ बांधे जाते हैं, चमड़े की पट्टी से पांव बांधे जाते हैं और अन्य बन्धनों से चोरों को बांध दिया जाता है। चोरों को बन्दीगृह के अधिकारियों द्वारा अनेक प्रकार के दुःख दिये जाते हैं। उनके अंगों को संकुचित किया जाता है, मोड़ दिया जाता है। वे दुर्भाग्यी चोर पीटे जाते हैं। उन्हें काष्ठ के यंत्र में कस दिया जाता है, लोहमय पिंजरे में बन्द कर दिया जाता है, तलघर में डाल दिया जाता है, अन्धकूप या गुप्त गृह में डाल दिया जाता है। किसी को खूँटे से बांध दिया जाता है, किसी को जूए में जोत दिया जाता है और किसी को चक्र (पहिये) में बांध कर घोर कष्ट दिया जाता है। उनके जंघा तथा मस्तक का मर्दन किया जाता है। किसी को खंभे से बांधा जाता है। किसी के पांव ऊँचे बांध कर अंधा लटका दिया जाता है और इस प्रकार के अनेक दुःख दिये जाते हैं कि जिनसे उनके अंग-प्रत्यंग टूट जाते हैं। किन्हीं की गर्दन को झुका कर छाती से बांध दी जाती है, जिससे उनके श्वास लेने में कठिनाई होती है और उनका पेट व छाती वायु से फूल जाती है, अँतें ऊपर उठ जाती हैं और छाती में कम्पन होने लगती है। उनके अंगों को मोड़ कर तथा दबा कर भी पीड़ित किया जाता है। वे कठोर बन्धनों से बंधे हुए चोर लम्बे-लम्बे श्वास लेते हैं - हाँफते हैं। उनका मस्तक चमड़े की रस्सी से दृढ़ता से बांध दिया जाता है। उनकी जंघाओं को मोड़ा जाता है या चीरा जाता है। चर्पट नामक काष्ठ के यंत्र से उनके घुटने आदि सन्धी-स्थान बांधे जाते हैं, जिससे उन्हें असह्य वेदना होती

है। लोहे की गर्म शलाकाएं या सुइयें उनके शरीर में चुभाई जाती हैं। उनके शरीर को छिला जाता है और ऊपर से नमक-मिर्च आदि लगा कर जलन उत्पन्न की जाती है। इस प्रकार सैकड़ों प्रकार की यातनाएं दी जा कर पीड़ित किया जाता है। उनकी छाती पर काष्ठ का भारी बोझ रख कर दबाया जाता है और घसीटा जाता है, जिससे उनकी हड्डी-पसली टूट जाती है। किसी के गले में या गुदा में लोहदण्ड फँसा दिया जाता है, जिससे उसके अंग मथित हो कर दारुण दुःख होता है। अंग चूर-चूर हो जाते हैं। कोई अधिकारी तो बिना अपराध के ही कैदी बन कर यमराज के समान दुःखदायक हो जाता है। कराधिकारी और उनके सेवक, उन दुर्भागी चोरों को थप्पड़, रस्सी, लोहकुसी, चांबुक आदि साधनों से प्रहार करते हैं। इससे उन अभागों की चमड़ी लटक जाती है, घाव हो जाते हैं, इससे उन्हें तीव्र वेदना होती है और वे अपने चौर्यकर्म को कोसते हैं। वे बड़े ही दीन हो जाते हैं। किसी चोर को लोहे के घन से मार कर अंग तोड़-मरोड़ देते हैं, संकुचित कर देते हैं। कभी-कभी चोर की लघुनीत बड़ीनीत रोक देते हैं और मुँह से बोलना तक बन्द कर देते हैं। यों अनेक प्रकार की यंत्रणाएँ वे चोरी करने वाले तस्कर लोग भुगतते हैं।

चोर को दिया जाने वाला दण्ड

अदंतिंदिया वसट्टा बहुमोहमोहिया परधणम्मिलुद्धा फासिंदियविसय-तिव्वगिद्धा इत्थिगयरूवसहरसगंधइडुरइमहिय भोगतण्हाइया य धणतोसगा गहिया य जे णरगणा, पुणरवि ते कम्मदुव्वियद्धा उवणीया रायकिंकराण तेसिं वसहत्थगपाढयाणं विलउलीकाराणं लंचसयगेण्हाणं कूडकवडमाया-णियडि-आयरणपणिहिवंचण-विसारयाणं बहुविहअलियसयजंपगाणं परलोय-परम्मुहाणं णिरयगइगामियाणं तेहिं आणत्तजीयदंडा तुरियं उग्घाडिया पुरवरे सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु वेत-दंड-लउड-कट्टेलेदु-पत्थर-पणालिपणोल्लिमुट्टि-लया पायपणिह जाणु-कोप्पर-पहारसंभग-महियगत्ता ।

शब्दार्थ - अदंतिंदिया - जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, वसट्टा - वशात्-जो विषयों के आधीन हैं, विषयों से पीड़ित हैं, बहुमोहमोहिया - जो महामोह से मोहित है, परधणम्मिलुद्धा - जो दूसरों के धन में लुब्ध हैं, फासिंदियविसय - स्पर्शनेन्द्रिय के विषय में, तिव्वगिद्धा - अत्यन्त गूढ़ हैं, इत्थिगयरूवसहरसगंध - स्त्री के रूप शब्द रस और गंध में, इडुरइमहिय - रति-संभोग में अत्यन्त प्रीति रखने वाले, भोगतण्हाइया - भोग की तृष्णा वाले, धणतोसगा - धन प्राप्त होने पर तुष्ट होने वाले, गहिया - पकड़े जाते हैं, णरगणा - मनुष्यगण-चोर लोग, पुणरवि - फिर भी वे, कम्मदुव्वियद्धा - पाप क्रिया से उत्पन्न फल से अनभिज्ञ, उवणीया - पहुँचाये हुए, रायकिंकराण - राज्य-कर्मचारियों द्वारा,

तेसिं - उनमें, वहसत्थगपाडयाणं - कई वधशास्त्र के ज्ञाता हैं उनसे, विलउलीकारगाणं - जो चोरों का पता लगाने में कुशल हैं, लंचसयगेण्हाणं - जो सैकड़ों प्रकार से घूस लेते हैं, कूडकवडमायाणियडि-वे छल-कपट और वेश परिवर्तन आदि प्रपंच का, आयरणपाणिहि वंचण विसारयाणं - आचरण करने तथा जासूसी करके भुलावा देने में प्रवीण होते हैं, बहुविह - अनेक प्रकार से, अलियसय - सैकड़ों प्रकार के झूठ, जंपगाणं - बोलते हैं, परलोय - परलोक से, परम्मुहाणं - विमुख रहते हैं, णिरयगइगाभियाणं-नरक गति में जाने वाले, तेहिं - उन, आणत्तजीयदंडा - प्राण-दण्ड आदि की आज्ञा देते हैं, तुरियि - त्वरित, उधाडिया - प्रकट रूप से, पुरवरे - नगर में, सिंघाडग - शृंगाटक-त्रिकोण बाजार, तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह - त्रिक चतुष्क चत्वर चतुर्मुख महापहपहेसु - महापथ-राजमार्ग और सामान्य पथ पर, वेत्त - बेंत, दंड - डण्डा, लउड - लकड़ी, कट्टु - काष्ठ, लेट्टु - मिट्टी का ढेला, पत्थर - पत्थर, पणात्ति - शरीर प्रमाण दण्ड, पणोल्लि - एक प्रकार की लाठी, मुट्टि - मुक्का, लया - लता, पायपण्ह-लात, जाणु - घुटनों से, कोप्पर - कूहनी से, पहार - प्रहार-मार कर के, संभग्गयहियगत्ता - हड्डियाँ तोड़ देते हैं, गात्रों का मथन कर देते हैं।

भावार्थ - वे चोर उपरोक्त तथा आगे कही जाने वाली वेदना भुगतते हैं - जिनकी इन्द्रियाँ (और मन) वश में नहीं है, जो विषय के आधीन बन गए हैं, जो महामोहनीय से मोहित है, पराये धन पर जो लुब्ध हैं। जो स्पर्शनिन्द्रिय के विषय में अत्यन्त आसक्त हैं, स्त्रियों के रूप, शब्द, रस, गंध एवं संभोग में जो अत्यन्त इच्छा वाले हैं और पराया धन चुरा कर ही जो संतुष्ट रहने वाले हैं, ऐसे चोरों को आरभक पकड़ लेते हैं। चौर्यकर्म एवं जारपन आदि पापकर्म के दुःखद फल से अनभिज्ञ वे पापी, राज्याधिकारियों के पास पहुँच कर दुःखी होते हैं। वे राज्याधिकारी बड़े निर्दय, दण्ड-त्रिधान और वध-शास्त्र के ज्ञाता होते हैं, चोरों, लुब्धों और ठगों को भांपने-पहचानने में वे बड़े कुशल होते हैं। कई अधिकारी सैकड़ों प्रकार से (या सैकड़ों रूपों की) घूस लेते हैं। झूठ, कपट, छल एवं वंचना करके, वेश बदल कर और भेदी रूप से चोरों को पकड़ने तथा भेद खुलवाने में बड़े निपुण होते हैं, सैकड़ों प्रकार से झूठ बोल कर वे अपने जाल में फांस लेते हैं। वे क्रूर अधिकारी परलोक से विमुख हो कर नरकगति में जाने वाले होते हैं। प्राणदण्ड आदि कठोरतम दण्ड की आज्ञा देने में वे विलम्ब नहीं करते, अपितु शीघ्रता करते हैं। वे आज्ञा देते हैं कि इस चोर को खुले रूप में नगर में, नगर के तीन मार्ग, चतुर्पथ, राजमार्ग और सार्वजनिक स्थानों पर ले जाओ और समस्त लोगों के सम्मुख बेंत, डंडे, लाठी, पत्थर, लात, मुक्का, और अन्य साधनों से पीटो। खूब मारो, इतना मारो कि इसकी हड्डियाँ टूट जायें, गात्र-भंग हो जाये और सारे शरीर का मथन होकर शक्ति हीन हो जाय।

शृंगाटक - सिंगोड़े के आकार का त्रिकोण मार्ग।

त्रिक - जहाँ तीन मार्ग मिलते हों।

चतुष्क - जहाँ चार मार्ग मिलते हों।

चत्वर - जहाँ अनेक मार्ग मिलते हों।

चतुर्मुख - चार द्वारों वाले-देवमंदिर या सार्वजनिक स्थान।

महापथ - राजमार्ग।

अट्टारसकम्पकारणा जाइयंगमंगा कलुणा सुक्कोट्टकंठ-गलगतालु-जीहा जायंता पाणीयं विगय-जीवियासा तण्हाइया वरागा तं वि य ण लभंति वज्झपुरिसेहिं धाडियंता। तत्थय खर-फरुस-पडहघट्टियकूडग्गहगाढरुट्ट णिसट्टपरामुट्टा वज्झयर-कुडिजुयणियत्था सुरत्तकणवीर-गहियविमुकुल-कंठेगुण-वज्झदूय आविद्धमल्लदामा, मरण भयुप्पणसेय-आयतणेहुत्तुपियकिलिण्णागत्ता चुण्णगुंडियसरीर-रयरेणुभरियकेसा कुसुंभगेकिण्णमुट्टया छिण्ण-जीवियासा घुण्णंता वज्झयाणभीया * तिलं तिलं चेव छिज्जमाणा सरीरविविकंतलोहिओलित्ता कागणिमंसाणि खावियंता पावा खरफरुसएहिं तालिज्जमाणदेहा वातिग-घरणारीसंपरिवुडा पेच्छिज्जंता य णगरजणेण वज्झणेवत्थिया पणेज्जंति णयरमज्झेण किवणकलुणा अत्ताणा असरणा अणाहा अबंधवा बंधुविप्पहीणा विपिक्खंता दिसोदिसिं मरणभयुव्विग्गा आघायणपडिदुवार-संपाविया अधण्णा सूलग्गविलग्गभिण्णदेहा।

शब्दार्थ - अट्टारस - अठारह, कम्पकारणा - चौर्यकर्म के कारण हैं, जाइयंगमंगा - भजन अंगोपांग वाले, कलुणा - करुणाजनक दशा है जिनकी-दीन, सुक्कोट्टकंठगलगतालुजीहा - संताप के कारण उनका कंठ, गला, तालू और जिह्वा सूख जाती है, जायंतापाणीयं - पानी की याचना करते हैं, विगय - बीत चुकी-नष्ट हो चुकी, जीवियासा - जीवित रहने की आशा, तण्हाइया - प्यास के मारे, वरागा - विचारे, तं वि - तो भी, ण लभंति - प्राप्त नहीं करते। वज्झपुरिसेहिं - अधिक पुरुष-जल्लाद, धाडियंता-ले जाते हुए, तत्थय - वहाँ, खरफरुस-पडह-घट्टिय - कठोर एवं कर्कश आवाज वाला पटह-नगारा बजाया जाता है, कुडग्गह - कुटिलता से पर धन को चोरने वाले-चोर पर, गाढरुट्ट - अत्यन्त रुष्ट हो कर, णिसट्टपरामुट्टा - चोरी से प्राप्त धन छीन लेते हैं और उसे पकड़ भी लेते हैं, वज्झयरकुडिजुयणियत्था - प्राणदण्ड पाये हुए मनुष्य के योग्य उसे दो वस्त्र पहनाये जाते हैं, सुरत्तकणवीरगहिय - कनेर के लाल फूलों से बनाई हुई, विमुकुल - विकसित पुष्पों से, कंठेगुण - गुण-कंठ-सूत्र के समान, वज्झदूय - वध्य-दूत-वध-चिह्न जैसी, आविद्ध मल्लदामा - पुष्पमाला पहनाई जाती है, मरणभयुप्पण - मृत्यु के भय से उत्पन्न, सेय - स्वेद-पसीने से, आयतणेहुत्तुपिय - शरीर जलता है और, किलिण्णागत्ता - सारा शरीर झरता है, चुण्णगुंडियसरीर - उसके शरीर पर चूर्ण-चूना लगा

* 'वज्झपाणिप्पया' - पाठ भी है।

कर रंगा जाता है, **रयरेणुभरियकेसा** - उसका शरीर तथा केश धूल से भरे होते हैं, **कुसुंभगोकिण्ण-**
मुद्दक - कौसुम्भ रंग से उसके बाल रंगे जाते हैं, **छिण्णजीवियासा** - जिसके जीवन की आशा नष्ट
 हो जाती है, **घुण्णता** - मस्तक घूमने-चक्कर आने लगता है, **वञ्जयाणभीया** - जो अधिक से भयभीत
 हैं, **तिलं तिलं चेष** - वह तिल-तिल करके, **छिज्जमाणा** - रक्त-मांस क्षीण होता है, **सरीरविक्कंत** -
 उसके कटे हुए शरीर से निकले हुए, **लोहिओलित्त** - रक्त से लिप्त, **कागणिमंसाणि** - मांस के छोटे-
 छोटे टुकड़े, **खाविंयता** - उसे खिलाये जाते हैं, **पावा** - वह पापी, **खरफरुसएहिं** - कठोर एवं कर्कश
 स्पर्श वाले-पत्थर आदि से, **तालिज्जमाणदेहा** - पीता जाता है, **दातिगणरणा** - अनियन्त्रित हजारों नर-
 नारियों से, **संपरिवुडा** - घिरा हुआ, **पेच्छिज्जता** - देखे जाते हुए, **णगरजणेणं** - नगर जनों से,
वञ्जणेवत्थिया - वध्य-नेपथ्यक-मृत्यु दण्ड के योग्य वस्त्रादि से युक्त, **पणेज्जंति** - ले जाया जाता है,
णयरमञ्जेण - नगर के मध्य में होकर, **किवणकलुणा** - कृपण करुणा-अत्यन्त दीन हुए, **अत्ताणा** -
 रक्षक विहीन, **असरणा** - शरण रहित, **अणाहा** - अनाथ, **अबंधवा** - बान्धव रहित, **बंधुविप्यहीणा** -
 बन्धुओं द्वारा त्यागा हुआ, **विपिक्खंता** - देखता है, **दिसोदिसिं** - एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर,
मरणभयुक्खिग्गा - मृत्यु-भय से उद्विग्न हुए, **आधायण पडिदुवार** - वध्य स्थान के द्वार पर, **संपाविया-**
पहुंचाया हुआ, **अधण्णा** - अधन्य-अभागा, **सूलग्गविलग्गभिण्णदेहा** - शूली पर चढ़ाते ही शूली से
 उसका शरीर भिन्न हो जाता है।

भावार्थ - चोरी की उत्पत्ति के अठारह कारण कहे गए हैं। राज्याधिकारी उन कारणों पर विचार
 करके कठोर दण्ड देते हैं। कठोर दण्ड से, अपराधी चोर के अंग भग्न हो जाते हैं। वह करुणा का पात्र
 हो जाता है। उत्कट यातना के कारण उसके ओष्ठ, कंठ, तालु और जीभ सूख जाते हैं। वह प्यास से
 पीड़ित हो कर दीनतापूर्वक पानी माँगता है, किन्तु उसे पानी भी प्राप्त नहीं होता। उसके जीवन की
 आशा लुप्त हो जाती है। जिस चोर को प्राणदण्ड की आज्ञा हुई है, वह अधिक (फांसी या शूली देने
 वाले जल्लाद) द्वारा वधस्थल पर ले जाया जाता है। उसके साथ कर्कश एवं असहनीय ध्वनि करने
 वाला पटह बजाया जाता है और अपराधी को चलने के लिए प्रेरित किया जाता है - चलाया जाता है।
 उसे वध के समय पहनने योग्य वस्त्र पहनाये जाते हैं। उसके गले में कनेर के लाल रंग के फूलों की
 माला पहनाई जाती है। मृत्यु के भय से उसके शरीर से पसीना झरता रहता है और उससे उसका सारा
 शरीर गीला हो जाता है। उसके शरीर में चूर्ण (या चूना अथवा भस्म) लगा दिया जाता है और विविध
 प्रकार के रंग से रंग दिया जाता है। उसके बाल, वायु से उड़ी हुई रज तथा ऊपर से डाली हुई धूल से
 भरे हुए होते हैं और कौसुभ रंग (गौर वर्ण वाले-टीकाकार) रंग दिये जाते हैं। उसके जीवन की आशा
 टूट जाती है। हताश हो जाने और मृत्यु के भय से उसके मस्तक में चक्कर आने लगते हैं। अधिकों के
 भय से उसका रक्त और मांस तिल-तिल करके क्षीण होता जाता है। कोई क्रूरतापूर्ण दण्ड देने वाले
 अधिक, उस दण्डित मनुष्य के शरीर के छोटे-छोटे टुकड़े करके, रक्त से लिप्त मांस के टुकड़े उसी को

खिलाये जाते हैं। वह पाप के भयंकर उदय वाला, पत्थर, लाठी आदि से पीटा जाता हुआ वधस्थान ले जाया जाता है। हजारों स्त्री पुरुषों से घिरा हुआ वह वध्य मनुष्य, नगर के मध्य में हो कर ले जाया जाता है। उसके शरीर पर प्राण-दण्ड के योग्य वस्त्र पहनाये हुए होते हैं। उसे देखने के लिए नागरिकजन चारों ओर से घेर लेते हैं। उस समय वह दीनतापूर्वक चारों ओर देखता है, किन्तु उस अभाग्य का कोई भी रक्षक नहीं बनता। उसे शरण देने वाला कोई नहीं होता। उस हतभागी का कोई पालक-स्वामी नहीं बनता। वैसे पापी, बन्धु-बान्धवों से हीन होते हैं। यदि ऐसे चोरों के बान्धवगण हों भी, तो वे उससे अपना नाता तोड़ लेते हैं। इस प्रकार मृत्युभय से उद्विग्न एवं भ्रान्त बना हुआ वह हीनतम मनुष्य, वधस्थल पर ले जाकर शूली पर चढ़ा दिया जाता है। वह शूल उसके शरीर को भेदकर बाहर निकल जाती है।

विवेचन - चोर के प्रकार-

“चौरः चौरार्पको मन्त्रीः, भेदज्ञः काणकक्रयी।

अन्नदः स्थानदर्शकः, चौरः सप्तविधः स्मृतः ॥”

- चोर के सात प्रकार हैं, यथा - १. चोरी करने वाला २. चोर को साधन देने वाला ३. चोर को परामर्श देने वाला ४. चोरी करने का भेद बताने वाला ५. चोरी का माल खरीदने वाला ६. चोर के खाने-पीने की व्यवस्था करने वाला और ७. चोर को स्थान देने वाला।

चोरी अठारह प्रकार की होती है। यथा -

“भलनं कुशलं तर्जा, राजभोगोवलोकनं।

अमार्गदर्शनं शय्या, पदभंगस्तथैव च ॥ १ ॥

विश्रामः पादपतन, मासनं गोपनं तथा।

खण्डस्यखादनं चैव, तथाऽन्यन्माहराजिकम् ॥ २ ॥

पद्याग्न्युदकरजूनां, प्रदानं ज्ञानपूर्वकम्।

एताः प्रसूतयो ज्ञेयाः अष्टादश मनीषिभिः ॥ ३ ॥”

- १. भलन-चोर का उत्साह बढ़ाना, उसमें मिलना, साथ देना २. कुशल-कुशल पूछना ३. तर्जा-अंगुली आदि से संकेत करना ४. राजभाग नहीं देना ५. अवलोकन-चोरी करते देखकर भी उपेक्षा करना ६. अमार्गदर्शन - खोज करने वालों को उल्टा मार्ग बताना ७. शय्या - चोर को सोने को स्थान व बिछौना देना ८. पदभंग - चोरों के चरणचिह्न मिटाना ९. विश्राम - विश्राम देना १०. पादपतन - चोर के चरणों में गिर कर सम्मान देना ११. आसन देना १२. गोपन-छुपाना १३. खण्डखादन-मिष्ठान देना १४. माहराजिक-दूसरे स्थान या पर-राष्ट्र में ले जाकर चोरी की वस्तु बेचना १५. पद्या - उष्ण जल, तेल आदि देना अथवा मार्ग देना १६. अग्नि-दान १७. जलदान और १८. रञ्जु (रस्सी) दान। ये अठारह प्रकार की चोरियाँ कही गई हैं। चौर्यकर्म के ये कारण हैं।

चोरों को दी जाती हुई भीषण यातनाएं

ते य तत्थ कीरंति परिकप्पियंगमंगा उल्लंविज्जंति रुक्खसालासु केइ कलुणाइं विलवमाणा अवरे चउरंगधणियबद्धा पव्वयकडगा पमुच्चंते दूरपातबहुविसमपत्थरसहा अण्णे य गय-चलण-मलणयणिम्महिया कीरंति पावकारी अट्टारसखंडिया य कीरंति मुंडपरसूहिं केइ उक्कत्तकण्णोदुणासा उप्पाडियणयण-दसण-वसणा जिब्भंदियछिया छिण्णकण्णसिरा पणिज्जंते छिज्जंते य असिणा णिव्विसया छिण्णहत्थपाया पमुच्चंते य जावजीवबंधणा य कीरंति केइ परदव्वहरणलुद्धा कारग्गलणियलजुधलरुद्धा चारगावहतसारा सयणविप्पमुक्का मित्तजणणिरक्खिया णिरासा बहुजण-धिव्वकार-सइ-लज्जाइया अलज्जा अणुबद्धखुहा पारद्धा सी-उण्ड-तण्ह-वेयण-दुग्घट्टघट्टिया विवण्णमुह-विच्छविया विहलमइलदुब्बला किलंता कासंता वाहिया य आमाभिभूयगत्ता परूढ-णह-केस-मंसु-रोमा छगमुत्तम्मि णियगम्मिखुत्ता। तत्थेव मया अकामगा बंधिऊण पाएसु कट्टिया खाइयाए छूढा तत्थ य वग-सुणग-सियाल-कोल-मज्जार-चंडसंदंसगतुंड-पक्खिगण-विविह-मुहसयल-विलुत्तगत्ता कयविहंगा केइ किमिणा य कुहियदेहा अणिदुवयणेहिं सप्पमाणा सुदु कयं जं मउत्ति पावो तुट्टेणं जणेण हम्ममाणा लज्जावणा य होति सयणस्स वि य दीहकालं।

शब्दार्थ - ते - वे, य - और, तत्थ - वहाँ, कीरंति - करते हैं, परिकप्पियंगमंगा - अंगोपांग काट देते हैं, केइ - कई या किसी को, उल्लंविज्जंति - उल्टा लटका देते हैं, रुक्खसालासु - वृक्ष की शाखा में, कलुणाइं - करुणापूर्ण, विलवमाणा - विलाप करते हैं, अवरे - कई, चउरंगधणियबद्धा - हाथ-पाँव चारों अंग दृढ़तापूर्वक बांध कर, पव्वयकडगा - पर्वत के शिखर से, पमुच्चंते - गिरा देते हैं, दूरपात - दूर से गिराये हुए, बहुविसमपत्थरसहा - अत्यन्त विषम पत्थरों का आघात सहते हुए, अण्णे-दूसरे, गयचलणमलणयणिम्महिया - पृथ्वी पर डाल कर हाथी के पैरों से कुचले जाते हैं, पावकारी-पाप करने वाले, अट्टारसखंडिया - अठारह टुकड़े करके, मुंडपरसूहिं - कुण्ठित फरसे से, उक्कत्तकण्णोदुणासा - कान, ओष्ठ और नाक काट लेते हैं, उप्पाडिय - उखाड़ देते हैं, णयण-दसण-आँखें, दाँत, वसणा - गुप्तांग-अण्डकोष, जिब्भंदियछिया - जीभ का छेदन कर लेते हैं, छिण्णकण्णसिरा - कान और सिर काट लेते हैं, पणिज्जंते - चधस्थल पर ले जाते हैं, छिज्जंते - काटते हैं, असिणा - तलवार से, णिव्विसया - निर्विषय-देश निकाला, छिण्णहत्थपाया - हाथ-पाँव काट देते हैं, पमुच्चंते - छोड़ देते या निकाल देते हैं, जावजीवबंधणा - जीवन पर्यन्त बन्दी, कीरंति - करते हैं, परदव्वहरणलुद्धा - दूसरों के धन को हरण करने में लुब्ध, कारग्गलणियलजुधलरुद्धा -

अर्गलायुक्त कारागृह में डालकर अवरुद्ध कर रखते हैं, चारगावहतसारा - बन्दी बना कर उनका सभी धन ले लिया जाता है, सयणविष्यमुक्का - स्वजनों से छोड़े-त्यागे हुए, भित्तजणणिरिक्खिया - मित्रजनों से भी त्यागे हुए, गिरासा - निराश, बहुजणधिककारसहलज्जाइया - बहुत-से मनुष्यों से धिक्कार के शब्दों से जो लज्जित हैं, अलज्जा - लज्जा-रहित, अणुबद्धखुहा - भूख से निरन्तर पीड़ित, पारब्धा - पीड़ित, सी-उण्ह-तण्हवेयण - शीत, उष्ण, तृषादि वेदना से, दुग्घट्टुधट्टिया - अत्यन्त दुःखी हैं जो, विवण्णमुह - विवर्ण-मुख-जिनके मुंह का वर्ण बिगड़ा हुआ है, विच्छविया - कान्तिहीन-निस्तेज, विहल - निष्फल, मइल - म्लान, दुब्बला - दुर्बल, किलंता - क्लेशित, कासंता - खांसते हुए, वाहिया - व्याधि पीड़ित, आमाभिभुयगत्ता - आमाशय विषाक्त हो कर पीड़ित, परूढ - बढ़ जाते हैं, णहकेसमंसुरोमा - नख, केस और दाढ़ी मूँछ के बाल, छगमुत्तम्मि - विष्टा और मूत्र में, णियगम्मि - निकल जाने से, खुत्ता - लिप्त हैं, तत्थेव - वहाँ, मया - मर जाते हैं, अकामगा - अनिच्छापूर्वक, बंधिरुण - बांध कर, पाएसु - पाँव कों, कट्टिया - घसीट कर निकालते, खाइयाए - खाई में, छूढा - डाल देते हैं, तत्थय - वहाँ या उसे, वगसुणगसियालकोलमज्जार - भेडिया, कुत्ता, गीदड़, सूअर, बिल्ली, चंडसंदंसग-तुंडपक्खिगण - तीक्ष्ण चोंच वाले पक्षीगण, विविहमुह-सयल - अनेक प्रकार के सैकड़ों मुंहों से, विलुतगत्ता - विलुप्त गात्र-अंग-प्रत्यंग खाये जाकर नष्ट हो गये, कयविहंगा - खण्डित किये हुए अंग, किथिणा - कृमि-कीड़ों से, कुहिय देहा - सड़े हुए शरीर से, अणिट्टवयणेहि - अनिष्ट वचनों से, सप्पमाणा - शय्यमान-गाली आदि से, सुद्धुकयं - अच्छा किया, जं - यह, मउत्ति - मर गया, पावो-पापी, तुट्टेणं - संतुष्ट हुए, जणेण - लोग, हम्ममाणा - मारते हुए, लज्जावणगाहोत्ति - लज्जित होते रहते हैं, सयणस्स - उनके स्वजन, दीहकालं - दीर्घ काल तक।

भावार्थ - वधस्थान पर ले जा कर वधिकगण किसी चोर के अंगोपांग काट देते हैं, किसी को वृक्ष की शाखा से पाँव बांध कर उल्टा लटका देते हैं, तब वह चोर, करुणाजनक विलाप करता है। किसी के दोनों हाथ और दोनों पाँव-ये चारों अंग दृढ़ता से बांध कर पर्वत के शिखर पर से नीचे गिरा देते हैं। इतने ऊपर से गिराये हुए वे नुक़ीले एवं विषम पत्थरों से टकराते-कुटाते और असह्य वेदना सहते हुए मर जाते हैं। किन्हीं को भूमि पर डाल कर उन पर हाथी चलाये जाते हैं और उन्हें कुचल कर मार देते हैं। किन्हीं पापी चोरों के अंगों को कुण्ठित कुठार (वह कुल्हाड़ा जिसकी धार तीक्ष्ण न हो) से काट कर अठारह टुकड़े किये जाते हैं। किसी के कान, नाक और ओष्ठ काट लेते हैं। किसी की आँखें निकाल लेते हैं, तो किसी के दांत तोड़ देते हैं और किसी के अंडकोष निकाल लेते हैं। किसी की जीभ काट डालते हैं। किसी के कान काट लेते हैं और किसी का मस्तक ही काट लेते हैं। किसी का वधस्थल पर ले जाते ही तलवार से सिर काट देते हैं। किसी के हाथ-पाँव काट कर देश निकाला दे देते हैं और किसी चोर को जीवनपर्यन्त बन्दी बनाये रखते हैं। दूसरों के धन का हरण करने वाले चोरों को कारागृह में बन्दी बना कर द्वार बन्द करके रखते हैं। उनका धन राज्यकोष में ले लिया जाता है। वे

पापी चोर स्वजन-परिजनों से रहित-अकेले होते हैं। उनका कोई मित्र नहीं होता। उनके मन में यह आशा ही नहीं रहती कि उन्हें कोई बचाने का प्रयत्न करेगा। जनता उन्हें धिक्कारती रहती है। जन-धिक्कार के शब्द उन्हें लज्जित करते हैं, किन्तु वे निर्लज्ज होते हैं। वे भूख से निरन्तर पीड़ित रहते हैं। शीत, ताप, प्यास आदि से वे दुःखित रहते हैं। उनका मुंह विकृत-फोका, कान्ति-हीन और मलीन हो जाता है। उनकी कोई भी इच्छा पूरी नहीं होती। वे दुर्बल एवं क्लेशित रहते हैं। उन्हें खांसी आदि रोग हो जाते हैं। उनका आमाशय विकृत होकर अपक्व रस से शरीर विषाक्त हो जाता है। उनके नाखून, केश, डाढ़ी-मूँछ के बाल बढ़ जाते हैं। वे कारागृह में अपनी ही विष्टा और मूत्र में लिप्त हो जाते हैं और जीवन की इच्छा रखते हुए भी मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इसके बाद उनके पाँवों में रस्सी बांध कर घसीटते हुए लें जा कर उन्हें किसी खाई में डाल देते हैं। वहाँ उनके उस मृत शरीर को भेड़िये, कुत्ते, सियार, बिल्ले आदि पशु नोच-नोच कर खाते हैं। गिद्धादि अनेक प्रकार के पक्षी अपनी विविध प्रकार की तीखी चोंचों से नोच खा कर अंग-उपांग नष्ट एवं विलुप्त कर देते हैं। उनके शरीर के कई टुकड़े कर देते हैं। किसी का शरीर सड़ जाता है और उसमें कीड़े पड़ जाते हैं। जो मनुष्य उन्हें देखता है, वही उनकी निन्दा करता और गालियाँ देता है। कई लोग कहते हैं कि इस पापी को इतना कठोर दण्ड दिया-यह अच्छा ही किया और यह मर गया-यह भी अच्छा हुआ। उन्हें दण्डित देख कर संतुष्ट हुए लोग भी उन्हें मारते हैं। उनके मरने के बाद भी उनके सम्बन्धीजन, उनके दुष्कृत्य के कारण चिरकाल तक लज्जित होते रहते हैं।

विवेचन - इस सूत्र में चोरी करने वाले अपराधी को दिये जाने वाले उग्रतम दण्ड का वर्णन किया गया है। इसमें खास-खास दण्डों का ही उल्लेख है। हाथी के पैरों से कुचलवा कर मारने के अतिरिक्त सिंह के पिंजरे में बन्ध करके मारने, भयंकर विषधर से डसवाकर मारने आदि रूप के दण्डदान तो मुस्लिम बादशाहों के समय तक होता था। गर्दन पर कुल्हाड़ी चला कर, लकड़े के समान काटने और एक ऊँचे खंभे पर बांध कर, नीचे आग जला कर उसकी आँच में धीमे-धीमे तपा कर-भुनते हुए, अत्यन्त कष्टपूर्वक मारने का दण्ड, इंग्लैण्ड में दिया जाता था-ऐसा उल्लेख भी पढ़ने में आया है और यह दण्ड कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट के साम्प्रदायिक पक्षपात से (मान्यता प्रचारित करने के अपराध में) दिया जाता था।

अट्टारसखंडिया - चोर के शरीर के अठारह खण्ड करना। यथा - २ कान, २ नाक, २ आँखें, २ ओष्ठ, २ हाथ, २ पाँव, १ जीभ, १ गर्दन, १ कंठ, १ पीठ, १ वक्षस्थल और १ गुह्येन्द्रिय।

पाप और दुर्गति की परम्परा

मया संता पुणो परलोग-समावण्णा णारए गच्छंति णिरभिरामे अंगार-पलित्तककप्प-अच्चत्थ-सीयवेयण-अस्साउदिण्ण-सययदुक्ख-सय-समभिहुए, तओ

वि उवट्टिया समाणा पुणो वि पवज्जंति तिरियजोणिं तर्हि पि णिरयोवमं अणुहवंति वेयणं, ते अणंतकालेण जइ णाम कर्हि वि मणुयभावं लभंति णोगेहिं णिरयगइ-गमण तिरिय-भव-सयसहस्स-परियट्ठेहिं ।

तत्थ वि य भवंतऽणारिया णीय-कुल-समुप्पण्णा आरियजणे वि लोगबज्जझा तिरिक्खभूया य अकुसला कामभोगतिसिया जर्हि णिबंघंति णिरयवत्तणिभवप्पवंचकरण-पणोल्लि पुणो वि संसारावत्तणेममूले धम्म-सुइ-विवज्जिया अणज्जा कूरा मिच्छत्तसूइपवण्णा य होति एगंत-दंड-रुइणो वेढेंता कोसिकारकीडोव्व अप्पगं अट्टकम्मतंतु घणबंघणेणं ।

शब्दार्थ - मयासंता - मरने पर, पुणो - फिर, परलोगसमावण्णा - परलोक प्राप्त कर, णरए - नरक में, गच्छंति - जाते हैं, णिरभिरामे - असुहावने-सुन्दरता रहित-अप्रिय-अरुचिकर, अंगारपलित्तककप्प - अत्यन्त प्रज्वलित अंगारों से युक्त, अच्छत्थ - अत्यन्त, सीय वेयण - शीत वेदना, अस्साउदिण्ण - दुःख उत्पन्न होने पर, सयथ - सतत-निरन्तर, दुक्ख-सय - सैकड़ों दुःख, समभिहुए-उत्पन्न होने से, तओ वि - वहाँ से, उवट्टियासमाणा - निकल कर, पुणोवि - फिर वे, पवज्जंति - जाते हैं, तिरियजोणिं - तिर्यच योनि में, तर्हि पि - वहाँ भी, णिरयोवमं - नरक के समान, अणुहवंति-अनुभव करते-भोगते हैं, वेयणं - वेदना, अणंतकालेण - अनंतकाल से, जइ णाम - यदि नाम-कदाचित्, कर्हि वि - किसी प्रकार, मणुयभावं - मनुष्य भव, लभंति - प्राप्त करते हैं, णोगेहिं - अनेक, णिरयगइगमण - नरक गति में गमन, तिरियभव-सयसहस्स - तिर्यच के लाखों भव, परियट्ठेहिं - परिवर्तन-भ्रमण ।

तत्थ वि य - वहाँ भी, भवंत - होते हैं, अणारिया - अनार्य, णीयकुलसमुप्पण्णा - नीच कुलोत्पन्न, आरियजणेवि - आर्य देश में उत्पन्न हों तो भी, लोगबज्जझा - लोकबाह्य-अछूत, तिरिक्खभूया - पशु के समान, अकुसला - बुद्धिहीन-तत्त्वज्ञान से रहित, काम-भोगतिसिया - काम-भोग के प्यासे, जर्हि - वहाँ, णिबंघंति - बांधते हैं, णिरयवत्तणि - नरक में ले जाने वाले, भवप्पवंचकरणपल्लोणि - भव प्रपंच को बढ़ाने वाले, पुणो वि - फिर भी, संसारावत्तणेममूले - संसार में परिभ्रमण कराने के मूल कारण, धम्मसूइविवज्जिया - धर्म श्रवण से वर्जित, अणज्जा - अनार्य, कूरा - क्रूर, मिच्छत्तसूइ - पवण्णा - मिथ्यात्व श्रुति का प्रतिपादन करने वाले, होति - होते हैं, एगंत दंड रुइणो - एकान्त दण्ड देने या पापाचरण से दण्डित होने योग्य रुचि वाले, वेढेंता - बांधते हैं, कोसिकारकीडोव्व - कोशिकार के समान, अप्पगं - अपने को, अट्टकम्मतंतु - आठ कर्म रूपी तन्तुओं से, घणबंघणेणं - दृढ़ बन्धनों से ।

भावार्थ - वे चोर वहाँ से मर कर परलोक जाते हैं, तब वे उन नरकों में जाते हैं, जहाँ

जाज्वल्यमान अंगारों से युक्त स्थान होने के कारण अत्यन्त उष्ण वेदना होती है, कहीं हिम (बर्फ) से भी अत्यन्त शीत वेदना होती है और अन्य प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। नरक भूमि घोर, भयावनी एवं अप्रिय है। नरक की आयु पूरी करके वे पापी जीव, वहाँ से मर कर तिर्यच योनि में जाते हैं। तिर्यच योनि में भी वे नरक के समान दुःख भोगते हैं। इस प्रकार नरकों के अनेक और तिर्यचों के लाखों भव, अनन्तकाल तक करके, कभी किसी प्रकार मनुष्य-भव प्राप्त कर लेते हैं, तो वहाँ भी वे अनार्य (शक, यवन, बर्बर आदि म्लेच्छ) एवं नीच कुल में उत्पन्न होते हैं। कभी वे आर्यदेश में उत्पन्न हो भी जाएँ, तो वैसे कुल में उत्पन्न होते हैं-जो लोक-बाह्य (अछूत) एवं घृणित हों। वे अकुशल-अज्ञानी तथा पशु के समान होते हैं। वे काम-भोग के प्यासे रहते हैं। वहाँ वे फिर पापाचरण करके, वैसे ही अशुभ कर्मबन्ध करते हैं, जो नरक में ले जाने वाले हैं और संसार परिभ्रमण का मूल कारण है। उन्हें न धर्म सुनना मिलता है, न धर्म में उनकी श्रद्धा ही होती है। वे अनार्य एवं क्रूर होते हैं। मिथ्यादर्शनों में उनकी रुचि होती है। वे मिथ्याश्रुत सुनते और उसी के अनुयायी होते हैं। उनकी रुचि भी हिंसादि पाप कार्यों में होती है, जिससे आत्मा एकान्त रूप से दण्डित होती हो। उनकी आत्मा पर पापकर्मों का बन्ध, कोशिकार के समान होता है। वे आठ कर्म के दृढ़ बन्धनों से अपनी आत्मा को बांध लेते हैं और अनन्तकाल तक संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं।

विवेचन - मनुष्य भव के कुछ ही वर्षों में किये हुए पापाचरण का कटु परिणाम कितना अधिक और भयंकर होता है, इसका दिग्दर्शन इस सूत्र में किया गया है। अन्तर्मुहूर्त के निकृष्टतम परिणामों का दुःख, सागरोपमों तक भोगना पड़ता है। बड़ के एक बारीक बीज का वृक्ष कितना विशाल हो जाता है, उसके कितने-असंख्यात बीज उत्पन्न हो जाते हैं और उसकी परम्परा इतनी बढ़ती रहती है कि जिसका कोई अन्त भी नहीं आता। उसी प्रकार एक मनुष्य-जन्म में किये हुए पाप से आत्मा इतनी अधम बन जाती है कि उस पाप का कालारंग, परम्परा से बढ़ता ही जाता है। ऐसा पापी व्यक्ति, अकाम-निर्जरा से कभी मनुष्य भी हो जाये, तो भी उसकी चिरकाल से बनी हुई पाप-परिणति (पापी स्वभाव) उससे पुनः पापाचरण करवा कर अधोगति में ले जाती है।

णिरयोवमं अणुहवन्ति - तिर्यच योनि में भी नरक के समान दुःखों का अनुभव करते हैं। कई पशु, कसाईखाने में काटे जाते हैं, कई की पीट-पीट कर हड्डी-पसली तोड़ देते हैं, अत्यधिक भार भर कर खिंचवाते हैं, जिससे आँखें निकल जाती हैं, श्वास उखड़ जाता है। कई भूख-प्यास और शीत-उष्णादि को सहन करते-करते मर जाते हैं। इस प्रकार सैकड़ों तरह से नरक के समान भयंकर दुःख भोगा जाता है।

णीयकुलसमुप्यण्णा - पापी जीव मनुष्य भव प्राप्त करता है, तो भी नीच-कुल का, जहाँ पाप ही पाप किया जाता हो। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि-जैन धर्म को उच्च-कुल और नीच-कुल का भेद स्वीकार है। इतना होते हुए भी धर्माचरण करने वाले नीच कुलोत्पन्न आत्मा के भी धर्माचरण के कारण उच्च-गोत्र का उदय स्वीकार किया है।

तिरिक्खभूया - ऐसे पापी मनुष्यों को पशु के समान बतलाया है, जो संदाचार एवं सद्विवेक से शून्य हैं।

कामभोगतिसिया - उन पापी जीवों के हृदय में काम-भोग की तृष्णा बनी रहती है, उन्हें इच्छित काम-भोग प्राप्त नहीं होते। वे आशा-तृष्णा में ही जीवन बिताते हैं। इससे सिद्ध होता है कि आवश्यक साधनों का अभाव भी पाप का परिणाम है।

कोसिकारकीडोव्व - कोशिकार-वह कीड़ा जो अपनी लार से अपने को बन्दी बनाने वाले कोश का निर्माण करता है। मुँह से निकली हुई लार, तन्तु रूप बनती है और शरीर पर लिपट कर उस कीड़े (रेशम के कीड़े) को घेर कर बन्दी बना लेती है। इसी प्रकार पापाचरण से उत्पन्न कर्म-बन्धन, आत्मा को जकड़ लेते हैं।

पापियों को प्राप्त संसार-सागर

एवं णरग-तिरिय-णर-अमर-गमण-पेरंतचक्कवालं जम्मजरामरणकरणगंभीर-दुक्खपक्खुभियपउर सलिलं संजोगवियोगविचीचिंता-पसंग-पसरिय-वह-बंध-महल्ल-विपुल कल्लोलं कलुण-विलविय-लोभ-कलकलितं बोलबहुलं अवमाणणफेणं तिक्खिंसणपुलंपुलप्पभूय-रोग-वेयण-पराभव-विणिवायफरुस-धरिसण-समावडिय-कठिणकम्मपत्थर-तरंग-रंगंत-णिच्च-मच्चु-भयतोयपट्टं कसाय-पायालसंकुलं भव-सयसहस्सजलसंचयं अणंतं उळ्ळं वणयं अणोरपारं महब्भयं भयंकरं पइभयं अपरिमिय-महिच्च-कलुसमइ-वाउवेव्वेद्धम्ममाणं आसापिवासपायाल-काम-रइ-रागदोस-बंधण-बहुविहसंकप्पविउलदगरयंधकारं मोहमहावत्त-भोगभममाणगुप्प-माणुच्छलंत-बहुगब्भवासपच्चोणियत्तपाणियं पहाविय-वसणसमावण्ण रुण्ण-चंड-मारुयसमाहया मणुण्णवीची-वाकु लियभग्गफुट्टं तणिट्टु कल्लोल-संकुलजलं पमायबहु चंडुदुइसावयसमाहयउद्धायमाणगपूरघोरविद्धंसणत्थबहुलं अण्णणभमंत-मच्छपरिहत्थं अणिहुतिंदिय-महामगरतुरिय-चरिय-खोखुब्भमाण-संतावणिचयचलंत-चवल-चंचल-अत्ताण-असरण-पुव्वकयकम्मसंचयोदिण्ण-वज्जवेइज्जमाण-दुहसय-विवाग-घुण्णंतजलसमूहं।

शब्दार्थ - एवं - इस प्रकार, णरग-तिरिय-णर-अमर - नरक, तिरिय, मनुष्य और देव गति में, गमणपेरंतचक्कवालं - परिभ्रमण करते रहना-चक्कर लगाते रहना बाह्य परिधि है, जम्मजरामरण-करणगंभीर-दुक्ख - जन्म, जरा और मृत्यु के गम्भीर दुःख उत्पन्न करने रूप, पक्खुभियपउरसलिलं -

क्षुब्ध बना हुआ प्रचुर जल है, संजोगवियोगवीचीचिंता-पसंग-पसरिय - संयोग वियोग से उत्पन्न चिन्ता की लहरें बढ़ती रहती हैं, बहबन्धमहल्लन-विपुलकल्लोलं - बध बन्धन और यातना रूपी बहुत-सी तरंगें उठती हैं, कलुणविलथिय - करुण विलाप, लोभ - लोभ, कलकलितबोलबहुलं - कलकल करके बहुत-सी ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, अवमाणणफेणं - अपमान रूपी फेन है, तिव्विखिसणपुलंपुल - निरन्तर होती रहती तीव्र निंदा, प्यभूयरोगवेयणपराभवविणिवाय - बहुत-से रोग तथा वेदना से पराजय एवं पतन से, फरुसधरिसणसमावडिय - कठोर एवं कटु वचनों से प्राप्त फटकार, कठिणकम्मपत्थर-क्लिष्ट कर्म रूपी पत्थर से टकरा कर उत्पन्न, तरंगरंगंत - तरंगों से चंचल, णिच्चमच्चुभयतोयपट्टं - मृत्यु का सदा ही लगा रहने वाला भय पानी का ऊपर का भाग है, कसायपायालसंकुलं - कषायरूप पाताल कलश युक्त, भवसयसहस्सजलसंचयं - लाखों भवरूपी जल का संचय है जिसमें, अपांतं - अनन्त-जिसका पार नहीं, उव्वेवणयं - उद्वेग उत्पादक, अणोरपारं - अत्यन्त विस्तृत, महब्भयं - महान् भयकारी, भयंकारं - भयोत्पादक, पइभयं - प्रतिभय-विशेष भयकारी, अपरिमियमहिच्छ - अपरिमित-सीमा रहित अत्यन्त इच्छा, कलुसमइ - मलिन मति, वाउवेगउद्धम्ममाणं - वेग वाले वायु से बढ़े हुए, आसापिवासपायाल - आशा पिपासा-तृष्णा-रूप पाताल, कामरइरागदोस - काम, रति, राग और द्वेष, बंधणबहुविह - बहुत प्रकार के बन्धन, संकप्प - संकल्प, विउलदगरय - विपुल जलकण, रयंभकारं - अन्धकार से व्याप्त, मोहमहावत्त - मोह रूपी महान् आवर्त-भ्रमर, भोगभममाण - भोग रूपी भमता हुआ, गुप्पमाणुच्छलंत - व्याकुल हो कर उछल रहे हैं, बहुगब्भवासपच्चोणियत्तपाणियं-प्राणी बहुत-से गर्भवासों रूप मध्य में उत्पन्न हो कर मरण करते हैं, पहावियवसणसमावण्ण - इधर-उधर से प्राप्त दुःखों से पीड़ित, रुण्ण - रुदन, चंडमारुयसमाहया - प्रचण्ड वायु से संघर्षित हो, अमणुण्णवीचीवाकुलिय - अमनोज्ञ वेदन रूप तरंगों से व्याकुल, भर्गफुट्टणिट्टुकल्लोलसंकुलजलं-टकरा कर टूटे हुए और अनिष्ट कल्लोलों से क्षुब्ध बने हुए जल से पूर्ण, पमायबहुचंडदुडुसावयसमाहय-प्रमाद रूपी बहुत ही दुष्ट स्वापद-व्याघ्रादि हिंसक जीव से आहत, उद्धायमाणग - उछलते हुए धावा-करते हुए, पूरघोरविद्धंसणत्थबहुलं - वेग से घोर एवं अत्यन्त विनाश हो रहा है, अण्णमाणभमंत-मच्छपरिहरथं - अज्ञान रूपी सबल मच्छ इसमें परिभ्रमण करते हैं, अण्णित्तिंदिय-महामगर - अनुपशांत इन्द्रिय रूपी महामगर, तुरियचरियखोखुब्भमाण - शीघ्रता से चलने से क्षुब्ध हुए, संतावणिचय-चलंतचवलचंचल - संताप रूपी शोकाग्नि-बड़वानल से जो सदा चंचल एवं चपल बना हुआ है, अत्ताण असरण - त्राण तथा शरण-रक्षा और आश्रय से रहित, पुव्वकयकम्मसंचयोदिण्ण - जिन्होंने पूर्वभव में पापकर्मों का संचय किया है, उनके उदय में आने पर, वज्जवेइजमाण - पापरूप फल का वेदन होने पर, दुहसयविवाग - सैकड़ों दुःखों का विपाक-अनुभव रूप, घुण्णंतजलसमूहं - घूमते हुए जल समूह से।

भावार्थ - यह संसार समुद्र के समान अगाध है। नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव, ये चार गतियाँ,

संसार की बाह्य परिधि हैं। इससे जन्म-जरा और गम्भीर दुःख रूप क्षुब्ध रहता हुआ प्रचुर जल भरा हुआ है। इस समुद्र में अनिष्ट संयोग और इष्ट वियोग से उत्पन्न चिन्ता तथा वध-बन्धनादि यातना रूप उठती हुई बड़ी-बड़ी तरंगें हैं। करुण विलाप तथा लोभ रूपी घोर ध्वनियाँ हैं और अपमान रूपी फेन इसमें उत्पन्न होते रहते हैं। संसार-समुद्र में तीव्र निंदा, कठोर वचन, शत्रुओं से पराजय, धमकियाँ, झिड़कियाँ और तज्जन्य वेदना वाले आठ प्रकार के कठोर कर्म रूपी बड़े-बड़े पत्थर हैं, जिनसे टकरा कर इसमें तरंगें उठती रहती हैं। मृत्यु और भय रूपी इस समुद्र का जलपृष्ठ (पानी की ऊपरी सतह) है। संसार-समुद्र में कषाय-क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी पाताल कलश है। जन्म-मरण से होते हुए लाखों भव रूपी पानी से यह समुद्र भरपूर है। यह संसार-सागर अनन्त है, अत्यन्त विशाल है, अपरम्पार है और प्राणियों को उद्वेग करने वाला है। महाभयंकर, भयोत्पादक एवं भय परम्परा बढ़ाने वाला है। निःसीम तृष्णा, महत्क्ष्मा तथा कलुषित भावना रूप वायु-वेग से संसार-समुद्र क्षुभित हो रहा है। आशा और तृष्णारूपी समुद्र का पाताल (तल) है। काम-रति शब्दादि विषयों की लालसा, राग-द्वेष तथा विविध प्रकार के संकल्प रूपी जल की प्रचुरता से उत्पन्न अन्धकार है। महामोह रूपी आवर्त (चक्कर) में कामभोगरूपी, मण्डलाकार घूमता हुआ जल है, जो गर्भवास रूपी मध्यभाग में प्राणियों को डालता रहता है, जो अनेक प्रकार के दुःखों से पीड़ित हो कर रोने तथा आक्रन्द करने रूप प्रचण्ड वायु के आघात से उत्पन्न तरंगों से प्रताडित एवं क्षुब्ध रहता है। प्रमाद रूपी भयंकर हिंसक जंतुओं द्वारा जीवों पर होते हुए विध्वंस एवं अनर्थों से संसार-समुद्र भरा हुआ है। अज्ञान रूपी मच्छरों तथा उद्दण्ड इन्द्रियाँ रूपी महा मकरों की शीघ्रतापूर्वक की जाने वाली चेष्टाओं से क्षुब्धता बनी रहती है। संताप-जलन एवं शोक रूप बड़बानल से, समुद्र सदैव चंचल तथा चपल रहता है। अरक्षित, निराश्रित एवं निराधार जीवों के, पूर्वजन्म के किये, सैकड़ों प्रकार के पाप-कर्मों के संचय से उदय में आया हुआ सैकड़ों प्रकार का दुःख रूप चक्कर काटता हुआ जल समूह है।

इड्डि-रस-साय-गारवोहार-गहिय-कम्मपडिबद्ध-सत्तकड्डिज्जमाण-णिरयतलहुत्त-
सण्णधिसण्णबहुलं अरइ-रइ-भय-विसाय-सोगमिच्छत्त-सेलसंकडं अणाइसंताण-
कम्मबंधण-किलेसचिक्खिल्लसुदुत्तारं अमर-णर-तिरियणिरयगइ-गमण-कुडिल-
परियत्त-विपुलवेलं हिंसा-लिय-अदत्तादाणमेहुणपरिग्गहारंभ करण-करावणा-
णुमोयण-अट्टविह-अण्डुकम्मपिंडिय-गुरुभारक्कंतदुग्गजलोघ-दूरपणोलिज्जमाण-
उम्मुग्ग-णिम्मुग्ग-दुल्लभतलं सारीरमणोमयाणिदुक्खाणि-उप्पियंता सायस्साय-
परितावणमयं उब्बुडुणिब्बुडुयं करंता चउरंतमहंत-मणवयगं रुइं संसारसागरं अट्टियं
अणालंबण-मपइठाण-मप्यमेयं चुलसीइ-जोणि-सयसहस्सगुविलं अणालोकमंधयारं
अणांतकालं णिच्चं उत्तत्थसुण्णभयसण्णसंपउत्ता वसंति, उव्विग्गवासवसहिं।

शब्दार्थ - इन्द्रिससायगारवोहार - ऋद्धि रस और सातारूप गारव ही इसमें अपहार-जलचर विशेष है, गहियकम्मपयडिबद्धसत्त - कर्मों से ग्रहित एवं बद्ध जीव, कङ्किज्जमाणणिरयतलहुत्त - खिंचकर नरक रूप पाताल में ले जाते हुए, सण्णविसण्ण बहुलं - अत्यधिक चिंतित एवं शोकाकुल जीवों से भरा है, अरइ-रइ-भयविसाय-सोगपिच्छत्त-सेलसंकडं - अरति, रति, भय, विशाद, शोक और मिथ्यात्व रूपी पर्वतों से विषम हो रहा है, अणाइसंताणकम्मबंधणकिलेसच्चिक्खिल्लसुदुत्तारं - अनादि काल से जिनकी संतति चली आ रही है ऐसे कर्मबन्धन रूप कीचड़ से जो दुस्तर है, अमरणरतिरियणिरयगइगमण - देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरकगति में गमन रूप, कुडिल-परियत्तविपुलवेलं - कुटिल धुमाव वाली जलवृद्धि विस्तृत रूप से हो रही है, हिंसालिय-अदत्तादानमेहुणपरिग्गहारंभ - हिंसा, झूठ, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह आरंभ, करणकराव-णाणुमोयण - करण करावण और अनुमोदन से, अट्टविह अणिट्टकम्मपिंडिय - आठ प्रकार के अनिष्ट कर्मपिण्ड रूप, गुरुभारक्कंतदुग्गजलोघदुरपणोलिज्जमाण - बड़े भारी बोझ से दब कर आक्रान्त हुए तथा दुःख रूप जलराशि में, उम्मुग्गणिम्मुग्ग - डूबते-उतराते, दुल्लभतलं - तल की प्राप्ति दुर्लभ है, सारीरमणोमयाणिदुक्खाणि - शारीरिक और मानसिक दुःखों का, उप्पियंता - उपभोग करते हैं, सायस्साघपरितावणमयं - सुख और दुःख रूप परितापना मय, उब्बुडुणिब्बुडुयं करेता - उन्मग्न और निमग्न करते, चउरंतमहंतमणवयग्गं - चारों दिशाओं में व्याप्त महान् जिसका पार नहीं ऐसा अनन्त, रुइं संसारसागरं - रौद्र रूप संसार-सागर, अट्टियं - अस्थित हैं जो, अणालंबणमपइठाणमप्पमेयं - आलम्बन रहित अप्रतिस्थान एवं अप्रमेय है, चुलसीइज्जोणिसयसहस्सगुविलं - चौरसी लाख जीव योनि से परिपूर्ण हैं, अणालोकमंधयारं - अज्ञानियों के लिए अन्धकार से परिपूर्ण, अणंतकालं - अनंतकाल तक, णिच्छं - नित्य, उक्तत्थसुण्णभयसण्णसंपउत्ता - भय से त्रस्त तथा आहारदि संज्ञा युक्त हो कर, वसंति - रहते हैं, उव्विग्गवासवसहिं - उद्विग्न प्राणियों के रहने का स्थान है।

भावार्थ - ऋद्धि, रस और साता गारव रूप इसमें अपहार नामक जंतु विशेष हैं, जो जीवों को बरबस खींच कर पाताल की ओर ले जाते हैं। ऐसे शोकाकुल जीवों से संसार-समुद्र भरा हुआ है। अरति, रति, भय, शोक, विषाद और मिथ्यात्व रूपी पर्वत, इस समुद्र में बहुत हैं। अनादि काल से जिनकी संतति परम्परा से चली आ रही है ऐसे कर्म-बन्धन और राग-द्वेष तथा क्लेश रूपी कीचड़ इस समुद्र में भरा हुआ है। इस कीचड़ के कारण इसका पार करना बड़ा ही कठिन है। देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक गति में बार-बार भ्रमण करते रहना इसका चक्कर है, इससे पानी में वृद्धि होती रहती है। हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूप पांच आस्रवों का सेवन करना, दूसरों से सेवन कराना और अनुमोदन करना-ऐसे पाप-व्यापार से आठ प्रकार का कर्म-बन्धन होता है। उस बन्धन के गुरुतर भार से दब कर, दुःख रूपी गम्भीर पानी में डूबते-उतराते जीवों को समुद्र का थाह या तीर प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। शारीरिक और मानसिक दुःखों को भोगना तथा सुख और दुःखजन्य परिताप की

प्राप्ति ही इस संसार-समुद्र में उन्मग्न और निमग्न होना (नीचे जाना और ऊपर उठना) है। यह संसार-समुद्र, चार गति रूप चारों दिशाओं में व्याप्त, अनन्त अपरम्पार एवं विस्तृत है और अत्यन्त रौद्र (भयंकर) है। संयम-हीन जीवों के लिए इस संसार-समुद्र में कोई आश्रय स्थान नहीं है। उनकी रक्षा नहीं हो सकती। सर्वज्ञ के बिना इसका यथार्थ ज्ञान भी नहीं होता। यह संसार समुद्र, चौरासी लाख जीव योनि से परिपूर्ण है। अज्ञानियों के लिए यह पूर्णरूप से अन्धकारमय है। अज्ञानी जीव सदैव भयभ्रांत तथा आहारादि संज्ञाओं से युक्त होकर अनन्त काल निवास करते हैं। उद्विग्न प्राणियों का यह संसारसमुद्र ही निवास स्थान है।

विवेचन - अदत्तादान-इस सूत्र में चौर्यकर्म करने वाले पापियों को होने वाले नरकादि के दुःखों का वर्णन करने के बाद सूत्रकार ने उनको प्राप्त होने वाले अनन्त संसार-समुद्र का वर्णन किया है।

इस पाठ में चार गति का वर्णन-क्रम, पहले पूर्वानुपूर्वी दिया है, जैसे - 'णरगतिरिय-णर-अमर' और बाद में पश्चानुपूर्वी - 'अमर-णर-तिरिय-णिरयगइ' दिया है।

जीव योनि - तेजस् और कार्मण शरीर वाले जीव, औदारिक आदि शरीर के योग्य स्कन्धों से जिस स्थान पर मिल कर जुड़ते हैं, वह स्थान 'योनि' (उत्पत्ति स्थान) कहलाता है। व्यक्ति की अपेक्षा योनियाँ असंख्य हैं, किन्तु समान वर्णादि से जाति की विवक्षा करके अनेक की एक में गणना की गई है (प्रज्ञापना सूत्र वृत्ति तथा द्रव्य लोक-प्रकाश श्लोक ४३-४४)।

चौरासी लाख- पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय-इन चार स्थावरकाय की प्रत्येक की सात लाख से कुल २८ लाख, प्रत्येक वनस्पति काय की १० लाख और साधारण वनस्पति की १४ लाख। इस प्रकार पांच स्थावरकाय की कुल ५२००००० जाति हुई। तीन विकलेन्द्रिय की प्रत्येक की २ लाख से छह लाख, नारक, देव और तिर्यच पंचेन्द्रिय के प्रत्येक के चार-चार लाख से १२००००० और मनुष्य की १४००००० इस प्रकार कुल ८४००००० जातियाँ हुई।

प्रज्ञापना सूत्र पद ९ में योनि के भेद-सच्चित्त, अचित्त और मिश्र, शीत, उष्ण और शीतोष्ण, संवृत्त, विवृत्त और उभय तथा-कूर्मोन्नता, संखावृत्ता और वंशीपत्रा, भेद किये हैं।

शुभाशुभ योनि के विषय में निम्न गाथाएँ हैं -

“सीयादीजोणीओ, चउरासीई अ सयसहस्सेहि ।

असुहाओ य सुहाओ, तत्थ सुहाओ इमा जाण ॥ १ ॥

असंखाउ मणुस्सा, राइसरसंखमादियाऊणं ।

तित्थयरणागोअं, सख्वसुहं होइ णायव्वं ॥ २ ॥

तत्थवि य जाइसंपण्णाइ, सेसाओ हुंति असुहाओ ।

देवेसु किच्चिसाई, सेसाओ हुंति असुहाओ ॥ ३ ॥

पंचिंदियतिरिएसु, हयगथरयणा हवति उ सुहाओ ।

सेसाओ असुहाओ सुहवण्णेगिंदियादीया ॥ ४ ॥

देविंदचक्कवड्डित्तणाइं, मोत्तुं च तित्थयरभावं ।

अणगारभाविद्यावि य, सेसाओ अणंतसो पत्ता ॥ ५ ॥”

- शीत आदि चौरासी लाख योनियों में अशुभ योनियाँ भी हैं और शुभ भी। इनमें शुभ योनियाँ इस प्रकार हैं - असंख्य वर्ष की आयु वाले मनुष्य (युगल) संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में राजेश्वरादि, तीर्थंकर नाम-कर्म के बन्धक सर्वोत्तम शुभ योनि वाले हैं। संख्यात वर्ष की आयु वालों में भी उच्च जाति-कुल सम्पन्न तो शुभ योनि वाले हैं, इनके अतिरिक्त अशुभ योनि वाले हैं। देवों में किल्बिषी आदि की शुभ और अन्य शुभ हैं। तिर्यच पंचेन्द्रियों में हस्तिरत्न अश्वरत्न शुभ हैं, शेष अशुभ और एकेन्द्रियादि में शुभ वर्णादि वाले शुभ और अन्य अशुभ हैं। देवेन्द्र, चक्रवर्ती, तीर्थंकर और भावितात्मा अनगर के अतिरिक्त शेष अनन्तबार संसार योनियों में पतित होते हैं।

पापियों के पाप का फल

जहिं आउयं णिबंधंति पावकम्मकारी, बंधव-जण-सयण-मित्तपरिवज्जिया अणिट्ठा भवन्ति अणाइज्जदुव्विणीया कुठाणा-सण-कुसेज्ज-कुभोयणा असुइणो कुसंघयण-कुप्पमाण कुसंठिया, कुरूवा बहु-कोह-माण-माया-लोह बहुमोहा धम्मसण्ण-सम्पत्त-परिभट्टा दारिद्रोवह्वाभिभूया णिच्चं परकम्मकारिणो जीवणत्थरहिया किविणा परपिंडतक्कगा दुक्खलद्धाहारा अरस-विरस-तुच्छ-कयकुच्छिपूरा परस्स पेच्छंता रिद्धि-सक्कार-भोयणविसेस-समुदयविहिं णिंदंता अप्पगं कयंतं य परिवयंता इहं य पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं विमणसो सोएण उज्झमाणा परिभूया होति, सत्तपरिवज्जिया य छोभासिप्पकला-समय-सत्थ-परिवज्जिया जहाजायपसुभूया अवियत्ता णिच्च-णीय-कम्मोव-जीविणो लोय-कुच्छ-णिज्जा मोघमणोरहा गिरासबहुला ।

शब्दार्थ - जहिं - जहाँ जिस कुल में, आउयं - आयु, णिबंधंति - बाँधते हैं, पावकम्मकारी - पापकर्म करने वाले, बंधवजणसयणमित्तपरिवज्जिया - वे बान्धव जन, स्वजन तथा मित्रादि से रहित होते हैं, अणिट्ठाभवन्ति - वे किसी को भी प्रिय नहीं होते, अणाइज्जदुव्विणीया - उनके वचनों का अनादर होता है वे अविनीत होते हैं, कुठाणासण - बुरा स्थान, बुरा आसन, कुसेज्ज - बुरी शय्या, कुभोयणा- खराब भोजन, असुइणो - अपवित्र, कुसंघयण - शरीर का कुगठन, कुप्पमाण - कुप्रमाण, कुसंठिया- बुरी आकृति वाले, कुरूवा - कुरूप, बहुकोहमाणमायालोहा - उनमें क्रोध, मान, माया और लोभ बहुत होता है, बहुमोहा - उनमें मोह अधिक होता है, धम्मसण्ण-सम्पत्त-परिभट्टा - धर्मबुद्धि और

सम्यक्त्व से भ्रष्ट, दरिद्रोवह्वाभिभूया - दारिद्र्य के उपद्रव से अभिभूत हैं, णिच्चं - सदैव, परकम्मकारिणो - दूसरों का काम करने वाले-पराधीन होते हैं, जीवणत्थरहिया - जीवन को सुखमय बनाने वाले अर्थ-धन से रहित होते हैं, किंविणा - कृपण-राँक, परपिंडतक्कगा - दूसरों की रोटी की ताक में रहने वाले, दुक्खलद्धाहारा - जिन्हें भोजन भी दुःखपूर्वक मिलता है, अरस - रस रहित, विरस-बुरे रस वाला, तुच्छ - हल्का या थोड़ा, कय - करते, कुच्छिपूरा - पेट भरते हैं, परस्स - दूसरों का, पेच्छंता - देखकर, रिद्धि-सक्कारभोयणविसेसमुदयविहिं - ऋद्धि, सत्कार, भोजन आदि विशेष पदार्थों की, णिंदंता - निन्दा करते हैं, अप्पगं - अपनी, कयंतं - भाग्य की, परिवयंता - बुराई करते हैं, इहे य - इस भव की और, पुरेकडाई कम्माई पावगाई - पूर्व के किये हुए पाप कर्म से, विमणसो- उदास होते हुए, सोएणडण्णमाणा - शोक रूपी अग्नि से जलते हुए, परिभूया - तिरस्कृत, होति - होते हैं, सत्तपरिवज्जिया - शक्ति से वंचित, छोभा - असहाय, सिप्पकला - शिल्पकला, समयसत्थ-परिवज्जिया - धर्मशास्त्र के ज्ञान से विवर्जित, जहाजायपसूभूया - यथाजात पशुभूत-शिक्षा आदि से वंचित बैल, गधे या भैंसे जैसे, अविद्यत्ता - अविश्वसनीय या अप्रीति कारक, णिच्च - नित्य, णीयकम्मोत्तजीविणो - नीच-कर्म करके जीवन चलाने वाले, लोयकुच्छणिज्जा - लोक-निन्दित होते हैं, मोघमणोरहा-विफल मनोरथ रहते, णिरासबहुला-जो प्रायः निराश ही रहते हैं।

भावार्थ - चौर्य करने वाले पापी जीव जिस कुल का आयु बांधते हैं और जन्म लेते हैं, वह बन्धुगण, स्वजन-परिजन और मित्रादि से रहित होता है। वे अनिच्छनीय एवं अप्रिय होते हैं। उनका जचन अस्वीकार होता है। वे अविनीत होते हैं। उनके रहने का स्थान बुरा, आसन शय्यादि भी बुरे और भोजन भी बुरा प्राप्त होता है। वे घृणित होते हैं। उनके शरीर का संहनन (गठन) भी बुरा और आकार तथा रूप भी खराब होता है। वे अत्यन्त क्रोधी, अभिमानी, कपटी और लोभी होते हैं। उनमें मोह भी बहुत होता है। वे धार्मिक विचार एवं सम्यक्त्व से भ्रष्ट तथा वंचित रहते हैं। उनका दारिद्र्य स्थायी रहता है। वे सदैव धनाभाव से पीड़ित रहते हैं और दूसरों का कार्य करके जीवन चलाते हैं। वे जीवन में सुख प्राप्त करने के साधन ऐसे अर्थ (धन) से खाली रहते हैं। वे राँक होते हैं। वे पेट भरने के लिए भी दूसरों का भोजन ताकते रहते हैं। उन्हें भोजन भी बड़े दुःख से प्राप्त होता है और वह भी रस-रहित, बुरे स्वाद वाला, निकृष्ट तथा थोड़ा मिलता है, जिससे उनकी उदरपूर्ति भी कठिनाई से होती है। वे दूसरों को प्राप्त ऋद्धि, सत्कार, भोजन तथा सुख-सामग्री देख कर तरसते हैं और अपनी तथा अपने भाग्य की निन्दा करते हैं। वे इस लोक में तथा परलोक में किये गये अपने पाप कर्म की निन्दा करते हैं। वे उदास एवं दीनता युक्त तथा शोकाग्नि में जलते ही रहते हैं। उनमें शक्ति भी नहीं होती और किसी की सहायता भी प्राप्त नहीं होती। वे सदैव तिरस्कृत रहते हैं। उनमें शिल्पकला या धर्मशास्त्रों का ज्ञान नहीं होता। वे पशु के समान विद्या, बुद्धि, ज्ञान, विचार एवं सभ्यता से वंचित रहते हैं। वे अविश्वसनीय तथा अप्रीति कारक होते हैं। वे सदैव नीच-कृत्य करके अपना पेट भरने वाले होते हैं। वे

लोक में निन्दित होते रहते हैं। आशा एवं तृष्णा रूपी बन्धन में वे सदैव बंधे रहते हैं, किन्तु उनके मनोरथ कभी पूरे नहीं होते, उनकी इच्छा पूरी नहीं होती। वे प्रायः निराश रहते हैं।

आसापास-पडिबद्धपाणा अत्थोपायाण-काम-सोक्खे य लोयसारे होति।
अफलवंतगा य सुदु वि य उज्जमंता तद्विसुज्जुत्त-कम्मकय-दुक्खसंठवियसत्थ-
पिंडसंचियपरा पक्खिण्णदव्वसारा णिच्चं अधुव-धण-धण्णकोस-परिभोगविवज्जिया
रहिय-कामभोग-परिभोग-सव्वसोक्खा परसिरिभोगोवभोग-णिस्साणमग्गणपरायणा
वरागा अकामियाए विणोति। दुक्खं णेव सुहं णेव णिव्वुइं उवलभंति अच्चंत-विउल-
दुक्खसय-संपलित्ता परस्स दव्वेहिं जे अविरया। एसो सो अदिण्णादाणस्स फल-
विवागो, इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो
कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ, ण य अवेयइत्ता अत्थि उ मोक्खोत्ति।

शब्दार्थ - आसापासपडिबद्धपाणा - उनके प्राण आशा रूपी पाश में बंधे रहते हैं,
अत्थोपायाणकामसोक्खे - अर्थोपार्जन और काम-सुख, लोयसारे होति - लोक का सार होता है,
अफलवंतगा - फल प्राप्त से रहित, सुदु वि य उज्जमंता - खूब परिश्रमशील रहते हुए, तद्विसुज्जुत्त -
प्रतिदिन उद्यम करने पर भी, कम्मकयदुक्खसंठविय - किये हुए काम से कठिनाई से प्राप्त,
सित्थपिंडसंचयपरा - धान्य या भोजन का संचय करने में लगे रहते हैं, पक्खिण्णदव्वसारा - साररूप
द्रव्य-धन से प्रक्षिण-दरिद्र, णिच्चं - सदैव, अधुवधणधण्णकोस - धन धान्य और भण्डार जिनका
अस्थिर है, परिभोग-विवज्जिया - परिभोग से वंचित, रहियकामभोगपरिभोगसव्वसोक्खा - कामभोग
एवं सभी प्रकार के सुख से रहित हैं, परसिरिभोगोवभोगणिस्साणमग्गणपरायणा - दूसरों की लक्ष्मी,
भोगोपभोग और आश्रय की इच्छा और कामना में ही जो तरसते रहते हैं, वरागा - दीन, अकामियाए -
इच्छापूर्ति से रहित, विणोति - व्यतीत करते हैं, दुक्खं - दुःख पूर्ण, णेवसुहं - सुख नहीं, णेव णिव्वुइं
उवलभंति - निवृत्ति-स्वस्थता-शांति प्राप्त नहीं होती, अच्चंत - अत्यन्त, विउलदुक्खसयसंपलित्ता -
सदैव सैकड़ों दुःखों से संतप्त रहते, परस्सदव्वेहिं - दूसरों के द्रव्य से, जे अविरया - जो अविरत हैं,
एसो सो - इस प्रकार, अदिण्णादाणस्स - अदत्तादान-चोरी का, फलविवागो - फल-विपाक है,
इहलोइओ - इहलौकिक, परलोइओ - पारलौकिक, अप्पसुहो - सुख से रहित, बहुदुहो - बहुत दुःख
वाला, महब्भओ - महा भयानक, बहुरयप्पगाढो - बहुत-सी पाप-कर्म की धूल से भरपूर, दारुणो -
दारुण, कक्कसो - कर्कश-कठोर, असाओ - असाता युक्त, वाससहस्सेहिं - हजारों वर्षों के बाद,
मुच्चइ - छुटकारा होता है, णय अवेयइत्ता - फल भुगते बिना, अत्थि - है, मोक्खोत्ति - मुक्ति।

भावार्थ - लोक में धनोपार्जन करना और काम के सुखों का भोग करना-ये दो बातें मुख्य एवं सार रूप मानी गई हैं, किन्तु ये दोनों विशेषताएं उन्हें प्राप्त नहीं होती। पाप के फल को भोगते हुए वे पापी जीव, धन और सुख प्राप्त करने के लिए बहुत उद्यम करते हैं, फिर भी निष्फल रहते हैं। दिनभर कठिन परिश्रम करके वे जो कुछ दुःख पूर्वक प्राप्त करते हैं, वे भी उनके पास नहीं रहता, उसे कोई अन्य ले जाता है या नष्ट हो जाता है। उनके पास धन-धान्य एवं भोग के साधन स्थिर नहीं रहते और न वे उनका उपभोग कर पाते हैं। वे कामभोग से सदैव वंचित रहते हैं। वे दूसरों की लक्ष्मी तथा भोगोपभोग देख कर सदैव तरसते रहते हैं। वे बेचारे दीन लोग अपनी इच्छा की पूर्ति नहीं होने के कारण सारा जीवन ही दुःखपूर्वक व्यतीत करते हैं। उन्हें न तो कभी सुख मिलता है और न शांति ही प्राप्ति होती है। जो दूसरों के धन के लोभ से विरत नहीं हुए वे सैकड़ों प्रकार के दुःखों से सदैव संतप्त रहते हैं।

यह अदत्तादान रूपी चौर्यकर्म का इस लोक और परलोक में होने वाला फल-विपाक है। यह सुख से रहित और दुःखों से भरपूर है। महा भयंकर है, पापकर्मों के मल से भरा हुआ है, कठोर है और अशांति से परिपूर्ण है। हजारों वर्षों तक पाप का दुःख पूर्ण फल भोगने के बाद कठिनाई से इससे छुटकारा होता है। बिना भोगे इस पाप से मुक्ति नहीं हो सकती।

विवेचन - इस सूत्र में चौर्य पापकर्म के फलस्वरूप प्राप्त दारिद्र्य, दुःख, दुर्भाग्य एवं जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक ऐसे आवश्यक ऐसे आहारादि के अभाव का उल्लेख हुआ है। इससे स्पष्ट हो रहा है कि मानव-जीवन में धनाभाव तथा सुख-सामग्री की अप्राप्ति का मूल कारण, पूर्व-संचित पाप का फल है। सूत्र के ये मूल शब्द-‘दरिद्रोवदवाभिभूया’ ‘जीवणत्थरहिया’ ‘दुक्खलद्धाहारा’ आदि स्पष्ट रूप से कर्मफल घोषित कर रहे हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट हो रहा है कि जिन्हें धनादि की प्राप्ति होती है, वह सदाचरण से संचित शुभकर्मों का फल है। जो लोग इसमें अविश्वासी हो कर विपरीत प्ररूपणा करते हैं, उन्हें इस पर विचार करना चाहिये और मानना चाहिए कि ‘पुद्गलविपाकिनी’ प्रकृतियों का फल, केवल शरीर और उनके वर्णादि का शुभाशुभ होना ही नहीं, अपितु इष्ट वर्णगन्धादि पौद्गलिक सामग्री की प्राप्ति-अप्राप्ति एवं सम्पन्नता-विपन्नता भी है, अवश्य है।

‘अत्थोपायण काम-सोक्खे य लोयसारे होति’, टीका-“अर्थोपादानं-द्रव्योपार्जनं, कामसौख्यं इन्द्रियाज्जातं ते, द्वे लोकसारे-लोकप्रधाने भवन्ति अर्थकाम एवं लोके मान्य भवति।” अर्थात् धनोपार्जन और इन्द्रियजन्य काम-सुख-ये दो लोक में सार रूप माने गये हैं। कहा है कि -

“यस्याऽर्थास्तस्य मित्राणि, यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।

यस्यार्थाः स पुमान् लोके, यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥ १ ॥”

- जिसके पास धन है, उसके मित्र भी हो जाते हैं, जिसके पास धन है, उसके बान्धव भी हैं, वह लोक में मान्य भी होता है और वह पंडित-बुद्धिमान् भी माना जाता है। यह सभी प्रभाव धन का है।

पापकर्म के उदय से जीव धन तथा सुख-सामग्री से वंचित-दरिद्र होता है।

एवमाहंसु णायकुल-णंदणो महप्पा जिमो उ वीरवर-णामधेज्जो कहेसी य अदिण्णादाणस्स फलविवागं एयं तं तइयं पि अदिण्णादाणं हर-दह-मरण-भय-कलुस-तासण-परसंतिकभेज्ज-लोहमूलं एवं जाव चिर-परिगय-मणुगयं दुरंतं।

॥ तइयं अहम्मंदारं सम्मत्तं ॥ त्ति बेमि ॥

शब्दार्थ - एवमाहंसु - इस प्रकार, णायकुलणंदणो - ज्ञातृ-कुल-नन्दन, महप्पा - महान् आत्मा, जिणो उ - जिन भगवान् ने, वीरवरणामधेज्जो - वीरवर-महावीर नाम वाले, कहेसी - कहा है, अदिण्णादाणस्स - अदत्तादान का, फलविवाग - फल-विपाक, एयं तं - यह, तइयं - तीसरा, हर-दह-मरण-भय-कलुसतासण - हरण, जलन, मरण, भय, क्लेश और त्रासन से भरपूर, परसंतिकभेज्जलोहमूलं - दूसरों की शांति नष्ट करने वाला तथा लोभ का मूल कारण है, एवं - इस प्रकार, जाव - यावत्, चिर-परिगय-मणुगयं - चिरकाल से परिगत तथा साथ लगा हुआ है, दुरंतं - इस पाप-फल का अन्त होना अत्यन्त कठिन है।

तइयं अहम्मंदारं सम्मत्तं - तीसरा अधर्मद्वार समाप्त हुआ, त्तिबेमि - मैं कहता हूँ।

भावार्थ - इस प्रकार अदत्तादान नामक पापकृत्य का फल-विपाक, ज्ञातृकुल के नन्दन और वीरवर-महावीर-नाम वाले जिनेश्वर महात्मा ने कहा है। यह अदत्तादान नामक तीसरा पाप, धन-हरण, मृत्यु, भय, क्लेश और त्रास से भरपूर है, दूसरों की शांति को नष्ट करने वाला है तथा लोभ का मूल कारण है (अथवा लोभ ही चौर्यकर्म का मूल कारण है)। यह अदत्तादान नामक पाप चिरपरिगत-अनादिकाल से परिचित तथा अनुगत-जीव के साथ लगा हुआ है। इसका अन्त होना अत्यन्त कठिन है। यह तीसरा अधर्मद्वार समाप्त हुआ। ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ अदत्तादान नामक तीसरा अधर्मद्वार सम्पूर्ण ॥

अब्रह्मचर्य नामक चौथा आश्रव-द्वार

जंबू! अबंभं य चउत्थं सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स पत्थणिज्जं पंकपणय पासजालभूयं थी-पुरिस-णपुंस-वेयचिंधं तव-संजम-बंधेरेविग्घं भेयाययण-वहुपमायमूलं कायर-कापुरिससेवियं सुयणजणवज्जणिज्जं उड्डणरय-तिरिय-तिल्लोकपइड्डाणं जरा-मरण-रोग-सोगबहुलं वध-बंध-विधाय-दुख्खिघायं दंसण-चरित्तमोहस्स हेउभूयं चिरपरिगय-मणुगयं दुरंतं चउत्थं अहम्मदारं ॥ १ ॥

शब्दार्थ - जंबू - हे जम्बू!, अबंभं - अब्रह्म, चउत्थं - चौथा, सदेवमणुयासुरस्सलोयस्स - देव, मनुष्य और असुरों सहित सभी लोगों का, पत्थणिज्जं - इच्छनीय-अभीष्ट है, पंकपणय - कीचड़ और काई-फूलन, पासजालभूयं - बन्धन और जाल के समान, थी-पुरिस-णपुंसवेयचिंधं - स्त्री-पुरुष और नपुंसक वेद के चिह्न तप हैं, तवसंजमबंधेरेविग्घं - तप; संयम और ब्रह्मचर्य के लिए विघ्न कारक, भेयाययणवहु - भेदायतन-चारित्र एवं जीवन का भेद-विनाश करने वाले ऐसे बहुत-से, पमायमूलं - प्रमाद का मूल है, कायरकापुरिससेवियं - कायर और अधम पुरुषों से सेवित, सुयणजणवज्जणीयं - पाप-विरत ऐसे सज्जन पुरुषों से त्याज्य, उड्डणरयतिरियतिल्लोकपइड्डाणं - ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् ऐसे तीनों लोक में प्रतिष्ठित-व्याप्त, जरामरणरोगसोगबहुलं - बुढ़ापा, मृत्यु, रोग और शोक की अधिकता वाला, वधबंधविधाय दुख्खिघायं - वध बन्धन मारण जन्य दुःसह दुःखों से भरा हुआ, दंसणचरित्तमोहस्स हेउभूयं - दर्शन-मोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्म का हेतुभूत, चिरपरिगयमणुगयं - चिरकाल-अनादिकाल से जीव का परिचित एवं अनुगत-साथ लगा हुआ, दुरंतं - जिसका अन्त बड़ी कठिनाई से होता है, चउत्थं अहम्मदारं - यह चतुर्थ अधर्मद्वार है।

भावार्थ - गणधर श्री सुधर्मा स्वामी महाराज कहते हैं कि हे जम्बू! यह अब्रह्म नामक चौथा अधर्मद्वार है। ब्रह्मचर्य-विनाशक यह अधर्म, मनुष्य देव और असुर-सभी लोगों के लिए प्रिय एवं अभीष्ट है-इसे सभी चाहते हैं। यह आत्मा को पाप-पङ्क से मलिन एवं कलंकित करता है। आत्मा को मोहपाश या कर्म-जाल में बांधने वाला है। यह स्वयं ही जाल एवं बन्धनभूत है। स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेद का चिह्न भी यह अब्रह्म ही है। तप, संयम और ब्रह्मचर्य को विघ्न उत्पन्न करने वाला-बाधक भी यही है। चारित्र तथा जीवन को नष्ट करने वाले ऐसे प्रचुर प्रमाद का मूल भी यह अब्रह्म है। कायर एवं कापुरुष-निम्न-कोटि के लोग ही (जो ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं कर सकते) इसका सेवन करते हैं। उन्हीं के द्वारा यह सेवित है। उत्तमजनों (व्रतधारी सज्जनों) से यह त्याज्य है। इस अब्रह्म की प्रतिष्ठा ऊर्ध्व, अधो और तिर्यग्-इन तीनों लोक में है। जरा, मरण, रोग और शोक की बहुलता इसके सेवन का परिणाम है और वध, बन्धन तथा मृत्युजन्य विविध प्रकार के असह्य दुःखों से भरपूर है। यह

पाप दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्म का मूल कारण है। आत्मा का यह चिर परिचित (अनन्त काल से परिचित) एवं चिर अनुगत-सदा से साथ लगा हुआ है। इसका अन्त आना अत्यन्त कठिन है। ऐसा भयानक यह अब्रह्म नामक चौथा अधर्मद्वार है।

विवेचन - अब सूत्रकार 'अब्रह्म' नामक चतुर्थ अधर्मद्वार का वर्णन करते हैं। 'अब्रह्म' का अर्थ है-अकुशलकर्म-निन्दनीय कर्म-पापकर्म=मैथुन सेवन=पुरुष का स्त्री, स्त्री का पुरुष और नपुंसक का उभय से विषय सेवन।

मैथुनकर्म, मनुष्य देव और असुरों का इच्छित विषय है। संज्ञी तिर्यच भी इससे वंचित नहीं रहे। इसका प्रभाव तीनों लोक में व्याप्त है। अधोलोक के भवनपति से लेकर ऊर्ध्वलोक के दूसरे देवलोक के देव-देवी तक इसका प्रभाव फैला हुआ है। वैसे स्त्री-सम्बन्धी शब्द वर्णादि विषयों का चिन्तनादि से आंशिक सेवन तो ऊर्ध्वलोक में बारहवें देवलोक तक है। प्रज्ञापन ३४)।

अब्रह्म रूपी अधर्म का सेवन पशु-पक्षी आदि तिर्यचों से लगा कर कई धर्माचार्य एवं धर्म-संस्थापक माने जाने वाले आराध्यों में भी पाया जाता है। इस पाप से बचे हैं तो केवल जिनेश्वर भगवंत और उनके आराधक उत्तम साधु-साध्वी। कहा भी है कि -

“हरिहरहरिण्यगर्भप्रमुखे, भुवने न कोऽप्यसौ शूरः।

कुसुमविशिखस्य विशिखान्, अस्खलयत् यो जिनादन्यः ॥ १ ॥”

कायरी कापुरुष सेवित - ब्रह्मचर्य रूपी धर्मरत्न को सुरक्षित नहीं रख कर, अब्रह्म रूपी पाप की भेंट चढ़ाने वाले वास्तव में कायर हैं, कापुरुष हैं, फिर वे भले ही बल में विशिष्टता रखते हों और युद्धवीर हों। जो सज्जन हैं-विरत हैं, उनके द्वारा अब्रह्म त्याज्य हैं। वास्तव में वे ही वीर हैं।

जरामरणरोगशोकबहुल - अब्रह्म के पाप का परिणाम शारीरिक और मानसिक स्वस्थता को गिराने एवं नष्ट करने वाला है। अनेक प्रकार के रोग एवं क्लेश इसी पाप में से उत्पन्न होते हैं। यह बल को क्षीण कर बुढ़ापे के दुःख बढ़ाने वाला है।

दर्शनमोहनीय और चारित्रमोह का हेतुभूत - अब्रह्म का पाप, चारित्रमोह के उदय से होता है और इससे चारित्र का नाश तो होता ही है, किन्तु अब्रह्म के तीव्र उदय से दर्शनमोह की तीव्रता हो जाती है और इससे दर्शन गुण भी नष्ट हो जाता है। अब्रह्म पाप से प्रेरित होकर स्त्री, पति एवं पुत्र को मार देती है। पुरुष, पत्नी, माता और पुत्रादि को मार देता है। जाति और धर्म का त्याग कर विधर्मी तथा अधर्मी हो जाता है। धर्म-द्रोही बन जाता है। इस प्रकार अब्रह्म का पाप दर्शनमोह को उत्तेजित कर मिथ्यात्व एवं महामोह बन्धन में हेतुभूत होता है।

अब्रह्म के गुण-निष्पन्न नाम

तस्स य णामाणि गोण्णाणि इमाणि होति तीसं, तंजहा- १. अबंभं २. मेहुणं

३. चरंतं ४. संसंगि ५. सेवणाहिगारो ६. संकल्पो ७. बाहणापयाणं ८. दप्पो ९. मोहो १०. मणसंखोभो ११. अणिग्गहो १२. वुग्गहो १३. विघाओ १४. विभंगो १५. विब्भभो १६. अहम्मो १७. असीलया १८. गामधम्मत्ति १९. रई २०. रागचिंता २१. कामभोगमारो २२. वेरं २३. रहस्सं २४. गुज्झं २५. बहुमाणो २६. बंभचेरविग्घो २७. वावत्ती २८. विराहणा २९. पसंगो ३०. कामगुणोत्ति वि य तस्स एयाणि एवमाइणि णामधेज्जाणि होति तीसं ।

शब्दार्थ - तस्स - उसके, णामाणि - नाम, गोण्णाणि - गुणनिष्पन्न, इमाणि - ये, होति - होते हैं, तीसं - तीस, तं जहा - वे इस प्रकार हैं, अबंभं - अकुशल अनुष्ठान-अप्रशंसनीय नहीं आचरण, मेहुणं - मैथुन-स्त्री और पुरुष दोनों के संयोग से होने वाला, चरंतं - विश्व व्यापक, संसंगि - संसर्गी-स्त्री और पुरुष के सम्पर्क से होने वाला, सेवणाहिगारो - सेवनाधिकार चोरी आदि अन्य पाप-कर्मों का प्रेरक, संकल्पो - संकल्प-मानसिक विचारों से उत्पन्न होने वाला-अब्रह्म की उत्पत्ति वैसे संकल्प विकल्प से ही होती है, बाहणापयाणं - बाधनापद-संयम स्थान या प्रजा के लिए बाधक, दप्पो - दर्प-देह का गर्व अथवा मदोन्मत्त-अपनी सफलता के दर्प से गर्वित, मोहो - मोह-मोहित करने वाला-वेदमोहनीय के उदय से उत्पन्न, मणसंखोभो - मनःसंक्षोभक-मानसिक शांति को नष्ट कर चंचलता बढ़ाने वाला, अणिग्गहो - अनिग्रहक-मन को खुला रख कर विषय में प्रवृत्ति कराने वाला, वुग्गहो - विग्रह, बलेश एवं झगड़े का कारण, विघाओ - विघातक सदगुणों को नष्ट करने वाला, विभंगो - संयम का भंग करने वाला, विब्भभो - विभ्रम-अब्रह्म हेय है, उसे उपादेय समझने रूप भ्रान्ति उत्पन्न करने वाला, अहम्मो - अधर्म-श्रुत एवं चारित्र्य धर्म के प्रतिकूल होने के कारण अधर्म, असीलया - अशीलता-सदाचरण से रहित, गामधम्मत्ति - ग्राम धर्म-जन-समूह द्वारा स्वीकृत-सेवित-शब्द रूपादि विषयों-कामगुणों की इच्छा गवेषणा एवं सेवन रूप, रई - रति-मैथुन में प्रीति-रुचि, रागचिंता - मैथुन सम्बन्धी अनुकूलता एवं साधन प्राप्त करने की चिन्ता, कामभोगमारो - कामभोग मार-कामभोग रूपी मदन से मग्न, वेरं - वैर का कारण-वैरवर्द्धक, रहस्सं - रहस्य-छुपकर सेवन किया जाने वाला, गुज्झं - गुप्त-गोपनीय, बहुमाणो - बहुजन द्वारा मान्य, बंभचेरविग्घो - ब्रह्मचर्य की विघातक, वावत्ती - व्यापत्ति-सदगुणों का नाशक, विराहणा - विराधना-चारित्र्य का भंजक, पसंगो - प्रसंग-स्त्री-पुरुष संगम-भोगासक्ति, कामगुणोत्ति - कामगुण-मदनोत्पादक-शब्दादि कामगुण में लुब्ध करने वाला, तस्स - उसके, एयाणि-ये, एवमाइणि - इस प्रकार के, णामधेज्जाणि - नाम, होति - होते हैं, तीसं - तीस ।

भावार्थ - इस अब्रह्म नामक पाप के गुणनिष्पन्न तीस नाम होते हैं । यथा - १. अब्रह्म २. मैथुन ३. चरंतं (विश्व-व्यापक) ४. संसर्गी ५. सेवनाधिकार ६. संकल्प ७. बाधनापद ८. दर्प ९. मोह १०. मनःसंक्षोभ ११. अनिग्रहक १२. विग्रहक १३. विघातक १४. विभंगक १५. विभ्रम १६. अधर्म

१७. अशूल १८. ग्रामधर्म १०. रति २०. रागचिन्ता २१. कामभोगमार २२. वेर २३. रहस्य २४. गुप्त २५. बहुमान्य २६. ब्रह्मचर्य-विघातक २७. व्यापत्ति २८. विराधना २९. प्रसंग और ३०. कामगुण। इस प्रकार अब्रह्म के ये तीस नाम हैं।

अब्रह्म सेवी देवादि

तं च पुण णिसेवंति सुरगणा सअच्छरा मोहमोहियमई असुर-भुयग-गरुल-विज्जु जलण-दीव-उदहि-दिसि-पवण-थणिया, अणवणिय-पणवणिय-इसिवाइय-भूयवाइय-कंदिय-महाकंदिय-कूहंड-पयंगदेवा, पिसाय-भूय-जक्ख-रक्खस-किण्णर-किंपुरिस-महोरग-गंधव्वा, तिरिय-जोइस-विमाणवासि-मणुयगणा, जलयर-थलयर-खहयरा, मोहपडिबद्धचित्ता अवितण्हा कामभोगतिसिया, तण्हाए बलवईए महइए समभिभूया गढिया य अइमुच्छिया य अबंभे उस्सण्णा तामसेण भावेण अणुमुक्का दंसण-चरित्तमोहस्स पंजरं विव करेति अण्णोण्णं सेवमाणा।

शब्दार्थ - तं च - उसके, पुण - पुनः णिसेवंति - सेवन करते हैं, सुरगणा - देवगण, सअच्छरा-अप्सराओं के साथ, मोहमोहियमई - जिनकी मति मोह से मोहित है, असुर - असुरकुमार, भुयग - नागकुमार, गरुल - गरुड़-गरुड़ की ध्वजा वाले-सुवर्णकुमार, विज्जु - विद्युतकुमार, जलण - अग्निकुमार, दीव - द्वीपकुमार, उदहि - उदधिकुमार, दिसि - दिशाकुमार, पवण - पवनकुमार, थणिया-स्तनितकुमार, अणवणिय - आणपत्रिक, पणवणिय - पाणपत्रिक, इसिवाइय - ऋषिवादिक, भूयवाइय = भूतवादिक, कंदिय - कंदित, महाकंदिय - महाकंदित, कूहंड - कूष्मांड, पयंग - पतंग, देव - देव हैं, पिसाय - पिशाच, भूय - भूत, जक्ख - यक्ष, रक्खस - राक्षस, किण्णर - किन्नर, किंपुरिस - किम्पुरुष, महोरग - महोरग, गंधव्वा - गन्धर्व, तिरिय - तिरछे, जोइस - ज्योतिषी, विमाणवासी - विमानवासी, मणुयगणा - मनुष्य गण, जलयर - जलचर, थलयर - स्थलचर, खहयरा - खेचर-नभचर, मोहपडिबद्धचित्ता - जिनका चित्त मोह से जकड़ा हुआ है, अवितण्हा - अत्यन्त तृष्णा वाले, कामभोगतिसिया - कामभोग के प्यासे, तण्हाए - तृष्णा से, बलवईए-बलवती, महइए - महति-अत्यन्त, समभिभूया - पीड़ित पराजित, आक्रांत, गढिया - ग्रथित-गृद्ध, अइमुच्छिया - अत्यन्त मूर्च्छित, अबंभे - अब्रह्मचर्य, उस्सण्णा - अत्यन्त आसक्त, तामसेण भावेण-तामस भाव से, अणुमुक्का - मुक्त नहीं हैं, दंसणचरित्तमोहस्स - दर्शन और चारित्रमोहनीय का, पंजरं-पिंजरा, विव - समान, करेति-करते हैं, अण्णोण्णं-अन्योन्य-परस्पर, सेवमाणा-सेवन करते हुए।

भावार्थ - मैथुन का सेवन वे देवगण करते हैं जो मोहाभिभूत हैं। वे अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते हैं। भवनपति जाति के - १. असुरकुमार २. नागकुमार ३. सुवर्णकुमार ४. विद्युतकुमार

 ५. अग्निकुमार ६. द्वीपकुमार ७. उदधिकुमार ८. दिशाकुमार ९. पवनकुमार १०. स्तनितकुमार। व्यन्तर जाति के - १. आणपन्निक २. पाणपन्निक ३. ऋषिवादिक ४. भूतवादिक ५. कन्दित ६. महाकन्दित ७. कुष्माण्ड और ८. पतंग तथा - १. पिशाच २. भूत ३. यक्ष ४. राक्षस ५. किन्नर ६. किंपुरुष ७. महोरग और ८. गन्धर्व, ये भी व्यन्तर जाति के हैं। तिरछे लोक में ज्योतिषी देव तथा ऊपर के विमानवासी देव ये सभी अब्रह्मसेवी हैं। मनुष्य तथा जलचर, स्थलचर और नभचर तिर्यच, ये सभी जीव मोह-परिपूर्ण चित्त से, काम-भोगों में अत्यन्त आसक्त हो कर, असीम इच्छा एवं तृष्णा युक्त होते हैं। ये जीव तामस-भाव से अत्यन्त मूर्च्छित होकर मैथुन सेवन करते हैं और अपने दर्शन और चारित्र गुण को दमन करने के लिए पिंजरा (आवरण) तैयार करते हैं। मैथुन सेवन से उनके दर्शन तथा चारित्र गुण, मोह के महाबन्धन में परिवद्ध हो जाते हैं।

विवेचन - इस सूत्र में अब्रह्मचर्य रूपी अधर्म का सेवन करने वाले देवादि का उल्लेख किया गया है। पहले भवनपति देवों की अगुरकुमारादि दस जातियों का निर्देश किया है। पन्द्रह प्रकार के परमाधामी देव भी इन्हीं में सम्मिलित हैं। व्यन्तरों में आणपत्री आदि आठ तथा पिशाचादि आठ का नाम निर्देश किया गया। दस प्रकार के जृम्भक देव भी व्यन्तर ही हैं। ज्योतिषी देव चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा ये पांच भेद हैं। इसके चर और स्थिर भेद से दस प्रकार हुए। वैमानिकों में पहले और दूसरे देवलोक तक ही देवियाँ है। मैथुन सेवन यहीं तक है। इसके आगे न तो देवांगना है और न मैथुन सेवन ही होता है। तीसरे देवलोक से लगा कर ऊपर अनुत्तर विमान तक केवल देव ही हैं। उनका वेदोदय क्रमशः मन्द होता है। तीसरे-चौथे देवलोक के देव, पहले व दूसरे देवलोक की अपरिगृहीता देवियों से चुम्बन-मर्दनादि स्पर्श-परिचारणा करते हैं, पांचवें और छठे देवलोक के देव रूप-परिचारणा, सातवें-आठवें में शब्द परिचारणा और नौवें से बारहवें देवलोक के देव केवल मन-परिचारणा करते हैं। इसके आगे किसी भी प्रकार की परिचारणा (काम-सेवन) नहीं है।

कामभोग में अत्यन्त आसक्त जीवों की लुब्धता का वर्णन सूत्रकार ने "मोहपडिबद्धचित्ता" आदि बड़े मार्मिक शब्दों से किया है। टीकाकार लिखते हैं कि भोगासक्त भाषा-जीवी विद्वानों ने तो विधान त्रक कर दिया कि -

"न मांसभक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने।

सेविताः शान्तिमायान्ति, असेव्या गुद्धिवर्द्धिनः †॥"

अर्थात् - न तो मांसभक्षण में कोई दोष है और न मद्यपान तथा मैथुन सेवन ही बुरा है। मांसभक्षण, मदिरापान और मैथुन सेवन से शांति प्राप्त होती है। किन्तु इनके सेवन नहीं करने से गुद्धता-आसक्ति बढ़ती है।

† इस श्लोक का उच्चारण इस प्रकार भी है - "प्रवृत्तिसभूतानां, निवृत्तिं च महाफलाः" अर्थात्-यह तो जीवों की प्रवृत्ति ही है। किन्तु इनसे निवृत्त हो जाना महान् फलदायक है।

मिथ्यादृष्टि कुतर्कियों के इस प्रकार के कुतर्क का उल्लेख सूत्रकृतांग अ. ३ उ. ४ गाथा १० से १२ तक में हुआ है। भोगसक्त कुतीर्थियों ने ऋतुदान को धार्मिक विधान बना दिया और आराध्य देव के स्त्री-सहवास को भी सिरोधार्य कर लिया। जैनदर्शन स्त्री-सहवास का सर्वथा निषेध करता है। इससे अधर्म एवं पाप मानता है।

चक्रवर्ती के विशिष्ट भोग

भुजो य असुर-सुर-तिरिय-मणुयभोगरइविहारसंपउत्ता य चक्कवट्टी सुरणरवड्ढि सक्कया सुरवरुव्व देवल्लोए।

शब्दार्थ - भुजो य - पुनः, असुरसुरतिरियमणुय - असुर देव, तिर्यच और मनुष्य सम्बन्धी, भोगरइविहारसंपउत्ता - भोग-विलास में आसक्त हो कर क्रीड़ा करने वाले, चक्कवट्टी - चक्रवर्ती का, सरणरवड्ढिसक्कया - देव और नरेश भी सत्कार करते हैं, सुरवरुव्व - देवेन्द्र के समान, देवल्लोक - देवलोक में।

भावार्थ - चक्रवर्ती महाराजा, जिनका देवलोक के देवाधिपति इन्द्र के समान, हजारों देव और नरेश सत्कार करते हैं। वे चक्रवर्ती नरेन्द्र असुर, देव, तिर्यच और मनुष्य सम्बन्धी भोग-विलास में अत्यन्त आसक्त हो कर विविध प्रकार की क्रीड़ा करते हैं।

चक्रवर्ती - छह खंड के विजेता, भोक्ता एवं शासक। हजारों देवों और राजाओं द्वारा सेवित। मनुष्य सम्बन्धी भौतिक ऋद्धि-सम्पत्ति, शक्ति, बल, प्रभाव और सर्वोच्च अधिकारों से परिपूर्ण नरेन्द्र।

चक्रवर्ती का राज्य विस्तार

भरह-णग-णगर-णगम-जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड-कब्बड-मडंब-संवाह-पट्टणसहस्स-मंडियं थिमियमेयणियं एगच्छत्तं ससागरं भुंजिऊण-वसुहं।

शब्दार्थ - भरहणग - भरत क्षेत्र के सहस्रों पर्वत, णगर-णगम-जणवय - नगर निगम, जनपद, पुरवर दोणमुह - पुरवर-राजधानी द्रोणमुख-जहाँ जलप और स्थल मार्ग से आयात-निर्यात हो, खेड कब्बड - खेट-मिट्टी के परकोटे वाले, कर्बट - थोड़ी बस्ती वाले गांव, मडंब - जिसके निकट कोई दूसरा गांव नहीं हो, संवाह - धान्यादि रक्षक दुर्ग, पट्टण - जहाँ सभी प्रकार की वस्तुएं मिल सकें, सहस्समंडियं - हजारों से मण्डित, थिमियमेयणियं - निर्भीक प्रजाजनों से सम्पन्न, एगच्छत्तं - एकछत्र-एक ही-अपने ही रक्षण में, ससागरं-समुद्र सहित, भुंजिऊण वसुहं - वसुधा-पृथ्वी का भोग करते हैं।

भावार्थ - चक्रवर्ती नरेन्द्र का भरत क्षेत्र के सहस्रों पर्वतों, सहस्रों नगरों, निगमों, देशों, राजधानियों, द्रोणमुखों, खेडों, कर्बटों, मडम्बों, संवाहों और पत्तनों से मण्डित, छह खण्ड में बसे हुए निर्भीक प्रजाजनों से युक्त, समुद्र-पर्यन्त एक छत्र राज्य होता है। वे उस समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का उपभोग करते हैं।

थिमियमेयणिज्जं - किसी भी प्रकार के भय से रहित होकर प्रजाजन जहाँ सुखपूर्वक रहते हैं।
जिनके प्रभाव एवं सुशासन से प्रजा निर्भय रहती है।

चक्रवर्ती नरेन्द्र के विशेषण

णरसीहा णरवई णरिदा णरवसहा मरुयवसहकप्पा अब्भहियं रायतेयलच्छीए
दिप्पमाणा सोमा रायवंसतिलगा।

शब्दार्थ - णरसीहा - नरसिंह-मनुष्यों में सिंह के समान, णरवई - नरपति-मनुष्यों के स्वामी,
णरिदा - नरेन्द्र, णरवसहा - नरवृषभ, मरुयवसहकप्पा - मरुधर वृषभ-कल्प, अब्भहियं -
अत्यधिक, रायतेयलच्छीए - राज्यलक्ष्मी के प्रकाश से, दिप्पमाणा - देदीप्यमान, सोमा - सौम्य,
रायवंसतिलगा - राज्यवंश के तिलक।

भावार्थ - चक्रवर्ती नरेश मनुष्यों में सिंह के समान शौर्यसम्पन्न हैं, मनुष्यों के स्वामी हैं, मनुष्यों
में इन्द्र के समान अधिपति हैं। शकट-धुरा को धारण करके पार पहुँचाने वाले वृषभ (बैल) के समान
राज्यधुरा को धारण कर कुशलतापूर्वक संचालन करने वाले-नरवृषभ हैं। मरुधर वृषभ-कल्प-मारवाड़
के धोरी वृषभ, अपनी विशालता, शक्ति सम्पन्नता एवं श्रेष्ठता में सर्वोपरि होते हैं और अत्यधिक भार
को वहन कर सकते हैं, उसी प्रकार चक्रवर्ती-सम्राट सम्पूर्ण छह खण्ड के राज्यभार को आदर्श रूप से
वहन कर संचालन करने वाले हैं। वे राज्य रूपी लक्ष्मी-राज्यश्री के तेज से देदीप्यमान हैं, सौम्य हैं और
राजवंश में तिलक के समान-सिरोभूषणरूप हैं।

विवेचन - उपरोक्त शब्दों में चक्रवर्ती महाराजाधिराज के गुणसम्पन्न विशेषण बतलाये गये हैं।
चक्रवर्ती-सम्राट, केवल वंश परम्परा के प्राप्त राज्याधिकार से ही नहीं बन जाते, न केवल सैन्यबल या
जनमत से चुन कर आये हुए राष्ट्रपति होते हैं। वे अपनी विशिष्ट प्रकार की शक्ति, सामर्थ्य एवं सम्पूर्ण
योग्यता से चक्रवर्ती होते हैं। उनकी उत्पत्ति भी उत्तम राजवंश में ही होती है। 'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति' सूत्र में
भरत चक्रवर्ती के अधिकार में ये विशेषण भी हैं -

“समटे अपराजिए परमविक्रमगुणे अमरवडुसमाणसरीररुवे
मणुअवई।”

- युद्ध में शत्रु से पराजित नहीं होने वाले-अपराजित-विजयी। परम विक्रम-पराक्रम गुणयुक्त,
देवेन्द्र के समान शारीरिक रूप सम्पन्न मनुष्याधिपति।

औपपातिक सूत्र में कूणिक राजा के वर्णन में ये विशेषण भी हैं -

“वयपत्ते, सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, मणुत्सिदे, जणवयपिया,

जणवयपाले, जणवयपुरोहिणे, सेउकटे, केउकटे, णरपवटे, पुरिसवटे, पुरिससिहे, पुरिसवग्घे, पुरिसासीविसे, पुरिसपुंडरीए, पुरिसवरगंधहत्थी।”

शब्दार्थ - दयाप्राप्त - जिसके हृदय में दया-अनुकम्पा का वास है, सीमंकर - मर्यादा स्थापित करने वाला, सीमन्धर - मर्यादा पालक, खेमंकर - शांति-कारक, खेमन्धर - शांति को स्थिर करने वाला, मनुष्यों का इन्द्र - मानवेन्द्र जनपद-पिता, जनपद-पालक, जनपद-पुरोहित, सेतुकर-अद्भुत कार्य करने वाला, विपत्तियों का पाल या बांध के समान अवरोधक अथवा कठिनाइयों के महानद पर से सरलता से पार लगाने वाले पुल के समान), केतुकर - अतिश्रेष्ठ नर रूपी निधि का स्वामी मनुष्यों में ध्वजा के समान, नरप्रवर - पुरुषों में प्रधान-पुरुषोत्तम, पुरुष सिंह, पुरुष-व्याघ्र, पुरुष-आशीविष क्रोप को सफल करने वाले आशीविष सर्प के समान, पुरुष-पींडरीक - पुरुषों में श्रेष्ठ श्वेत कमल के समान पुरुषवर गंध-हस्ती पुरुषों में श्रेष्ठ गन्धहस्ती के समान उत्तम-चैरियों को नष्ट करने वाला।

इन विशेषणों में 'नरवृषभ' विशेषण देने के बाद सूत्रकार ने 'मरुयवसहकम्पा' विशेषण लगाकर अन्य प्रान्तों के वृषभों से भी मरुधरा के वृषभ की विशेषता व्यक्त की है। इससे- 'मारवाड़ के धोरी' की श्रेष्ठ मनुष्यों की दी जाती हुई उपमा कितनी प्राचीन है-यह स्पष्ट हो रहा है।

उत्तम राजाओं के विशेषण बतला रहे हैं कि - ऐसे श्रेष्ठ नर जिस राज्यधरा के धारक हों, वह राज्य और वहाँ की प्रजा सुखी रहती है।

चक्रवर्ती के शुभ लक्षण

रवि-ससि-संख-वरचक्क-सोत्थिय-पडाग-जव-मच्छ-कुम्म-रहवर-भग-भवण-विमाण-तुरय-तोरण-गोपुर-मणिरयण-णंदियावत्त-मुसल-णंगल-सुरइयवर-कप्परुक्क-मिगवइ-भहासण-सुरूविथूभ-वरमउड-सरिय-कुंडल-कुंजर-वरवसह-दीव-मंदर-गरुलज्झय-इंदकेउ-दप्पण-अट्टावय-चाव बाण-णक्खत्त-मेह-मेहल-वीणा-जुग-छत्त-दाम-दामिणि-कमंडलु-कमल-घंटा-वरपोय-सुई-सागर-कुमुदागर-मगर-हार-गागर-णेउर-णग-णगर-वइर-किण्णर-मयूर-वररायहंस-सारस-चकोर-चक्कवाग-मिहुण-चामर-खेडग-पव्वीसग-विपंचि-वरतालियंट-सिरियाभिसेय-येइणि-खग्गं-कुस-विमल-कलस-भिंणार-वद्धमाणग-पसत्थउत्तमविभत्तवरपुरिस-लक्खणधरा।

शब्दार्थ - रवि - सूर्य, ससि - चन्द्रमा, संख - शंख, वरचक्क - प्रधान चक्र, सोत्थिय - स्वस्तिक, पडाग - पताका, जव - यव-जौ, मच्छ - मत्स्य, कुम्म - कुर्म-कछुआ, रहवर - श्रेष्ठ रथ, भग - योनि, भवण - भवन, विमाण - देव-विमान, तुरय - घोड़ा, तोरण - तोरण, गोपुर - नगर का

द्वार, मणिरयण - मणि रत्न, णंदियावत्त - नन्दिकावर्त-नौ कोने वाला स्वस्तिक, मूसल - मूसल, पंगल - हल, सुरइवरकप्परुक्खे - उत्तम प्रकार से श्रेष्ठता पूर्वक निर्मित-सुखदायक कल्पवृक्ष, मिगवइ - मृगपति-सिंह, भद्रासण - भद्रासन, सुरुविथूभ - सुन्दराकार स्तम्भ, वरमउड - श्रेष्ठ मुकुट, सरिय - मुक्ताहार, कुंडल - कुण्डल, कुंजर - हाथी, वरवसह - उत्तम बैल, दीव - द्वीप या दीपक, मंदर - मेरु पर्वत, गरुल - गरुड़, ज्झय - ध्वजा, इंदकेउ - इन्द्रध्वजा, दप्पण - दर्पण, अट्टावय - अष्टापद, चाव - चाप-धनुष, बाण - बाण, णक्खत्त - नक्षत्र, मेह - मेघ, मेहल - मेखला-कटिसूत्र, वीणा - वीणा-वादित्र विशेष, जुग - जुआ, छत्र - छत्र, दाम - माला, दामिणि - दामिनी-पूरे शरीर पर लटकती हुई माला, कमंडलु - कमण्डल, कमल - कमल, घंटा - घंटा, वरपोय - श्रेष्ठ जलयान, सूई - सुई, सागर - समुद्र, कुमुदागर - कुमुदवन, मगर - मगर, हार - हार, गागर - स्त्रियों का आभूषण, णेउर - नूपुर, णग - पर्वत, णगर - नगर, वडर - वज्र, किण्णर - किन्नर, मयूर - मयूर, वरायहंस - श्रेष्ठ राजहंस, सारस - सारस, चकोर - चकोर, चक्कवागमिहुण - चक्रवाक मिथुन-जोड़ा, चामर - चामर, खेडग - पटिया, पव्वीसग - प्रविशक-एक प्रकार का वादित्र, विपंचि - वादित्र विशेष, वरतालियंट - ताड़ का उत्तम पंखा, सिरियाभिसेय - श्रीकाभिषेक-अभिषेक युक्त लक्ष्मी, मेइणि - मेदिनी-पृथ्वी, खग्गंकुस - खड्ग, अंकुश, विमलकलस - निर्मल कलश, भिंगार - झारी, वद्धमाणग - वर्द्धमानक-शराव, पसत्थउत्तम - प्रशस्त और उत्तम मांगलिक, विभत्तरव - प्रधान-श्रेष्ठ, पुरिस-लक्खणधरा - पुरुषों के लक्षण के धारक।

भावार्थ - वे चक्रवर्ती नरेन्द्र अपने शरीर पर-सूर्य, चन्द्र, शंख, श्रेष्ठ चक्र, स्वस्तिक, पताका, यव, मत्स्य, कुर्म, श्रेष्ठ रथ, योनि, भवन, विमान, अश्व, तोरण, द्वार, मणि, रत्न, नन्धावर्त, मूसल, हल, श्रेष्ठ, कल्पवृक्ष, सिंह, भद्रासन, सुन्दर स्तंभ, उत्तम मुकुट, मुक्तालड़ी, कुण्डल, हाथी, श्रेष्ठ वृषभ, द्वीप, मेरुपर्वत, गरुड़, ध्वज, इन्द्रध्वज, दर्पण, अष्टापद, धनुषबाण, नक्षत्र, मेघ, मेखला, वीणा, जुआ, छत्र, माला, दामिनी (बड़ी माला) कमण्डलु, कमल, घण्टा, श्रेष्ठ जलपोत, सूई, सागर, कुमुदवन, मगर, हार सागर, (एक आभूषण) नूपुर, पर्वत, नगर, वज्र, किन्नर, मयूर, श्रेष्ठ राजहंस, सारस, चकोर, चक्रवाकयुगल, चामर, पटिया, प्रविशक, विपंचि, तालवृक्ष का उत्तम पंखा, अभिषेक युक्त लक्ष्मी, पृथ्वी, खड्ग, अंकुश, निर्मल कलश, झारी, वर्द्धमानक-इन प्रशस्त मांगलिक और उत्तम पुरुष-लक्षणों को धारण करने वाले हैं।

विवेचन - पुरुषों के हाथ-पांव आदि में जो उत्तम लक्षणों को बताने वाली विभिन्न आकृतियों की रेखाएं होती हैं, उनका उल्लेख इस सूत्र में हुआ है। चक्रवर्ती में ये सभी उत्तम लक्षण होते हैं।

चक्रवर्ती की ऋद्धि

बत्तीसं वररायसहस्साणुजायमग्गा चउसट्टिसहस्सपवरजुवतीण-णयणकंता रत्ताभा

पउमपम्ह कोरंटगदामचंपकसुययवरकणकणिहसवण्णा सुवण्णा ❖ सुजाय-
सव्वंगसुंदरंगा महग्घवरपट्टणुगयविचित्तरा-गएणिमोणिणिम्मिय-दुगुल्लवरचीण-
पट्टकोसेज्ज-सोणिसुत्तगविभूसियंगा वरसुरभि-गंधवरचुण्णवासवर-कुसुमभरियसिरया
कप्पिय-छेयायरियसुक-यरइतमालकडगंगयतुडियपवरभूसण-पिणद्धदेहा
एकावलिकंठ-सुरइयवच्छा पालंब-पलंबमाणसुकयपडउत्तरिज्जमुहिया-पिंगलंगुल्लिया
उज्जल-णेवत्थ-रइयचेल्लगविरायमाणे तेएण दिवाकरोव्व दित्ता सारयणवत्थणियमहुर-
गंभीरणिद्धघोसा उप्पण्ण समत्त-रय-चक्करयणप्पहाणा णवणिहिवइणो समिद्धकोसा
चाउरंता चाउराहिं सेणाहिं समणुजाइज्जमाणमग्गा तुरयवई गयवई रहवई णरवई
विपुलकुलवीसुयजसा सारयससिसकल-सोमवयणा सूरा तिलोक्कणिग्गय-
पभावलद्धसदा समत्तभरहाहिवा णारिदा ससेल-वण-काणणं य हिमवंतसागरंतं धीरा
भुत्तूण भरहवासं जियसत्तु पवररायसीहा पुव्वकडतवप्पभावा णिविट्ठसंचियसुहा, अणेग-
वाससयमायुवंतो भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं लालियंता अतुल-सह-फरिस-रस-
रूव गंधे य अणुभवेत्ता ते वि उवणमंति मरणधम्मं अवितत्ता कामाणं ।

शब्दार्थ - बत्तीसं वरराय-सहस्साणुजायमग्गा - बत्तीस हजार श्रेष्ठ राजा जिनका अनुगमन करते हैं, चउसट्टिसहस्स - चौसठ हजार, पवरजुवतीणणयणकंता - उत्तम युवतियों के नयनों के प्रियतम, रत्ताभा - शरीर से निकलती हुई लाल आभा वाले, पउमपम्हकोरंट-गदामचंपक - जिनके शरीर का वर्ण कमलगर्भ, कोरंटक पुष्पमाला, चम्पक पुष्प, सुययवर-कणकणिहसवण्णा - तपाये हुए सोने की रेखा-कसौटी पर धिसी हुई रेखा के समान है, सुवण्णा - उत्तम वर्ण वाले, सुजायसव्वंगसुंदरंगा - जिनके सभी अंग सुडौल तथा सुन्दर हैं, महग्घ - बहुमूल्य, वरपट्टणुगयविचित्तरागएणिमोणिणिम्मिय-प्रधान नगरों में बने हुए तथा विविध रंगों में रंगे हुए और मृगीविशेष के रोम से निर्मित, दुगुल्लवर - उत्तम दुकुल, चीणपट्ट - चीन का बना हुआ, रेशमी वस्त्र, कोसेज्ज - कोस से निकले हुए तारों से बना हुआ-रेशमी, सोणीसुत्तग - श्रोणिसूत्रक-कटिसूत्र-करधनी से, विभूसियंगा - जिनका अंग-कमर सुशोभित है, वरसुरभिगंधवरचुण्णवासवरकुसुमभरियसिरिया - उत्तम सुगन्धित द्रव्यों, श्रेष्ठ चूर्णों और उत्तम सुगन्ध वाले पुष्पों से जिनका मस्तक शोभायमान है, कप्पिय-छेयायरिय-सुकयरइत - आर्यजनों के धारण करने योग्य तथा कुशल कलाकारों द्वारा बनाये हुए सुखकारी, मालकडगंगय-तुडियपवरभूसणपिणद्धदेहा - माला, कटक, कुण्डल, अंगद और तुटिका आदि उत्तम आभूषणों से जिनका शरीर सुशोभित है एकावलिकंठसुरइयवच्छा - गले में एकावली हार पहिने से जिनका वक्ष

❖ 'सुवण्णा' शब्द ज्ञानविमलसूरि वाली प्रति में ही है ।

शोभित है, पालंबपलंबमाणसुकयपडउत्तरिज्ज - लम्बा झूलता हुआ श्रेष्ठ कलायुक्त उत्तम उत्तरीय वस्त्र-ऊपर का-उत्तरासन य चादर लटक रही है, मुहियापिंगलंगुलिया - अंगुठियों से अंगुलियाँ पीली दिखाई दे रही है, उज्जलणेवत्थरइयचेत्तलगविरम्यमाणा - जो उज्ज्वल एव सुखद वेशभूषा से अत्यन्त शोभायमान हैं, तेएण - तेज से, दिवाकरोव्व - सूर्य के समान, दित्ता - दिप्त, सायरणवत्थ-णियसहुरगंभीरणिद्धोसा- जिनका स्वर, शरदकाल में उत्पन्न नवीन मेष के समान गम्भीर तथा मधुर है, सुनने में सुखदायक है, उप्पण्ण - उत्पन्न प्राप्त है, समत्तरयण - समस्त रत्न, चक्करयणप्पहाणा - प्रधान चक्ररत्न भी जिनके पास है, णवणिहिवइणो - जो नौ निधि के स्वामी हैं, समिद्धकोसा - जिनका भण्डार समृद्ध है, चाउरंता - जो चातुरंत-चारों दिशाओं में-तीन और समुद्र और एक ओर हिमवान् पर्वत तक के स्वामी हैं, चाउरासिहिं सेणाहिं - जो चारों प्रकार की-हाथी, घोड़ा रथ और पदाति सेना, समणुजाइज्जमाण-मग्गा - जिनके मार्ग का अनुगमन करती हुई पीछे चलती है वे, तुरयवई - अश्वपति, गयवई - गजपति, रहवई - रथपति, णरवई - नरपति, विपुलकुलवीसुयजसा - जिनके महान् कुल का यश सर्वत्र प्रसिद्ध है, सारयससिसकलसोमवयणा - शरद् काल के पूर्ण चन्द्रमा के समान सौम्य बदन है जिनका, सुरा - शूरवीर है, तिलोव्वकणिगयपभाबलद्धसद्दा - तीनों लोक में जिनका प्रभाव है, प्रसिद्धि है, समत्तभरहाहिवा - समस्त भरतक्षेत्र के अधिपति, णरिदा - नरेन्द्र, ससेल-पर्वत सहित, वणकाणणं - वनों और उद्यानों, हिमवंत-सागरंतं - चूल हिमवंत पर्वत से समुद्रपर्यन्त, धीरा - धैर्यवंत, भुत्तूणभरहवांस - भारतवर्ष का भोग करते हैं, जियसत्तू - सभी शत्रुओं को जिन्होंने जीत लिये हैं, पवररायसीहा - राजाओं में श्रेष्ठ एवं सिंह के समान, पुव्वकडत्तवप्पभावा - पूर्वभव में किये हुए तप के प्रभाव से युक्त हैं, णिविद्धसंचियसुहा - पूर्वं संचित महान् सुखों के भोक्ता, अणेगवाससयमायुसंतो - अनेक सैकड़ों वर्षों की आयु वाले, भज्जाहि - भार्याओं-रानियों के साथ, जणववप्पहाणाहिं - उत्तम देशों में, लाल्लिवंता - किलास करते हुए, अत्तुत्तसद्धफरिसरसरूवगंध - अनुपम शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का, अणुभवेत्ता - अनुभव करते हुए, उव्वणमति - प्राप्त होते हैं, मरणाधम्मं - मृत्यु को, अचित्ता - अतृप्त ही, कामाणं - कामभोगों से।

भावार्थ - चक्रवर्ती महाराजाधिराज का बड़े-बड़े बत्तीस हजार राजा अनुगमन करते हुए, उनके निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हैं। वे चौसठ हजार यौवन-सम्पन्न उत्तम रानियों के नयनों के प्रिय होते हैं। उनके शरीर की प्रभा लाल वर्ण की है। उनके शरीर का वर्ण कमल के गर्भ, कोरंटक फूलों की माला, चम्पक-पुष्प तथा तप्त-स्वर्ण की रेखा के समान है। उनके सभी अंग सुडौल और सुन्दर हैं। उनके परिधान के लिए बड़े-बड़े नगरों में, निपुण कलाकरों द्वारा बनाये हुए और विविध प्रकार के रंगों से रंगे हुए वस्त्र होते हैं, जो मृगों के कोमल रोम से बने हुए, वृक्ष की छाल से निर्मित, चीन में बने हुए रेशमी तथा कौशेय रेशम से बने हुए बहुमूल्य होते हैं, जिनसे वे सुशोभित होते हैं। जिनकी कमर, करधनी से सुशोभित होती है। उनके मस्तक पर सुगन्धित चूर्ण और उत्तम गन्ध वाली पुष्पमाला सुशोभित हो रही

है। श्रेष्ठ कलाकारों द्वारा उत्तम रीति से बनाई हुई मनोहर माला, कटक (कड़ा या पहुँची) कुण्डल, अंगद (भुजबन्ध) तुटिका (बाहु-रक्षिका) आदि श्रेष्ठ आभूषणों से उनका शरीर शोभायमान है। एकावली हार से उनका वक्षस्थल विभूषित है। जिनके शरीर पर उत्तरीय-वस्त्र झूलता हुआ लटक रहा है और अंगुलियाँ अंगुठियों की पीली आभा से दमक रही हैं। उज्वल वेश से जो मनोहर दिखाई देते हैं। वे अपने तेज से सूर्य के समान तेजस्वी लगते हैं। उनका कण्ठस्वर शरदकाल में उत्पन्न नवीन मेघ की गर्जना के समान मधुर एवं गम्भीर है। सभी प्रकार के रत्नों की प्राप्ति से वे समृद्ध हैं और सर्वोत्तम चक्ररत्न भी उनके आधीन है। वे नौ निधियों के अधिपति हैं। उनका धन-भण्डार भरपूर है। वे तीन ओर समुद्र और एक ओर हिमवंत पर्वत-पर्यन्त समस्त पृथ्वी के स्वामी हैं। हाथी, घोड़े, रथ और पदाति - यों चार प्रकार की सेना उनका अनुगमन करती है। अतएव वे अश्वाधिपति, गजपति, रथपति एवं नरपति हैं। उनके उत्तम कुल की कीर्ति संसार में व्याप्त हो रही है। उनका मुख शरदकाल के पूर्ण चन्द्रमा के समान सौम्य है। वे बड़े ही शूरवीर हैं। उनका प्रभाव तीनों लोक में फैला हुआ है। जो सारे भारत वर्ष के स्वामी हैं। मनुष्यों में इन्द्र के समान हैं। धैर्यवान् हैं। चूलहिमवंत पर्वत से लवण समुद्र पर्यन्त समस्त पर्वतों, वनों और उद्यानों से सम्पन्न सम्पूर्ण भारतवर्ष का भोग करते हैं। अपने सभी शत्रुओं को पराजित कर जिन्होंने विजयश्री प्राप्त कर ली है। जो समस्त राजाओं में श्रेष्ठ एवं सिंह के समान है। पूर्वभव में की हुई तपस्या के प्रभाव से जो प्रभावित हैं और अपने पूर्व-संचित महान् सुखों को भोगते हैं। जो सैकड़ों वर्षों की आयु वाले हैं। वे चक्रवर्ती महाराजाधिराज, उत्तम देशों और उत्तम कुलों में उत्पन्न रानियों के साथ विलास करते हुए अनुपम शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श का अनुभव करते हैं। सैकड़ों वर्ष भोग भोगते हुए भी वे काम-भोगों से अतृप्त रहते हुए मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

विवेचन - चक्रवर्ती सम्राट की ऋद्धि और भोग-समृद्धि का वर्णन करते हुए सूत्रकार ने ३२००० बड़े राजाओं का वर्णन किया है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में विशेष में - ४९ कुराज्यों (खराब राज्यों) का भी उल्लेख है। सोलह हजार म्लेच्छराज्य भी होते हैं।

चौसठ हजार रानियों के अतिरिक्त बत्तीस हजार 'ऋतुकल्याणिका', बत्तीस हजार 'जनपदकल्याणिका' भी होती हैं।

दुगुल्ल - दुकुल-वल्कल-एक प्रकार के वृक्ष की छाल को पानी में धिगोकर मूसलादि से कूटकर बहुत कोमल बनाया जाता है। उसके बारीक तार निकाल कर वस्त्र बनाया जाता है। वह ठसर, सनिया जैसा बड़ा कोमल स्पर्श वाला और आकर्षक होता है।

चौदह रत्न - चक्रवर्ती महाराजाधिराज के १४ रत्न होते हैं। इनमें ७ एकेन्द्रिय रत्न होते हैं, यथा-

१. चक्ररत्न २. छत्र ३. चर्म ४. दण्ड ५. खड्ग ६. मणि और ७. काकिणी रत्न।

पंचेन्द्रिय ७ रत्नों में से पांच मनुष्य होते हैं - १. सेनापति २. गाथापति (भंडारी) ३. वार्द्धिकी (बढ़ई) ४. पुरोहित और ५. स्त्री रत्न।

दो पशु होते हैं - अश्वरत्न और हस्तिरत्न।

नवनिधान - (भण्डार) १. नैसर्ग निधान - जो नये ग्रामों का निर्माण और पुराने का जिर्णोद्धार एवं व्यवस्थित करता है। सेना के लिए मार्ग, शिविर, पुल आदि का निर्माण करता है।

२. पांडुक निधि - सोना-चांदी के सिक्के बनाना, सामग्री जुटाना, तोल-नाप के साधन, वस्तु निष्पादन के सभी साधन उपलब्ध करने वाली।

३. पिंगल निधि - स्त्री, पुरुष, अश्व और हाथी के आभूषणों की व्यवस्था करने वाली।

४. सर्व-रत्न निधि - चक्रवर्ती के चौदह रत्न और अन्य रत्नों की संग्राहक।

५. महापद्म निधि - श्वेत एवं रंगीन वस्त्रों की व्यवस्था करने वाली।

६. कालनिधि - भूत और भविष्य के तीन-तीन वर्ष तथा वर्तमानकाल का ज्ञान तथा कृषि, शिल्प, वाणिज्य, घट-पटादि निर्माण की ज्ञान-प्रदायिका।

७. महाकाल निधि-खानों में से स्वर्णादि धातुएं और रत्नादि सम्बन्धी सामग्री प्राप्त कराने वाली।

८. माणवक निधि - घोड़ागण और उनके लिए अस्त्र-शस्त्र, युद्ध-नीति, व्यूह-रचना, दण्ड रचना, दण्ड-नीति आदि से युक्त।

९. शंखनिधि - विविध प्रकार के नृत्य, नाटक, छन्द, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-पुरुषार्थ तथा विविध भाषा वादिन्द्रादि से भरपूर।

- प्रत्येक निधि बारह योजन लम्बी, नौ योजन विस्तार वाली और आठ योजन ऊँची तथा देव से अधिष्ठित होती है। मंजूषा के आकार वाली है और गंगा नदी के मुख पर होती है। स्थानांग स्थान ९ और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में इनका विशेष उल्लेख है।

चक्रवर्ती-सम्राट की १६००० देव सेवा करते हैं। इनमें से १४००० तो चौदह रत्नों की और २००० उनके दोनों भुजाओं की ओर रहते हैं। उनकी सेना में ८४००००० हाथी, इतने ही घोड़े और इतने ही रथ होते हैं, ९६००००००० पदाति सैनिक होते हैं।

७२००० बड़े नगर, ३२००० जनपद, ९६००००००० गाँव, ९९००० द्रोणमुख, ४८००० पट्टण, २४००० मण्डप, २०००० आकर, १६००० खेट, १४००० संबाह ५६००० अन्तरोदक। प्रवचनसारोद्धार में कुछ विशेष वर्णन है।

इस प्रकार की उत्तम ऋद्धि संपत्ति और उत्कृष्ट कामभोगों के भोक्ता चक्रवर्ती-सम्राट भी भोग ही में आसक्त रहते हुए मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं और सीधे नरक में उत्पन्न हो जाते हैं। वे पुरुषवेदी से नपुंसक बन जाते हैं और महान् दुःखों के भोक्ता होते हैं। जो पुण्य का भण्डार वे लाये थे, उससे उन्होंने पुण्य का नहीं, पाप का भण्डार भरा। वह पाप अब नरक में भोग रहे हैं। वे कामभोग अब भयंकर दुःखदायक बन रहे हैं।

बलदेव और वासुदेव के भोग

भुज्जो बलदेव-वासुदेवा य पवरपुरिसा महाबलपरक्कमा महाधणुवियट्टगा महासत्तसागरा दुद्धरा धणुद्धरा णरवसहा रामकेसवा भायरो सपरिसा वसुदेव-समुद्धविजयमाइयदसाराणं पज्जुण्ण-पईव-संब-अणिरुद्ध-णिसह-उम्मुय-सारण-गय-सुमुह-दुम्मुहाईण जायवाणं अद्धुट्टाण वि कुमारकोडीणं हिययदइया देवीए रोहिणीए देवीए देवकीए य आणंद-हिययभावणंदणकरा सोलसरायवर-सहस्साणुजायमग्गा सोलस-देवीसहस्सवरणयणहिययदइया णाणामणिकणगरयणमोत्तियपवालधण-धणसंचयरिद्धिसमिद्धिकोसा हयगयरहसहस्सामी गामा-गर-णगर-खेड-कब्बड-दोणमुह-पट्टणासम-संबाह-सहस्सथिमिय-णिव्वुयपमुइयजण-विविहसास-णिप्फज्ज-माणमेइणिसरसरिय-तलाग-सेलकाणण-आरा-मुज्जाणमणाभिराम-परिमंडियस्स दाहिणङ्कुवेयङ्गिरिविभत्तस्स लवण-जलहिपरिगयस्स छव्विह-कालगुणकामजुत्तस्स अद्ध भरहस्स सामिगा धीरकित्तिपुरिसा ओहबला अइबला अणिहया अपराजियसत्तु-महणारि-पुसहस्समाणमहणा ।

शब्दार्थ - भुज्जो य - पुनः, बलदेव-वासुदेवा - बलदेव और वासुदेव, पवरपुरिसा - उत्तम पुरुष, महाबलपरक्कमा - महाबली एवं पराक्रमी, महाधणुवियट्टगा - बड़े भारी धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने वाले, महासत्तसागरा - महान् सत्व के सागर, दुद्धरा - दुर्धर-जिनकी स्पर्धा कोई नहीं कर सकता, धणुद्धरा - धनुर्धर, णरवसहा - नर-वृषभ, राम-केसवा - राम और केशव, भायरो - भाई, सपरिसा-परिवार सहित, वसुदेव-समुद्धविजय-माइयदसाराणं - वसुदेव और समुद्रविजय आदि दशार्ह को, पज्जुण्ण-पईव-संब-अणिरुद्ध-णिसह-उम्मुय सारण-गय-सुमुह-दुम्मुहाईण - प्रद्युम्न, प्रतिव, शाम्ब, अनिरुद्ध, निषध, उल्मुक, सारण, गज, सुमुख और दुर्मुखादि, जायवाणं - यादवों के, अद्धुट्टाण - साढ़े तीन, कुमार-कोडीणं - कुमारकोटि, हिययदइया - अत्यन्त प्रिय, देवीए रोहिणीए - रोहिणी देवी के, देवीए देवकीए - देवकी देवी के, आणंद हिययभावणंदणकरा - हृदय में आनंद की वृद्धि करने वाले, सोलसरायवरसहस्साणुजायमग्गा - सोलह हजार राजा जिनके अनुगामी थे, सोलसदेवीसहस्सवरणयणहिययदइया - सोलह हजार रानियों के हृदय वल्लभ और नयनों के तारे थे णाणामणिकणगरयणमोत्तियपवाल - विविध प्रकार के मणि, कनेक, रत्न, मोती, प्रवाल, धणधणसंचयरिद्धिसमिद्धिकोसा - धन और धान्य के संचय से उनका कोष समृद्ध-परिपूर्ण था, हयंगयरहसहस्सामी - सहस्रों हाथी, घोड़ों और रथों के स्वामी, गामागरणगरखेड-कब्बड-दोणमुह-पट्टणासम-संबाह सहस्स - हजारों ग्राम, आकर, नगर, खेड, कर्बट, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संबाध

हैं, थिमिय णिष्णुयपमुइयजण - प्रजाजन निश्चिन्त, प्रमुदित एवं आनन्दित है, विविहसासणिप्फज्ज-माणमेइणिसर-सरिय-तलाग-सेल - विविध प्रकार के धान्य उत्पन्न करने वाली भूमि, जलाशय, नदी, तालाब, पर्वत, काणणआरामुज्जाणमणा-भिरामपरिमंडियस्स - वन, बाग, उद्यान आदि मनोहर एवं उत्तम रीति से सज्जित हैं, दाहिणङ्कुवेयङ्गुगिरिविभत्तस्स - जो वैताढ्य पर्वत से होकर दक्षिणार्द्ध और उत्तरार्द्ध के रूप में विभक्त है, लवणजलहिपरिगयस्स - जो लवण समुद्र से घिरा हुआ है, छ्विहकाल-गुणकामजुत्तस्स - जहाँ छह प्रकार की ऋतुएँ क्रमशः कालानुसार कार्ययुक्त अथवा शब्दादि काम-सुख से युक्त हैं, अद्भरहस्स सामिगा - वे आधे भरतक्षेत्र के स्वामी थे, धीरकित्ति-पुरिसा - वे कीर्ति से सुशोभित, धीर पुरुष थे, ओहबला - वे ओघबल-प्रवाह रूप से अविच्छिन्न-स्थायी बल वाले थे, अइबला - अति बलवान्, अणिहया - किसी के द्वारा आहत नहीं होने वाले, अपराजिय-सत्तुमहणरिपुसहस्समाणमहणा - वे शत्रुओं से पराजित नहीं होने वाले और सहस्रों शत्रुओं के मान का मर्दन करने वाले थे।

भावार्थ - (चक्रवर्ती के सिवाय) बलदेव और वासुदेव भी बड़े प्रख्यात एवं उत्तम पुरुष हुए हैं। वे महाबली एवं महापराक्रमी थे। प्रबल एवं दृढ़तम धनुष्य को खींचकर चढ़ाने वाले थे। समुद्र के समान महान् सत्वशाली, धनुर्विधा में अप्रतिम (अजोड़) धनुर्धर थे। वे नर-वृषभ राम (बलदेव) और केशव (वासुदेव श्री कृष्ण) दोनों भाई थे। उनका परिवार भी बहुत था। वसुदेव और समुद्रविजय आदि दस दशार्हों तथा प्रद्युम्न, प्रतिव, शाम्ब, अनिरुद्ध, निषध, उल्मुक, सारण, गज, सुमुख और दुर्मुख आदि साढ़े तीन कोटि यादव-कुमारों को अत्यन्त प्रिय थे। रोहिणी देवी (बलदेवजी की माता) देवकी देवी (कृष्णजी की माता) के हृदय में आनन्द की वृद्धि करने वाले थे। सोलह हजार राजा जिनके अनुगामी (अनुसरण करने वाले) थे। सोलह हजार रानियों के जो प्राणवल्लभ एवं नयनों के तारे थे। उनका भण्डार विविध प्रकार के मणि, कनक, रत्न, मोती, प्रवाल तथा धन-धान्य से परिपूर्ण था। हजारों हाथियों, घोड़ों और रथों के वे स्वामी थे। हजारों ग्राम, आकर, नगर, खेड, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टण, आश्रम और संबाध पर उनका राज्य था, जिनमें प्रजानन सुख-सन्तोष एवं आनन्दपूर्वक निवास करते थे। उनके राज्य की भूमि में विविध प्रकार का धान्य उत्पन्न होता था। नदी, तालाब, पर्वत, वन, बाग, उद्यान आदि प्राकृतिक मनोहर सामग्रियों से उनकी भूमि सुसज्जित थी। वैताढ्य पर्वत से दो विभागों (उत्तर और दक्षिण) में विभाजित हुआ ऐसा दक्षिण भरत-क्षेत्र जो लवण समुद्र से घिरा हुआ है और जिसमें कालक्रम से छहों ऋतुएँ अपने काम-गुण से सम्पन्न होकर कार्यरत हैं, ऐसे आधे भरत-क्षेत्र के वे (राम और केशव) स्वामी थे। वे धीर-वीर थे। उनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी-वे कीर्ति पुरुष थे। उनका बल सदा स्थायी रहता था। वे बहुत बलवान् थे। उन्हें दबाने वाला कोई नहीं था (उन पर किसी की आज्ञा नहीं चल सकती थी) वे अपराजित (किसी से पराजित नहीं होने वाले) थे। वे हजारों शत्रुओं का मान-मर्दन करने वाले थे।

विवेचन - चक्रवर्ती सम्राट की ऋद्धि एवं उत्कृष्ट भोगों का वर्णन करने के बाद सूत्रकार इस सूत्र में बलदेव और वासुदेव की ऋद्धि पराक्रम एवं भोग-सामग्री का वर्णन करते हैं। श्लाघनीय उत्तम पुरुषों में सर्वोत्कृष्ट स्थान तीर्थंकर भगवंतों का होता है। उसके बाद दूसरा स्थान चक्रवर्ती-सम्राट का है और इनके बाद वासुदेव और बलदेव आते हैं। चक्रवर्ती से वासुदेव की ऋद्धि राज्य-विस्तार एवं बल आधा होता है। बलदेव बड़े भाई होते हैं और वासुदेव छोटे भाई। इस सूत्र में इस अवसर्पिणी काल में हुए नौ बलदेव-वासुदेवों में से अन्तिम-नौवें बलदेव-वासुदेव का वर्णन है।

दशाह - लोकपूज्य। ये दस थे। इनके नाम - १. समुद्रविजय २. अक्षोभ्य ३. स्तिमित ४. सागर ५. हिमवान् ६. अचल ७. धरण ८. पूरण ९. अभिचन्द्र और १०. वसुदेव।

साणुक्कोसा अमच्छरी अचवला अचंडा मियमंजुलपलावा हसियगंभीरमहुरभणिया अब्भुवगयवच्छला सरणणा लक्खणवंजणगुणोववेया माणुम्माण-पमाण-पडिपुण्ण-सुजायसव्वंग-सुंदरंगा ससिसोमागारकंतपिय-दंसणा अमरिसणा पर्यंडडंढप्पयार-गंभीरदरिसणिज्जा तालद्धउव्विद्धगरुल-केऊ बलवग-गज्जंतदरियदप्पियमुट्टिय-चाणूरमूरगा रिट्टवसहघाइणो केसरिमुहविप्फाडगा दरियणागदप्पमहणा जमलज्जुणभंजगा महासउणिपूयणारिवू कंसमउडडोडगा जरासंधमाणमहणा।

शब्दार्थ - साणुक्कोसा - दया एवं अनुकम्पा युक्त हृदय वाले, अमच्छरी - ईर्ष्या भाव से रहित, अचवला - अचपल-चंचलता रहित-गम्भीर, अचंडा - अकारण क्रोधित नहीं होने वाले, मियमंजुलपलावा - परिमित एवं मधुर भाषण करने वाले, हसियगंभीरमहुरभणिया - कुछ हास्यपूर्वक-मुस्कराते हुए गंभीरतायुक्त मधुर वचन बोलने वाले, अब्भुवगयवच्छला - समीप आए हुए के प्रति वात्सल्य भाव रखने वाले, सरणणा - शरण में आये हुए के रक्षक, लक्खणवंजणगुणोववेया - शुभ लक्षणों व्यंजनों और गुणों से युक्त, माणुम्माणपमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगा - उनके शरीर के समस्त अंगोपांग सुन्दर और मान-उन्मान तथा प्रमाण से परिपूर्ण थे, ससिसोमागारकंतपियदंसणा - उनकी आकृति चन्द्रमा के समान मनोहर थी, उनका दर्शन दर्शक को प्रिय लगता था, अमरिसणा - वे अमर्षण-अपराध एवं अत्याचार को सहन नहीं करने वाले थे अथवा कार्यसिद्धि में आलस्य नहीं करते थे, पर्यंडडंढप्पयारगंभीरदरिसणिज्जा - प्रचण्ड दण्ड प्रचार गम्भीर दर्शनीय-दुष्टों का दमन करने के लिए उनका अनुशासन बहुत प्रचण्ड होता था, वे दुष्टों के लिए अत्यन्त गम्भीर दिखाई देते थे, तालद्धउव्विद्धगरुलकेऊ - उनकी गरुडाङ्कित ध्वजा ताल वृक्ष के समान ऊंची थी, बलवग-गज्जंतदरियदप्पियमुट्टियचाणूरमूरगा - अति बलवान् और गर्व युक्त गर्जना करने वाले मुष्टिक मल्ल को-बलदेव ने और चाणूर मल्ल को-कृष्ण ने मार डाला था, रिट्टवसहघाइणो - रिष्ट नाम के प्रचण्ड एवं दुष्ट साँड को-कृष्ण ने मार डाला था, केसरिमुहविप्फाडग - केसरी सिंह के मुँह को फाड़ने वाले,

दरियणागदप्पमहणा - दर्पवन्त-घमण्डी नाग के दर्प का मर्दन करने वाले, जमलज्जुणभंजगा - जमलार्जुन को जिन्होंने नष्ट किया है, महासउणिपूयणारिवु - महाशकुनी और पूतना नामक दुष्टा विद्याधरी के नाशक, कंसमउडमोडगा - कंस के मुकुट को तोड़ने वाले, जरासंधमाणमहणा - जरासंध के मान का मर्दन करने वाले।

भावार्थ - वे बलदेव और वासुदेव, दयालु-कृपानिधि थे। उनमें मात्सर्य-भाव (किसी दूसरे के प्रति ईर्ष्या-जलन) नहीं था। उनमें चंचलता नहीं थी। वे अकारण कुपित नहीं होते थे। उनकी बोली मृदुतायुक्त एवं परिमित थी। वे स्मित युक्त एवं गम्भीरतापूर्वक मिष्ट-वाणी का उच्चारण करते थे। अपनी शरण में आये हुए मनुष्यों पर वे वात्सल्य भाव रखते हुए रक्षा करते थे। पुरुषों के शरीर में जितने उत्तम लक्षण और गुण होते हैं, वे उन शुभ लक्षणों, व्यंजनों और गुणों से युक्त थे। उनके शरीर के सभी अंगोपांग सुन्दर, प्रमाणयुक्त और मान-उन्मान सहित थे। उनकी मुखाकृति चन्द्रमा के समान सौम्य, कान्तियुक्त, प्रिय एवं मनोहर थी। वे लिये हुए कार्य को पूरा करने में विलम्ब या आलस्य नहीं करते थे। शत्रु के अपराध की वे उपेक्षा नहीं करते थे। दुष्टों का दमन करने के लिए उनका दण्ड-विधान गम्भीर एवं प्रचण्ड था।

उनकी ध्वजा ताल वृक्ष के समान बहुत ऊँची थी। उस ध्वजा पर गरुड़ का चिह्न अङ्कित था। बलदेव ने उस मुष्टिक-मल्ल को मार डाला था जो अत्यन्त बलवान् था और गर्वयुक्त गर्जना करता रहता था तथा चाणूर-मल्ल को कृष्ण-वासुदेव ने मारा था। इसके अतिरिक्त रिष्ट नामक दुष्ट वृषभ को भी श्री कृष्ण ने मारा था। उन्होंने केसरीसिंह का मुँह पकड़कर चीर दिया था और अत्यन्त दर्पित-घमण्डी ऐसे काले विषधर सर्प का मान-मर्दन किया था। उन्होंने यमलार्जुन को नष्ट कर दिया था। महाशकुनी और पूतना को भी उन्होंने मार डाला था। कंस के मुकुट को तोड़कर उसे प्राणरहित कर दिया था और जरासंध के मान का मर्दन किया था।

तेहि य अविरलसमसहियचंदमंडलसमप्पभेहिं सूरमिरीयकवयं विणिम्मयुंतेहिं
सपडिदंडेहिं, आयवत्तेहिं धरिज्जंतेहिं विरायंता ताहि य पवरगिरिकुहरविहरणसमुट्टियाहिं
णिरुवहयचमरपच्छिमसरीरसंजायाहिं अमइलसेयकमलविमुकुलज्जलिय-रथयगिरि-
सिहर-विमलससिकिरण-सरिसकलहोयणिम्मलाहिं पवणाहय-चवलचलिय-
सललियपणच्चियवीइ-पसरियखीरोदगपवरसागरुप्पूरचंचलाहिं माणससरपसर-
परिधियावास-विसदवेसाहिं कणगगिरिसिहरसंसिताहिं उवायप्याय-चवलजयिण-
सिग्घवेगाहिं हंसवधूयाहिं चव कलिया णाणामणि-कणगमहरिहतवणिज्जुज्जल-
विचित्तडंडाहिं सललियाहिं णरवइसिरि-समुदयप्पगासणकरिहिं वरपट्टणुगयाहिं

**सभिद्धरायकुलसेवियाहिं कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूववसवासविसदगंधुद्धुया-
भिरामाहिं चिल्लिगाहिं उभओपासं वि चामराहिं उक्खिप्पमाणाहिं सुहसीयलवायवीइयंग्गा ।**

शब्दार्थ - तेहि - वे, अविरलसमसहियचंदमंडलसमप्पभेहिं - छत्र की शलाकाएँ अविरल-सघन एवं उन्नत थीं और वह छत्र गोल होने से चन्द्रमण्डल के समान सुशोभित था, **सूरमिरीयकवयं विणिम्मुयंतेहिं** - छत्र की किरणें सूर्य की किरणों के समान थीं तथा उनके कवचों के चारों ओर प्रसरती थीं, **सपडिदंडेहिं** - वे छत्र प्रति-दण्डों से युक्त थे-उन्हें धारण करने के लिए दण्ड लगे हुए थे, **आयवत्तेहिं** - छत्रों से; **धरिज्जंतेहिं** - धारण किये हुए, **विरायंता** - विराजमान थे, **ताहि य** - इस प्रकार, **पवरगिरिकुहरविहरणसमुट्टियाहिं** - वे चँवर, पवंत तथा कन्दराओं में विचरण करने वाली गायों के बालों से बने थे, **णिरुवहयघमरपच्छिमसरीरसंजायाहिं** - वे चँवर नीरोग चँवरी गायों के पूँछ के बालों से बने थे, **अमइलसेयकमल-विमुकुलज्जलियरययगिरिसिहरविमलससिकिरण-सरिसकलहोषणिम्मलाहिं** - वे चँवर निर्मल श्वेत कमल, रजतगिरि के उज्ज्वल शिखर, चन्द्रमा की किरण तथा चाँदी के समान निर्मल थे, **पवणाहयचवलचलियसललियपणाच्चियवीइण-सरियखीरोदगवपरसागरुप्परच्छंचलाहिं** - वे हिलाये जाते हुए चँवर ऐसे लगते थे कि जैसे वायु से प्रेरित चपलता से चलती हुई तरंगों से युक्त विशाल क्षीर समुद्र का जल प्रवाह हो, **माणससरपसरपरिचियावासविसदवेसाहिं** - मानसरोवर में निरन्तर निवास करने वाली और श्वेत वेश वाली, **कणगगिरिसिहरसंसिताहिं** - कनकगिरि के शिखर पर रहने वाली, **उवायप्पाय-चवलजथिणसिग्घवेगाहिं** - ऊपर उठने और नीचे आने में चपलता-जनित शीघ्र-गति वाली **हंसवधुयाहिं** - हंस वधुओं के, **चेव** - समान, **कलिया** - युक्त, **णाणाप्रणिक्कणगमहरहितवणिज्जुज्जल-विचिन्तडंडाहिं** - उन चँवरों का स्वर्णमय दण्ड विविध प्रकार के महामूल्यवान् मणिरत्नों से जड़ित था, **सललियाहिं** - वे अत्यन्त सुन्दर थे **णरवइसिरिसमुदयप्पगासणकरिहिं** - उनसे नरेन्द्र की राज्यश्री की शोभा प्रकट हो रही थी, **वरपट्टणुग्गयाहिं** - वे प्रधान नगर के उत्तम कलाकारों द्वारा निर्मित थे, **सभिद्धरायकुलसेवियाहिं** - वे चँवर समृद्ध राजाओं से सेवित थे, **कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्क-धूववसवासविसदगंधुद्धुयाभिरामाहिं** - वे कालागुरु श्रेष्ठ कुन्दरुक्क और तरुक्क आदि सुगन्धित धूपों से अत्यन्त सुगन्धित थे, **चिल्लिगाहिं** - देदीप्यमान थे, **उभओपासं वि चामराहिं** - वे चँवर आस-पास दोनों ओर, **उक्खिप्पमाणाहिं** - उठ कर विंजाते थे, **सुहसीयलवायवीइयंग्गा** - उनका शीतल शरीर को सुखदायक था ।

भावार्थ - बलदेव और श्रीकृष्ण अपने मस्तक पर धारण किये हुए छत्रों से सुशोभित थे । उनके धारण किये हुए छत्रों की शलाकाएँ सघन-ठोस एवं उन्नत थीं और गोलाईयुक्त होने से वे छत्र पूर्ण चन्द्र के समान सुशोभित थे । उन छत्रों की किरणें सूर्य की किरणों तथा उनके कवच के समान चारों ओर प्रसरती हुई थीं । उन छत्रों के मुख्य दण्ड के लिए सहायक प्रतिदण्ड भी थे ।

उनके दोनों पाश्वर्कों में चँवर डुलाये जाते थे। बड़े-बड़े पर्वतों और गुफाओं में रहने वाली नीरोग एवं स्वस्थ गायों के पूँछ के बालों से वे चँवर बनाये गये थे। वे चँवर विकसिक निर्मल श्वेत कमल, उज्ज्वल रजतगिरि के शिखर, निर्मल चन्द्रमा की किरणों और चाँदी के समान श्वेत थे। वे हिलाये (डुलाये) जाते हुए चँवर ऐसे लग रहे थे मानो पवन से प्रेरित होकर क्षीर समुद्र की चपलतापूर्वक चलती हुई जल-तरंगें हों। मानसरोवर तथा कनकगिरि पर रहने वाली और श्वेत पंखों के वेश वाली तथा उड़ कर पर्वत पर जाने और नीचे मानसरोवर पर आने में अत्यन्त शीघ्र गतिवाली हंस वधुओं के समान वे चँवर श्वेत थे और ऊपर-नीचे आ-जा रहे थे। उन चँवरों का दण्ड स्वर्ण-निर्मित था और विविध प्रकार की विचित्र महामूल्यवान् मणियों से जड़ित था। चँवर सुन्दर थे। वे नरेन्द्र की राज्य लक्ष्मी के प्रभाव को प्रकट कर रहे थे। उनके बनाने वाले बड़े नगरों के कुशल कलाकार थे। वे चँवर समृद्ध एवं उच्च नरेशों पर ही डुलाये जाते थे। कालागुरु श्रेष्ठ कुन्दरुक्क और तरुक्क आदि सुगन्धित धूपों से वे अत्यन्त सुवासित थे। उन देदीप्यमान चँवरों से बलदेव-वासुदेव युक्त थे। उनका शीतल पवन उन नरेन्द्रों के अंग को सुखदायक था।

अजिया-अजियरहा-हलमूसलकणगपाणी-संखचक्कगयसत्तिणंदगधरा
पवरुज्जलसुकयविमलकोधूभतिरीडधारी कुंडलउज्जोवियाणणा पुंडरीयणयणा
एगावलीकंठरइयवच्छा सिरिवच्छसुलंछणावरजसा सव्वोउय-सुरभिकुसुम-
सुरइयपलंबसोहंतवियसंतचित्तवणमालरइयवच्छा अट्टसयविभत्तलक्खण-
पसत्थसुंदरविराइयंगमंगा मत्तगयवरिदललियविककमविलसियगई कडिसुत्तगणी-
लंपीयकोसिज्जवाससा पवरदित्ततेया सारयणवत्थणियमहरगंभीरणिद्धघोसा णरसीहा
सीहविककमगई अत्थमियपवररायसीहा सोमा बारवइपुण्णचंदा पुव्वकयतवप्पभावा
णिविट्ठसंचियसुहा अणेगवाससयमाउवंता भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं लालियंता
अउल-सहफरिसरसरूवगंधे अणुहवित्ता ते वि उवणमंति मरणधम्मं अवितत्ता कामाणं ।

शब्दार्थ - अजिया - वे अजेय थे, अजियरहा - उनके रथ अजेय थे, हलमूसलकणगपाणी - बलदेव हल मुसल और बाणों को हाथ में धारण करते थे, संखचक्कगयसत्तिणंदगधरा - श्रीकृष्ण शंख, चक्र, गदा, शक्ति और नन्दक नाम वाला खड्ग धारण करते थे, पवरुज्जलसुकयविमलकोधूभतिरीडधारी - श्रीकृष्ण उज्ज्वल एवं देदीप्यमान कौस्तुभमणियुक्त मुकुट धारण करते थे, कुंडलउज्जोवियाणणा - कुण्डलों से उनका मुख उद्योतयुक्त दिखाई देता था, पुंडरीयणयणा - उनके नेत्र श्वेत कमल के समान थे, एगावलीकंठरइयवच्छा - उनके कण्ठ में एकावली माला शोभित हो रही थी, सिरिवच्छसुलंछणा- हृदय पर श्रीवत्स का सुलक्षण था, वरजसा - उनका यश निर्मल था, सव्वोउयसुरभिकुसुमसुरइयपलंब-सोहंतवियसंतचित्तवणमालरइयवच्छा - सभी ऋतुओं के सुगन्धित पुष्पों से रची हुई सुखदायिनी

लम्बी मालाओं से उनका वक्ष स्थल सुशोभित रहता था, अट्टसयविभक्तलवखणपसत्थसुंदरविराड्यंगमंगा-विभिन्न एक सौ आठ शुभ लक्षणों से उनके अंगोपांग सुशोभित थे, मत्तगयवरिदललियविक्रम-विलसियगई - वे मस्त गजेन्द्र के समान ललित विक्रम एवं विलासयुक्त गति करते-चलते थे, कडिसुत्तगणीलपीयकौसिञ्जवाससा - नीले-बलदेव के और पीले-वासुदेव के रेशमी वस्त्र पर करधनी शोभित हो रही थी, पवरदित्तयेया - वे उत्कृष्ट एवं दीप्त तेज वाले थे, सारयणवत्थ-णियमहुरणिद्धघोसा - शरद काल के नवीन मेघ की गर्जना के समान उनका स्वर मधुर एवं गम्भीर था, णरसीहा - वे मनुष्यों में सिंह के समान थे, सीहविक्रमगई - सिंह के समान पराक्रमशाली थे, अत्थमियपवररायसीहा - जिन्होंने बड़े-बड़े रास-सिंहों को परास्त कर तेजच्युत कर दिया था, सोमा - वे सौम्य थे, बारवईपुण्णचंदा - वे द्वारका नगरी के लिए पूर्ण चन्द्र के समान थे, पुव्वकयतवप्पभावा-पूर्वभव में की हुई विशिष्ट तपस्या के प्रभाव से वे प्रभावित थे, णिविडुसंचियसुहा - पूर्वभव में संचित किये हुए महान् सुखों के वे भोक्ता थे, अणेगवाससयमाउवंता - वे अनेक सैकड़ों वर्षों की आयु वाले थे, भञ्जाहि - भार्याओं के साथ, जणवयप्पहाणाहि - उत्तम देश एवं उत्तम कुल में उत्पन्न, लालियंता-विलास करते हुए, अउलसहफरिसरसरूवगंधे अणुहवित्ता - अनुपम शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श का अनुभव करते हुए, ते - वे, उवणमंतिमरणधम्मं - मृत्यु धर्म को प्राप्त हुए, अथितत्ताकामाणां - कामभोगों से अतृप्त रहे।

भावार्थ - वे अजेय थे-उन्हें जीतने वाला कोई नहीं था। उनके रथ भी अजेय थे। बलदेव हल, मूसल और बाणों के धारक थे और कृष्ण शंख, चक्र, गदा और शक्ति तथा नन्दक खड्ग धारण करते थे। श्रीकृष्ण के वक्ष स्थल पर कौस्तुभमणि और मस्तक पर मुकुट शोभित हो रहा था। कुण्डल के उद्योत से उनका मुख प्रकाशित हो रहा था। उनके नेत्र विकसित श्वेत-कमल के समान थे। गले में एकावली माला शोभित हो रही थी। हृदय पर श्रीवत्स का शुभ लक्षण था। उनका यश उज्ज्वल था और चतुर्दिक् व्याप्त था। सभी ऋतुओं के सुगन्धित पुष्पों से गुंथी हुई लम्बी वनमालाएँ उनके वक्ष पर लटक रही थी। पुरुष सम्बन्धी १०८ शुभ लक्षणों से उनके अंग सुशोभित थे। वे मस्तक गजेन्द्र के समान ललित विक्रम एवं विलासपूर्वक गति करते थे। बलदेव नीले वर्ण के और श्रीकृष्ण पीले वर्ण के सुन्दर रेशमी वस्त्र धारण करते और उसके ऊपर करधनी शोभायमान होती थी। उनका तेज प्रखर था। उनका कण्ठस्वर शरदकाल के नूतन मेघ की गर्जना के समान गम्भीर और साथ ही मृदु था। मनुष्यों में वे सिंह के समान-नरसिंह थे। उनका पराक्रम सिंह के समान था। उन्होंने बड़े-बड़े नरसिंहों-नरेन्द्रों के प्रभाव को नष्ट कर दिया था अथवा बड़े-बड़े नरेशों का ही विनाश कर दिया था। वे सौम्य थे। द्वारिका नगरी को आनन्दित करने वाले पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य थे। पूर्वभव में किये हुए तप के प्रभाव से वे युक्त और पूर्व के संचित महान् सुखों को भोगने वाले-थे। उनकी आयु सैकड़ों वर्षों की थी। उत्तम देश और उत्तम कुलों में उत्पन्न रमणियों के साथ विलास करते हुए वे अनुपम शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श का

अनुभव करते थे। इस प्रकार सैकड़ों वर्षों तक भोगविलास करते हुए भी वे कामभोगों से अतृप्त रहे और मृत्यु को प्राप्त हो गए।

दिवेचन - इस सूत्र में बलदेव और वासुदेव के वर्णन में निम्न शब्द अन्य शास्त्रों में वर्णित घटनाओं का निर्देश करते हैं।

बलवगगज्जंतदरिय-दप्यियमुट्टिय चाणूरमूरगा - जो अपने बल के मद में अत्यन्त मदोन्मत्त होकर गर्जना करते रहते थे कि-“है कोई ऐसा बलवान् जो हमसे लड़ने का साहस करे।” ऐसे मौष्टिक और चाणूर नाम के मल्ल, कंस के अधीन थे। उन मल्लों को कंस ने श्री बलराम और श्रीकृष्ण को मारने की आज्ञा दी। दोनों मल्ल, खम ठोक कर झपटे। बलरामजी ने मौष्टिक मल्ल को और श्रीकृष्ण ने चाणूर मल्ल को पछाड़ मारा और उन गर्वोन्मत्त मल्लों के दर्प को नष्ट कर दिया।

रिट्टवसहघाडणो - रिष्ट वृषभ-घातक। कंस के द्वारा मदोन्मत्त किये हुए और कृष्ण-बलराम को मारने के लिये छोड़े हुए रिष्ट नाम के वृषभ (साँड) को जिन्होंने मार डाला था।

केसरिमुहविष्फाडगा - केसरी सिंह के मुँह को फाड़ देने वाले। यह घटना प्रथम वासुदेव त्रिपृष्ठजी के जीवन से सम्बन्धित बताई जाती है। त्रिपृष्ठ वासुदेव ने महान् उपद्रवकारी एवं प्रचण्ड सिंह के जबड़ों को पकड़ कर चीर डाला था। विकल्प में टीकाकार लिखते हैं कि यह घटना श्रीकृष्ण से सम्बन्धित भी है। उन्होंने कंस के केशी नाम के दुष्ट अश्व के मुँह को चीर कर मार डाला था।

दरियणागदप्यणा - दप्तनाग-दर्पक। यमुना नदी में रहने वाले महान् विषधर काल नामक सर्प का-पद्य प्राप्ति के लिये-श्रीकृष्ण ने यमुना में प्रवेश करके मर्दन किया था।

जमलुज्जल-भंजगा - जमलार्जुन भंजक। श्रीकृष्ण ने अपने पिता के शत्रु यमल और अर्जुन नाम के विद्याधरों को-जो श्रीकृष्ण को मारने के लिये वृक्ष रूप बन गए थे, मार डाला था।

महासडणिपूतणारिवू - महाशकुनि-पूतना-रिपु। महाशकुनी और पूतना नाम की दो विद्याधर स्त्रियों के (जो श्रीकृष्ण को बालवय में मारने आई थी) शत्रु।

कंस मुकुट-तोड़क और जरासंध मान-मर्दक। यह घटना भी श्रीकृष्ण के जीवन से संबंधित है और प्रसिद्ध है।

भुज्जो मंडलिय-णरवरिदा सबला सअंतेउरा सपरिसा सपुरोहिया मच्चदंडणायग-सेणावइ-मंतणीइ-कुसला णाणामणिरयणविपुल-धणधणण-संचयणिहीसमद्धिकोसा रज्जसिरि विउलमणुहवित्ता विक्कोसंता बलेण मत्ता ते वि उवणमंति मरणधम्मं अवितत्ता कामाणं।

शब्दार्थ - भुज्जो - पुनः, मंडलियणरवरिदो - माण्डलिक नरेन्द्र-नरेन्द्र मण्डल के अधिपति, सबला - बल से युक्त, सअंतेउरा - अंतःपुर से युक्त, सपरिसा - परिषद्-राज्यसभा सहित, सपुरोहियामच्च - पुरोहित अमात्य-मन्त्री, दंडणायगसेणावइ मंतणीइ - दण्डनायक, सेनापति तथा

मन्त्रनीति-मन्त्रणा करने में, कुसला - कुशल, पाणामणिरयण - विविध प्रकार के मणि और रत्न, विउलधणधणसंचयणिही - विपुल धन-धान्य के संग्रह से, समिद्धकोसा - भंडार समृद्ध है, रज्जसिरि - राज्यश्री, विउलमणुहवित्ता - विपुलता से अनुभव करते थे, विक्कोसंता - शत्रुओं का पराभव करने वाले, बलेण मत्ता - जो बल से मदोन्मत्त थे, ते वि - वे भी, उवणमंति - प्राप्त होते हैं, मरणधम्मं - कालधर्म, अवितात्ता कामाणं - कामभोगों से अतृप्त रहते हैं।

भावार्थ - माण्डलिक नरेन्द्र भी बलवान् थे। उनका अन्तःपुर भी विशाल था। उनकी राज्यसभा होती थी। वे पुरोहित, अमात्य, दण्डनायक, सेनापति और मन्त्रणा-सभा से युक्त थे। वे राजनीति में थे। अनेक प्रकार के मणिरत्नों और धनधान्यादि संग्रह से उनके भण्डार भरपूर थे। वे राज्य लक्ष्मी का पूर्ण रूप से अनुभव करते और अपने शत्रुओं को दबाते हुए, स्वबल तथा सैन्य बल से मदोन्मत्त थे। वे कामभोग में अतृप्त रहे हुए ही मृत्यु को प्राप्त हो गए।

अकर्मभूमिज मनुष्यों के भोग

भुज्जो उत्तरकुरु-देवकुरु-वणविवर-पायचारिणो णरगणा भोगुत्तमा भोग लक्खणधरा भोगसस्सिरीया पसत्थसोमपडिपुण्णरूवदरिसणिज्जा सुजायसव्वंग सुंदरंगा रत्तुप्पलपत्तकंतकरचरणकोमलतला सुपडिट्टियकुम्मचारुचलणा अणुपुव्वसुसंहयंगुलीया उण्णयतणुतंबणिद्धणखा संठियसुसिलिट्टुगुण्णुणा एणीकुरुविंद वत्तवट्टाणुपुव्विजंधा समुग्गणिसग्गुण्णुजाणु वरवारणमत्ततुल्लविककम-विलासियगई वरतुरगसुजायगुज्जदेसा आइण्णहयव्वणिरुवलेवा पमुइयवरतुरगसीहअइरेगवट्टियकडी गंगावत्तदाहिणावत्त-तरंगभंगुर-रविकिरण-बोहिय-विकोसायंतपम्हगंभीरवियडणाभी साहतसोणंदमु-सलदप्पणणिगरियवरकणगच्छरुसरिसवरवइरवलियमज्झा उज्जुगसमसहियजच्च-तणुकसिणणिद्ध-आइज्जलडहसुमालमउयं-रोमराई इंसविहगसुजायपीणकुच्छी इंसोयरा पम्हविगडणाभी सण्णयपासा संगयपासा सुंदरपासा सुजायपासा मियमाइयपीणरइयपासा अकरंडुयकणगरुयगणिम्मलसुजायणिरुवहयदेहधारी कणगसिलातल-पसत्थसमतलउवइयविच्छिण्णपिहुलवच्छा जुयसणिणभपीणरइयपीवर-पउट्टुसंठियसुसिलिट्टुविसिट्टुलट्टुसुणिचियघणथिरसुबद्धसंधी पुरवरफलिवट्टियभुया।

शब्दार्थ - भुज्जो - पुनः, उत्तरकुरुदेवकुरु - उत्तरकुरु देवकुरु-युगलिकों के क्षेत्र, वणविवरपायचारिणो - वन में अपने पाँवों से ही चलने वाले, णरगणा - मनुष्य गण, भोगुत्तमा - उत्तम भोगों से युक्त, भोगलक्खणधरा - स्वस्तिकादि भोग के लक्षणों से युक्त, भोगसस्सिरीया - भोगरूपी लक्ष्मी से युक्त, पसत्थसोमपडिपुण्णरूवदरिसणिज्जा - उनकी आकृति प्रशस्त, सौम्य, प्रतिपूर्ण

और दर्शनीय है, **सुजायसव्वंगसुंदरंगा** - उनके सभी अंगोंपांग सुन्दर और सुडौल हैं, **रत्तुप्पलपत्तकंतकरचरणकोमलतला** - हाथ और पाँव के तलुए लाल कमल के समान वर्ण वाले तथा कोमल हैं, **सुपइट्टियकुम्पचारुचलणा** - उनके पाँव कछुए के समान सुप्रतिष्ठित एवं सुन्दर हैं, **अणुपुव्वसुसंहयंगुलिया** - पाँवों की अंगुलियाँ क्रमशः बड़ी-छोटी एवं संगठित है, **उण्णय-तणुतंबणिद्धणखा** - उनके नख उन्नत, पतले, ताम्रवर्ण स्निग्ध एवं चमकीले है, **संठियसुसिलिट्टु-गूढगुंफा** - पाँवों के टखने सुघटित तथा पुष्ट है, **एणीकुरुविंदवतवट्टाणुपुव्विजंधा** - उनकी जंघाएँ हिरनी तथा कुरुविन्द वृक्ष के समान गोल तथा क्रमशः स्थूलता युक्त है, **समुग्गणिसग्गगूढजाणू** - डिब्बा और उसके ढक्कन की मिली हुई सन्धि (जोड़) के समान उनके घुटनों की सन्धि मिली हुई तथा पुष्ट एवं उभरी हुई होती है। **वरवारणमत्ततुल्लविवकमविलासियगई** - मस्त हाथी के समान विक्रम एवं विलास युक्त गति वाले, **वरतुरगसुजायगुञ्जदेसा** - उत्तम घोड़े के समान उनका गुह्यदेश (पुरुषचिह्न) गुप्त रहता है, **आइण्णहयव्वणिरुवलेवा** - आकीर्ण जाति के अश्व के समान वे लेप रहित होते हैं-उनका गुदा स्थान निर्लेप रहता है, **पमुइयवरतुरगसीहअइरेगवट्टियकडी** - प्रसन्न हुए उत्तम घोड़े और सिंह से भी बढ़ कर उनकी कमर गोल तथा पतली है, **गंगावत्तदाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणबोहिय-विकोसायंतपम्भगंभीरवियडणाभी** - गंगा के आवर्त के समान दक्षिण आवर्त वाली, सूर्य-किरणों से विकसित कमल के समान तथा गम्भीर उनकी नाभि है, **साहतसोणंदमुसलदप्पणणिगरिय-वरकणगच्छरुसरिसवरवइरवलियमञ्जा** - उनका मध्य भाग संक्षिप्त तिपाई मूसल के मध्य भाग दर्पण का हत्था, शुद्ध स्वर्ण से बनी तलवार की मूठ तथा उत्तम वज्र के समान कृश (पतला) होता है, **उण्णुगसमसहियजच्चतणुकसिणणिआइण्णलडहसुमालमउयरोमराई** - उनकी रोमावली परस्पर मिली हुई, स्वभाव से ही सुन्दर, सूक्ष्म, स्निग्ध, अति कोमल, काली एवं मनोहर है **इसविहगसुजायपीणकुच्छी-मछली** एवं पक्षी के समान उनकी कुक्षी-पेट के दोनों ओर का भाग पीन एवं उन्नत हैं, **इसोयरापम्भविअडणाभी** - उनका पेट, मगरमच्छ के समान और नाभि पद्म के समान प्रकट होती है, **सण्णयपासा** - पार्श्व-छाती और पेट का दाहिना और बायाँ भाग नीचे झुके हुए, **संगयपासा** - पार्श्व संगत-मिले हुए हैं, **सुंदरपासा** - उनके पार्श्व सुन्दर हैं, **सुजायपासा** - उनके पार्श्व सुजात-अच्छे होते हैं, **मियमाइयपीणरइयपासा** - उनके पार्श्व मीत-प्रमाण युक्त उन्नत एवं सुन्दर होते हैं, **अकरंडुयकणगरुयगणिम्मलसुजायणिरुवहयदेहधारी** - उनकी पीठ पर मांस चढ़ा हुआ होने के कारण हड्डियाँ दिखाई नहीं देती और शरीर नीरोग, निर्मल तथा सोने के समान कान्तियुक्त होता है, **कणगसिलातलपसत्थसमतलउवइयविच्छिण्णपिहुलवच्छा** - उनका वक्ष-स्थल सोने की शिला के समान प्रशस्त समतल तथा मांसल और विस्तीर्ण होता है, **जुयसणिणभपीणरइयपीवरपउट्टु** - हाथ का पहुँचा गाड़ी के जुए के समान मोटा और रमणीय है, **संठिय-सुसिलिट्टु-विसिट्टुलट्टुसुणि-वियघणथिरसुवद्ध संधी** - उनकी हड्डियों का सन्धि स्थान उत्तम संस्थान युक्त, सुसंगठित मनोज्ञ, गाढ़

स्थिर तथा स्नायुओं से भली प्रकार बँधा होता है, **पुरवरफलिहवद्वियभुया** - नगर-के द्वार की उत्तम अर्गला-भोगल के समान उनकी भुजाएँ गोल होती हैं।

भावार्थ - पुनः उत्तरकुरु और देवकुरु के वनों में रहकर, बिना किसी वाहन के, अपने पैरों से चलने-विचरण करने वाले मनुष्यगण भी उत्तम भोगों से युक्त हैं। उनके अंग-प्रत्यंग पर भोगश्री को प्रकट करने वाले श्रीवत्स आदि उत्तम लक्षण होते हैं। भोगश्री (लक्ष्मी) उनके अधीन होती है। उनकी आकृति शुभ-प्रशस्त एवं उत्तम होती है। वे सौम्य तथा दर्शनीय होते हैं। उनके सभी अंगोपांग सुन्दर होते हैं। उनकी हथेलियाँ और पाँवतलियाँ, रक्त कमल के समान लाल, कोमल एवं मनोहर होती है। उनके पाँव कछुए के समान सुन्दर तथा सुप्रतिष्ठित होते हैं। उनके पाँवों की अंगुलियाँ क्रमशः बड़ी-छोटी तथा पतली होती है। उनकी अंगुलियों के नाखुन उन्नत, पतले, चमकीले तथा ताम्र के समान वर्ण वाले होते हैं। पाँवों के टखने सुघटित एवं पुष्ट होते हैं। उनकी जंघाएँ हिरनी और कुरुविन्द वृक्ष के समान गोल और क्रमशः स्थूल होती है। उनके घुटने, डिब्बे पर लगे हुए ढक्कन की मिली हुई सन्धि के समान, ऐसे पुष्ट होते हैं कि जिसके कारण हड्डी उभरी हुई दिखाई नहीं देती। उनकी चाल मस्त हाथी के समान, विक्रम एवं विलास युक्त होती है। उनका पुरुषांग उत्तम घोड़े के समान गुप्त होता है। उनका मलद्वार आकीर्ण जाति के घोड़े के समान निर्लेप होता है। उनकी कमर, उत्तम घोड़े और सिंह से भी अधिक गोल एवं पतली होती है। उनकी नाभि, गंगा के आवर्त के समान दक्षिणावर्त वाली और सूर्य की किरणों के प्रभाव से विकसित कमल के समान गंभीर होती है। उनका मध्य भाग संक्षिप्त, तिपाई, मूसल का मध्य भाग, काच का हत्था और शुद्ध स्वर्ण से बनी हुई तलवार की मूठ तथा उत्तम वज्र के समान कृश होता है। उनकी रोमावली परस्पर मिली हुई, स्वभाव से ही सुन्दर, सूक्ष्म, स्निग्ध, अत्यन्त कोमल, श्याम वर्ण वाली तथा मनोहर होती है। उनकी दोनों कुक्षियाँ, मत्स्य और पक्षी के समान पीन एवं उन्नत होती है। उनका पेट भी मत्स्य के पेट जैसा यथावस्थित रहता है। उनकी नाभि पद्म के समान प्रकट होती है। उनका पार्श्व भाग नीचे की ओर झुका हुआ होता है। वह संगत, सुन्दर, सुगढ़, प्रमाणयुक्त, उन्नत एवं मांसल होता है और रमणीय लगता है। उनकी पीठ भी मांसल होती है, जिससे हड्डियाँ दिखाई नहीं देती। उनका शरीर सोने के समान कान्तियुक्त निर्मल तथा नीरोग होता है। उनका वक्ष स्थल सोने की शिला के समान प्रशस्त, समतल, मांसल एवं विस्तीर्ण होता है। उनके हाथ के पहुँचे गाड़ी के जुए के समान मोटे और रमणीय होते हैं। उनकी हड्डियों का सन्धि स्थान अच्छे संस्थान से युक्त, सुसंगठित, गाढ़, स्थिर, स्नायुओं से बँधा हुआ एवं मनोज्ञ होता है। उनकी भुजाएँ नगर द्वार की उत्तम अर्गला के समान गोल होती हैं।

भुयईसरविउल-भोगआयाणफलिउच्छूढ-दीहबाहू रत्ततलोवतिय मउयमंसल-सुजायलक्खणपसत्थ-अच्छिहजालपाणी पीवरसुजायकोमलवरंगुली तंबतलिण-

सुइरुइलणिद्धणखा णिद्धपाणिलेहा चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा दिसासोवत्थियपाणिलेहा रविससिसंखवर चक्कदिसा-सोवत्थियविभत्तसुविरइयपाणिलेहा वरमहिसवराह सीहसहुलरिसहणागवर-पडिपुण्णविउलखंधा चउरंगुलंसुप्पमाणकंबुवरसरिसग्गीवा अवड्डियसुविभत्तचित्तमंसू उवचियमंसलपसत्थसहुलविउलहणुया ओयवियसिलप्पवालबिंबफलसण्णिभाधरोट्टा पंडुरससिसकलविमलसंखगोखीरफेणकुंददगरयमुणालियाधवलदंतसेढी अखंडदंता अप्फुडियदंता अविरलदंता सुणिद्धदंता सुजायदंता एगदंतसेढिव्व अणेगदंता हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततला तालुजीहा गरुलायतउज्जुतुंगणासा अवदालियपोंडरीयणयणा कोकासियधवलपत्तलच्छा आणामियचावरुइल-किण्हभराजि-संठियसंगयायसुजायभुमगा अल्लीणपमाण-जुत्तसवणा सुसवणा पीणमंसलकवोलदेसभागा अचिरुग्गयबालचंदसंठियमहाणिलाडा उडुवइरिव-पडिपुण्णसोमवयणा छत्तागारुत्तमंगदेसा घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णय-कूडागार-णिभपिंडियग्गसिरा हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्तकेसंतकेसभूमी सामलीपोंड-घणणिचियछोडिय-मिउ विसतपसत्थसुहु मलक्खणसुगंधिसुंदर भुयमोयग-भिंणगीलकज्जल-पहडुभमरगणणिद्धणि-गुरुंबणिचियकुंचियपयाहिणावत्तमुद्धसिरया सुजायसुविभत्तसंगयंगा।

शब्दार्थ - भुयईसरविउल - भुजगेश्वर विपुल-महानाग के समान महान् विस्तीर्ण; भोगआयाणफलिउच्छूढ - अपने स्थान से बाहर निकली हुई परिधा के समान (दीहबाहू) लम्बे बाहु-भुजा, रत्ततलोवतियउयमंसलसुजायलक्खणपसत्थ - हाथों के तलुए लाल वर्ण के कोमल, मांसल और प्रशस्त लक्षणों से युक्त होते हैं, अच्छिहजालपाणी - हाथों की अंगुलियाँ मिलाने पर छिद्र नहीं रहते, पीवरसुजायकोमलवरंगुली - उनकी अंगुलियाँ लम्बी, पुष्ट, सुनिष्पन्न और कोमल हैं, तंबतलिणसुइरुइलणिद्धणखा - उनके नाखुन ताम्रवर्ण के-लाल, पतले, निर्मल, चमकीले तथा स्निग्ध होते हैं, णिद्धपाणिलेहा - हाथों की रेखाएँ स्निग्ध होती हैं, चंदपाणिलेहा - हाथों की रेखाएँ चन्द्रमा के समान हैं, सूरपाणिलेहा - हाथ की रेखाएँ सूर्य के समान, संखपाणिलेहा - शंखाकृति, चक्कपाणिलेहा - चक्र चिह्न वाले हैं, दिसासोवत्थियपाणिलेहा - हाथ में दक्षिणावर्त स्वस्तिक की आकृति वाली रेखा होती है, रविससिसंखवरचक्कदिसासोवत्थियविभत्तसुविरइयपाणिलेहा - उनके हाथों में सूर्य, चन्द्र, शंख, चक्र, दक्षिणावर्त शंख आदि चिह्न भली प्रकार से अंकित होते हैं, वरमहिसवराहसीहसहुलरिसहणागवर-पडिपुण्णविउलखंधा - उनका स्कन्ध-कन्धा श्रेष्ठ भैंसा, सूअर,

सिंह, वृषभ और हस्ती के कन्धे के समान पुष्ट, दृढ़ एवं विस्तीर्ण है, चउरंगुलसुष्पमाणकंबुवरसरिसग्गीवा - उनकी गर्दन उत्तम शंख के समान चार अंगुल प्रमाण वाली होती है, अवद्वियसुविभतचित्तमंसू - उनकी मूँछे अवस्थित-न बड़ी, न छोटी प्रमाणयुक्त तथा विचित्र शोभा वाली होती है, उवचियमंसलपसत्थसहुलविउलहणुया - उनका जबड़ा या टुडूी सार्दुल सिंह के समान मांसल, विशाल एवं प्रशस्त होती है, ओयवियसिलप्पवालबिंबफलसण्णिभाधरोट्टा - उनका अधरोष्ठ संस्कारित शिलप्रवाल और बिंबफल के समान लाल होता है, पंडुरसमिसकलविमलसंखगोखीरफेण-कुंददगरयमुणालियाधवलदंतसेढी - उनके दाँतों की पंक्ति निर्मल चन्द्र, शंख, गाय के दूध के फेण-झाग कुन्दपुष्प, जलप्रवाह में उछलते हुए कणों-जलकण और कमलिनी के मूल-मृणाल के समान निर्मल तथा श्वेत होती है, अखंडदंता - उनके दाँत अखंड-पूर्ण होते हैं, अप्फुडियदंता - अस्फुटित-बिना कटे हुए-तड़ रहित, अविरलदंता - अविरल-अन्तर रहित-घने दाँत, सुणिद्धदंता - स्निग्ध-चिकने दाँत, सुजायदंता - सुनिर्मित-सुन्दर दाँत, एगदंतसेढिव्व अणेगदंता - एक पंक्ति में-समान रूप से रहे हुए अनेक दाँत वाले, हुयवहणिद्धंतधोयतत्तवणिज्जरत्ततला - आग से जिसका मैल जला दिया और धोकर निर्मल बना दिया ऐसे स्वर्ण के समान लाल तल हैं जिनके ऐसे (तालुजीहा) तालु और जिह्वा वाले, गरुलायतउज्जुतुंगणासा - उनकी नासिका गरुड़ की चोंच जैसी लम्बी, ऊँची और सीधी होती है, अवदालियपोंडरीयणया - विकसित हुए पुण्डरीक-श्वेत कमल के समान आँखें हैं जिनकी, कोकासियधवलपत्तलच्छा - प्रमुदित एवं धवल है उनकी भौंह युक्त आँखें, आणामिय-चावरुइलकिण्हम्भराजिसंठियसंगयायसुजायभुमगा - उनकी भ्रुकुटी धनुष के समान वक्र, कृष्ण रोमराजि से परिपूर्ण विशाल और सुन्दर होती है, अल्सीणपमाणकुत्तसवणा - उनके कान सुन्दर तथा प्रमाण युक्त, सुसवणा - अच्छी श्रवण शक्ति वाले होते हैं, पीणमंसलकवोलदेसभागा - उनके कपोल गाल पुष्ट एवं मांसल होते हैं, अचिरुगयबालचंदसंठियमहाणिलाडा - उनका महा ललाट बाल चन्द्र-अष्टमी के चन्द्रमा के समान आकृति वाला होता है, उडुवइरिखपडिपुण्णसोमवयणा - उनका मुख पूर्णचन्द्रमा के समान सौम्य होता है, छत्तागारुतमंगदेसा - जिनका मस्तक छत्र के समान होता है घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णयकुडागारणिभपिंडियगसिरा - मस्तक का अग्रभाग लोह-मुद्गर के समान सुदृढ़ स्नायुओं से आबद्ध उत्तम लक्षणों से युक्त तथा शिखर के समान गोल एवं उन्नत होता है हुयवहणिद्धंतधोयतत्तवणिज्जरत्तकेसंत्तकेसभूमि - उनके मस्तक की चमड़ी-केशभूमि अग्नि में तपाये हुए सोने के समान लाल होती है, सामलिपोंडघणणिचियछोडियमिठविसत्तपसत्थसुहुमलक्खण-सुगंधिसुंदरभुयभोयगभिंणलीकज्जलपहडुभमरगणणिद्धणिगुंठणिचियकुंठियपयाहिणावत्तमुद्धसिरया- उनके मस्तक के बाल शाल्मली वृक्ष के समान अत्यन्त घन, सुकुमार सूक्ष्म, शुभ लक्षण युक्त, सुगंध वाले भुजमोचक रत्न, काजल तथा प्रसन्न भ्रमर समूह के समान काले, चिकने और दक्षिण की ओर मुड़े हुए होते हैं, सुजायसुविभत्तसंगयंगा - उनके अंगों की रचना अत्यन्त सुन्दर एवं सुघड़ होती है।

भावार्थ - अकर्मभूमि के मनुष्यों के बाहु सर्पराज के समान तथा महाद्वार की रोक बाहर निकली हुई अर्गला के समान लम्बी सुन्दर होती है। उनकी हथेलियाँ लाल रंग वाली कोमल मांसल और स्वस्तिकादि शुभ चिह्नों से युक्त होती हैं। उनके अंगुलियाँ भी घन—छिद्र—रहित, लम्बी, पुष्ट, सुन्दर एवं कोमल होती है। उनके नख ताम्रवर्ण (लाल) चमकदार, चिकने और निर्मल होते हैं। हाथों की रेखाएँ स्निग्ध तथा चन्द्रमा के समान होती है। उनमें सूर्य, शंख और चक्र की आकृति होती है। उनकी हथेली में दक्षिणावर्त स्वस्तिक के समान रेखा होती है तथा सूर्य, चन्द्र, शंख, चक्र, दक्षिणावर्त स्वस्तिक आदि शुभ चिह्न पृथक्-पृथक् होते हैं। उनका कन्धा उत्तम भैंसे, सूअर, सिंह, वृषभ तथा हाथी के समान विशाल एवं पुष्ट होता है। उनकी गर्दन उत्तम शंख के समान चार अंगुल वाली, उन्नत तथा तीन रेखाओं से युक्त होती है। उनकी मूँछ अवस्थित (न अति बड़ी और न अति छोटी) प्रमाणोपेत तथा विचित्र शोभा वाली होती है। उनके मुँह का जबड़ा (टुड्डी) सिंह के समान विशाल, सुन्दर और भरा हुआ होता है। उनका अधरोष्ठ संस्कारित शिलप्रवाल (विद्रुम मणि) और बिम्ब फल के समान लाल वर्ण का होता है। उनके दाँतों की पंक्ति चन्द्रमा, निर्मल शंख, गाय के दूध के झाग, कुन्द पुष्प, जलकण और कमलनाल के समान निर्मल एवं श्वेत होती है। उनके दाँत अखण्ड, तड़-रहित, अविरल (अन्तर-रहित) चमकते हुए सुन्दर तथा एक ही पंक्ति में अनेक बँधे हुए पूर्ण (३२) होते हैं। उनका तालु और जिह्वा का रंग अग्नि में तपा कर शुद्ध बनाए हुए सोने के समान लाल होता है। उनकी नासिका गरुड़ के समान लम्बी सीधी और ऊँची होती है। उनके नेत्र विकसित कमल के समान हर्ष पूर्ण श्वेत और भौंह युक्त होते हैं। उनकी भ्रुकुटी, धनुष के समान झुकी हुई, विशाल और कालीरोमराजि से परिपूर्ण एवं सुन्दर होती है। उन युगलिक पुरुषों के कान प्रमाणयुक्त तथा सुन्दर हैं तथा श्रवण-शक्ति भी अच्छी है। उनके कपोल पुष्ट एवं भरावदार होते हैं। उनका भाल (ललाट) बाल-चन्द्र (अष्टमी के अर्द्ध चन्द्रमा) के आकार के समान विस्तृत एवं शोभायमान होता है। उनका मुख पूर्णिमा के चाँद के समान गोल तथा सौम्य कान्ति वाला होता है। उनका मस्तक छत्र के समान और मस्तक का अग्रभाग लोहे के मुद्गर के समान दृढ़-स्नायुओं से दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ, भवन के शिखर के समान गोल, उन्नत तथा शुभ लक्षणों से सम्पन्न होता है। मस्तक की चमड़ी (केशान्तभूमि) तपाये हुए शुद्ध सोने के समान लाल होती है। उनके मस्तक के बाल शाल्मली वृक्ष के समान अत्यन्त घने, कोमल, सूक्ष्म उत्तम लक्षणों से युक्त और सुगन्धित होते हैं। बालों का वर्ण भुजमोचक रत्न, काजल और भ्रमर के प्रसन्न झुण्ड के समान काले और स्निग्ध हैं तथा दक्षिण की ओर झुके हुए होते हैं। उनके शरीर के सभी अंगों का गठन अत्यन्त सुन्दर एवं सुसंगत होता है।

विवेचन - देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र 'अकर्मभूमि' कहलाती है। वहाँ के मनुष्य 'युगलिक' कहलाते हैं। वे पुत्र और पुत्री के रूप में एक साथ ही जन्म लेते हैं। वे मनुष्य न तो किसी प्रकार का

उद्योग करते हैं न व्यवसाय। उनका जीवन कल्पवृक्षों के सहारे चलता है। वे प्रकृति से शान्त, प्रशस्त लेश्या वाले, क्रोधादि की अल्पता वाले और संग्रह-विग्रह से रहित सुखोपभोग में जीवन व्यतीत करने वाले होते हैं। किसी प्रकार का उद्योग और व्यवसाय रूपी कर्म नहीं करके, जीवन भर आमोद-प्रमोद में रहने के कारण इन्हें 'अकर्मभूमिज' कहते हैं। अकर्मभूमियाँ तीस हैं। हमारे भरत क्षेत्र और एरवतक्षेत्र में भी अवसर्पिणी काल के तीन आरे में अकर्मभूमिज (देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र जैसे) युगलिक मनुष्य होते हैं। तीसरे आरे के उत्तर विभाग में अकर्मभूमि में परिवर्तन आकर कर्मभूमि का प्रभाव बढ़ने लगता है। उपरोक्त अकर्मभूमिज मनुष्यों की शारीरिक ऋद्धि और कामभोग का वर्णन इस सूत्र में हुआ है।

लक्ष्णव्यंजनगुणोववेया पसत्थबत्तीसलक्ष्णधरा हंसस्सरा कुंचस्सरा दुंदुभिस्सरा सीहस्सरा उज्जस्सरामेहस्सरा सुस्सरा सुस्सरणिग्घोसा वज्जरिसहणारायसंघयणा समचउरंससंठाणसंठिया छायाउज्जोवियंगमंगा पसत्थच्छवी णिरातंका कंकग्गहणी कवोयपरिणामा सउणिपोसपिट्ठंतोरुपरिणया पउमुप्यलसरिसगंधुस्साससुरभिवयणा अणुलोमवाउवेगा अवदायणिद्धकाला विग्गहियउणयकुच्छीअमयरसफलाहारा तिगाउयसमूसिया तिपलिओवमट्ठिइया तिण्ण य पलिओवमाइं परमाउं पालइजा ते वि उवणंमंति मरणंधम्मं अवितात्ता कामाणं।

शब्दार्थ - लक्ष्णव्यंजनगुणोववेया - लक्षण, व्यंजन और गुणों से युक्त, पसत्थ-बत्तीसलक्ष्णधरा - प्रशस्त बत्तीस लक्षणों के धारक, हंसस्सरा - हंस के समान स्वर, कुंचस्सरा - क्रोच के समान स्वर, दुंदुभिस्सरा - दुंदुभी जैसा स्वर, सीहस्सरा - सिंह के समान स्वर, उज्जस्सरा - ऋजुस्वर, मेहस्सरा - मेघ के समान स्वर, सुस्सरा - सुस्वर, सुस्सर-णिग्घोसा - सुन्दर निर्घोष स्वर वाले, वज्जरिसहणारायसंघयणा - वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन वाले, समचउरंससंठाणसंठिया - समचतुरस्र संस्थान से युक्त, छायाउज्जोवियंगमंगा - उनके अंगोपांग कान्ति से युक्त होते हैं, पसत्थच्छवी - शरीर की प्रशस्त शोभावाले, णिरातंका - रोग के आतंक से रहित, कंकग्गहणी - उनका मलद्वार, कंक पक्षी की गुदा के समान नीरोग होता है अथवा कंक पक्षी के समान स्वल्प आहार से संतुष्ट होने वाले होते हैं ❖।

कवोयपरिणामा - कपोत के समान आहार को शीघ्र पचाने वाले, **सउणिपोस** - पक्षी के समान निर्लेप मलद्वार वाले, **पिट्ठंतोरुपरिणया** - उनकी पीठ, पार्श्व और उदर सुन्दर और प्रमाणं युक्त है, **पउमुप्यलसरिसगंधुस्साससुरभिवयणा** - उनका श्वासोच्छ्वास पद्म एवं उत्पल कमल के समान

❖ "कंकस्य पक्षिविशेषस्येवआहारग्रहणं येषां ते अल्पाहारेण संतुष्टा इत्यर्थः" - श्री ज्ञानविमलसूरि वृत्ति।

सुगन्धित है और मुँह सुगन्धित युक्त होता है, अणुलोमवाउवेगा - शरीरस्थ वायु का वेग अनुकूल होता है, अवदायणिद्धकाला - वे गौर-वर्ण स्निग्ध तथा श्याम वर्ण वाले होते हैं, विग्गहियउण्णय कुच्छी-उनकी कुक्षि, शरीर के अनुकूल व उन्नत होती है, अमयरसफलाहारा - वे अमृत रस के समान फलों का आहार करते हैं, तिगाउयसमूसिया - उनके शरीर की लम्बाई तीन गाउ-कोश-की होती है, तिपलिओवमड्डिइया - वे तीन पल्योपम की स्थिति वाले होते हैं, तिणिण थ पलिओवमाई परमाउं पालइत्ता - वे अपनी तीन पल्योपम की उत्कृष्ट आयु भोग कर, उवणमंति मरणधम्मं - मृत्यु को प्राप्त होते हैं, अवितात्ता कामाणं - कामभोगों से अतृप्त रह कर ही।

भावार्थ - वे स्वस्तिकादि उत्तम लक्षणों और तिलमसादि शुभ व्यञ्जनों तथा गुणों से युक्त होते हैं। वे बत्तीस प्रकार के उत्तम लक्षणों के धारक होते हैं। उनका कण्ठ स्वर हंस के समान स्निग्ध, क्रोच के समान सुरीला एवं मृदु, दुंदुभि के समान गम्भीर सिंह के समान प्रवर्द्धमान और मेघ के समान दिशाओं को व्याप्त करने वाला होता है। उनका स्वर सरल, सुखद एवं सुन्दर होता है। उनका शरीर वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन वाला और समचतुरस्र संस्थान युक्त होता है। उनके अंगोपांग कान्ति से दमकते हुए और शोभायमान होते हैं। उनका शरीर रोग-रहित होता है। वे कंक पक्षी के समान थोड़े से आहार से ही संतुष्ट हो जाते हैं। उनकी जठराग्नि कपोत के समान आहार को शीघ्र पचाने वाली होती है। उनका मलद्वार पक्षी की गुदा के समान निर्लेप रहता है। उनकी पीठ और दोनों पार्श्व तथा पेट, उचित परिमाण युक्त एवं सुन्दर होता है। वे अमृत के समान श्रेष्ठ रस वाले फलों का आहार करते हैं। उनके शरीर की लम्बाई तीन कोश की और आयु तीन पल्योपम की होती है। वे अपनी सम्पूर्ण आयु भोग कर, कामभोग में अतृप्त रहते हुए ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचन - पसत्थ बत्तीस लक्खणधरा - प्रशस्त लक्षणों के धारक। वे शुभ लक्षण बत्तीस हैं। यथा १. छत्र २. कमल ३. धनुष ४. श्रेष्ठ रथ ५. वज्र ६. कुर्म ७. अंकुश ८. वापी ९. स्वस्तिक १०. तोरण ११. तालाब १२. सिंह १३. वृक्ष १४. चक्र १५. शंख १६. गज १७. समुद्र १८. प्रासाद १९. मच्छ २०. यव २१. स्तंभ २२. स्तूप २३. कर्मंडलु २४. पर्वत २५. चामर २६. दर्पण २७. वृषभ २८. पताका २९. लक्ष्मी ३०. माला ३१. मयूर और ३२. पुष्प।

अकर्मभूमिज स्त्रियों का शारीरिक वैभव

पमया वि य तेसिं होति सोम्मा सुजायसव्वंगसुंदरीओ पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता अइकं तविसप्यमाणमउयसुकु मालकु म्पसंठियसिलिडु चलणा उज्जुमउयपीवर-सुसाहयंगुलीओ अब्भुण्णयरइयत्तलिणतंबसुइणिद्धणखा रोमरहियवडुसंठियअजहण्ण-पसत्थलक्खणअकोप्पजंघजुयला सुणिम्मियसुणिगूढजाणू-पंसलपसत्थसुबद्धसंधी

कयलीखंभाइरेकसंठिय-णिव्वणसुकुमालमउयकोमलअविरलसमिसहियसुजाय-
वट्टपीवरणिरंतरोरू अट्टावयवीइपट्टसंठियपसत्थविच्छिण्णपिहुलसोणी वयणायामप्यमाण
दुगुणियविसालमंसलसुबद्धजहणवरधारिणीओ वज्जविराइय-पसत्थलक्खणणिरोदरीओ
तिवलिवलियतणुणामियमज्झियाओ उज्जुयसमसहियजच्चतणुकसिणणिद्ध-
आइज्जलडहसुकुमालमउयसुविभत्त-रोमराईओ गंगा-वत्तगपदाहिणावत्तरंगभंगरवि-
किरणतरुणबोहियआकोसायंत* पउमगंभीरवियडणाभी अणुब्भडपसत्थसुजाय-
पीणाकुच्छी सण्णयपासा सुजायपासा संगयपासा मियमाणियपीणरइयपासा
अकरंडुयकणगरुयग-णिम्मलसुजायणिरुवहयगायलट्टी कंचणकलसपमाणसमस-
हियलट्ट-चुचुयआमेलग-जमलजुयलवट्टियपयोहराओ भुयंगअणुपुव्वतणुयगो-
पुच्छवट्टसमसहियणमिय-आइज्जलडहबाहा तंबणहा मंसलग्गहत्था कोमल-
पीवरवरंगुलिया णिद्धपाणिलेहा ससिसूरसंखचक्कवरसोत्थियविभक्तसुविरइयपा-
णिलेहा ।

शब्दार्थ - पमयावि - प्रमदा-स्त्रियाँ भी, तेसिं - उनकी, होति - होती है, सोम्मा - सौम्य,
सुजायसव्वंगसुंदरीओ - उनका शरीर और अंग सुघड़ तथा सुन्दर होता है, पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता-
वे महिलाओं के खास-खास गुणों से युक्त होती हैं, अइकंतविसप्यमाण- मउयसुकुमाल-
कुम्मसंठियसिलिट्टचलणा - उनके पाँव प्रमाण युक्त अत्यन्त सुन्दर, कोमल एवं सुकुमार और कछुए
के समान आकृति वाले उन्नत होते हैं, उज्जुमउयपीवरसुसाहयंगुलीओ - उनके पाँव की अंगुलियाँ सीधी,
पुष्ट, कोमल, परस्पर मिली हुई और मनोहर होती हैं, अब्भुण्णयरइत्तलित्तंबसुइणिद्धणखा -
उनके नख उन्नत मनोहर ताप्रवर्णी चिकने तथा चमकीले होते हैं, रोमरहियवट्टसंठियअजहण्णप-
सत्थलक्खणअकोप्पजंघजुयला - उनकी दोनों जंघाएँ रोम रहित, गोल, अनेक प्रशस्त लक्षणों से
युक्त तथा मनोहर होती हैं, सुणिम्मियसुणिगूढजाणूमंसलपसत्थसुद्धबसंधी - घुटने की सन्धियाँ भली
प्रकार से जुड़ी हुई और स्नायुओं से बद्ध होती हैं तथा मांस से युक्त होने के कारण दिखाई नहीं देती,
कयलीखंभाइरेकसंठियणिव्वणसुकुमालमउयकोमलअविरलसमिसहियसुजायवट्टपीवरणिरंतरोरू -
उनकी जंघाओं का ऊपर का भाग, कदली स्तंभ से भी अधिक सुन्दर गोल, ब्रणादि के घाव चिह्न से
रहित, सुकुमार अत्यन्त कोमल, परस्पर मिला हुआ, पुष्ट, प्रमाणयुक्त एवं शुभ लक्षणों से युक्त है,

* पूज्य श्री हस्तीमलजी भ. सा. अनुवादित प्रति में इस स्थान पर "पउमगंभीरवियडणाभी अणुब्भड-पसत्थ-
सुजायपीणाकुच्छी सण्णय" - इतना पाठ छूट गया है। संस्कृत छाया और अन्वयार्थ में तो इनका उल्लेख है। इससे
लगता है कि लिपिकार अथवा कम्पोज में यह पाठ छूट गया है-डोशो ।

अद्वावयवीइपट्टुसंठियपसत्थविच्छिण्णपिहुलसोणी - उनका कटिभाग चौपड़-पट्ट - चौपड़ खेलने के लिए बने हुए रेखांकित पट्टिये-के समान विस्तीर्ण तथा प्रशस्त होता है वयणायामप्य-माणदुगुणियविसालमंसलसुबद्धजहणवरधारिणीओ - कटि का अग्रभाग-नितम्ब-मुख के प्रमाण से द्विगुण-चौबीस अंगुल विस्तृत, सुबद्ध, पुष्ट एवं विशाल होता है वज्जविराइयपसत्थलक्खणणिरोदरीओ-वज्र के समान कृश तथा प्रशस्त लक्षणों से युक्त उदरावली तिवलिवलियतणुणामियमण्डियाओ - उदर तीन रेखाओं से शोभित तथा नम्र-झुका हुआ है उज्जुयसमसहियजच्चतणुकसिणणिद्ध-आइज्जलडहसुकुमालमउयसुविभत्तरोमराइओ - उनके शरीर की रोमावली अत्यन्त सूक्ष्म, काली, सम, सघन, स्निग्ध, रम्य, ललित, सुकुमाल, कोमल, विभक्त एवं रमणीय होती है गंगावत्तगप-दाहिणावत्तरंगभंगरविकिरणतरुणबोहियआकोसायंतपउमगंभीरवियडणाभी - उनकी नाभि, गंगा नदी के जल में बनते हुए आवर्त के समान दक्षिणावर्त वाली तथा सूर्य की किरणों से विकसित कमल के समान और गंभीर होती है, अणुब्भडपसत्थसुजायपीणकुच्छी - उनकी कुक्षि उन्नत, प्रशस्त सुन्दर तथा पुष्ट होती है, सणयपासा - पार्श्व नीचे की ओर झुके हुए, सुजायपासा - सुजात-सुघट पार्श्व, संगयपासा - मिले हुए पार्श्व, मियमाणियपीणरइयपासा - उनके पार्श्व प्रमाणयुक्त उन्नत एवं सुन्दर होते हैं, अकरंडुयकणगरुयगणिम्मलसुजायणिरुवहयगायलट्ठी - उनकी पीठ मांसल-जिससे हड्डियाँ दिखाई नहीं देती, नीरोग, निर्मल, सोने के समान कांति वाली होती है, कंचणकलस पमाणसमहियलडुचुचुयआमेलगजमलजुयलवडियपयोहराओ - उनके दोनों पयोधर-स्तन, स्वर्ण कलश के समान, प्रमाणयुक्त, सुन्दर, गोल, उन्नत, परस्पर मिले हुए दोनों समान, सुन्दर चुंचक-स्तन-बिटक युक्त होते हैं, भुयंगअणुपुव्वतणुयगोपुच्छवट्टसमसहियणमियआइज्जलडहबाहा - भुजाएँ सर्प के समान क्रमशः पतली, स्निग्ध, गोपुच्छ के समान गोल, प्रमाणोपेत नम्र तथा सुन्दर होती है, तंबणहा - ताम्रवर्ण के नख, मंसलंगहत्था - हाथ का अग्रभाग मांसल, कोमलपीवरवरंगुलिया - अंगुलियाँ कोमल और पुष्ट होती है, णिद्धपाणिलेहा - उनके कोमल-मुलायम, हाथ शुभ रेखा से युक्त होते हैं, ससिसूर-संखचक्कवरसोत्थियविभत्तसुविरइयपाणिलेहा - हाथों में चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र, दक्षिणावर्त, शंख आदि चिह्न सुन्दर रूप में रेखांकित है।

भावार्थ - 'देवकुरु' और 'उत्तरकुरु' नाम की अकर्मभूमि के पुरुषों की प्रमदाएँ (स्त्रियाँ) भी बड़ी सोम्य एवं सुन्दर होती है। उनके शरीर और अंगोपांग सुन्दर होते हैं। वे महिलाओं के हाव-भाव, विलास आदि मुख्य गुणों से युक्त होती हैं। उनके पाँव प्रमाणयुक्त अत्यन्त सुन्दर सुकुमाल तथा कछुए के समान आकार से उन्नत होते हैं। पाँवों की अंगुलियाँ सीधी, पुष्ट, कोमल, परस्पर मिली हुई और मनोहर होती हैं। नख उन्नत, ताम्रवर्ण वाले, स्निग्ध तथा चमकीले होते हैं। उनकी दोनों जंघाएँ (पिण्डलियाँ?) गोल, पुष्ट, रोमरहित, मांगलिक-चिह्नांकित और मनोहर होती है। घुटनों की संधियाँ भली प्रकार से जुड़ी हुई, मांस से आच्छादित और स्नायुजाल से बद्ध एवं पुष्ट होने के कारण घुटनों की

संधियाँ दिखाई नहीं देती। उनकी ऊपर की जंघाएँ कदलि-स्तंभ से भी अतिशय आकार वाली सुन्दर, गोल वर्णादि के छिद्र से रहित अत्यन्त कोमल, पुष्ट, परस्पर मिली हुई, प्रमाणयुक्त तथा शुभ लक्षणों सहित होती है। उनका कटिभाग, चौसर (खेलने की चौपड़ या शतरंज) की रेखाओं से अंकित पट्टिये के समान विस्तीर्ण एवं प्रशस्त होता है। नितम्ब-भाग मुख के प्रमाण से दुगुना (चौबीस अंगुल) विस्तृत, सुबद्ध और पुष्ट होता है। वज्र के समान कृश तथा प्रशस्त लक्षणों से युक्त उनका उदर होता है। शरीर का मध्य-भाग तीन रेखाओं से मण्डित तथा नम्र होता है। रोमावली सूक्ष्म, काली, सम, घन, स्वाभाविक, स्निग्ध, रम्य, ललित, सुकुमाल, कोमल, विभाजित तथा रमणीय होती है। उनकी नाभि गंगा-महानदी के जल में बनते हुए आवर्त के समान दक्षिण-आवर्त वाली सूर्य की किरणों से खिले हुए कमल के समान विकसित तथा गम्भीर होती है। उनकी कुक्षि उन्नत, प्रशस्त सुन्दर तथा पुष्ट होती है, उनके दोनों ओर के पार्श्व, नीचे की ओर झुके हुए, सुन्दर, संगत, प्रमाण युक्त पुष्ट एवं मनोहर होते हैं। उनकी पीठ की हड्डियाँ दिखाई नहीं देती। शरीर सोने के समान कांति वाला, निर्मल, सुन्दर तथा रोगरहित होता है। उनके दोनों स्तन स्वर्ण कलश के समान प्रमाणयुक्त, गोल, परस्पर सटे हुए सुन्दर चुंचुक से युक्त एवं मनोहर होते हैं। उनकी भुजाएँ साँध के समान क्रमशः पतली, स्निग्ध स्पर्श वाली, गोपुच्छ के समान गोल प्रमाणयुक्त नम्र और सुन्दर होती हैं, नख ताम्रवर्ण के तथा हाथ का अग्रभाग मांसल एवं पुष्ट होता है। उंगलियाँ पुष्ट तथा कोमल होती हैं। उनके हाथ की रेखाएँ स्निग्ध होती हैं और रेखाओं से चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र और स्वस्तिकादि शुभ लक्षण वाली आकृतियाँ अंकित होती हैं।

पीणुण्णयकक्खवत्थीप्पएसपडिपुण्णगलकवोला चउरंगुलसुप्पमाण-
कंबुवरसरिसगीवा मसलसंठियपसत्थहणुया दालिमपुप्फप्पगासपीवरपलंब-
कुंचियवराधरा सुंदरोत्तरोट्टा दधिदगरयकुंदचंदवासंतिमउलअच्छिह्विमलदसणा
रतुप्पलपउमपत्तसुकुमालतालुजीहा कणवीरमुउलअकुडिलअब्भुण्णयउज्जुतुंगणासा
सारयणवकमलकुमुयकुवलयदलणिगरसरिसलक्खणपसत्थअजिम्हकंतणयणा
आणामियचावरुइलकिण्हभराइसंगयसुजायतणुकसिणणिद्धभुमगा अल्लीण
पमाणसुत्तसवणा सुस्सवणा पीणमट्टुगंडलेहा चउरंगुलविसालसमणिडाला कोमुइ-
रयणियरविमलपडिपुण्णसोमवयणा छत्तुण्णयउत्तमंगा अकविलसुसिणिद्धदीहसिरया।

शब्दार्थ - पीणुण्णयकक्खवत्थीप्पएसपडिपुण्णगलकवोला - उनकी भुजाओं का मूल भाग-
काँख वस्तिप्रदेश और कपोल पुष्ट उन्नत एवं परिपूर्ण होता है, चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा -
गर्दन उत्तम शंख के समान चार अंगुल प्रमाण होती है, मसलसंठियपसत्थहणुया - उनका जबड़ा उत्तम
आकृतियुक्त और मांसल होता है, दालिमपुप्फप्पगासपीवरपलंबकुंचियवराधरा - उनके अधर-नीचे का
ओष्ठ दाढ़िम के पुष्ट के समान लाल, कुछ लम्बा कुछ संकुचित तथा पुष्ट होता है, सुंदरोत्तरोट्टा -

ऊपर का ओष्ठ भी सुन्दर होता है, दधिदगरयकुंदचंदवासंतिमउलअच्छिहृद्विमलदसणा - दाँत दही, जलकण, कुन्द, चन्द्र, और बासंती लता की कली के समान श्वेत तथा छिद्र रहित हैं, रत्तुप्पलपउमपत्तसुकुमालतालुजीहा - कमल के लाल रंग के पुष्प समान वर्ण तथा पद्म-पत्र के समान कोमल उनका तालु और जीभ होती है, कणवीरमुउलकुडिलअभुण्णयउज्जुतुंगणासा - उनकी नासिका कणवीर के पुष्ट की कलि के समान सीधी, अग्रभाग कुछ ऊँचा उठा हुआ सरल और उच्च होती है, सारयणवकमलकुमुयकुवलयदलणिगरसरिसलवखणपसत्थ अजिह्वकंतणयणा - शरदऋतु के कमल, चन्द्रविकासी कुमुद और नील-कमल के पत्तों के समान प्रशस्त लक्षण वाली सरल और अतिसुन्दर उनकी आँखें होती हैं, आणामियचावरइलकिण्हभराइसंगयसुजायतणुकसिणणिद्ध भुमगा - उनकी भ्रुकुटी धनुष के समान वक्र और काले बादलों के समान कृष्ण वर्ण वाली कोमल तथा मनोहर होती है, अल्लीणपमाणजुत्तसवणा - कान सुन्दर और प्रमाणयुक्त होते हैं, सुस्सवणा - अच्छी श्रवण शक्ति वाले, पीणमट्टुगंडलेहा - कपोल पुष्ट एवं शुद्ध हैं, चउरंगुलविसालसम-णिडाला - ललाट चार अंगुल प्रमाण विशाल और समतल होता है, कौमुदीरयणियरविमलपडिपुण्णसोमवयणा - कोमुदी के रजनीकर-कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि के चन्द्रमा के समान परिपूर्ण एवं सौम्य उनका मुख होता है, छत्तुण्णयउत्तमंगा-मस्तक छत्र के समान उन्नत होता है, अकविलसुसिणिद्धदीहसिरया - मस्तक के केश काले, लम्बे और स्निग्ध होते हैं।

भावार्थ - भुजाओं का मूल-भाग (कांख)-वस्तिप्रदेश (योनि) और कपोल पुष्ट, उन्नत तथा परिपूर्ण होता है। उनकी गर्दन उत्तम शंख के समान चार अंगुल वाली प्रशस्त होती है। उनकी ठुड़ी पुष्ट एवं सुन्दर होती है। उनके अधरोष्ठ अनार के फूल के समान लाल, कुछ लम्बा, संकुचित, पुष्ट एवं मनोहर होता है और ऊपर का ओष्ठ भी सुन्दर होता है। उनके दाँत दही, जलकण, कुन्द, चन्द्र और बासंती लता की कली के समान श्वेत निर्मल और छिद्र-रहित होते हैं। उनकी जिह्वा और तालु, रक्त-कमल के समान लाल और पद्मपत्र के समान कोमल होता है। उनकी नासिका कणवीर के पुष्ट की कली के समान सीधी और सरल होती है। उसका अग्रभाग कुछ ऊँचा उठा हुआ होता है। उनकी आँखें शरदऋतु के कमल, चन्द्रविकासी कुमुद और नीलकमल के पत्तों के समान प्रशस्त लक्षण वाली सरल और अत्यन्त सुन्दर होती हैं। उनकी भ्रुकुटी धनुष के समान वक्र और काले बादलों के समान काली, कोमल तथा मनोहर होती है। उनके कान सुन्दर और प्रमाणयुक्त तथा अच्छी श्रवण-शक्ति से युक्त होते हैं। उनके कपोल पुष्ट तथा शुद्ध होते हैं। उनका ललाट चार अंगुल-प्रमाण विशाल तथा सम होता है। उनका मुख कौमुदी (कार्तिकी पूर्णिमा) के चन्द्रमा के समान परिपूर्ण एवं सौम्य होता है और मस्तक छत्र के समान ऊँचा होता है। मस्तक के केश काले, लम्बे और चिकने होते हैं।

छत्त-ज्झय-जूव-थूभ-दामिणि-कमंडलु-कलस-वावि-सोत्थिय-पडाग जव-मच्छ-कुम्भ-रहवर-मकरज्झय-अंक-थाल-अंकुस-अट्टावय-सुपइड्ड-अमर-

सिरियाभिसेय-तोरण-मेड़णि-उदहिवर-पवरभवण-गिरिवर-वरायंस-सललियगय-उसभ-सीह-चामर-पसत्थबत्तीसलक्खणधरीओ हंससरिसगईओकोइल महुरगिराओ कंता सब्बस्स अणूमयाओ ववगयवलि-पलितवंग-दुब्बण्ण-वाहि-दोहग्ग-सोयमुक्काओ उच्चत्तेण य णराण थोवूणमूसियाओ सिंगारागारचारुवेसाओ सुंदरथणजहण-वयणकरचरणणयणा लावण्णरुवजोव्वणगुणोव्वेया णंदणवणविवचारिणिओ अच्छराओव्व उत्तरकुरुमाणुसच्छराओ अच्छेरग-पेच्छणिज्जियाओ तिण्णिण य पलिओवमाइं परमाउं पालइत्ता ताओ वि उवणधमंति मरणधम्मं अवितत्ता कामाणं ।

शब्दार्थ - छत्र, ध्वजा, यूप, स्तूप, दामिनी, कमंडलुकलसवा-विसोत्थिय - कमंडलु, कलश, बावड़ी, स्वस्तिक, पडागजवमच्छकुम्भरहवर - पताका यव, मत्स्य कच्छप रथ, मकरध्वज-अंकथालअंकुस - मकरध्वज-कामदेव, अंकरत्न, थाल अंकुश, अट्टावयसुपइट्ट - अष्टापद-बाजोट सुप्रतिष्ठक अमरसिरियाभिसेयतोरणमेड़णि - देव, अधिषेक युक्त लक्ष्मी, तोरण, पृथ्वी, उदहिवर - प्रधान समुद्र पवरभवण - उत्तम भवन, गिरिवर - श्रेष्ठ पर्वत वरायंस - उत्तम दर्पण, सललियगयउसभसीह - सुन्दर लीला करता हुआ हाथी, वृषभ, सिंह, चामर - चामर, पसत्थबत्तीसलक्खणधरीओ - प्रशस्त बत्तीस लक्षण धराने वाली, हंससरिसगईओ - हंस के समान गति वाली, कोइल-महुरगिराओ - कोकिल के समान मधुर स्वर वाली, कंता - कमनीय, सब्बस्सअणुमयाओ - सभी के लिए अनुमत, ववगयवलिपलितवंगं - उनके अंगादि-चमड़ी केश आदि हीनाधिक संकुचित या विकृत नहीं होते, दुब्बण्णवाहिदोहग्गसोयमुक्काओ - वे दुर्वर्ण, व्याधि, दुर्भाग्य और शोक से मुक्त रहती हैं उच्चत्तेण य णराण - ऊँचाई में वे नर से थोवूणमूसियाओ - कुछ कम होती हैं, सिंगारागारचारुवेसाओ - वे श्रृंगार रस के भवन के समान तथा सुन्दर वेश वाली होती हैं सुंदरथणजहणवयणकरचरण-णयणा - स्तन, जंघा, मुख, हाथ, पाँव और नयन सुन्दर होते हैं लावण्णरुवजोव्वणगुणोव्वेया - वे लावण्य, रूप, यौवन और गुणों से युक्त होती हैं णंदणवणविवचारिणिओ - वे नन्दन वन में विचरने वाली अच्छराओव्व - अप्सराओं के समान, उत्तरकुरुमाणुसच्छराओ - उत्तरकुरु की मनुष्य रूपी अप्सराएँ हैं, अच्छेरगपेच्छणिज्जियाओ - उनका रूप आश्चर्यजनक और दर्शनीय होता है, तिण्णिण यपलिओवमाइं परमाउं पालइत्ता - अपनी तीन पत्नियों को उत्कृष्ट आयु भोग कर, ताओवि - वे भी, उवणधमंति मरणधम्मं - मृत्यु को प्राप्त होती हैं अवितत्ता कामाणं - कामभोग में अतृप्त रह कर ही ।

भावार्थ - वे इन बत्तीस लक्षणों से युक्त होती हैं, यथा -

१. छत्र २. ध्वजा ३. यूप (धूसरा) ४. स्तूप ५. दामिनी ६. कमण्डलु ७. कलश ८. बावड़ी

९. स्वस्तिक १०. पताका ११. यव १२. मच्छ १३. कच्छप १४. उत्तम रथ १५. मकरध्वज (कामदेव) १६. अंकरत्न १७. थाल १८. अंकुश १९. अष्टापद (द्वुत फलक) २०. सुप्रतिष्ठक (स्थापनक) २१. अमर (देव) या मयूर २२. अभिषेक युक्त लक्ष्मी २३. तोरण २४. पृथ्वी २५. समुद्र २६. उत्तम भवन २७. श्रेष्ठ पर्वत २८. उत्तम दर्पण २९. लीला करता हुआ हाथी ३०. वृषभ ३१. सिंह और ३२. चामर।

उनकी चाल हंस के समान और बोली कोकिला के समान मधुर स्वर वाली होती है। वे कमनीय सर्वप्रिय एवं सर्वानुमत होती हैं। उनके अंग, उपांग, चमड़ी, केश आदि हीन, अधिक संकुचित या विकृत नहीं होते। वे दुर्वर्ण व्याधि, दुर्भाग्य एवं शोक से मुक्त रहती हैं। वे पुरुष से कुछ ही कम ऊँची होती है। वे शृंगार रस के भवन के समान सजी हुई और सुन्दर वेश वाली होती है। उनके स्तन; जंघा, मुख, हाथ, पाँव और नयन अति सुन्दर होते हैं। वे लावण्य रूप यौवन और गुणों से भरपूर होती है। नन्दन वन में विचरने वाली अप्सराओं के समान वे देवकुरु और उत्तरकुरु के मनुष्यों की अप्सराएँ हैं। उनका रूप आश्चर्यजनक तथा दर्शनीय होता है। वे अपनी तीन पत्योपम की उत्कृष्ट आयु भोगकर और कामभोगों से अतृप्त रह कर ही मृत्यु को प्राप्त हो जाती है।

पर-स्त्री में लुब्ध जीवों की दुर्दशा

मेहुणसण्णासंपगिद्धा य मोहभरिया सत्थेहिं हणंति एक्कमेक्कं, विसय-
विसउदीरएसु अवरे परदारेहिं हम्मंति विसुणिया धणणासं सयणविप्पणासं य पाउणंति,
परस्स दाराओ जे अविरया मेहुणसण्णा संपगिद्धा य मोहभरिया अस्सा हत्थी गवा य
महिसा मिगा य मारंति एक्कमेक्कं, मणुयगणा वाणरा य यक्खी य विरुज्जंति,
मित्ताणि खिप्पं हवंति सत्तू, समए धम्मे गणे य भिदंति पारदारी, धम्मगुणरया य
बंधयारी खणेण उल्लोडुए चरित्ताओ, जसमंतो सुव्वया य पावेंति अयसकित्तिं रोगत्ता
वाहिया पवड्ढंति रोगवाही, दुवे य लोया दुआराहगा हवंति इहलोए चव परलोए परस्स
दाराओ जे अविरया, तहेव केइ परस्स दारं गवेसमाणा गहिया य हया य बद्धरुद्धा य
एवं जाव गच्छंति विउलमोहाभिभूयसण्णा।

- शब्दार्थ - मेहुणसण्णासंपगिद्धा - मैथुनेच्छा में गृद्ध बने हुए, मोहभरिया - मोह से भरे हुए, सत्थेहिं हणंति - शस्त्रों से मार डालते हैं, एक्कमेक्कं - एक-दूसरे को, विसयविसउदीरएसु - विषयरूपी विष की उदीरणा करने वाली-बढ़ाने वाली, अवरे - अन्य, परदारेहिं - पराई स्त्रियों में, हम्मंति-मारते हैं, विसुणिया - पता लगाने पर, धणणासं - धन का नाश, सयणविप्पणासं - स्वजनों के नाश को, पाउणंति - प्राप्त होते, परस्सदाराओ - पराई स्त्रियों से, अविरया - अविरत हैं, मेहुणसण्णा - मैथुनसंज्ञा-स्त्री से संभोग की इच्छा में, संपगिद्धा - गृद्धा-अत्यन्त आसक्त हैं, मोहभरिया - मोह से भरे हुए, अस्सा - अश्व, हत्थी - हाथी, गवा - बैल, महिस - भैंसे, मिगा - मृग, मारंति - मारते हैं,

एकमेकं - एक-दूसरे को, मणुयगणा - मनुष्यगण, बाणरा - वानर-बन्दर, पक्खी - पक्षी, विरुद्धंति - विरोध करते हैं, मिताणि - मित्र भी, खिप्यं हवंति - शीघ्र हो जाते हैं, सत्तू - शत्रु, समए-सिद्धान्त का, धम्मो - धर्म का, गणो - गण का, भिहंति - भेदन करते हैं, पारदारी - परस्त्री में लुब्ध, धम्मगुणरया - धर्म तथा गुणों में लीन रहने वाले, बंभयारी - ब्रह्मचारी भी, खणोण - क्षणमात्र में-शीघ्र ही, उल्लोद्धए - भ्रष्ट हो जाते हैं, चरित्ताओ - चारित्र से, जसमंतो - यशस्वी भी, सुव्वया - उत्तम व्रतधारी भी, पावेंति - प्राप्त करते हैं, अयसकित्तिं - अयशकीर्ति, रोगत्ता - रोगपीडित, वाहिय - व्याधिग्रस्त, पवड्ढेंति - बढ़ाते हैं, रोगवाही - रोग एवं व्याधि, दुवे य लोया - दोनों लोक, दुआराहगा-दुराग्रथ, हवंति - होते हैं, इहलोए चेष - इस लोक और, परलोए - परलोक, परस्सदाराओ - पराई पत्नियों से, जे अवरिया - जो विरत नहीं होते हैं, तहव - जैसे कि, केइ - कोई पुरुष, परस्सदारं - पराई स्त्री की, गवेसमाणा - खोज करते हुए, गहिया - पकड़े जाते, हया - मारे जाते, बद्धरुद्धा - बाँध कर रोके जाते हैं, एवं - इस प्रकार, जाव - यावत्, गच्छंति - जाते हैं, विउल्लमोहाभिभूयसण्णा-विपुल मोह-महामोह से अभिभूत बुद्धि वाले।

भावार्थ - मैथुन की लालसा में आसक्त, मोह-मद में सराबोर जीव, एक दूसरे को मार डालते हैं। वे विषय रूपी विष की उदीरणा करने वाली पर स्त्रियों में आसक्त होते हैं। जब उनकी आसक्ति का दूसरों (उन स्त्रियों के पति संरक्षकादि या अन्य प्रेमियों) को पता लगता है, तो वे उस पर-स्त्री लम्पट को मार डालते हैं। पर-स्त्री लम्पट, धननाश तथा कुटुम्ब विनाश रूपी दुःख भोगते हैं। जो पुरुष पर-स्त्री भोग के पाप से विरत नहीं होते, उनकी दुर्दशा होती है। मैथुनेच्छा में आसक्त एवं वेद-मोह में भरपूर मनुष्य, घोड़े, हाथी, वृषभ, भैंसे और मृग (अपनी ही जाति में) एक-दूसरे को मारते हैं। मनुष्यगण, वानर और अन्य पशु-पक्षी भी विषयेच्छा में लुब्ध होकर परस्पर लड़ते-झगड़ते हैं। पर-स्त्री के मोह में लुब्ध होकर मनुष्य अपने मित्र का भी शत्रु बन जाता है। धर्म-सिद्धान्त और उत्तम मर्यादा तथा नैतिकता का उल्लंघन करता है। संयम और ब्रह्मचर्य में लीन रहने वाले ब्रह्मचारी भी मैथुनसंज्ञा में गृद्ध होकर चारित्र से भ्रष्ट हो जाते हैं। जिन विशिष्ट पुरुषों का यश सर्वत्र व्याप्त है, ऐसे यशस्वी और उत्तम व्रतधारी भी वेदमोह में आसक्त होकर अपयश एवं निन्दा के पात्र बन जाते हैं। मैथुन-गृद्ध व्यक्ति अनेक प्रकार के रोगों का घर बन जाता है। उसकी व्याधियाँ बढ़ती रहती हैं। पर-स्त्रीगामी मनुष्य का यह लोक और परलोक-दोनों लोक बिगड़ जाते हैं। वह दोनों लोक का विरोधक होता है।

पर-स्त्री को प्राप्त करने के लिए लुक-छिप कर जाने वाले कई पुरुष, उस स्त्री के पति आदि सम्बन्धी अथवा राज्य कर्मचारी द्वारा पकड़े जाकर बन्दी बनाये जाते हैं, कारागृह में डाल दिये जाते हैं और अनेक प्रकार की ताड़ना-तर्जना सहते हुए यावत् मृत्यु प्राप्त कर नरक में चले जाते हैं। इस प्रकार जिन पुरुषों का मन महामोहनीय के उदय से भरा हुआ है, वे मैथुनासक्त होकर अनेक प्रकार के दुःख के भोक्ता बन जाते हैं।

स्त्रियों के लिए हुए जन-संहारक युद्ध

मेहुणमूलं य सुव्वए तत्थ-तत्थ वत्तपुव्वा संगामा जणक्खयकरा सीयाए, दोवईए, कए, रुप्पिणीए, पउमावईए, ताराए, कंचणाए, रत्तसुभद्दाए, अहिल्लियाए, सुवण्णगुलियाए, किण्णरीए, सुरुवविज्जुमईए, रोहिणीए ❁ य, अण्णेसु य एवमाइएसु बहवे महिलाकएसु सुव्वंति अइक्कंता संगामा गामधम्ममूला ❁ इहलोए ताव णट्ठा ❁ परलोए वि य णट्ठा महया मोहतिमिसंधयारे घोरे तसथावरसुहुमबायरेसु पज्जत्तमपज्जत्त-साहारण-सरीरपत्तेयसरीरिसु य अंडय-पोयय-जराउय-रसय-संसेइम-समुच्छिम-उब्भिय-उववाइएसु य णरय-तिरिय-देव-माणुसेसु जरामरणरोगसोगबहुले पलिओवम-सागरोवमाइं अणाईयं अणवदगं दीहमद्धं चाउरंत-संसार-कंतरं अणुपरियट्ठंति जीवा मोहवससण्णविट्ठा ।

शब्दार्थ - मेहुणमूलं - मैथुन के मूल कारण से, सुव्वए - सुने जाते हैं, तत्थ-तत्थ - जहाँ-तहाँ-अनेक स्थानों पर, वत्तपुव्वा - पूर्व में हुए, जणक्खयकरा - जन क्षयकारी-नर संहारक, सीयाए - सीता के लिए, दोवईएकए - द्रोपदी के लिए किए, रुप्पिणीए - रुक्मिणी के लिए, पउमावईए - पद्मावती के लिए, ताराए - तारा के लिए, कंचणाए - कंचना के लिए, रत्तसुभद्दाए - रक्तसुभद्रा के लिए, अहिल्लियाए - अहिल्या के लिए, सुवण्णगुलियाए - सुवर्णगुलिका के लिए, किण्णरीए - किन्नरी के लिए, सुरुवविज्जुमईए - सुरुपविद्युत्पती के लिए, रोहिणीए - रोहिणी के लिए, य - और, अण्णेसु - अन्य, एवमाइएसु - इसी प्रकार की, बहवे - बहुत-सी, महिलाकएसु - महिलाओं के लिए, सुव्वंति - सुने जाते हैं, अइक्कंता - अतीतकाल में किये, संगामा - संग्राम, गामधम्ममूला - ग्राम-धर्ममूलक-विषय हेतुक, इहलोए - इस लोक में, तावणट्ठा - नष्ट हो जाते हैं, परलोएवि - परलोक में भी, णट्ठा - नष्ट होते हैं, महयामोहतिमिसंधयारे घोरे - महामोह रूपी तिमिर के घोर अन्धकार में, तसथावर - त्रस और स्वथावर, सुहुमबायरेसु - सूक्ष्म और बादर में, पज्जत्तमपज्जत्त - पर्याप्त और अपर्याप्त, साहारणसरीरपत्तेयसरीरिसु - साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर में, अंडय-पोयय-जराउय-रसय-संसेइम - अंडज, पोतज, जरायुज, रसज संस्वेदिम, सम्मुच्छिमउब्भियउववाइएसु - सम्मूर्च्छिम, उद्भिज और औपपातिक आदि में, णरयतिरियदेवमाणुसेसु - नरक, तिर्यंच, देव और मनुष्य में,

❁ "रोहिणीए" पाठ ज्ञानविमलसूरि वाली प्रति में नहीं है, परन्तु टीका में चरित्र दिया है। लगता है कि भूल से छूट गया है।

❁ यहाँ "अब्भ सेविणो"-पाठ श्री ज्ञानविमलसूरि वाली प्रति में विशेष है।

❁ "ताव णट्ठा" के स्थान पर 'णट्ठ कीत्ती' पाठ है।

जरामरणरोगसोगबहुले - वृद्धावस्था, मृत्यु, रोग और शोक की अधिकता वाले, पत्निओवमसागरोवमाइं-पल्योपम और सागरोपम तक, अणाईयं - अनादि, अणवदगं - अनन्त, दीहमद्धं - लम्बे काल तक, चाउरंतसंसारकंतारं - चार गति वाले संसारमय घोर अटवी में, अणुपरियडुति - परिभ्रमण करते हैं, जीवा - जीव, मोहवस-सण्णविट्ठा - मोह के वश में आसक्त बने हुए।

भावार्थ - स्त्रियों के भोग में लुब्ध बने हुए लोगों ने कई स्थानों पर महान् जन-संहारक एवं घोर युद्ध किये हैं-ऐसा सुना जाता है। सीता के लिए, द्रौपदी, रुक्मिणी, पद्मावती, तारा, कञ्चना, रक्तिमुभद्रा, अहिल्या, सुवर्णगुटिका, किन्नरी, सुरूपविद्युत्मती और रोहिणी के लिए और इसी प्रकार की अन्य महिलाओं के लिए विषयी मनुष्यों द्वारा बहुत-से युद्ध हुए सुने जाते हैं। विषय-लोलुप मनुष्य इस लोक में भी किनष्ट होते हैं और परलोक में भी विनाश को प्राप्त होते हैं। वे महामोहरूपी घोर अन्धकार में पड़ते हैं। वे त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, साधारण शरीर और प्रत्येक वनस्पति के शरीर में तथा अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदिम, सम्मूर्च्छिम, उदिभज और औपपातिक आदि में उत्पन्न होते हैं, नरक, तिर्यच, देव और मनुष्य आदि में जन्म-मरण करते रहते हैं। वे जरा, मृत्यु, रोग और शोक से अत्यधिक पीड़ित रहते हैं। वे कहीं पल्योपम और कहीं सागरोपम काल तक दुःख भोगते रहते हैं। मोह में आसक्त बने हुए जीव, इस अनादि अनन्तरूप चार गति मय संसार रूपी घोर अटवी में बहुत लम्बे काल तक परिभ्रमण करते रहते हैं।

विवेचन - इस सूत्र में आगमकार महर्षि ने विषयासक्त मनुष्यों द्वारा स्त्रियों के लिए किए हुए संग्रामों का उल्लेख किया है। एक शक्तिशाली मनुष्य, घर में अनेक सुन्दर स्त्रियाँ होते हुए भी पराई स्त्री पर लुब्ध होकर हजारों-लाखों मनुष्यों का संहार करवा देता है। ऐसे युद्धों में से कुछ के नाम इस सूत्र में आये हैं। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

सीता के लिए - महासती सीता का रावण ने हरण किया था। इस कारण रावण के साथ राम-लक्ष्मण का युद्ध हुआ था और रावण, उसका परिवार और विशाल सेना नष्ट हो गई थी।

द्रौपदी के लिए - द्रौपदी पाण्डवों की पत्नी थी। उसका हरण धातकीखण्ड की अमरकंका नगरी के राजा पद्मोत्तर ने किया था। द्रौपदी को प्राप्त करने के लिए पांडव-सहित श्रीकृष्ण अमरकंका गए और पद्मोत्तर को हराकर द्रौपदी को लाये थे।

रुक्मिणी के लिए - कुण्डिनपुर के राजा भीम की पुत्री रुक्मिणी के लिए श्रीकृष्ण और शिशुपाल में युद्ध हुआ था।

पद्मावती के लिए - अरिष्ट नगर के नरेश हिरण्यनाभ की पुत्री पद्मावती के स्वयंवर में श्रीकृष्ण ने अन्य राजाओं के साथ युद्ध किया था।

तारा के लिए - किष्किन्धा के नरेश सुग्रीव का रानी तारा के लिए सहस्रगति विद्याधर के साथ सुग्रीव का युद्ध हुआ था और वह राम-लक्ष्मण की सहायता से विजयी हुआ था।

कंचना के लिए - इसकी कथा अप्रसिद्ध है। टीकाकार लिखते हैं कि कोई आचार्य कञ्चना को चिल्लणा बतलाते हैं, किन्तु वृहट्टीकाकार ने भी अनभिज्ञता बतलाई है।

रत्नसुभद्रा के लिए - सुभद्रा श्रीकृष्ण की बहन थी। वह अर्जुन में अनुरक्त थी। इस कारण उसका 'रत्नसुभद्रा' नाम हुआ। इसके लिए श्रीकृष्ण द्वारा भेजी हुई सेना से अर्जुन का युद्ध हुआ था।

अहिल्या के लिए - मूलपाठ में कहीं इसे "अहिन्नियाए"-अहिन्निका कहा है। जैन-शास्त्रों में इसकी कथा नहीं मिलती। टीकाकार भी अनभिज्ञता बतलाते हैं।

सुवर्णगुलिका - सिन्दु-सौवीर देश के अधिपति, विदर्भ नरेश उदयन की रानी प्रभावती की दासी देवदत्ता, गुटिका के प्रयोग से स्वर्ण जैसी कांति वाली हो गई। इससे उसका नाम 'सुवर्णगुलिका' हो गया। उसका उज्जयिनी नरेश चण्डप्रद्योत ने हरण किया। इस निमित्त से राजा उदयन और चण्डप्रद्योत के बीच युद्ध हुआ था।

किन्नरी और सुरुपविद्युत्पति की कथा भी अप्रसिद्ध है।

रोहिणी के लिए - अरिष्टपुर के राजा की पौत्री और राजकुमार हिरण्यनाभ की पुत्री रोहिणी के स्वयंवर में वसुदेवजी के साथ अन्य राजाओं का युद्ध हुआ था। युद्ध में वसुदेवजी ने विजय प्राप्त कर रोहिणी से विवाह किया। इसके गर्भ से बलदेवजी का जन्म हुआ था।

सूत्रकार कहते हैं कि इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से युद्ध, स्त्रियों में गृह मनुष्यों द्वारा हुए हैं।

एसो सो अबंभस्स फलविवागो इहलोइओ परलोइओ य अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ, ण य अवेयइत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणोउ वीरवरणामधिज्जो कहेसी य अबंभस्स फलविवागं एयं। तं अबंभंवि चउत्थं सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स पत्थणिज्जं एवं चिरपरिचियमणुगयं दुरंतं। त्तिबेमि।

॥ चउत्थं अहम्मदारं सम्पत्तं ॥

शब्दार्त - एसो - इस प्रकार का, सो - यह, अबंभस्स - अब्रह्मचर्य-मैथुन का, फलविवागो - फल भोग है, इहलोइओ परलोइओ - इस लौकिक और पारलौकिक, अप्पसुहो - अल्प सुख, बहुदुक्खो - बहुत-से दुःखों से भरा हुआ, महब्भओ - महाभयानक, बहुरयप्पगाढो - पापरूपी बहुत-सी रज से प्रगाढम व्याप्त, दारुणो - दारुण, कक्कसो - कर्कश, असाओ - असाता-शान्ति से वञ्चित, वाससहस्सेहिं - हजारों वर्षों के बाद भी, मुच्चइ ण य - मुक्त नहीं होता, अवेयइत्ता - बिना भोगे,

अत्थि हु - होता, मोक्खोत्ति - छुटकारा, एवमाहंसु - इस प्रकार कहा है, णायकुलणंदपो - ज्ञातुकुल-नन्दन, महप्पा - महान् आत्मा, जिणोउ - जिन भगवान् ने, वीरवरणामधिज्जो - वीरवर-महावीर नाम वाले, कहेसी - कहा है, अबंभस्स - अब्रह्मचर्य का, फलविपाको - फलविपाक, एयं - यह, तं-यह, अबंभं वि - अब्रह्मचर्य, चउत्थं - चौथा, सदेवमणुयासुरस्स - देव, मनुष्य और असुरों सहित, लोयस्स - लोगों का, पत्थणिज्जं - प्रार्थनीय है, एवं - इस प्रकार, चिर-परिचियमणुगयं - चिरकाल से परिचित और अनुगत, दुरंतं - कठिनाई से अन्त होने वाला, तिब्बेमि - ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ - यह अब्रह्मचर्य रूपी अधर्म का इस लौकिक और पारलौकिक फलविपाक है। यह अल्पतम सुख और अधिकतम दुःख से भरपूर है। महाभयानक तथा पाप के अत्यधिक मैल से युक्त है। कर्कश-कठोर है। अशांतिमय है। इसके कटुफल से हजारों वर्षों के बाद छुटकारा होता है। बिना दुःख भोगे छुटकारा नहीं हो सकता। इस प्रकार इस अधर्म का फल-विपाक, ज्ञातु-कुल-नन्दन, वीरवर (महावीर) नाम वाले महान् आत्मा ने कहा है। यह अब्रह्मचर्य चौथा आस्रव है और देव, मनुष्य और असुर-इन सभी से प्रार्थनीय है। यह मैथुन कर्म जीवों का चिरपरिचित (अनादि काल से परिचित) है और अनादिकाल से जीव के साथ लगा हुआ है। इसका अन्त होना अत्यन्त कठिन है-ऐसा मैं कहता हूँ। यह चौथा अधर्मद्वार समाप्त हुआ।

॥ अब्रह्म नामक चौथा अधर्मद्वार संपूर्ण ॥

परिग्रह नामक पाँचवाँ अधर्मद्वार

परिग्रह का स्वरूप

जंबू! इत्तो परिग्रहो पंचमो उ णियमा णाणामणि-कणग-रयण-महरिह-परिमलसपुत्त-दार-परिजण-दासी-दास-भयग-पेस-हय-गय-गो-महिस-उट्ट-खर-अय-गवेलग-सीया-सगड-रह-जाण-जुग्ग-संदण-सयणासण-वाहण-कुविय-धणधण्णा-पाण-भोयणाच्छायणा-गंध-मल्ल-भायण-भवणविहिं चैव बहुविहीयं भरहं णग-णगर-णियम-जणवय-पुरवर-दोण-मुह-खेड-कब्बड-मडंब-संबाह-पट्टण-सहस्स-परिमंडियं थिमियमेइणीयं एगच्छत्तं ससागरं भुंजिऊण वसुहं अपरिमिय मणांत-तण्हमणुगय-महिच्छ-स्रारणिरयमूलो लोहकलिकसायमहक्खंधो चिंतासयणिचिय-विउलसालो गारवपविरल्लियग्गविडवो णियडितथापत्तपल्लवधरो पुप्फफलं जस्स कामभोगा आयासविसुरणा कलह-पक्कंपियग्गसिहरो णरवईसंपूइओ बहुजणस्स हिययदइओ इमस्स मोक्खवरमोत्तिमगस्स फलिहभूओ, चरिमं अहम्मदारं।

शब्दार्थ - इत्तो - इसके पश्चात्, परिग्रहो - परिग्रह है, पंचमो - पाँचवाँ, णियमा - निश्चित रूप से, णाणामणि - विविध प्रकार के मणि, कणग - सोना, रयण - रत्न, महरिह परिमल - बहुमूल्य सुगन्धित द्रव्य, सपुत्तदार परिजण - पुत्र और स्त्री सहित परिवार, दासीदास - दासी तथा दास, भयग-घर का काम करने वाले नौकर, पेस - बाहर भेजे जाने वाले नौकर, हय - घोड़ा, गय - हाथी, गो - गाय, महिस - भैंस, उट्ट - ऊँट, खर - गधा, अय - बकरा, गवेलग - भेड़ अथवा गाय और भेड़, सीया - पालकी, सगड - गाड़ी, रह - रथ, जाण - यान गाड़ी विशेष, जुग्ग - युग्ग-जम्पान नामक गाड़ी, संदण - स्यन्दन-रथ विशेष, सयणासण - शयन, आसन, वाहण - वाहन, कुविय - घर की सामग्री, धण - धन, धण्ण - धान्य, पाण - पानी, भोयण - भोजन, आच्छायण - आच्छादन, गंध - सुगन्ध, मल्ल - माला, भायण - भाजन, भवणविहि - भवन की विधि, चैव - और, बहुविहीयं - अन्य बहुत-से साधनों से, भरहं - भरत क्षेत्र, णग - पर्वत, णगर - नगर, णियम - निगम, जणवय - जनपद, पुरवर - उत्तम पुर, दोणमुह - द्रोणमुख, खेड - खेट, कब्बड - कर्बट-थोड़ी आबादी वाला गाँव, मडंब - मंडप, संबाह - संबाध, पट्टण - पाटण, सहस्स - हजारों, परिमंडियं - पत्तनों से सुशोभित, थिमियमेइणीयं - निष्कंटक-सुरक्षित, एगच्छत्तं - एक छत्र, ससागरं - समुद्र पर्यंत, भुंजिऊण- भोग

कर, वसुहं - समस्त भारतवर्ष की पृथ्वी को, अपरिमिय - अपरिमित, अणंत - अत्यन्त, तण्ह - तृष्णा, अणुगय - अप्राप्य वस्तु को, महिच्छ - महत्ती इच्छा, गिरय मूलो - नरक प्राप्ति के मूल कारण हैं, लोहकलिकसायमहक्खंधो - लोभ, कलि अर्थात् संग्राम और कषाय इस परिग्रह रूपी वृक्ष के महान् स्कन्ध हैं, चिंतासयणिचियविउलसालो - सैकड़ों प्रकार के विषयों का चिन्तन और मन का खेद, इस वृक्ष की विस्तृत शाखाएँ हैं, गारवपविरल्लियग्गविडवो - ऋद्धि गारव, रस गारव और साता गारव, इन तीन गारवों में अत्यन्त अनुराग, इस वृक्ष की शाखाओं का अग्रभाग है, गियडितयापत्तपल्लवधरो - धूर्तता करके दूसरों को ठगना आदि माया के कार्य, इस वृक्ष की त्वक्-छाल, पते और पल्लव अर्थात् नूतन कोमल पते हैं, पुष्फफलं - फूल और फल हैं, जस्स - इस वृक्ष के, कामभोगा - कामभोग, आयासविसूरणाकलहपकंपियग्गसिहरो - शारीरिक खेद और मानसिक चिंता एवं कलह, इस वृक्ष के कम्पित होते हुए अग्रभाग हैं, गारवईसंपूडओ - यह वृक्ष राजाओं द्वारा पूजित है, बहुजणस्स - बहुतजनों का, हिययदइओ - हृदय वल्लभ है, इमस्स - इस, मोक्खवरमोत्तिमगस्स - मुक्ति मार्ग का उपाय निर्लोभता है, फलिह भूओ - यह उसे रोकने वाली अर्गला के समान है, चरिमं - अन्तिम, अहम्मदारं - अधर्म द्वार है।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामीजी कहते हैं कि - हे जम्बू! चौथे अधर्मद्वार के बाद अब परिग्रह नामक पाँचवें अधर्मद्वार का प्रसंग है। अनेक प्रकार के मणि, सोना, रत्न, बहुमूल्य सुगन्धित द्रव्य, स्त्री, पुत्र और समस्त परिवार, दास-दासी, गृह-सेवक, प्रेष्य-ग्रामान्तर भेजा जाने वाला सेवक, हाथी, घोड़े, गायें, भैंसे, ऊंट, गधे, बकरे, भेड़, पालकी, रथ, यान, जुग्य, स्यन्दन (रथ विशेष) शयन (पलंगादि) आसन, वाहन, घर के बरतन, धन, धान्य, भोजन, पानी, वस्त्र, गन्ध, माला, भाजन और भवनों से किए जाने वाले तथा अन्य अनेक प्रकार के भोग-साधन, पर्वत, नगर, निगम, जनपद, उत्तमपुर, द्रोणमुख, खेड, कर्बट, मंडप, संबाध तथा हजारों पत्तनों से सुशोभित और निर्भयतापूर्वक रहने वाले जनसमूह से पूर्ण, समुद्र पर्यन्त भारतवर्ष की पृथ्वी का एकछत्र राज्य का भोग करने पर भी, जो असौम तृष्णा और उत्कट इच्छा का अस्तित्व है, वही परिग्रह रूपी अधर्म का मूल है और नरकगति का कारण है। इस परिग्रह रूपी पाप के तृष्णा रूपी मूल है और लोभ, कलि (संग्राम) और कषायरूपी स्कन्ध है। विषयों का चिन्तन एवं मानसिक खेद रूपी विस्तृत शाखाएँ हैं। ऋद्धि रस और साता गारव में अत्यन्त अनुराग रूपी शाखाओं के विटप (अग्रभाग) हैं। धूर्तता, ठगाई आदि रूपों में उत्पन्न माया, इस तृष्णारूपी वृक्ष की छाल, पान एवं पल्लव (कोमल पान) है और कामभोग इसके पुष्प तथा फल हैं। शारीरिक खेद, मानसिक चिन्ता और क्लेश इस वृक्ष का अग्रभाग है। यह वृक्ष राजा-महाराजाओं द्वारा पूजित है और बहुजन समुदाय का हृदय वल्लभ है। यह परिग्रह रूपी अधर्म, निर्लोभता रूपी मोक्ष-द्वार को बन्द करने वाली अर्गला के समान है और अन्तिम अधर्मद्वार है।

परिग्रह के गुणनिष्पन्न नाम

तस्स य णामाणि गोण्णाणि होति तीसं, तं जहा - १. परिग्गहो २. संचयो ३. चयो ४. उवचयो ५. णिहाणं ६. संभारो ७. संकरो ८. आयरो ९. पिंडो १०. दब्बसारो ११. तहा महिच्छा १२. पडिबंधो १३. लोहप्पा १४. महदी १५. उवकरणं १६. संरक्खणा य १७. भारो १८. संपाउप्पायओ १९. कलिकरंडो २०. पवित्थरो २१. अणत्थो २२. संथवो २३. अगुत्ति * २४. आयासो २५. अविओगो २६. अमुत्ती २७. तण्हा २८. अणत्थओ २९. आसत्ती ३०. असंतोसो त्ति वि य, तस्वस एयाणि एवमाईणि णामधिज्जाणि होति तीसं।

शब्दार्थ - तस्स - उस, णामाणि - नाम, गोण्णाणि - गुण-निष्पन्न, होति - हैं, तीसं - तीस, तं जहा - जैसे कि, परिग्गहो - परिग्रह, संचयो - संचय, चयो - चय, उवचयो - उपचय, णिहाणं - निधान, संभारो - सम्भार, संकरो - संकर, आयरो - आदर, पिंडो - पिंड, दब्बसारो - द्रव्यसार, महिच्छा - महती इच्छा, पडिबंधो - प्रतिबंध, लोहप्पो - लोभात्मा, महदी - महती याचना, उवकरणं - उपकरण, संरक्खणा - संरक्षण, भारो - भार, संपाउप्पायओ - सम्पातोत्पादक, कलिकरंडो - कलह और पाप का स्थान, पवित्थरो - धन-धान्यादि का विस्तार, अणत्थो - अनर्थ, संथवो - संस्तव, अगुत्ति-अगुत्ति-इच्छा का अनिरोध, आयासो - खेद का कारण, अविओगो - अवियोग, अमुत्ती - अमुक्ति, तण्हा - तृष्णा, अणत्थओ - अनर्थक, आसत्ती - आसक्ति, असंतोसो - असंतोष, एयाणि - ये, एवमाईणि - इस प्रकार के, णामधिज्जाणि - नाम, होति - हैं।

भावार्थ - इस अधर्म के गुण-निष्पन्न तीस नाम हैं। यथा - १. परिग्रह २. संचय ३. चय ४. उपचय ५. निधान (भूमि में धरा हुआ) ६. संभार (कोठे आदि में भर कर रखा हुआ) ७. संकर (स्वर्णादि के पासे रूप) ८. आदर (प्राप्ति के प्रयत्न में संताप एवं भय-मूलक) ९. पिंड (संगठित रखा हुआ) १०. द्रव्यसार (सर्वोत्तम) ११. महिच्छा १२. प्रतिबन्ध (बन्धनरूप) १३. लोभारमा १४. महती याचना १५. उपकरण १६. संरक्षण १७. भार १८. सम्पातोत्पादक (अनर्थ एवं पाप का उत्पादक) १९. कलिकरण्ड (कलह का भाजन) २०. प्रविस्तार (वृद्धि करना) २१. अनर्थ २२. संस्तव (परिचय कारक) २३. अगुत्ति (संतोष का अभाव) २४. आयास (खेदकारक) २५. अवियोग (नहीं छुटने वाला) २६. अमुक्ति (बन्धन कारक) २७. तृष्णा २८. अनर्थक २९. आसक्ति और ३०. असंतोष, ये और इस प्रकार के तीस नाम हैं।

* श्री ज्ञानविमलीय प्रति में २३वाँ नाम 'अकीत्ति' है और 'अगुत्ति' तथा 'आयासो' को एक ही गिना है।

परिग्रह के पाश में देवगण भी बंधे हैं

तं य पुण परिग्रहं ममायंति लोहघत्था भवणवर-विमाण-वासिणो परिग्रहरुई परिग्रहे विविहकरणबुद्धी देवणिकाया य असुर-भुयग-गरुल-विज्जु-जलण-दीव-उदहि-दिसि-पवण-थणिय-अणवणिय-पणवणिय-इसिवाइय-भूयवाइय-कंदिय-महाकंदिय-कुहंड-पयंगदेवा पिसाय-भूय-जक्ख-रक्खस किण्णर-किंपुरिस-महोरग-गंधव्वा य तिरियवासी, पंचविहा जोइसिया य देवा बहस्सई-चंद-सूर-सुक्क-सणिच्छरा राहु-धूमकेऊ-बुहा य अंगारका य तत्ततवणिज्जकणयवण्णा जे य गहा जोइसिमि चारं चरंति केऊ य गइरईया अट्टावीसइविहा य णक्खत्त देवगणा णाणासंठाणसंठियाओ य तारगाओ ठियलेस्सा चारिणो य अविस्साम-मंडलगई उवरिचरा ।

शब्दार्थ - तं - उस, पुण - फिर, परिग्रहं - परिग्रह पर, ममायंति - ममता करते हैं, लोहघत्था- लोभ ग्रस्त होकर, भवणवरविमाणवासिणो - भवनवासी और उत्तम विमानवासी देव, परिग्रहरुई - परिग्रह में रुचि रखते हैं, परिग्रहे - परिग्रह का, विविहकरणबुद्धि - विविध प्रकार से संग्रह करने का विचार रखने वाले, देवणिकाया - देवगण भी परिग्रह को स्वीकार करके हैं, य - और, असुरभुयगगरुलविज्जुलणदीवउदहिदिसिपवणथणिय - असुरकुमार, नार्गकुमार, गरुड़ की ध्वजा वाले सुवर्णकुमार, विद्युतकुमार, अग्निकुमार, दीपकुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार, वायुकुमार और स्तनितकुमार, अणवणियपणवणियइसिवाइयभूयवाइयकंदियमहाकंदियकुहंडपयंगदेवा - आणपन्निक, पाणपनि, ऋषिवादिक, भूतवादिक, कन्दित, महाकन्दित, कुष्माण्ड और पतंगादेव, पिसायभूयजक्खरक्खसकिण्णरकिंपुरिसमहोरगगंधव्वा - पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग और गन्धर्व, तिरियवासी - तिर्यग् लोक में निवास करने वाले व्यन्तर देव, पंचविहा - पाँच प्रकार के, जोइसिया - ज्योतिषी, देवा - देव, बहस्सईचंदसूरसुक्कसणिच्छरा - बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र और शनिश्चर, राहुधूमकेउबुहा - राहु, धुमकेतु, बुध, य - और, गहा - ग्रह, जोइसिमि - ज्योतिष्वक्र में, चार चरंति - विचरते हैं, य - और, गइरईया - जिनकी गति में रति है, अट्टावीसविहा- अट्टाईस भेद वाले, णक्खत्तदेवगणा - अभिजित आदि नक्षत्रगण, णाणासंठाणसंठियाओ - नाना प्रकार के संस्थान वाले, तारगाओ - तारागण, ठियलेस्सा - जिनका दीप्ति बराबर स्थित रहती है, चारिणो - विचरते रहते हैं, अविस्साममंडलगई - जो अविश्राम गति वाले मण्डल के रूप में, उवरिचरा - तिर्यग् लोक के ऊपर के भाग में रहते हैं ।

भावार्थ - पुनः भवनवासी और उत्तम विमानवासी देव भी परिग्रह में रुचि रखते हैं। वे लोभवश परिग्रह में ममत्त्व रखते हैं। विविध प्रकार के परिग्रह का संग्रह करने वाले देवनिकाय में-असुरकुमार,

नागकुमार, गरुड़ की ध्वजा वाले सुपर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, दीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार और स्तनितकुमार, ये भवनप्रति जाति के देव हैं। आणपन्निक, पाणपन्निक, ऋषिवादिक, भूतवादिक, क्रन्दित, महाक्रन्दित, कुष्मांड और पतंग देव-ये व्यन्तर जाति के देव हैं। पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग और गन्धर्व, ये भी व्यन्तर देवों के भेद हैं। ये तिर्यक् लोक में निवास करने वाले हैं। ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के हैं। बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनिश्चर, राहु, धूमकेतु, बुध और अंगारक (मंगल), तप्त-स्वर्ण के समान वर्ण वाले ये ग्रह, ज्योतिष चक्र में विचरते हैं और गति करने में आनन्द मानने वाले हैं, केतु आदि तथा अट्टाईस प्रकार के नक्षत्र देवगण, विविध प्रकार के संस्थान वाले तारागण, जिनकी दीप्ति स्थिर रहती है और जो अविश्रांत गति से मण्डल के रूप में विचरते हुए तिर्यक् लोक के ऊपर के भाग में रहते हैं।

उड्डुलोयवासी दुविहा वेमाणिया य देवा सोहम्मी-साण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोए-लंतक-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुया कप्पवर-विमाणवासिणो सुरगणा, गेविज्जा अणुत्तरा दुविहा कप्पाईया विमाणवासी महिड्डिया उत्तमा सुरवरा एवं य ते चउविहा सपरिसा वि देवा ममायंति भवण वाहण-जाणविमाण-सयणासणाणि य णाणाविह वत्थभूसणा पवरपहरणाणि य णाणामणिपंचवण्णदिव्वं य भायणाविहिं णाणाविहकामरूवे वेउव्वियअच्छरगणसंधाते दीव-समुहे दिसाओ विदिसाओ चेइयाणि वणसंडे पव्वए य गामणयराणि य आरामुज्जाणकाणणाणि य कूव-सर-सलाग-वावि-दीहिय-देवकुल-सभप्पववसहिमाइयाहिं बहुयाइं कित्तणाणि य परिगिण्हत्ता परिग्गहं विउलदव्वसारं देवावि सइंदगा ण तित्तिं ण तुट्ठिं उवलभंति अच्चंत विउललोहाभिभूयसत्ता वासहर-इक्खुगार-वट्टपव्वय-कुंडल-रुयग-वरमाणुसोत्तर-कालोदहि-लवण-सलिल-दइपइ-रइकर-अंजणक-सेल-दहिसुह-वपाउप्पाय-कंचणक-चित्त-विचित्त-जमकवर-सिहरकूडवासी वक्खार-अकम्मभूमिसु।

शब्दार्थ - उड्डुलोयवासी - ऊर्ध्व लोक में निवास करने वाले, दुविहा - दो प्रकार के, वेमाणिया-वैमानिक, देवा - देव, सोहम्मीसाणसणंकुमारमाहिंदबंभलोयलंतगमहासुक्कसहस्सार आणयपाणयआरणअच्चुया - सौधर्म, ईशान, सनतकुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लांतक, महाशुक्र, सहस्वार, आणत, प्राणत, आरण और अच्युत, कप्पवरविमाणवासिणो - इन कल्प विमानों में रहने वाले, सुरगणा - देव, गेविज्जा - ग्रैवेयक, अणुत्तरा - अनुत्तर, दुविहा - दो प्रकार के, कप्पाईया - कल्पातीत, विमाणवासी - विमान में रहने वाले, महिड्डिया - महान् ऋद्धिवाले, उत्तमासुरवरा - देवोत्तम, एवं इसी प्रकार, चउव्विहा - चार प्रकार की, सपरिसा - परिषद्युक्त, देवा - देव, ममायंति -

ममत्व वाले होते हैं, भवण वाहण - भवन और वाहन, जाणविमाणसयणासणाणि - यान, विमान और शयन आसन, णाणाविहवत्थ - विविध प्रकार के वस्त्र और, भूसणा - आभूषण, पवरपहरणाणि - उत्तम शस्त्र, णाणामणि पंचवण्णदिव्वं - पाँच प्रकार के दिव्य वणों वाली मणियों का समूह, भायणाविहिं - भाजनों का समूह, णाणाविहकामरूवे - इच्छानुसार विविध प्रकार के रूप बनाने वाली, वेडव्वियअच्छरणसंघाते - वैक्रिय से बनाए हुए वस्त्रादि से विभूषित अप्सराओं पर, दीवसमुहे - द्वीप समुद्र, दिसाओ विदिसाओ - दिशा और विदिशाएँ, चेइयाणि - चैत्यवृक्ष, वणसंडे - वनखण्ड, पव्वए - पर्वत, गामणयराणि - ग्राम नगर, आरामुज्जाणकाणणाणि - आराम, उद्यान और कानन, कूव-सरतलागवाविदीहिय - कूप, सरोवर तालाब बावड़ी दीर्घिका, देवकुलसभप्पववसहिमाइयाहिं - देवकुल सभा प्रपा और वसती आदि में, बहुयाइं - बहुत-से, कित्तणाणि - कीर्तन योग्य स्थान, परिगिण्हत्ता - ग्रहण करके, परिग्गहं - परिग्रह, विउलदव्वासारं - बहुत-से उत्तमोत्तम द्रव्यों का, देवावि - देव, सइंदगा - इन्द्र सहित, ण - नहीं, तिंत्ति - तृप्ति, ण तुट्ठि - तुष्टि भी नहीं, उवलभंति-प्राप्त करते, अच्चंतविउललोहाभिभूयसत्ता- अत्यंत विस्तृत लोभाभूत होकर, वासहरइक्खुगारवडु-पव्वय - वर्षधर, इषुकार, गोल पर्वत, कुंडलरुयगवरमाणुसोत्तर - कुंडल पर्वत, रुचक पर्वत, मानुषोत्तर पर्वत, कालोदहिलवणसलिलदहपइरइकरअंजणकसेलदहिमुहवपाउप्पायकंचणकचित्तविचित्तजंम-कवर-सिहरकुडवासी- कालोदधि समुद्र, लवण समुद्र, नदी, हृदपति, रतिकर, अंजनक, दधिमुख, अवपात, उत्पात काञ्चनक, चित्र विचित्र और यमकवर पर्वतों के शिखर पर निवास करने वाले देव, वक्खार अकम्मभूमिसु - वक्षस्कार तता अकर्मभूमि में निवास करने वाले।

भावार्थ - ऊर्ध्वलोक में निवास करने वाले वैमानिक देव दों प्रकार के हैं - कल्पोपपन्न और कल्पातीत। कल्पोपपन्न में - १. सौधर्म २. ईशान ३. सनत्कुमार ४. माहेन्द्र ५. ब्रह्मलोक ६. लान्तक ७. महाशुक्र ८. सहस्रार ९. आणत १०. प्राणत ११. आरण और १२. अच्युत। ये बारह जाति के वैमानिक देव कल्पविमानवासी हैं। कल्पातीत देव दो प्रकार के हैं - ग्रैवेयक और अनुत्तर। ये देव महान् ऋद्धि-सम्पन्न तथा उच्च प्रकार के हैं। ये देवगण, अपनी-अपनी परिषद् के साथ परिग्रह में अत्यन्त आसक्त रहते हैं। वे देव भवन, वाहन, यान, विमान, शयन, आसन और विविध प्रकार के वस्त्राभूषण, उत्तमकोटि के शस्त्र, पाँच प्रकार के वर्ण वाली दिव्य मणियों के समूह, भाजनों का समूह और इच्छानुसार विविध प्रकार के मोहक रूप बनाने वाली अप्सराओं पर ममत्व रखते हैं। द्वीप, समुद्र, दिशाविदिशाएँ, चैत्यवृक्ष, वनखण्ड, पर्वत, ग्राम, नगर, आराम, उद्यान, कानन, कूप, सरोवर, तालाब, बावड़ी, दीर्घिका (बड़ी बावड़ी) देवकुल सभा, प्रपा (प्याऊ) और वसति आदि तथा बहुत-से कीर्तिसम्पन्न अथवा कीर्तन के स्थानों में तथा बहुत-से उत्तमोत्तम द्रव्यों का परिग्रह संग्रह करके भी वे देव और देवेन्द्र न तो तृप्त होते हैं, न सन्तुष्ट रहते हैं। वे लोभ से अत्यन्त ग्रस्त हैं। इसी प्रकार वर्षधर, इषुकार, गोलपर्वत, कुण्डल पर्वत, रुचक पर्वत, मानुषोत्तर पर्वत, कालोदधि-समुद्र, लवण-समुद्र, गंगा

आदि नदियाँ, हृदपति रतिकर अञ्जनक, दधिमुख, अवपात, उत्पात, काञ्चन चित्रविचित्र और यमकवर, इन पर्वतों के शिखर पर निवास करने वाले देव और वक्षस्कार तथा अकर्मभूमि में निवास करने वाले आदि सभी देव परिग्रह पर आसक्त रहने वाले हैं।

कर्मभूमि के मनुष्यों का परिग्रह

सुविभक्तभागदेसासु कम्मभूमिसु जे वि य णरा चाउरंतचक्कवट्टी वासुदेवा बलदेवा मंडलीया इस्सरा तलवरा सेणावई इब्भा सेट्टी रट्टिया पुरोहिया कुमारा दंडणायगा माडंबिया सत्थवाहा कोडुंबिया अमच्चा एए अण्णे य एवमाई परिग्गहं संचिणंति अणंत असरणं दुरंतं अधुवमणिच्चं असासयं पावकम्मणेम्मं अवकिरियव्वं विणासमूलं वहबंधपरिकिलेसबहुलं अणंतसंकिलेसकारणं, ते तं धणकणगरयणणिचयं पिंडिया चेव लोहघत्था संसारं अइवयंति सव्वदुक्ख संणिलयणं।

शब्दार्थ - सुविभक्तभागदेसासु - जिने भाग और देश विभक्त हैं, कम्मभूमिसु - कर्मभूमि में रहने वाले, जे - जो, णरा - मनुष्य, चाउरंतचक्कवट्टी - चारों दिशाओं में अपनी आज्ञा मनाने वाले चक्रवर्ती, वासुदेवा - वासुदेव, बलदेवा - बलदेव, मंडलीया - माण्डलिक राजा, इस्सरा - ईश्वर युवराज, तलवरा - तलवर-जागीरदार, सेणावई - सेनापति, इब्भा - इभ्य सेठ, सेट्टी - सेठ, रट्टिया - राष्ट्र के हित की चिंता करने वाले, पुरोहिया - पुरोहित, कुमारा - राजकुमार, दंडणायगा - दण्डनायक, माडंबिया - माडंबिक, सत्थवाहा - सार्थवाह, कोडुंबिया - कौटुम्बिक, अमच्चा - मंत्री, एए - ये सब, अण्णे - दूसरे सभी लोग, य - और, एवमाई - इसी प्रकार के, परिग्गहं - परिग्रह का, संचिणंति - संचय करते हैं, अणंत - अपरिमित, असरणं - शरणभूत नहीं होता, दुरंत - जिसका अन्त बड़ी कठिनाई से होता है, अधुव - अधुव है, अणिच्चं - अनित्य है, असासयं - अशाश्वत है, पावकम्मणेम्मं - पाप कर्म का मूल है, अवकिरियव्वं - त्यागने योग्य हैं, विणासमूलं - विनाश का मूल है, वहबंधपरिकिलेसबहुलं - जिसमें वध, बन्धन और क्लेश की अधिकता है, अणंतसंकिलेसकारणं - अनन्त क्लेशों का हेतु है, ते - वे लोग, तं - उस परिग्रह का, धणकणगरयणणिचयं - धन, कनक और रत्नों का समूह रूप, पिंडिया - संग्रह करने वाले, लोहघत्था - लोभग्रस्त होकर, संसार - संसार में, अइवयंति - परिभ्रमण करते रहते हैं, सव्वदुक्खसंणिलयणं - सभी दुखों के आश्रयभूत।

भावार्थ - जिनके भाग और देश विभक्त हैं, ऐसी कर्मभूमि के मनुष्य और चारों दिशाओं पर अधिकार रखने वाले ऐसे चक्रवर्ती, नरेन्द्र, वासुदेव, बलदेव, माण्डलिक राजा, ईश्वर (युवराज) तलवर (भूमिपति-जागीरदार), सेनापति, इभ्य-सेठ, राष्ट्र नेता, पुरोहित, राजकुमार, दण्डनायक, माडंबिक,

कौटुम्बिक, अमात्य (मन्त्री) ये सभी और इसी प्रकार के अन्य लोग, धन का संचय करते हैं। किन्तु वह धन उनको दुःख से बचा नहीं सकता, रक्षक नहीं होता। धन-संचय से उत्पन्न पाप के कटु फल का परिणाम बड़ा भयंकर होता है। उसका अन्त आना अत्यन्त कठिन है। यह परिग्रह अध्रुव है, अनित्य है, अशाश्वत है, पाप-कर्म का मूल है। ज्ञानियों के लिए त्यागने योग्य है। विनाश का मूल है। जीव के लिए वध, बन्धन और क्लेश का कारण है। अनन्त क्लेशों का हेतु है। धन, कनक और रत्नों का समूह रूप परिग्रह का संग्रह करने वाले लोभ ग्रस्त होकर समस्त दुःखों के आश्रयभूत ऐसे संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं।

विवेचन - इस सूत्र में कर्मभूमि के मनुष्यों, चक्रवर्ती नरेन्द्र, वासुदेवादि महर्द्धिक मनुष्यों और अधिकारियों तथा सामान्य मनुष्यों की धनोपासना और उसके परिणाम स्वरूप होने वाली सुदीर्घ दुःख परम्परा का उल्लेख किया गया है।

विविध कलाएँ भी परिग्रह के लिये

परिग्रहस्स य अट्टाए सिप्पसयं सिक्खए बहुजणो कलाओ य बावत्तरि सुणिउणाओ लेहाइयाओ सउणरुयावसाणाओ गणियप्पहाणाओ चउसट्ठिं य महिलागुणे रइजणणे सिप्पसेवं असि-मसि-किसि-वाणिज्जं ववहारं अत्थसत्थइसत्थच्छरुप्पगयं विविहाओ य जोगजुंजणाओ अण्णेसु एवमाइएसु बहुसु कारणसएसु जावज्जीवं णडिज्जए सच्चिणंति मंदबुद्धी परिग्रहस्सेव य अट्टाए करंति पाणाण-वहकरणं अलिय-णियडिसाइससंपओगे परदव्वाभिज्जा सपरदारअभिगमणासेवणाए आयासविसूरणं कलहभंडणवेराणि य अवमाणणविमाणणाओ इच्छामहिच्छप्पिवाससययतिसिया तण्णगेहि लोहघत्था अत्ताणा अणिग्गहिया करंति कोहमाणमायालोहे अकित्तणिज्जे परिग्रहे चेव होंति णियमा सत्त्ता दंडा य गारवा य कसाया सण्णा य कामगुणअणहगा य इंदियलेस्साओ सयण-संपओगा सच्चित्ताचित्तमीसगाइं दव्वाइं अणंतगाइं इच्छंति परिघेत्तुं सदेवमणुयासुरम्मि लोए लोहपरिग्रहो जिणवरेहिं भणिओ णत्थि एरिसो पासो पडिबंधो अत्थि सव्वजीवाणं सव्वलोए।

शब्दार्थ - परिग्रहस्स अट्टाए - परिग्रह के लिए, सिप्पसयं - सैकड़ों प्रकार के शिल्पों की, सिक्खए - शिक्षा ग्रहण करते हैं, बहुजणो - बहुत-से लोग, कलाओ - कलाओं की, य - और, बावत्तरि-बहतर, सुणिउणाओ - सुनिपुण, लेहाइयाओ- लेख आदि की क्रियाएँ, सउणरुयावसाणाओ- पक्षियों के शब्द के विज्ञानपर्यन्त की शिक्षा, गणियप्पहाणाओ - गणित-प्रधान कलाओं की शिक्षा,

चउसट्टि - चौसठ प्रकार के, महिलागुणे - स्त्री सम्बन्धी नृत्य-गीत आदि गुणों की शिक्षा, रडजणणे - रति को उत्पन्न करने वाले, सिप्यसेवं - राजादि की शिल्प के द्वारा सेवा करके, असिमसिकिसिवाणिज्जं-असि-शस्त्र चलाना, मसी-शास्त्र लिखना, कृषि-खेती करना और वाणिज्य-क्रय-विक्रय आदि करना, अत्थसत्थईसत्थच्छरुप्पवायं - राजनीतिशास्त्र, धनुर्वेद, छुरी आदि की मूठ पकड़ना, विविहाओ-अनेक प्रकार के, जोगजुंजणाओ - वशीकरण आदि योगों का विज्ञान, अण्णेसु - अन्य, एवमाइएसु - इसी प्रकार के, बहुसु - बहुत-से, कारणसएसु - सैकड़ों प्रकार के कारणों, जावज्जीवं - जीवन पर्यन्त, णडिज्जए - नाचते रहते हैं, सचिणंति - संचय करते हैं, मंदबुद्धि - अल्प बुद्धि वाले, परिग्गहस्सेव अट्टाए-परिग्रह के लिए ही, पाणाणं - प्राणियों का, वहकरणं- वध करना, अलियणियडिसाइसंपओगे-झूठ बोलना, ठगना, अल्प-मूल्य वाले पदार्थ को बहुमूल्य वाले पदार्थ में मिला कर बेचना, परदव्वाभिज्जा-दूसरों के धन को लेने की इच्छा करना, सुपरदारअभिगमणासेवणाए आयासविसूरणं- अपनी स्त्री को सेवन करके शारीरिक खेद प्राप्त करते हैं और पर-स्त्री को प्राप्त करने के लिए मानसिक चिंता से दुःखित होते हैं, कलहभंडणवेराणि - क्लेश शारीरिक कलह और वैर, अवमाणणविमाणणाओ - अपमान और तिरस्कार को प्राप्त होते हैं, इच्छामहिच्छप्पिवाससययतिसिया- इच्छा और महती इच्छा रूप प्यास से निरन्तर प्यासे रहने वाले प्राणी, तण्हगेहिलोहघत्था - तृष्णा, गृद्धि और लोभ में ग्रस्त, अत्ताणा- अशरण, अणिग्गहिया - मन और इन्द्रियों को वश में न करने वाले पुरुष, कोहमाणमायालोहे-क्रोध, मान, माया और लोभ, अकित्तणिज्जे - निन्दनीय, परिग्गहच्चेव - परिग्रह के कारण ही, णियमा-नियम से, सत्त्त्वा - माया, निदान और मिथ्यात्व के तीन शल्य, दंडा - मन, वचन और काया की दुष्ट प्रवृत्ति, गारवा - ऋद्धि रस और साता गारव, कसाया - कषाय, सण्णा - संज्ञा, कामगुणअण्हगा - शब्दादि पाँच कामगुण तथा पाँच आश्रव द्वार, इंदियलेस्साओ - इन्द्रिय लम्पटता और अशुभ लेश्याएँ प्राप्त होती हैं, सयणसंपओगा - स्वजन वर्ग का संयोग चाहते हैं, सचित्तचित्तमिसगाइं - सचित्त, अचित्त और मिश्र, दव्वाइं - द्रव्यों को, अणंतगाइं - अनन्त, इच्छंति - इच्छा करते हैं, परिवेत्तुं - संचय करने की, सदेवमणुयासुरम्मिलोए - देवलोक, मनुष्यलोक और असुरलोक में, लोहपरिग्गहो - लोभ के कारण ही परिग्रह, जिणवरेहिं - जिनवरों ने, भणिओ - कहा है, णत्थि - नहीं है, एरिसो - परिग्रह के समान दूसरा कोई, पासो - पाश-बन्धन, षडिबंधो - महाबन्धन, अत्थि - है, सव्वजीवाणं - सभी जीवों के लिए, सव्वलोए - समस्त लोक में।

भावार्थ - परिग्रह के लिए बहुत-से लोग, सैकड़ों प्रकार की शिल्पकलाएँ और अन्य बहतर प्रकार की कला सीखते हैं। निपुणतापूर्वक लेखन आदि से लगा कर पक्षियों की बोली के ज्ञानपर्यन्त तथा गणित-प्रधान कलाओं की शिक्षा ग्रहण करते हैं। धन के लिए रति-जनित महिलाओं का चौसठ प्रकार की कलाओं और नृत्य-गीतादि गुणों की शिक्षा प्राप्त की जाती है। धन के लिए राजसेवा का अभ्यास, शस्त्र-प्रयोग, लेखन कार्य, कृषि-कर्म, व्यापार, राजनीति, धनुर्वेद, खड्ग-छुरी आदि का

चलाना, वशीकरण करना और सैकड़ों प्रकार से अर्थोपार्जन के उपायों में प्रवृत्ति की जाती है। कई मन्दबुद्धि लोग नृत्य-कला के द्वारा जीवन-पर्यन्त नाच कर धन का संग्रह करते हैं। धन के लिए प्राणियों का वध करना, झूठ बोलना, ठगाई करना, वस्तु में मिलावट करके बेचना, दूसरे के धन को लेने के लिए ललचाना, इत्यादि प्रकार के दुष्कार्य करते हैं। वे इच्छा एवं महा-तृष्णा रूपी प्यास से सतत प्यासे ही रहते हैं। अपनी स्त्री का सेवन करके आयास (शारीरिक खेद) प्राप्त करते हैं और पर-स्त्री को प्राप्त करने के लिए चिन्तित रहते हैं। धनासक्त प्राणी क्लेश, भण्डण-निन्दा, वैर और अपमान तथा तिरस्कार प्राप्त करते हैं। तृष्णा, गृह्यता तथा लोभ में ग्रस्त जीव, असहाय एवं अत्राण रहते हैं। अपने मन और इन्द्रियों को वश में नहीं रखने वाले मनुष्य निन्दनीय होते हैं। धन के लिए क्रोध, मान, माया और लोभ करते हैं। परिग्रह के कारण नियम से शल्य, दुष्कृत्य, ऋद्धि आदि गर्व, कषाय, संज्ञा, शब्दादि कामगुण, आश्रव, इन्द्रिय-लम्पटता तथा अशुभ लेश्या प्राप्त होती है। परिग्रह के लिए मनुष्य स्वजनादि का सहयोग चाहते हैं और सचित्त, अचित्त और मिश्र ऐसे अनन्त द्रव्यों को संचय करने की इच्छा रखते हैं। देव, मनुष्य और असुरलोक में सर्वत्र लोभ रूपी परिग्रह संचय किया जाता है। जिनेश्वर भगवंत ने कहा है कि परिग्रह के समान दूसरा कोई बन्धन नहीं है। समस्त लोक में सभी जीवों के लिए यह परिग्रह महाबन्धन है।

विवेचन - धन प्राप्त करने के साधन रूप सैकड़ों प्रकार के शिल्प और बहत्तर प्रकार की पुरुष सम्बन्धी तथा चौसठ प्रकार की स्त्री सम्बन्धी कलाएँ हैं।

शिल्प - हाथ की कारीगरी से वस्तु का निर्माण करना। घर, कुआँ, तालाब, भवन, वस्त्र, बरतन आदि बनाने का कार्य।

पुरुष की बहत्तर कलाएँ - समवायांग सूत्र में पुरुष की बहत्तर कलाएँ इस प्रकार बतलाई हैं-

१. लेखनकला २. गणितकला ३. रूपकला (चित्र मूर्ति आदि बनाने की विद्या) ४. नाट्य अभिनय ५. गीत (गायनकला) ६. वादनकला ७. स्वरगत (स्वर ज्ञान) ८. पुष्करगत (मृदंगादि वादन) ९. समताल (गीत का ताल मिलाना) १०. द्युत (जूआ) खेलना ११. जनवाद (द्युत विशेष) १२. पौरपत्य (नगर रक्षण-कला) १३. अष्टापद (द्युत विशेष) १४. दकमृतिका (मिट्टी में जल मिलाकर वस्तु निर्माण करना) १५. अन्नविधि (भोजन बनाने की कला) १६. पानविधि (पानी के गुण दोष जानने एवं शुद्ध करने की विद्या) १७. वस्त्रविधि (वस्त्र बुनने, बनाने, धोने और संस्कारित करने की कला) १८. शयनविधि (शयन के उपकरण तथा शयन करने विषयक विज्ञान) १९. आर्या (आर्यावृत्त आदि छन्द-काव्य निर्माण कला) २०. प्रहेलिका (गूढार्थ काव्य निर्माण कला) २१. मागधिका (मगध की भाषा) २२. गाथा (प्राकृत गाथा निर्माण) २३. श्लोक (संस्कृत श्लोक बनाना) २४. सुगन्धी युक्ति (इत्रादि सुगन्धित वस्तु बनाना) २५. मधुसिक्थ (मोम से वस्तुएँ बनाना) २६. आभरण विधि (गहने बनाने और पहनने की कला) २७. प्ररुणी प्रतिकर्म (युवती को वश में करने आदि की कला) २८. स्त्री

लक्षण २९. पुरुष लक्षण ३०. अश्व लक्षण ३१. गज लक्षण ३२. गो लक्षण ३३. कुर्कुट लक्षण ३४. मेढ (भेड़) लक्षण ३५. चक्र लक्षण ३६. छत्र लक्षण ३७. दण्ड लक्षण ३८. असि (खड्ग) लक्षण ३९. मणि लक्षण ४०. काकिणी लक्षण ४१. चर्म लक्षण ४२. चन्द्र लक्षण (ग्रहणादि फल) ४३. सूर्य लक्षण ४४. राहु चरित ४५. ग्रह चरित्र ४६. सौभाग्य वृद्धिकर ४७. दौर्भाग्य ४८. विद्यागत ४९. मन्त्रगत ५०. रहस्य ५१. स्वभाव ज्ञान ५२. चार (ज्योतिष विद्या) ५३. प्रतिचार (प्रतिकूल ग्रहों की चाल विषयक) ५४. व्यूह (युद्ध रचना) ५५. प्रतिव्यूह ५६. स्कन्धावार (सेना का पड़ाव लगाना) ५७. नगरमान (नगर निर्माण) ५८. वास्तुमान (गृह विज्ञान) ५९. सैन्य निवेश परिज्ञान ६०. वास्तु निवेश (गृह निर्माण) ६१. नगर निवेश ६२. इषुशास्त्र (नागपाशादि दिव्य-शस्त्रों का ज्ञान) ६३. त्सरुकला (खड्ग चलाना) ६४. अश्वशिक्षा ६५. हस्तिशिक्षा ६६. धनुर्वेद ६७. पाक (धातु आदि पचाना) ६८. युद्ध-कला ६९. खेल (क्रीड़ा) ७०. छेद्य (निशाना साधना) ७१. सजीव निर्जीव करण और ७२. शकुन शास्त्र।

स्त्रियों की ६४ कलाएँ - १ से १५ नृत्य, चित्र वादित्र, मन्त्र, वर्षा, शकुन गज अश्वपरीक्षा, स्त्री-पुरुष लक्षण, वैद्यक, अंजनयोग, वाणिज्य, कार्य, सर्वभाषा ज्ञान और वीणादि वादन।

१६. औचित्य ज्ञान (उचितानुचित का विचार) १७. ज्ञान १८. विज्ञान १९. दम्भ २०. जलस्तंभ २१. गायन २२. तालमेल २३. आराम रोपण (बगीचा लगाना) २४. आकार गोपन (पति को सहायक बनने में विविध प्रकार के भावों को धारण करना) २५. धर्म विचार २६. नीति विचार २७. प्रसादकला (मधुर भाषणादि) २८. संस्कृत जल्पन २९. सुवर्ण वृद्धि ३०. सुगन्धीकरण ३१. लीला संचारण (क्रीड़ा) ३२. काम-क्रिया ३३. लिपि-छेद ३४. तात्कालिक सावधानी ३५. वस्तु शुद्धि ३६. स्वर्ण-रत्न शुद्धि ३७. चूर्ण योग ३८. हस्त-लाघव ३९. वचन पटुता ४०. भोज्य विधि ४१. व्याकरण ४२. शालिखण्डन ४३. मुख-मण्डलन ४४. कथा कथन ४५. कुसुम-गुंधन (पुष्प के आभूषणादि बनाना) ४६. श्रृंगार कला ४७. अभिधान (वस्त्र परिधान आदि की कला) ४८. आभरण विधि ४९. भृत्योपचार (सेवक-सेविका के साथ व्यवहार करने की शिक्षा) ५०. गृह्याचार (घर सम्बन्धी नीति) ५१. संचयकरण (वस्तु का संग्रह कर रखने की कला) ५२. भोजन बनाना ५३. केश बन्धन ५४. वितण्डावाद ५५. अंक विचार ५६. लोक-व्यवहार ५७. प्रश्न-प्रहेलिका ५८. अन्त्याक्षरी ५९. क्रियाकल्प (कार्य करने या वस्तु बनाने-सुधारने की कला) ६०. वर्णिका-वृद्धि (वस्तु को आकर्षक बनाने की कला) ६१. घटध्रमण (?) ६२. सार परिश्रम (व्यर्थ परिश्रम नहीं करके सारभूत परिश्रम करना) ६३. पर-निराकरण (विपक्षी या विरोधी को हटाने की कला) और ६४. फल-बुद्धि।

पुरुषों और स्त्रियों की शिक्षा के उपरोक्त विषय देख कर, उस समय की शिक्षा की उच्चता सार्वदेशीयता एवं उपयोगिता का आभास मिल सकेगा। इससे वर्तमान समय की शिक्षा की क्षुद्रता का भी पता चल सकेगा। पुरुषों की ७२ कलाओं का उल्लेख समवायांग के मूल पाठ से लिया है। अन्य ग्रन्थों में पाठ-भेद भी है। स्त्रियों की कलाओं का उल्लेख मूलसूत्र में देखने में नहीं आया। ये सभी

कलाएँ सम्यग्दर्शन के अभाव में मिथ्यात्व एवं आश्रव-वर्द्धक तो है ही। सूत्रकार ने इनका सम्बन्ध परिग्रह प्राप्ति से जोड़ा है। वैसे ये प्रतिष्ठा प्राप्ति की साधन भी होती हैं और मोहवर्द्धक भी। बिना आत्मोत्थान के सभी कलाएँ संसार-वर्द्धक होती हैं। किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि -

“कला बहत्तर जगत में, जा में दो सिरदार।

एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार ॥”

जीवन-निर्वाह की कला भी वैसी हो, जो अल्प आरम्भ युक्त हो। आसक्ति भी अल्प हो और आत्मोत्थान में बाधक भी नहीं हो, अन्यथा सभी कलाएँ क्षणिक सुख और चिर दुःखदायक हैं।

परिग्रह पाप का कटुफल

परलोगम्मि य णट्ठा तमं पविट्ठा महयामोहमोहियमई तिमिसंधयारे तसथावरसुहुमबायरेसु पज्जत्तमपज्जत्तग-साहारण-पत्तेय सरीरेसु य अण्डय-पोयय-जराउय-रसय-संसेइम-सम्मच्छिम-उब्भिय-उववाइएसु य णरय-तिरिय-देव-मणुस्सेसु जरामरणरोगसोगबहुलेसु पलिओवम-सागरोवमाइं अणाइयं अणवयगं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्ठंति जीवा लोहवससण्णिविट्ठा। एसो सो परिग्गहस्स फलविवागो इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ ण अवेयइत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवरणामधिज्जो कहेसी य परिग्गहस्स फलविवागं। एसो सो परिग्गहो पंचणो उ णियमा णाणामणिकणगरयण-महरिह एवं जाव इमस्स मोक्खवरमोत्तिमग्गस्स फलहभूओ। चरिमं अहम्मदारं सम्मत्तं ॥ त्ति बेमि ॥

शब्दार्थ - परलोगम्मि - परलोक में भी, णट्ठा - विनाश को प्राप्त होते हैं, तमं - अंधकारमय नरक में, पविट्ठा - प्रवेश करते हैं, महयामोहमोहियमई - महामोहनीय से मोहित मति वाले जीव, तिमिसंधयारे - जिनमें अज्ञान रूपी अंधकार भरा हुआ है, तसथावरसुहुमबायरेसु - त्रस, स्थावर, सूक्ष्म और बादर, पज्जत्तमपज्जत्तगसाहारणपत्तेयसरीरेसु - पर्याप्त, अपर्याप्त, साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर में, अण्डयपोययजराउयरसयसंसेइमसम्मच्छिमउब्भियउववाइएसु - अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदिम, सम्मुच्छिम, उद्भिज और औपपातिक में, णरयतिरियदेवमाणुस्सेसु - नरक, तिर्यंच, देव और मनुष्य आदि योनियों में, जरामरणरोगसोगबहुलेसु - जरा, मरण, रोग और शोक की बहुलता वाला, पलिओवमसागरोवमाइं - पल्योपम और सागरोपम तक, अणाइयं - इस अनादि, अणवयगं -

अनन्त, दीहमद्धं - बहुत लम्बे समय तक, चाउरंतसंसारकंतारं - चार गति वाले संसार रूपी घोर वन में, अणुपरिग्रहं - परिभ्रमण करते रहते हैं, जीवा - जीव, लोहवससण्णविट्ठा - लोभ के वश परिग्रह के संचय में अत्यन्त आसक्त, एसो सो - यह, परिग्गहस्स - परिग्रह का, फलविवाओ - फल विपाक है, इहलोइओ - इहलौकिक, परलोइओ - पारलौकिक, अप्पसुहो - अल्प सुख, बहुदुक्खो - बहुत दुःखों से परिपूर्ण, महब्भओ - महाभयंकर, बहुरय्यग्गो - बहुत पापों से युक्त, दारुणो - दारुण, कक्कसो - कर्कश, असाओ - असंगत रूप हैं, वाससहस्सेहिं - हजारों वर्षों के पश्चात्, मुच्चई - छुटकारा, अब्बेयइत्ता - इसका फल भोगे बिना, मोक्खोत्ति ण अत्थि - छुटकारा नहीं हो सकता, णायकुलणंदणो - ज्ञातकुलनन्दन, जिणो - भगवान् ने, वीरवरणामधिग्गो - वीरवर नाम वाले अर्थात् भगवान् महावीर, कहेसी - कहा है, परिग्गहस्स - परिग्रह का, फलविवागं - फल-विपाक, मोक्खवरमोत्तिमगस्वस - श्रेष्ठ मोक्षमार्ग का, फलिहभूओ - अर्गला रूप हैं, चरिमं - अंतिम, अहम्मदरं - अधर्मद्वार, सम्मत्तं - समाप्त हुआ, त्ति बेमि - ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ - परिग्रही जीव परलोक में भी नष्ट होता है। उसकी सुख-शान्ति नष्ट हो जाती है। वह घोर अन्धकारमय नरक स्थान में प्रवेश करता है। उस महामोहनीय से मोहित मति वाले जीव में अज्ञानरूपी अन्धकार भी गाढरूप से छाया रहता है। ऐसे महापरिग्रही जीव त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, साधारण शरीर, प्रत्येक शरीर, अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदिम, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज और औपपातिक में तथा नरक, तिर्यंच, देव और मनुष्यादि योनियों में बार-बार जन्म-मरण करते रहते हैं। लोभ के वशीभूत होकर और परिग्रह के संचय में अत्यन्त आसक्त होकर जीव इस चार गति वाले अनादि अनन्त संसार रूपी घोर अटवी में दीर्घकाल पर्यन्त परिभ्रमण करते रहते हैं।

परिग्रह के पाप का यह इहलौकिक और परलौकिक फलविपाक है। परिग्रह में सुख तो अत्यन्त अल्प है, किन्तु दुःख अत्यन्त घोर है और अधिकाधिक है। यह पाप महान् भयानक बहुत से पापों से भरा हुआ, दारुण, कर्कश एवं अशांति कारक है। हजारों वर्षों तक दुःख भोगने के बाद इससे छुटकारा होता है। बिना फल-भोग के छुटकारा नहीं होता।

इस प्रकार परिग्रह के पाप का कटुतम फल-विपाक, ज्ञातकुल-नन्दन, महान् आत्मा जिनेश्वर भगवान् महावीर ने कहा है। अनेक प्रकार के मणि, रत्न और स्वर्णादि रूप द्रव्य संचयरूप परिग्रह नामक पाँचवाँ आस्रवद्वार है। यह परिग्रह का पाप उत्तमोत्तम ऐसे मोक्ष मार्ग के लिए अर्गला के समान बाधक है।

यह परिग्रह नामक पाँचवा अधर्मद्वार समाप्त हुआ। ऐसा मैं कहता हूँ।

आस्रवों का उपसंहार

एएहिं पंचहिं असंवरेहिं, ✧ रयमादिणित्तु अणुसमयं ।

चउविहगइपेरंतं, अणुपरियट्टंति संसारे ॥ १ ॥

शब्दार्थ - एएहिं - इन, पंचहिं - पाँच, असंवरेहिं - आस्रवद्वारों से, रयं - कर्म रूपी रज का, अदिणित्तु - संग्रह करके, अणुसमयं - प्रति समय, चउविहगइपेरंतं - चार गति रूप, संसारे - संसार में, अणुपरियट्टंति - परिभ्रमण करता रहता है ।

भावार्थ - इन पाँच आस्रवद्वारों से आत्मा प्रतिसमय कर्म रूपी रज का संग्रह करके, चार गति रूप संसार-सागर में परिभ्रमण करती रहती है ॥ १ ॥

सव्वगइपक्खंदे, काहिंति अणंतए अकयपुण्णा ।

जे य ण सुणंति धम्मं, सोऊण य जे पमायंति ॥ २ ॥

शब्दार्थ - सव्वगइपक्खंदे - सभी गतियों में गमनागमन, काहिंति - करते रहते हैं, अणंतए - अनन्त काल तक, अकयपुण्णा - पुण्य कार्य नहीं करने वाले, जे - जो, य - और, ण सुणंति - श्रवण नहीं करते, धम्मं - धर्म, सोऊण - सुन करके, पमायंति - प्रमाद करने वाले ।

भावार्थ - जो धर्म का श्रवण नहीं करते हैं जो सुन कर भी प्रमाद करते हैं, वे पाँच आस्रवों का निरोध रूप पुण्य-कार्य नहीं करने वाले जीव, अनन्त काल तक सभी गतियों में गमनागमन करते रहते हैं ॥ २ ॥

अणुसिट्ठं वि बहुविहं, मिच्छदिट्ठिया जे णरा अहम्मा ।

बद्धणिकाइयकम्मा, सुणंति धम्मं ण य करेति ॥ ३ ॥

शब्दार्थ - अणुसिट्ठं - कही गई शिक्षा, बहुविहं - गुरु के द्वारा अनेक प्रकार से, मिच्छदिट्ठिया - मिथ्यादृष्टि, णरा अहम्मा - अधर्मी पुरुष, बद्धणिकाइयकम्मा - निकाचित कर्म बाँधने वाले, सुणंति-सुनते हैं, धम्मं - धर्म, ण करेति - आचरण नहीं करते ।

भावार्थ - जो मिथ्यादृष्टि और अधर्मी पुरुष हैं और निकाचित-कर्म बाँधते हैं, वे गुरु के द्वारा अनेक प्रकार से कही हुई शिक्षा सुन कर भी धर्म का आचरण नहीं करते । वे गुरु की शिक्षा की उपेक्षा करते हैं ॥ ३ ॥

✧ 'आसवेहिं' पाठ भी है ।

किं सक्का काउं जे, णेच्छह ओसहं मुहा पाउं ।

जिणवयणं गुणमहुरं, विरेयणं सव्वदुक्खाणं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ - किं - कैसे, सक्का - समर्थ हो सकती है, काउं - उनके दुःखों को दूर करने में, णेच्छह - नहीं चाहते हैं, ओसहं - औषधि, मुहा - निःस्वार्थ भाव से दी जाने वाली, पाउं - पीना, जिणवयणं - तीर्थंकर भगवान् के वचन रूप, गुणमहुरं - गुणों में मधुर, विरेयणं सव्वदुक्खाणं - समस्त दुःखों को दूर करने वाली ।

भावार्थ - जो रोगी, वैद्य की दवा नहीं लेना चाहता, उसकी व्याधि दूर नहीं हो सकती, इसी प्रकार जो तीर्थंकर भगवान् के वचन रूपी औषध का सेवन नहीं करते, उनका भवभ्रमण रूप दुःख दूर नहीं सकता ॥ ४ ॥

पंचेव य उज्झिऊणं, पंचेव य रक्खिऊणं भावेणं ।

कम्मरय-विप्पमुक्कं, सिद्धिवर-मणुत्तरं जंति ॥ ५ ॥

शब्दार्थ - पंचेव - इन पाँच का, उज्झिऊणं - त्याग करके, य - और, पंचेव - आगे कहे जाने वाले पाँच संवर द्वारों का, भावेणं - भावपूर्वक, रक्खिऊणं - पालन करके, कम्मरयविप्पमुक्कं - कर्म-रज से रहित, सिद्धिवरं - उत्तम सिद्धगति, अणुत्तरं - सर्वश्रेष्ठ, जंति - प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ - इन पाँच आस्रवद्वारों का त्याग करके और आगे कहे जाने वाले पाँच संवरद्वारों का भावपूर्वक पालन करके जीव, कर्मरज से रहित होकर सर्वश्रेष्ठ उत्तम सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

॥ आस्रव द्वार समाप्त ॥

यहाँ तक प्रश्नव्याकरण सूत्र के पाँचों आस्रवद्वार और उसके दुःखद फल-विपाक का स्वरूप बतला कर सूत्रकार ने आस्रव का त्याग करके आगे कहे जाने वाले संवर का सेवन करने का उपदेश किया है ।

॥ आस्रव द्वार नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध समाप्त ॥

संवर नामक दूसरा श्रुतस्कंध

अहिंसा संवर द्वार नामक प्रथम अध्ययन

जंबू! एत्तो संवरदाराइं, पंच वोच्छामि आणुपुव्वीए ।

जह भणियाणि भगवया, सव्वदुक्खविमोक्खणट्टाए ॥ १ ॥

शब्दार्थ - एत्तो - यहाँ से, संवरदाराइं - संवर द्वारों को, पंच - पाँच, वोच्छामि - मैं कहूँगा, आणुपुव्वीए - अनुक्रम से, जह - जिस प्रकार, भणियाणि - कहा था, भगवया - भगवान् ने, सव्वदुक्खविमोक्खणट्टाए - समस्त दुःखों का विनाश करने के लिए ।

भावार्थ - श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं कि हे जंबू! अब मैं उन पाँच संवरद्वारों को अनुक्रम से कहूँगा कि जिन्हें भगवान् महावीर स्वामी ने समस्त दुःखों को नष्ट करने के लिए कहा था ।

पढमं होइ अहिंसा, विइयं सच्चवयणं ति पणत्तं ।

दत्तमणुण्णाय संवरो य, बंधचेरमपरिग्रहत्तं य ॥ २ ॥

शब्दार्थ - पढमं - प्रथम, होइ - है, अहिंसा - हिंसा नहीं करना, विइयं - दूसरा, सच्चवयणं - सत्य वचन, पणत्तं - कहा गया है, दत्तं - जो दिया जाए, अणुण्णाय - स्वामी की आज्ञा से, संवरो - संवर, य - और, बंधचेर - ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहत्तं - अपरिग्रह ।

भावार्थ - पहला संवरद्वार अहिंसा है । दूसरा सत्य वचन, तीसरा स्वामी की आज्ञा से दिया हुआ, चौथा ब्रह्मचर्य और पाँचवाँ अपरिग्रह कहा गया है ।

तत्थ पढमं अहिंसा, तस-थावर-सव्वभूय-खेमकरी ।

तीसे सभावणाओ, किंचिवुच्छंगुणुद्देसं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ - तत्थ - इनमें, पढमं - प्रथम, तस-थावर-सव्वभूय-खेमकरी - त्रस और स्थावर सभी प्राणियों का क्षेम करने वाली, तीसे - उसके, सभावणाओ - भावनाओं सहित, किंचि - कुछ, वुच्छं - वर्णन करूँगा, गुणुद्देसं - गुणदेश को ।

भावार्थ - पाँच संवर द्वारों में पहला संवर अहिंसा है । यह अहिंसा, त्रस और स्थावर सभी प्राणियों का क्षेम करने वाली है । मैं अहिंसा का भावनाओं सहित कुछ गुणों का वर्णन करूँगा ।

ताणि उ इमाणि सुव्वय! महव्वयाइं लोयहियसव्वयाइं सुयसागरदेसियाइं
तवसंजममहव्वयाइं सीलगुणवरव्वयाइं सच्चज्जवव्वयाइं णरय-तिरिय-मणुय-देवगइं-
विवज्जगाइं सव्वजिणसासणगाइं कम्मरयविदारगाइं भवसयविणासगाइं

दुहसयविमोयणगाइं सुहसयपवत्तणगाइं कापुरिसदुरुत्तराइं सप्पुरिसणिसेवियाइं
णिव्वाणगमणसग्गप्पयाणगाइं संवरदाराइं पंच कहियाणि उ भगवया ।

शब्दार्थ - ताणि - वे, इमाणि - ये, सुव्वय - हे सुव्रत-अच्छे व्रतों के धारक, महव्वयाइं - महाव्रत कहलाते हैं, लोयहियसव्वयाइं - समस्त लोक के लिए हितप्रद, सुयसागरदेसियाइं - शास्त्र रूपी सागर से उपदिष्ट, तवसंजममहव्वयाइं - ये तप संयम और महाव्रत रूप हैं, सीलगुणवरव्वयाइं - शील और उत्तम गुणों में प्रधान, सच्चव्वज्जवव्वयाइं - सत्य भाषण और आर्जव-सरलता रूप, णरयतिरियमणुयदेवगइविव्वज्जगाइं - नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति को वर्जित करने वाले-मोक्ष देने वाले, सव्वजिणसासणगाइं - सभी जिनेश्वर भगवंतों ने इनकी शिक्षा दी है, कम्मरयविदारगाइं - कर्मरूपी रज को नष्ट करने वाले, भवसयविणासगाइं - सैकड़ों भवों को नाश करने वाले, दुहसयविमोयणगाइं - सैकड़ों दुःखों को मिटाने वाले, सुहसयपवत्तणगाइं - सैकड़ों सुखों के दाता, कापुरिसदुरुत्तराइं - कायर पुरुषों के लिए दुस्तर है, सप्पुरिसणिसेवियाइं - सत्पुरुषों द्वारा सेवित, णिव्वाणगमणसग्गप्पयाणगाइं - मोक्ष तथा स्वर्ग के दाता, संवरदाराइं - संवर द्वार, पंच - पाँच, कहियाणि - कहे हैं, भगवया - भगवान् महावीर स्वामी ने।

भावार्थ - गणधर भगवान् सुधर्मा स्वामीजी म० श्री जम्बू स्वामीजी से कहते हैं कि-हे उत्तम व्रतों के धारक जम्बू! ये पाँच संवर रूपी महाव्रत, समस्त लोक के लिए हितकारी एवं मंगलकारी हैं। श्रुतसागर में इन महाव्रतों का उपदेश हुआ है। ये पाँचों तप संयम और महाव्रत रूप हैं। शील एवं उत्तम गुणों का समूह इनमें रहा हुआ है। सत्य वचन एवं आर्जवता (सरलता) युक्त ये व्रत नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गति को रोककर मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। सभी जिनेश्वर भगवंतों ने इनकी शिक्षा प्रदान की है। ये संवर, कर्म रूपी रज को नष्ट करने वाले हैं। ये सैकड़ों भवों का छेदन कर सैकड़ों दुःखों को मिटाने वाले हैं और सैकड़ों प्रकार के सुखों को प्रदान करते हैं। इन महाव्रतों को कायर जन धारण नहीं कर सकते। इनका पालन सत्पुरुष ही कर सकते हैं। ये पाँचों महाव्रत मोक्ष एवं स्वर्ग के प्रदाता हैं। इन पाँच महाव्रतों का उपदेश भगवान् महावीर स्वामी ने दिया है।

द्विवेचन - प्रश्नव्याकरण सूत्र के 'संवर द्वार' नामक दूसरे श्रुतस्कंध का प्रारम्भ करते हुए तीन गाथाओं और उपरोक्त सूत्र में संवर द्वार का संक्षिप्त कथन करके संवर आराधना का महत्त्व बताया है। आत्मोत्थान का अमोघ उपाय सूत्रकार ने इन थोड़े शब्दों में व्यक्त कर दिया है।

अहिंसा भगवती के साठ नाम

तत्थ पढमं अहिंसा जा सा सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स भवइ दीवो ताणं सरणं
गई पइइटा १. णिव्वाणं २. णिव्वुई ३. समाही ४. सत्ती ५. कित्ती ६. कंती ७. रई य ८.
विरई य ९. सुयंग १०. तित्ती ११. दया १२. विमुत्ती १३. खंती १४. सम्मत्ताराहणा

१५. महंती १६. बोही १७. बुद्धी १८. धिई १९. समिद्धी २०. रिद्धी २१. विद्धी २२. ठिई २३. पुट्टी २४. णंदा २५. भद्दा २६. विसुद्धी २७. लद्धी २८. विसिद्धिद्धी २९. कल्लाणं ३०. मंगलं ३१. पमोओ ३२. विभूई ३३. रक्खा ३४. सिद्धावासो ३५. अणासवो ३६. केवलीण ठाणं ३७. सिवं ३८. समिई ३९. सीलं ४०. संजमोत्ति य ४१. सीलपरिघरो ४२. संवरो य ४३. गुत्ती ४४. ववसाओ ४५. उस्सओ ४६. जण्णो ४७. आययणं ४८. जयणं ४९. अप्पमाओ ५०. अस्सासो ५१. वीसासो ५२. अभओ ५३. सव्वस्स वि अमाघाओ ५४. चोक्ख ५५. पवित्ता ५६. सूई ५७. पूया ५८. विमल ५९. पभासा य ६०. णिम्मलयर त्ति एवमाईणि णिययगुणाणिम्मियाइं पज्जवणामाणि होति अहिंसाए भगवईए।

शब्दार्थ - तत्थ - पाँच संवरद्वारों में, पढमं - पहला, जा - जो, सा - वह, सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स - देव, मनुष्य और असुरों सहित समस्त लोक के लिए, भवइ - है, दीवो - दीपक के समान प्रकाशदात्री अथवा संसार-सागर में डूबते हुए प्राणियों के लिए दीप के समान, ताणं - रक्षा करने वाली, सरणं - आश्रय देने वाली, गई - गति, पइट्ठा - प्रतिष्ठा रूप, १. णिक्खाणं - निर्वाण, २. णिक्खुई - निर्वृत्ति, ३. समाही - समाधि, ४. सत्ती - शक्ति या शान्ति देनेवाली, ५. किस्सी - कीर्ति, ६. कंती - कान्ति, ७. रई - रति, ८. विरई - विरति, ९. सुयंग - श्रुतांग, १०. तिच्ची - तृप्ति, ११. दया - रक्षा रूप दया-अनुकम्पा, १२. विमुत्ति - मुक्त कराने वाली, १३. खंती - क्षान्ति, १४. सम्पत्ताराहणा - सम्यक्त्वाराधन, १५. महंती - महती, १६. बोहो - बोधि, १७. बुद्धी - बुद्धि, १८. धिई - धृति, १९. समिद्धी - समृद्धि, २०. रिद्धी - ऋद्धि, २१. विद्धी - वृद्धि, २२. ठिई - स्थिति, २३. पुट्टी - पुष्टि-समृद्धि, २४. णंदा - नन्दा, २५. भद्दा - कल्याण करने वाली, २६. विसुद्धी - विशेष शुद्ध बनाने वाली, २७. लद्धी - लब्धि, २८. विसिद्धिद्धी - विशिष्ट-दृष्टि, २९. कल्लाणं - कल्याण, ३०. मंगलं - मंगल करने वाली, ३१. पमोओ - प्रमोद दाता, ३२. विभूई - विभूति, ३३. रक्खा - रक्षा, ३४. सिद्धावासो - मोक्ष के अक्षय निवास की दाता, ३५. अणासवो - अनास्रव, ३६. केवलीण ठाणं - केवली भगवान् का स्थान, ३७. सिवं - शिव-मोक्ष का हेतु, ३८. समिई - सम्यग् प्रवृत्ति कराने वाली, ३९. सील - सदाचार, ४०. संजमो - संयम, ४१. सीलपरिघरो - शीलपरिगृह-चारित्र्य का घर, ४२. संवरो - संवर, ४३. गुत्ति - गुप्ति, ४४. ववसाओ - व्यवसाय, ४५. उस्सओ - शुभभावों को उन्नत करने वाली, ४६. जण्णो - यज्ञ रूप, ४७. आययणं - आयतन, ४८. जयणं - यजना, ४९. अप्पमाओ - अप्रमाद, ५०. अस्साओ - आश्वासन रूप, ५१. वीसासो - विश्वास देने वाली, ५२. सव्वस्स वि अभओ - सभी को अभय देने वाली, ५३. अमाघाओ - अमाघात या अमारी, ५४. चोक्ख - चोक्षा-पवित्र, ५५. पवित्ता - अतिशय पवित्र, ५६. सूई - शुचि, ५७. पूया - पूया अर्थात् पवित्र, ५८. विमल-

निर्मल, ५९. पभासा - प्रभासा-दीप्ति रूप और ६०. गिम्मलयर - निर्मलतर, एवमाईणि - इस प्रकार, अहिंसाए - अहिंसा, भगवईए - भगवती के, गिययगुणणिम्मियाइं - गुण निष्पन्न, पञ्जवणामाणि - पर्यायवाची नाम, होति - हैं।

विवेचन - इन पाँच संवरद्वारों में अहिंसा प्रथम संवर द्वार है। यह अहिंसा देव, मनुष्य और असुर युक्त समस्त लोक के लिए द्वीप के समान आधारभूत है अथवा दीपक के समान प्रकाश देने वाली है। शरणागत को आश्रय देने वाली है और प्रतिष्ठा रूप है। समस्त गुणों की प्रतिष्ठा अहिंसा में होती है। अहिंसा स्वतः अन्य सभी गुणों के लिए आधारभूत है। इस अहिंसा के गुण-निष्पन्न नाम इस प्रकार हैं -

१. निर्वाण - मोक्ष की हेतु।
२. निवृत्ति - समस्त पाप, दुर्ध्यान एवं दुःखों से निवृत्त करके शान्ति एवं प्रसन्नता प्रदान करने वाली।
३. समाधि - चित्त को शान्त एवं एकाग्र रखने वाली।
४. शक्ति - परमपद प्राप्त करने की शक्ति देने वाली अथवा शान्ति-परम शान्ति देने वाली।
५. कीर्ति - ख्याति प्राप्त कराने वाली, प्रशंसाजनक।
६. कान्ति - दीप्ति, तेज, प्रताप एवं सौन्दर्य वर्धिका।
७. रति - आनन्ददायिका।
८. विरति - हिंसादि पाप से हटाने वाली।
९. सुयंग - श्रुतांग-ज्ञान ही जिसका अंग है ऐसे श्रुतज्ञान से उत्पन्न।
१०. तृप्ति - तुष्टि-दायिका-संतोषप्रद।
११. दया - दुःखी जीवों पर अनुकम्पा करने वाली।
१२. विमुक्ति - कर्म-बन्धनों से मुक्त करने वाली।
१३. क्षान्ति - क्षमा से क्रोध का निग्रह करने वाली।
१४. सम्यक्त्वाराधना - सम्यक्त्व की आराधिका (अपने अनुकम्पा गुण से सम्यक्त्व की विशिष्ट रूप से आराधना करने वाली)।

१५. महंती या महती - सभी व्रतों में विशेष महत्त्व रखने वाली, यथा-“निहिट्टं एत्थ वयं इक्कं चिय जिणखेहिं पाणाइवायवेरमण भवसेसा तस्स रक्खइवा” (सभी जिनेश्वरों ने इस एक प्राणातिपात विरमण-अहिंसा व्रत का ही उपदेश किया है, अन्य व्रत तो इसकी रक्षा के लिए हैं)।

१६. बोधि - सम्यग्-धर्म प्रदायिका-यथार्थ बोधोत्पादिका यथा “अणुकम्पअकामणिज्जरबालतवे दाणविणयविब्भंगे, संजोग-विप्पजोगे वसणूसवइत्तिसक्कारे” - अनुकम्पा, अकाम निर्जरा, बालतप, दान, विनय, विभंग ज्ञान, सुसंयोग, दुःखानुभव, उत्सव दर्शन, ऋद्धि एवं सत्कार की आकांक्षा, इनसे बोधि की प्राप्ति होती है (आवश्यक निर्युक्ति, गा० ८४५)।

१७. बुद्धि - विमल मति रूप।

१८. धृति - धैर्य-दृढ़ता।
 १९. सम्बुद्धि - सभी प्रकार की सम्पन्नता से युक्त।
 २०. ऋद्धि - लक्ष्मी प्राप्ति की हेतुभूत।
 २१. वृद्धि - पुण्य-प्रकृति का सम्पादन कर सुख-सामग्री बढ़ाने वाली।
 २२. स्थिति - स्थायी निवास-शाश्वत-मुक्ति दायिका।
 २३. पुष्टि - पूर्व पाप रूप दुर्बलता को नष्ट कर पुण्य संचय रूप पुष्टि देने वाली शक्तिदायिनी।
 २४. नन्दा - स्व-पर को आनन्द देने वाली।
 २५. भद्रा - स्व-पर का कल्याण करने वाली।
 २६. विशुद्धि - पाप रूप मल को दूर कर आत्मा को निर्मल बनाने वाली।
 २७. लब्धि - अमर्षोषधादि लब्धियाँ देने वाली।
 २८. विशिष्ट-दृष्टि - अन्य दर्शनों की अनुपादेयता बतला कर सम्यग्दर्शन रूपी स्याद्वादमय प्रधान दृष्टि देने वाली।
 २९. कल्याण - आत्मा की स्वस्थता-आरोग्यता प्राप्त कराने वाली।
 ३०. मंगल - अनिष्ट की निवृत्ति करने वाली-मंगलदायिनी।
 ३१. प्रमोदा - हर्षोत्पादिका।
 ३२. विभूति - सभी प्रकार का वैभव प्रदान करने वाली।
 ३३. रक्षा - मारे जाते हुए जीवों की रक्षा करने के स्वभाव वाली।
 ३४. सिद्धावास - मोक्ष का अक्षय निवास देने वाली।
 ३५. अनास्रव - आस्रव द्वारों (कर्मबन्ध के द्वारों) को रोकने वाली।
 ३६. केवली स्थान - केवली प्ररूपित धर्म का मुख्य स्थान अथवा केवलज्ञान की प्राप्ति का मुख्य आधार।
 ३७. शिव - उपद्रव रहित ऐसी स्थायी शान्ति को देने वाली।
 ३८. समिति - सम्यक् एवं निर्दोष प्रवृत्ति कराने वाली।
 ३९. शील - सदाचार रूप।
 ४०. संयम - हिंसा से सर्वथा निवृत्ति रूप।
 ४१. शील परिगृह - शुद्ध चारित्र रूपी सदाचार का घर।
 ४२. संवर - कर्मों के आगमन को रोकने वाली।
 ४३. गुप्ति - मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकने वाली।
 ४४. व्यवसाय - विशिष्ट शुभ अध्यवसाय-शुभ भाव सम्पन्नता।
 ४५. उच्छय - शुभ भावों में वृद्धि (उन्नति) कराने वाली।

४६. यज्ञा - भाव-पूजा रूप।
४७. आयतन - गुणों की घर।
४८. यजना - अभयदान-दात्रि अथवा यतना-प्राण-रक्षा रूप।
४९. अप्रमाद - प्राणी-रक्षा के लिए प्रमाद को हटाने वाली।
५०. आश्वासन - परम संतोष रूपा-कष्ट में धैर्य बँधाने वाली।
५१. विश्वास - स्व-पर के लिए विश्वासदायिनी।
५२. सबके लिए अभय - संसार के सभी प्राणियों को निर्भय बनाने वाली।
५३. आमाघात - किसी भी प्राणी की घात का निवारण करने वाली-अमारी।
५४. चोक्षा - पवित्र।
५५. पवित्र - अत्यन्त पवित्र-विशुद्ध।
५६. शुचि - भाव शुचि-शुद्धि रूप (हिंसादिमलिन भावों से रहित) यथा -
सत्यं शौचं तपः शौचं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया शौचं, जलशौचं च पञ्चमम् ॥
५७. पूता - पूजा अथवा पवित्रता रूप या भावों के द्वारा देव-पूजा रूप।
५८. विमला - निर्मल (स्वच्छ)।
५९. प्रभासा - दीप्ति-तेज युक्त।
६०. निर्मलतर - जीव को अत्यन्त विशुद्ध बनाने वाली।

इस प्रकार अहिंसा भगवती के निज-गुण निर्मित-गुण-निष्पन्न पर्यायवाची ६० नाम हैं।

अहिंसा की महिमा

एसा सा भगवई अहिंसा जा सा भीयाण विव सरणं, पक्खीणं विव गमणं, तिसियाणं विव सलिलं, खुहियाणं विव असणं, समुद्दमञ्जे व पोयवहणं चउप्पयाणं व आसमपयं दुहट्टियाणं व ओसहिबलं अडवीमञ्जे विसत्थगमणं एत्तो विसिट्ठतरिया अहिंसा जा सा पुढवी-जल-अगणि-मारुय-वणस्सइ-बीय-हरिय-जलयर-थलयर-खहयर-तस-थावर-सव्वभूय-खेमकरी।

शब्दार्थ - एसा - यह, भगवई - भगवती, अहिंसा - अहिंसा, जो - जो, सा - वह, भीयाण विव सरणं - भयभीत के लिए शरण के समान, पक्खीणं - पक्षियों के लिए, विव गमणं - आकाश गमन के समान, तिसियाणं - प्यासे मनुष्यों के लिए, विव सलिलं - पानी के समान, खुहियाणं - भूखे मनुष्यों के लिए, विव असणं - भोजन के समान, समुद्दमञ्जे - समुद्र-मार्ग से यात्रा करने वालों के लिए, पोयवहणं - जहाज के समान, चउप्पयाणं - पशुओं के लिए, आसमपयं - पशुशाला के समान,

दुहद्वियाणं - रोनी मनुष्यों के लिए, ओसहिबलं - औषधि के समान, अडवीमञ्जे - घोर वन में चलने वालों के लिए, विसत्थगमणं - विश्वस्त मार्ग के समान, एत्तो - इससे भी, विसिदुतरिया - अधिक विशिष्ट है, अहिंसा - अहिंसा, पुढवीजलअगणिमारुयवणस्सइ बीयहरियजलघरथलघर-खहयरतसथावरसव्वभूयखेमकरी - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, बीज, हरित जलचर, स्थलचर, खेचर, त्रस और स्थावर समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाली है।

भावार्थ - यह अहिंसा भगवती, संसार के भयभीत प्राणियों के लिए शरणभूत है, रक्षिका है। जिस प्रकार पक्षियों के लिए आकाश में उड़ना-गमन करना हितकारी है। प्यास से पीड़ित मनुष्यादि के लिए जल प्राणाधार है, शान्तिदायक है, भूखे के लिए भोजन जीवनदायक है, समुद्र-यात्रा में जहाज पार पहुँचाने वाला है, चतुष्पद पशुओं के लिए उनका स्थान आश्रयभूत है, रोगी के लिए औषधि हितकारी है और घोर अटवी में जाने वाले के लिए विश्वस्त मार्ग के समान है, उसी प्रकार वरन् जीवों के लिए इनसे भी अधिक अहिंसा भगवती, शरणभूत हैं, सुखदायिका, रक्षिका एवं पोषिका है। वह सर्वोत्तम एवं विशिष्टतर अहिंसा, पृथ्वी, जल, अग्नि, मारुत (वायु) वनस्पति, बीज, हरित, जलचर, स्थलचर, नभचर, त्रस और स्थावर, इन समस्त जीवों का क्षेम-कल्याण करने वाली है।

विवेचन - अहिंसा अपने आप में अभया है-भय-विनाशिका है। जो भगवती अहिंसा का आश्रय लेता है, उसके भय दूर होते हैं। ऐसा जीव अन्य अनन्त जीवों के लिए अभयदाता हो जाता है और वह स्वयं भी भयातीत बन जाता है।

पक्षियों के लिए भूमिवास या पृथ्वी पर चलना भय युक्त होता है। कुत्ता बिल्ली आदि हिंसक पशु और पारधी आदि बधिक मनुष्य जीवन समाप्त करने के लिए तत्पर रहते हैं। किन्तु आकाश में गमन करते समय ये उपद्रव नहीं होते और वे निर्भयतापूर्वक गमन करते हैं, उसी प्रकार अहिंसा का आश्रय लेने वाला जीव इतना सुरक्षित हो जाता है कि फिर उसे हिंसा से उत्पन्न भय की भी आशंका ही नहीं रहती। उसके जीवन में हिंसा नहीं रहती, तो वैसा पाप-बन्ध भी नहीं होता और पूर्वबन्ध भी टूटते हैं। वह क्रमशः निर्भय बन जाता है। उसका शाश्वत निवास यह पृथ्वी नहीं, लोकाग्र हो जाता है।

प्यासे व्यक्ति को पानी नहीं मिले तो वह जीवित नहीं रहता, पानी ही उसका जीवन बचा सकता है, तदनुसार मृत्यु-भय विकराल रूप से जीवों को भयभीत करता है। हिंसक जीव जिस प्रकार दूसरे जीवों को मारने में तत्पर रहता है, उसी प्रकार उसके पाप भी उसे मृत्यु-भय से भयभीत रखते हैं। किन्तु जिसने अहिंसा का आश्रय लिया, वह स्वयं दूसरों के लिए पानी के समान जीवनदाता बनता है और स्वयं भी अहिंसा रूपी अमृतपान करता हुआ अमर बन जाता है। यही बात भूखे के विषय में भी जाननी चाहिए।

समुद्र में डूबते हुए के लिए जलयान रक्षक होकर पार पहुँचाता है, उसी प्रकार संसार रूपी समुद्र में डूब कर नष्ट होने वाले जीवों को अहिंसा भगवती पोत के समान रक्षिका एवं पार पहुँचाने वाली है।

गाय, भैंस आदि चतुष्पद पशुओं के लिए अटवी भयप्रद होती है, वहाँ सिंह-व्याघ्रादि हिंसक जीव उन्हें अपना भक्ष बना देते हैं। उन हिंसक भक्षकों से बचने के लिए ये पशु अपने आश्रय स्थानों पर आकर निर्भय होते हैं, उसी प्रकार अहिंसा भगवती भी अपने आश्रितों को निर्भय बनाती है।

रोगी अपने रोग से मुक्त होने के लिए औषधि का सेवन करता है। औषधि सेवन से रोग दूर होकर आरोग्य-लाभ होता है, उसी प्रकार अहिंसा रूपी औषधि, हिंसा से उत्पन्न पाप रूपी रोग को नष्ट कर जीव को रोग मुक्त-दुःख-रहित बनाती है।

दीर्घ भयानक एवं दुरूह अटवी में भटकने वाले मार्ग-भ्रष्ट मनुष्य का जीवन भी संकट में पड़ जाता है। यदि उसे कोई मार्ग पर लगा दे, तो वह उस भय से निकल सकता है, उसी प्रकार हिंसा के कुमार्ग में भटके हुए जीवों को अहिंसा का राजमार्ग प्राप्त हो जाये, तो उनका उद्धार हो सकता है।

आगमकार महर्षि ने भगवती अहिंसा की महिमा उपरोक्त शब्दों में बतलाई, यह महत्त्वपूर्ण है। अहिंसा के आश्रय में सभी प्रकार के सत्यादि धर्म फूलते-फलते हैं। अहिंसा अमृत है।

यों तो अहिंसा की बातें अन्य लोग भी करते हैं, किन्तु निर्दोष सर्वोत्तम एवं विशिष्टतर अहिंसा तो वही है जो पृथिव्यादि स्थावरकाय एवं द्वेन्द्रियादि त्रसकाय के समस्त जीवों का क्षेम करने वाली हो, सभी को अभय रूप शान्ति देने वाली है और विश्व के समस्त जीवों का कल्याण करने वाली है।

इस विधान से यह भी सिद्ध होता है कि जैन धर्म एवं जिनेश्वरों का मार्ग-“बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय” कहा जाने वाला अजैन सिद्धान्त नहीं है। यह अजैन सिद्धान्त केवल मनुष्यों के लिए ही है, किन्तु जिनेश्वरों का घोष-“सर्वभूत क्षेमंकर-” सर्वजीव हिताय रहा है।

अहिंसा के विशुद्ध दृष्टा

एसा भगवइ अहिंसा जा सा अपरिमिय-णाणदंसणधरेहिं सील-गुण-विणय-तव-संयम-णायगेहिं तित्थयरेहिं सब्बजगजीववच्छलेहिं तिलोयमहिंएहिं जिणवरेहिं (जिणचंदेहिं) सुद्धदिट्ठा ओहिजिणेहिं विण्णाया उज्जुमइहिं विदिट्ठा विठलमइहिं विविदिअ पुव्वधरेहिं अहीया वेठब्बीहिं पतिण्णा आभिणिबोहियणाणीहिं सुयणाणीहिं मणपज्जवणाणीहिं केवलणाणीहिं आमोसहिपत्तेहिं खेलोसहिपत्तेहिं जल्लोसहिपत्तेहिं विप्पोसहिपत्तेहिं सब्बोसहिपत्तेहिं बीयबुद्धीहिं कुट्टुबुद्धीहिं पयाणुसारीहिं संभिण्णसोएहिं सुयधरेहिं मणबल्लिएहिं वयबल्लिएहिं कायबल्लिएहिं णाणबल्लिएहिं दंसणबल्लिएहिं चरित्तबल्लिएहिं खीरासवेहिं महुआसवेहिं सप्पियासवेहिं अक्खीणमहाणसिएहिं चारणेहिं विज्जाहरेहिं।

शब्दार्थ - एसा - यह, भगवइ - भगवती, अहिंसा - अहिंसा, अपरिमियणाणदंसणधरेहिं -

अपरिमित ज्ञान-दर्शन के धारक, सीलगुणविणयतवसंयमणायगेहि - उत्कृष्ट शील, गुण, विनय, तप और संयम को धारण करने वाले, तित्थयरेहि - तीर्थकरों द्वारा, सव्वजगजीववच्छलेहि - संसार के समस्त प्राणियों के वत्सल, तिलोयमहिएहि - तीन लोक के पूज्य, जिणवरेहि - जिनेश्वरों द्वारा, सुद्धदिट्ठा - भली-भाँति देखी गई, ओहिजिणेहि - अवधिज्ञान वाले महात्मा पुरुषों ने, विण्णाया - भली-भाँति देखा, उज्जुमइहि - ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान वालों ने, विदिट्ठा - भली-भाँति देखा, विउलमइहि - विपुलमति वाले महात्माओं ने, विविदिद्या - रहस्य को समझा, पुव्वधरेहि - पूर्वधारी महात्माओं ने, अहिया - इसका अध्ययन किया, वेउव्वीहि - वैक्रिय लब्धि वाले महात्माओं ने, पतिण्णा - आजन्म इसका पालन किया है, आभिण्णबोहियणाणीहि - आभिनिबोधिक ज्ञानी, सुयणाणीहि - श्रुतज्ञानी, मणपञ्जवणाणीहि - मनःपर्यवज्ञानी, केवलणाणीहि - केवल ज्ञानी महापुरुषों ने, आमोसहिपत्तेहि - आमर्षोषधि लब्धि वाले, खेलोसहिपत्तेहि - खेलौषधि लब्धि वाले, जल्लोसहिपत्तेहि - जल्ल-मैल औषधि रूप लब्धि वाले, विप्पोसहिपत्तेहि - विप्रौषधि लब्धि वाले, सव्वोसहिपत्तेहि - आमर्ष आदि सभी लब्धियाँ जिनको प्राप्त हैं ऐसे सर्वोषधि लब्धि वाले, बीजबुद्धीहि - जिनकी बुद्धि बीज के समान है, कुट्टबुद्धीहि - जिनकी बुद्धि कोठे के समान है, पदानुसारीहि - पदानुसारी, सम्भिण्णसोएहि - सम्भिन्न श्रोत लब्धि वाले, सुयधरेहि - श्रुतधर, मणबलिएहि - दृढ़ मनोबल वाले, वयबलिएहि - वचन-बल वाले, कायबलिएहि - काय बल वाले, णाणबलिएहि - दृढ़ ज्ञान-बल वाले, दंसणबलिएहि - दर्शन-बल वाले, चरितबलिएहि - चरित्र-बल वाले, खीरासवेहि - क्षीर अर्थात् दूध के समान मधुर वचन बोलने वाले, महुआसवेहि - मधु अर्थात् शहद के समान मधुर वचन वाले, सर्पिण्णसवेहि - घृत के समान स्निग्ध वचन वाले, अक्खीणमहाणसिएहि - अक्षीण महानसिक लब्धिधारी महात्मा, चारणेहि - आकाश में गमन करने वाले चारण मुनि, विज्जाहरेहि - विद्याचारणलब्धि वाले।

भावार्थ - यह अहिंसा भगवती, अपरिमित (असीम) ज्ञान-दर्शन के धारक, उत्तम शील, गुण, विनय, तप और संयम के नायक-अधिपति, समस्त जीवों के वत्सल एवं तीनों लोक के पूज्य जिनेश्वर भगवन्तों, जिनचन्द्र (गगन में चन्द्रमा के समान) तीर्थकरों द्वारा देखी गई (एवं सेवन की गई) है। अवधिज्ञानी महात्माओं ने इसे भली भाँति जानी है, ऋजुमति मनःपर्यव ज्ञानियों और विपुलमति मनःपर्यवज्ञानियों ने इसके रहस्य को समझा है। पूर्वधरों ने इसका अध्ययन किया है। वैक्रिय-लब्धि वाले महात्माओं ने इसका पालन किया है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी महापुरुषों ने इसका आचरण किया है। आमर्षोषधि लब्धिधारी, खेलौषधि लब्धि वाले, जल्लौषधि लब्धि सम्पन्न, विप्रौषधि लब्धि वाले, सर्वोषधि लब्धिधारी, बीजबुद्धि वाले, कोष्ठबुद्धि सम्पन्न, पदानुसारी बुद्धि युक्त, सम्भिन्न-श्रोत लब्धि वाले और श्रुतधर, मनोबली, वचनबली, कायबल वाले, ज्ञानबली, दर्शनबली, चरित्रबल से पूर्ण, क्षीरासवी, मधुरासवी, सर्पिरासवी अक्षिणमहानसिक लब्धि वाले और जंघाचारण, विद्याचारण महात्माओं ने अहिंसा का पालन किया है।

विवेचन - जिन महापुरुषों, ऋषि-महर्षियों और जिनेश्वर भगवंतों ने अहिंसा भगवती का आचरण किया, उनकी विशिष्टता का परिचय इस सूत्र में दिया गया है।

आमर्षीषधि लब्धिधारी - उत्तम साधन से जिनमें ऐसी विशिष्ट शक्ति उत्पन्न हुई कि जिनके शरीर के स्पर्श से ही रोगी के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, ऐसी विशिष्ट शक्ति के धारक महात्मा।

खेलौषधिधारी - जिनका श्लेष्म सुगन्धित होता है और रोगनाशक भी।

जल्लीषधि लब्धिधारी - जिनके कान, मुख आदि का मैल ही रोगनाशक हो।

विप्रौषधि लब्धिधारी - विप्रौषधि (अथवा विप्रुडौषधि) - जिनका मल-मूत्र सुगन्धित एवं रोगनाशक होता है।

सर्वीषधि लब्धिधारी - जिनके शरीर के आँख, कान, नाक आदि सभी इन्द्रियों का मैल औषधिरूप हो।

बीजबुद्धि वाले - बीज के समान फलित होने वाली बुद्धि के धारक। एक बीज से सैकड़ों, हजारों और लाखों बीज उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार एक अर्थ को जानकर अनेक अर्थों के जानने की क्षयोपशमजन्य शक्ति वाले।

कोष्ठबुद्धि वाले - कोठे में भरा हुआ धान्य, बहुत काल तक सुरक्षित रहता है, तदनुसार प्राप्त अर्थबोध को चिरकाल तक धारण करने को बुद्धि वाले।

पदानुसारी बुद्धि वाले - एक पद सुनकर बिना सुने ही अनेक पदों को जान लेने की बुद्धि वाले। सूत्र के अवयव रूप एक ही पद प्राप्त होने पर अनेक पदों को स्वतः जानने की बुद्धि वाले।

सम्भन्न-श्रोत लब्धि वाले - शरीर के सभी अवयवों से सुनने की शक्ति वाले।

श्रुतधर - आचारांगादि आगमों के धारक।

मनोबली - दृढ़ मनोबल वाले - जिनका मन अत्यन्त दृढ़ एवं शक्ति वाला है।

वचनबली - जिनके वचन, दुर्वादिके तर्क हेतु आदि को नष्ट करने की शक्ति वाले हैं।

कायबली - कठोरतम परीषह उत्पन्न होने पर भी जो शान्ति से सहन करते हैं।

ज्ञानबली - मति आदि ज्ञान से जिनका आत्मबल बढ़ा है।

दर्शनबली - सम्यग्दर्शन से जिनकी आत्मा बलवान् है।

चारित्रबली - विशुद्ध चारित्र के बल से जिनकी आत्मा बलवान् है।

खीरास्त्रवी - जिनके वचन, श्रोता को दूध समान मधुर लगे।

मधुरास्त्रवी - जिनकी वाणी श्रोताओं को मधु (सहद) के झरने के समान मीठी लगे।

सर्पिरास्त्रवी - जिनके वचन श्रोताओं को घृत-पान के समान पुष्टिकारक लगे।

अक्षिणमहानसिक लब्धि वाले - समाप्त नहीं होने वाले भोजन की लब्धि के धारक - इस लब्धि वाले मुनि, अपने अकेले के लिए लाए हुए भोजन के पात्र में से अन्य लाखों मनुष्यों को तृप्ति पर्यन्त आहार करा सकते हैं। उस पात्र का आहार तब समाप्त होता है, जबकि स्वयं भोजन कर लेते हैं।

चारण - आकाश में गमन करने की शक्ति वाले-जंघाचारण।

विद्याचारण - विद्या के बल से आकाश में गमन करने की शक्ति वाले।

चउत्थभत्तिएहिं एवं जाव छम्मासभत्तिएहिं उक्खित्तचरएहिं णिक्खित्तचरएहिं अंतचरएहिं पंतचरएहिं लूहचरएहिं समुयाणचरएहिं अण्णइलाएहिं मोणचरएहिं संसट्टकप्पिएहिं तज्जायसंसट्टकप्पिएहिं उवणिएहिं सुद्धेसणिएहिं संखादत्तिएहिं दिट्ठलाभिएहिं पुट्टलाभिएहिं आयंबिलिएहिं पुरिमट्टिएहिं एक्कासणिएहिं णिव्विइएहिं भिण्णापिंडवाइएहिं परिमियपिंडवाइएहिं अंताहारेहिं पंताहारेहिं अरसाहारेहिं विरसाहारेहिं लूहाहारेहिं तुच्छाहारेहिं अंतजीविहिं पंतजीविहिं लूहजीविहिं तुच्छजीविहिं उवसंतजीविहिं पसंतजीविहिं विवत्तजीविहिं अखीरमहूसप्पिएहिं अमज्जमंसासिएहिं ठाणाइएहिं पडिमंठाईहिं ठाणुक्कडिएहिं वीरासणिएहिं णेसज्जिएहिं डंडाइएहिं लगंडसाईहिं एगपासगेहिं आयावएहिं अप्पावएहिं अणिट्ठुभएहिं अकंडुयहेहिं धुयकेसमंसुलोमणएहिं सव्वगायपडिकम्म-विप्पमुक्केहिं समणुच्चिण्णा सुयहरविइयत्थकायबुद्धीहिं धीरमइबुद्धिणो य जे ते आसीविसउग्गतेयकप्पां णिच्छयववसायपज्जतकयमईया णिच्चं सज्जायज्जाणअणुबद्धधम्मज्जाणा पंचमहव्वयचरित्तजुत्ता समियासमिइसु समियपावा छव्विहजगवच्छला णिच्चमप्पमत्ता एहिं अण्णेहिं य जा सा अणुपालिया भगवई।

शब्दार्थ - चउत्थभत्तिएहिं एव जाव छम्मासभत्तिएहिं - उपवास से लेकर छह मास तक की तपस्या करने वाले, उक्खित्तचरएहिं - उत्क्षिप्तचरक, णिक्खित्तचरएहिं - निक्षिप्त चरक, अंतचरएहिं पंतचरएहिं लूहचरएहिं - अत, प्रान्त और रूक्ष आहार से ही अपना निर्वाह करने वाले, समुयाणचरएहिं-सामुदानिक भिक्षा लेने वाले, अण्णइलाएहिं - अज्ञात घरों से भिक्षा लेने वाले, मोणचरएहिं - मौन रहकर आहार लेने वाले, संसट्टकप्पिएहिं - जिस हाथ में या पात्र में अन्न लगा हुआ है, उसी हाथ या पात्र से आहार लेने वाले, तज्जायसंसट्टकप्पिएहिं - जो अन्न लेना है, वही अन्न यदि हाथ और पात्र में लगा हुआ हो, तो उसके यहाँ अन्न लेने का अभिग्रह करने वाले, उवणिएहिं - निकटवर्ती आहार लेने का अभिग्रह करने वाले, सुद्धेसणिएहिं - शंकित आदि दोषों को टाल कर शुद्ध आहार ग्रहण करने वाले, संखादत्तिएहिं - दत्तियों की संख्या से आहार लेने वाले, दिट्ठलाभिएहिं - दिखाई देते हुए स्थान से लाये हुए आहार को ग्रहण करने वाले, अदिट्ठलाभिएहिं - पहले कभी न देखे हुए मनुष्यों से दिये जाने वाले आहार को ग्रहण करने वाले, पुट्टलाभिएहिं - पूछने पर आहार ग्रहण करने वाले, आयंबिलिएहिं-आयम्बिल तपस्या करने वाले, पुरिमट्टिएहिं - पुरिमट्ट आहार ग्रहण करने वाले, एक्कासणिएहिं - एकाशन तप करने वाले, णिव्विइएहिं - विगय-रहित आहार करने वाले, भिण्णापिंडवाइएहिं - टूटे हुए

 पिण्ड की गवेषणा करने वाले, परिमितपिंडवाइएहिं - परिमित पिंड लेने वाले, अंताहारेहिं-पंताहारेहिं-
 अन्त-प्रान्त आहार लेने वाले, अरसाहारेहिं-विरसाहारेहिं - अरस-विरस आहार लेने वाले, लूहाहारेहिं-
 तुच्छाहारेहिं - रूक्ष और तुच्छ आहार लेने वाले, अंतजीविहिं - अन्तजीवी, पंतजीविहिं - प्रान्तजीवी,
 लूहजीविहिं - रूक्षजीवी, तुच्छजीविहिं - तुच्छ जीवी, उवसंतजीविहिं - उपशान्तजीवी, पसंतजीविहिं-
 प्रशान्त जीवी, विविक्तजीविहिं - विविक्तजीवी, अक्षीरमधुसप्पिएहिं - खीर, मधु और घृत का सेवन
 नहीं करने वाले, अमद्यमसासिएहिं - मद्य-मांस के त्यागी, ठाणाइएहिं - उठने-बैठने के स्थान को
 अभिग्रहपूर्वक ग्रहण करने वाले, पडिमंठाइएहिं - एक मासिकी, द्विमासिकी आदि प्रतिमा अंगीकार
 करने वाले, ठाणुककडिएहिं - एक स्थान पर उत्कटुक आसन से बैठने वाले, वीरासणिएहिं -
 वीरासन से बैठने वाले, णेसण्जिएहिं - दृढ़ आसन जमाकर बैठने वाले, डंडाइएहिं - डंडे की तरह एक
 आसन पर स्थित रहने वाले, लगंडसाईहिं - अपनी एड़ी और सिर मात्र से ही पृथ्वी का स्पर्श कर
 स्थित रहने वाले, एगपासगेहिं - एक ही करवट से शयन करने वाले, आयावएहिं - आतापना लेने वाले,
 अप्पावएहिं - शरीर को कपड़े से बिना ढके ही कायोत्सर्ग करने वाले, अणिट्ठभएहिं - न थूकने वाले,
 अकंडुयएहिं - शरीर को नहीं खुजलाने वाले, धुयकेसमंसुलोमणेहिं - अपनी दाढ़ी-मूँछ तथा बाल
 और नखों का संस्कार नहीं करने वाले, सव्वगायपडिकम्मविप्पमुक्केहिं - अपने शरीर के समस्त अंगों
 का संस्कार नहीं करने वाले, सुयहरविइयत्थकाय-बुद्धीहिं - सूत्रों को धारण करने वाले तथा अर्थराशि
 के ज्ञाता, समणुच्चिण्णा - इस अहिंसा का आचरण किया है, धीरमइबुद्धिणो - स्थिर मति वाले तथा
 औत्पातिकी आदि बुद्धि वाले, आसीविसउग्गतेयकप्पा - आशीविष सर्प के समान तीव्र प्रभाव वाले,
 णिच्छयववसायपज्जत्तकयमईया - जो वस्तु तत्त्व का निर्णय करने वाली बुद्धि तथा पौरुष से परिपूर्ण
 है, णिच्चं - सदा, सञ्जायञ्जाणअणुबद्धधम्मञ्जाणां - स्वाध्याय एवं ध्यान में रत रहते हैं और
 धर्म-ध्यान में तल्लीन रहते हैं, पंचमहव्ययचरित्तजुत्ता - जो पाँच महाव्रतों के धारक हैं, समिइसु समिया-
 ईर्या-समिति आदि समितियों से सम्पन्न, समियपावा - जिन्होंने पापों का क्षय कर दिया है,
 छव्विहजगवच्छला - छह प्रकार के जगत् के वत्सल हैं, णिच्चं - सदा, अप्पमत्ता - अप्रमत्त हैं, एएहिं-
 ऐसे उत्तम पुरुषों द्वारा, अण्णेहिं - दूसरे महापुरुषों द्वारा, जा - जो, सा - इसका, अणुपालिया - पालन
 किया गया है, भगवई - इस अहिंसा भगवती का।

भावार्थ - चौथ-भक्त यावत् छहमासिक तप वाले, उक्षिप्तचरक, निक्षिप्तचरक, अन्तचरक,
 प्रान्तचरक, रूक्षचरक, समुदानचरक, अन्नगलायक, मौनचरक, संसृष्टकल्पिक, तज्जातसंसृष्टकल्पिक,
 उपनिहितक, शुद्धैषणिक, संख्यादत्तिक, दृष्टलाभिक, अदृष्टलाभिक, आचाम्ल तपस्वी, पूर्वार्द्धिक,
 एकासनिक, निर्विकृतिक, भिन्नपिण्डपातिक परिमितपिण्डपातिक, अन्तप्रान्त आहारक, अरसाहारक,
 विरसाहारक, रूक्षाहारक, तुच्छाहारक, अन्तजीविक, प्रान्तजीविक, रूक्षजीविक, तुच्छजीविक, उपशान्त
 जीवी, प्रशान्त जीवी, विविक्त जीवी, अक्षीरमधुसर्पिक, अमद्यमांसिक, स्थानातिक, प्रतिमास्थायिक,

स्थानउत्कुटुक, वीरासनिक, नैषद्यिक, दण्डायतिक, लगण्डशायिक, एकपार्श्विक आतापक, अप्रावृतिक, अनिष्टिवक, अकण्डूयक, धूर्त-केश-श्मश्रु-लोम-नख असंस्कारक, समस्त गात्र प्रतिकर्म विमुक्त और श्रुतधर, विदित अर्थ-काय बुद्धि-सम्पन्न, इन, सभी संयमी महात्माओं ने अहिंसा का आचरण किया है।

स्थिरमति एवं विशुद्ध बुद्धि वाले, आशीविष सर्प के समान तीव्र प्रभाव वाले वस्तुतत्त्व का निर्णय करने वाली बुद्धि तथा पौरुष से परिपूर्ण, नित्य स्वाध्याय-ध्यान में रत, धर्मध्यान में तल्लीन रहने वाले, पाँच महाव्रतों के धारक, समितियों से सम्पन्न, पाप-विनाशक, छह प्रकार के जगत् के वत्सल और नित्य-अप्रमत्त रहने वाले। ऐसे उत्तम पुरुषों और अन्य महात्माओं ने भगवती अहिंसा का पालन किया है।

विवेचन - उत्क्षिप्तचरक-पकाने के पात्र में से बाहर निकाले हुए भोजन में से आहार लेने के अभिग्रह वाले।

निक्षिप्तचरक - पकाने के पात्र में निकले हुए भोजन को वापिस पात्र में डाला जाता हुआ लेने की प्रतिज्ञा वाले।

अन्तचरक - नीरस-छाछमिश्रित या बाल-चनादि निम्न कोटि का आहार लेने की प्रतिज्ञा वाले।

प्रान्तचरक - खाने के बाद बचे हुए आहार में से लेने के अभिग्रह वाले या निःसार ऐसे छिलकें आदि का आहार लेने वाले।

रूक्षचरक - रूखा-सूखा आहार लेने की प्रतिज्ञा वाले।

समुदानचरक - समभाव से ऊँच-नीच मध्यम कुल से आहार लेने वाले।

अन्नग्लायक - प्राप्त अप्राप्त भिक्षा में भी दीनता नहीं लाने वाले अथवा प्रातःकाल में ही बासी आहार की गवेषणा करने वाले।

मोनचरक - मौनपूर्वक आहार के लिए जाने वाले।

संसृष्टकल्पिक - दाता का जो हाथ या पात्र, पहले से ही आहार से (परोसने या किसी को देने के कारण) लिप्त है, उसी से लेने का अभिग्रह रखने वाले।

तज्जात संसृष्टकल्पिक - जो आहार लेना है, उसी से दाता का हाथ या पात्र लिप्त हो, तो लेने के अभिग्रह वाले।

उपनिहितक - निकटवर्ती स्थान से आहार लेने के संकल्प वाले अथवा दाता के निकट रहे हुए आहार में से दे, तो लेने के नियम वाले।

शुद्धैषणिक - दोषरहित शुद्ध आहार की गवेषणा करने वाले।

संख्यादत्तिक - दत्तियों की संख्या निर्धारण करके भिक्षा के लिए जाने वाले।

दृष्टलाभिक - दिखाई देते हुए स्थान से लाए हुए आहार को ग्रहण करने वाले।

अदृष्टलाभिक - पहले कभी नहीं देखे हुए मनुष्य से आहार लेने के नियम वाले।

आचाम्न तपस्वी - बिना घृत, तेल, दुग्धादि चिकनाई और लवणादि मसाले के केवल रूखे और स्वादरहित अन्न का आहार करने वाले।

पूर्वाह्निक - दिन का प्रथम आधा हिस्सा व्यतीत होने के बाद-दोपहर दिन चढ़ने के बाद आहार लेने वाले।

एकासनिक - सदैव एक आसन से बैठकर ही आहार करने वाले।

निर्विकृतिक - विकृति-दुग्ध, दही, घृत, तेल आदि स्निग्ध तथा गुड़, शक्कर युक्त मिष्ट पदार्थ को छोड़कर आहार लेने वाले।

भिन्नपिण्डपातिक - टूटे और बिखरे हुए चूरे की गवेषणा करने वाले। साबित रोटी, लड्डू आदि नहीं लेकर टुकड़े होकर पृथक् हो चुके ऐसे या दाता द्वारा पात्र में डालते समय बिखर जाये ऐसे आहार के याचक।

परिमित पिण्डपातिक - वृत्ति संक्षेप कर, निर्धारित स्वल्प घरों में ही आहार के लिए जाना अथवा वस्तु को संक्षेप मात्रा में लेने का निर्धारित करके जाना।

अरसाहारक - रस-स्वादरहित, हींग आदि के बंधार रहित वस्तु का आहार करने वाले।

विरसाहारक - पुराना होंकर विरस-निःसार बने हुए धान्य का आहार करने के अभिग्रह वाले।

उपशान्तजीवी - प्राप्त-अप्राप्त में समभाव रखकर उद्विग्न नहीं होने, वचन और बदन की भ्रुकटी से भी रोष व्यक्त नहीं होने देने वाले।

प्रशान्त जीवी - मन में क्रोध रोष या ईर्ष्या को उत्पन्न नहीं होने देने वाले।

विविक्त जीवी - निर्दोष जीवन वाले, एकत्वादि भावना युक्त जीवन वाले।

अक्षीरमधुसर्पिक - दूध, मधु और घृतरहित आहार करने वाले।

अमद्यमांसिक - मद्य और मांस नहीं लेने वाले।

स्थानातिक - उठने-बैठने के स्थान को संक्षिप्त करके मर्यादित स्थान रखने वाले।

प्रतिमास्थाधिक - भिक्षुकी एक मासिकी आदि प्रतिमा के पालक।

स्थान उत्कुटुक - एक स्थान पर उकडु आसन से बैठने वाले।

वीरासनिक - वीर आसन से बैठने वाले। सिंहासन पर बैठे हुए पुरुष के नीचे से सिंहासन निकाल लेने पर, पुरुष की जैसी बैठक रहती है, उसी आसन से रहने वाले। केवल पाँवों पर ही शरीर को टिका कर सिंहासन के आकार से बैठने वाले।

नैषद्यिक - दूढ़ आसन से बैठने वाले।

दण्डायतिक - दण्ड के समान एक स्थान पर लम्बे रहकर ध्यान करने वाले।

लगण्डशायिक - उस प्रकार शयन करना कि जिससे दोनों पाँवों की एड़ियाँ और मस्तक पर ही सारा शरीर टिका रहे और शेष भाग पृथ्वी को स्पर्श नहीं करे।

एकपार्श्विक - एक ही करवट से शयन करने वाले।

आतापक - शीतकाल में खुले स्थान में रात को और उष्णकाल में दिन में, शीत और उष्ण का परीषह सहन करते हुए ध्यान करने वाले।

अप्रावृत्तक - वस्त्ररहित खुले शरीर से शीत, उष्ण, दशमशकादि परीषह सहने वाले।

अनिष्ठीवक - मुँह में आये पानी को नहीं धूकने वाले।

अकण्डूयक - खाज नहीं खुजलाने वाले।

धूर्त-केश-शमश्रु-लोम-नख-असंस्कारक - शरीर के अंगोपांग, दाढ़ी, मूँछ आदि के बाल और नख आदि को शोभित नहीं करने वाले।

समस्त गात्र प्रतिकर्म विमुक्त - समस्त शरीर एवं अंगोपांग की शोभा शुश्रूषा से रहित जीवन वलि।

षड्विध जगत्त्वत्सल - पृथिवी कायादि छहकाय जीवों के हितैषी।

इस प्रकार शरीर से निरपेक्ष रह कर, संयम एवं तप की साधना में तत्पर और स्वाध्याय ध्यान में रत रहने वाले महात्माओं ने, भगवती अहिंसा का सेवन किया है।

आहार की अहिंसक-निर्दोष विधि

इमं च पुढविदगअगणि-मारुय-तरुगण-तस-थावरसव्वभूयसंजम दयदुयाए सुद्धं उच्छं गवेसियव्वं अकयमकारियमणाहूयमणुद्धिदुं अकीयकडं णवहिं य कोडिहिं सुपरिसुद्धं दसहिं य दोसेहिं विप्पमुक्कं उग्गमउप्पायणेसणासुद्धं ववगयचुयचावियचत्तदेहं च फासुयं च ण णिज्जकहापओयणक्खासुओवणीयं ति ण तिगिच्छामंतमूलभेसज्जकज्जहेउं ण लक्खणुप्पायसुमिणजोइसणिमित्तकहकप्पउत्तं, ण वि उंभणाए, ण वि रक्खणाए, ण वि सासणाए, ण वि उंभण-रक्खण-सासणाए भिक्खं गवेसियव्वं, ण वि वंदणाए, ण वि माणणाए, ण वि पूयणाए, ण वि वंदण-माणण-पूयणाए भिक्खं गवेसियव्वं।

शब्दार्थ - इमं - इस, पुढविदगअगणि-मारुय-तरुगण-तस-थावरसव्वभूयसंजमदयदुयाए - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय तथा त्रस और स्थावर, सभी प्राणियों के प्रति संयम और दया करने के लिए साधु को, सुद्धं - शुद्ध, उच्छं - भिक्षा, गवेसियव्वं - गवेषणा करना, अकयं - अकृत अर्थात् जो आहार साधु के लिए न बनाया गया हो, अकारियं - न अन्य से बनवाया गया हो, अणाहूयं - निमंत्रण देकर नहीं बुलाया हो, अणुद्धिदुं - उद्देशिक न हो, अकीयकडं - साधु के निमित्त खरीदा हुआ नहीं हो, णवहिं - नौ, कोडिहिं - कोटियों से, सुपरिसुद्धं - शुद्ध, दसहिं - दस, दोसेहिं - दोषों से, विप्पमुक्कं - रहित, उग्गमउप्पायणेसणासुद्धं - उद्गम उत्पादन और एषणा के दोषों से रहित शुद्ध आहार, ववगयचुयचावियचत्तदेहं - जिसके जीव स्वयं अथवा पर के द्वारा चव गये हैं, फासुयं - प्रासुक, णिसज्जकहापओयणक्खासुओवणीयं - साधु गृहस्थ के घर आसन पर बैठकर धर्मोपदेश का कार्य करके एवं कहानी आदि कहकर दाता का चित्त प्रसन्न करके, ण - नहीं लेवे, तिगिच्छामंतमूलभेसज्जकज्जहेउं - आहार प्राप्ति के लिए चिकित्सा कर्म, मन्त्र-प्रयोग और औषध-

भैषज आदि करके, लक्ष्मणुप्यायसुमिण जोइस णिमित्तकहकप्पउत्तं - स्त्री-पुरुष के लक्षण, उत्पात, स्वप्नफल, ज्योतिष, निमित्त कथा और विस्मयोत्पादक बातें कहकर, ण - नहीं लें, डंभणाए - दम्भ अर्थात् माया का प्रयोग करके, रक्खणाए - रखवाली करके, सासणाए - दाता को किसी विद्या की शिक्षा देकर, डंभणरक्खणसासणाए - दम्भ, रक्षण और शिक्षा, इन तीनों का साथ ही प्रयोग करके, भिक्खं - भिक्षा की, ण गवेसियव्वं - गवेषणा नहीं करनी चाहिए, वंदणाए - वन्दना करके, माणणाए - मान-सम्मान देकर, पूयणाए - पूजा-सत्कार करके, वंदणमाणणपूयणाए - वन्दन, मान और पूजा, इन तीनों को एक साथ करके, भिक्खं - भिक्षा की, ण गवेसियव्वं - गवेषणा न करनी चाहिए।

भावार्थ - अहिंसा के पालक साधुओं को पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वाउकाय, वनस्पतिकाय, ये स्थावर और त्रसकाय, इन सभी प्राणियों के प्रति दया लाकर संयमपूर्वक जीवन चलाने के लिए शुद्ध भोजन की गवेषणा करनी चाहिए। साधु को वैसा ही आहार लेना चाहिए जो साधु के लिए नहीं बनाया हो, न किसी दूसरे से बनवाया हो, न गृहस्थ द्वारा साधु निमन्त्रित किया गया हो, औद्देशिक न हो और मूल्य देकर लिया हुआ भी नहीं हो। वह आहार नौ-कोटि विशुद्ध हो। शंकितादि दस दोषों से रहित, उद्गम, उत्पादन और एषणा के दोषों से सर्वथा वर्जित हो। जिस आहार में से जीव स्वयं निकल गए हों या दूसरों के द्वारा जीव-रहित किए हों, ऐसा प्रासुक आहार लेना साधु के लिए उपयुक्त है।

गृहस्थ के घर गए हुए साधु को गृहस्थ के आसन पर बैठ कर धर्मोपदेश का कार्य करके और कहानी सुनाकर, दाता को प्रसन्न करके आहार नहीं लेना चाहिए। आहार के लिए रोग की चिकित्सा, मन्त्र-प्रयोग और औषधि भी नहीं करनी चाहिए। स्त्री-पुरुष के लक्षण, भूकम्प, रक्तवृष्टि आदि उत्पात स्वप्नफल, ज्योतिष, निमित्त, विस्मय कारक बातें और कहानी कहकर भोजन पाने का योग भी नहीं मिलाना चाहिए। दाम्भिकता अपनाकर, गृहस्थ के घर की रखवाली कर, किसी प्रकार की शिक्षा देकर या दाम्भिकता, रक्षा और शिक्षा, ये तीनों कार्य करके भिक्षा की गवेषणा नहीं करनी चाहिए। गृहस्थ की स्तुति प्रशंसा कर, सम्मानित कर, पूजा-सत्कार करके या वन्दन, मान और पूजा करके आहार की गवेषणा नहीं करनी चाहिए।

विवेचन - इस सूत्र में साधु को निर्दोष जीवन व्यतीत करने की विधि बताई है। अहिंसा के पूर्ण पालक को, अपनी देह एवं संयम का निर्वाह करने के लिए आहार करना पड़ता है। वह आहार, पूर्ण रूप से अहिंसक एवं निर्दोष होना चाहिए। आहार के वे कौन-कौन से दोष हैं जो पूर्ण अहिंसक के लिए त्याज्य हैं। उनका दिग्दर्शन इस सूत्र में हुआ है।

णवहिं य कोडिहिं परिसुद्धं - नौ-कोटि परिशुद्ध आहारादि। नौ कोटियाँ ये हैं - १. आहारादि के लिए साधु स्वयं हिंसा नहीं करे २. दूसरे से नहीं करावे ३. ऐसी हिंसा का अनुमोदन भी नहीं करे ४. स्वयं नहीं पकावे ५. दूसरों से नहीं पकवावे और ६. अनुमोदन नहीं करे ७. स्वयं नहीं खरीदे ८. दूसरों से क्रय नहीं करावे और ९. क्रय करते हुए या किए हुए का अनुमोदन नहीं करे। ये नौ कोटियाँ मन, वचन और काया के योग से हैं।

दसहिं य दोसेहिं विष्पमुक्कं - दस दोषों से मुक्त। ये दोष इस प्रकार हैं-

१. संकित - दोष की शंका होने पर लेना।
२. प्रक्षित - देते समय हाथ, आहार या भोजन का सचित्त पानी आदि से युक्त होना।
३. निक्षिप्त - सचित्त वस्तु पर रखी हुई अचित्त वस्तु देना।
४. पिहित - सचित्त वस्तु से ढकी हुई अचित्त वस्तु देना।
५. साहरिय - जिस पात्र में दूषित वस्तु हो, उसे पृथक् करके उसी बरतन से देना और साधु द्वारा लेना।
६. दायग - जो दान देने के लिए अयोग्य है, ऐसे बालक, अंधे, गर्भवती आदि के हाथ से लेना।
७. उन्मिश्र - मिश्र-कुछ कच्चा और कुछ पका आहारादि लेना।
८. अपरिणत - जिसमें पूर्ण रूप से शस्त्र परिणत न हुआ हो।
९. लिप्त - जिस वस्तु के लेने से हाथ या पात्र में लेप लगे अथवा तुरन्त की लीपी हुई गीली भूमि को लाँघते हुए देवे।

१०. छर्दित - नीचे गिराते हुए देवे।

इन दस दोषों को 'एषणा के दोष' कहते हैं।

उद्गमउप्यायणेसणा सुद्धं - उद्गम के सोलह दोष, उत्पादन के सोलह दोष और एषणा के दस दोष। इन ४२ दोषों से रहित शुद्ध आहारादि।

उद्गम के १६ दोष इस प्रकार हैं-

१. आधाकर्म - किसी साधु के निमित्त से आहार आदि बनाना।
२. औद्देशिक - जिस साधु के लिए आहारादि बना है, उसके लिए तो वह आधाकर्मी है, किन्तु दूसरे के लिए वह औद्देशिक हैं। ऐसे आहार को दूसरे साधु लें अथवा अन्य याचकों के लिए बनाए हुए आहार में से या फिर अपने लिए बनते हुए आहार में साधुओं के लिए भी सामग्री मिला कर बनाया हो।
३. पूतिकर्म - शुद्ध आहारादि में आधाकर्मी आदि दूषित आहारादि का कुछ अंश मिलाना।
४. मिश्रजात - अपने और साधुओं-याचकों के लिए एक साथ बनाया हुआ।
५. स्थापना - साधु को देने के लिए अलग रख छोड़ना।
६. पाहुडिया - साधु को अच्छा आहार देने के लिए मेहमान अथवा मेहमानदारी के समय को आगे-पीछे करना।
७. प्रादुष्करण - अंधेरे में रखी हुई वस्तु को प्रकाश में ला कर देना।
८. क्रीत - साधु के लिए खरीद कर देना।
९. प्रामीत्य - उधार लेकर साधु के देवे।
१०. परिवर्तित - साधु के लिए अदल-बदलकर ली हुई वस्तु।
११. अभिहत - साधु के लिए वस्तु को अन्यत्र अथवा साधु के सामने ले जाकर देना।

१२. उद्भिन्न - बरतन का लेप, छांदा आदि खोलकर देवे।

१३. मालापहत - ऊँचे माल पर नीचे भूमिगृह में तथा तिरछे, ऐसी जगह वस्तु रखी हो कि जहाँ से निसरणी आदि पर चढ़ना पड़े।

१४. अच्छेद्य - निर्बल से छिनकर देना।

१५. अनिसृष्ट - भागीदारी की वस्तु, किसी भागीदार की बिना इच्छा के दी जाये।

१६. अध्यवपूरक - साधुओं का ग्राम में आगमन सुनकर बनते हुए भोजन में कुछ सामग्री बढ़ाना। उत्पादन के १६ दोष-

१. धात्री-कर्म - बच्चे की साल-संभाल करके अथवा धाय की नियुक्ति करवा कर आहारादि लेना।

२. दूती-कर्म - एक का सन्देश दूसरे को पहुँचा कर आहारादि लेना।

३. निमित्त - भूत, भविष्य और वर्तमान के शुभाशुभ निमित्त बताकर लेना।

४. आजीव - अपनी जाति अथवा कुल आदि बता कर लेना।

५. वनीपक - दीनता प्रकट करके लेना।

६. चिकित्सा - औषधी करके या बताकर लेना।

७. क्रोध - क्रोध करके लेना।

८. मान - अभिमानपूर्वक लेना।

९. माया - कपट का सेवन करके लेना।

१०. लोभ - लोलुपता से अच्छी वस्तु अधिक लेना।

११. पूर्वपश्चात्-संस्तव - आहारादि लेने के पूर्व या बाद में दाता की प्रशंसा करना।

१२. विद्या - चमत्कारिक विद्या का प्रयोग करके लेना।

१३. मन्त्र - मन्त्र-प्रयोग से आश्चर्य उत्पन्न करके लेना।

१४. चूर्ण - चमत्कारिक चूर्ण का प्रयोग करके लेना।

१५. योग - योग के चमत्कार बताकर लेना।

१६. मूलकर्म - गर्भ-स्तंभन, गर्भाधान अथवा गर्भपात जैसे पापकारी औषधादि बताकर प्राप्त करना।

मूलकर्म - अति गहन भव-वन में भटकने का मूल कारण। गर्भस्तम्भन, गर्भाधान, गर्भपात गर्भ आदि विशेष पापकारी औषधादि बताना। यथा -

“अति गहन भववनस्यमूलं कारणं सावद्यक्रिया मूलकर्म, तत्र गर्भस्थंभन-गर्भाधान-गर्भपात-गर्भशात-उत्क्षिप्तयोनित्वकरणादिना उपाय्यतेपिण्डः।”

मूलकर्म - वृक्ष-लतादि से औषध-प्रयोग बतला कर आहार लेना।

ण वि हीलणाए ण वि णिंदणाए ण वि गरहणाए ण वि हीलणणिंदण-गरहणाए भिक्खं गवेसियच्चं, ण वि भेसणाए ण वि तज्जणाए ण वि तालणाए ण

वि भेसणतज्जणतालणाए भिक्खं गवेसियव्वं, ण वि गारवेणं ण वि कुहणयाए ण
वि वणीमयाए ण वि गारवकुहणवणीमयाए भिक्खं गवेसियव्वं, ण वि मित्तयाए ण
वि पत्थणाए ण वि सेवणाए ण वि मित्तपत्थणसेवणाए भिक्खं गवेसियव्वं, अण्णाए
अगढिए अदुद्धे अदीणे अविमणे अकलुणे अविसाई अपरितंतजोगी
जयणघडणकरणचरियविणयगुणजोगसंपउत्ते भिक्खू भिक्खेसणाए णिए ।

शब्दार्थ - हीलणाए - हीलना करके, णिंदणाए - निन्दा करके, गरहणाए - गर्हणा करके,
हीलणणिंदणगरहणाए - हीलना, निन्दा और गर्हा, तीनों एक साथ करके, भिक्खं - भिक्षा की,
गवेसियव्वं - गवेषणा नहीं करे, भेसणाए - भय दिखाकर, तज्जणाए - तर्जना, डांट-फटकार बतलाकर,
तालणाए - धप्पड़ आदि मारकर, भेसणतज्जणतालणाए - भय, तर्जना और ताड़ना, भिक्खं -
भिक्षा की, ण गवेसियव्वं - गवेषणा नहीं करे, गारवेण - जाति आदि का गर्व करके, कुहणयाए -
दरिद्रता दिखाकर, वणीमयाए - भिखारी के समान दीन वचन उच्चारण करके, गारवकुहणवणीमयाए -
गर्व, दरिद्रता और रंकपना करके, भिक्खं - भिक्षा की, ण गवेसियव्वं - गवेषणा नहीं करे, मित्तयाए -
मित्रता बतलाकर, पत्थणाए - प्रार्थना करके, सेवणाए - सेवा करके, मित्तपत्थणसेवणाए - मित्रता,
प्रार्थना और सेवा करके, भिक्खं - भिक्षा की, ण गवेसियव्वं - गवेषणा नहीं करे, अण्णाए - अपना
परिचय न देते हुए, अगढिए - आहार में आसक्त नहीं होता हुआ, अदुद्धे - अहार और दाता पर द्वेष
नहीं करता हुआ, अदीणे - दीनता रहित, अविमणे - उदासीनता रहित, अकलुणे - करुणा जनक शब्द
न बोलता हुआ, अविसाई - विषाद न करता हुआ, अपरितंतजोगी - धर्मकार्य में अश्रान्त मन वचन
काया का योग वाला, जयण - संयम में प्रयत्नशील, घडणकरण - अप्राप्त गुणों की प्राप्ति के लिए
उद्योग करने वाला, चरियविणयगुणजोगसंपउत्ते - विनय और क्षमा आदि गुणों से युक्त होकर,
भिक्खू - साधु, भिक्खेसणाए णिए - भिक्षा की गवेषणा करे ।

भावार्थ - दाता की हीलना, निन्दा और गर्हा करके या तीनों एक साथ करके आहार लेने का
प्रयत्न नहीं करना चाहिए। गृहस्थ यदि आहार देना नहीं चाहे, तो उसे भयभीत करके या डांट-फटकार
कर और मार-पीट कर या तीनों एक साथ करके आहार पाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। अपनी
जाति आदि का गर्व करके या दरिद्रता का प्रदर्शन कर अथवा भिखारी के समान दीनता दिखाकर अथवा
ये तीनों करके तथा मित्रता बतला कर, प्रार्थना कर और सेवा करके, या तीनों करके आहार लेने का
प्रयत्न नहीं करना चाहिए। अज्ञात रह कर (अपना परिचय नहीं देता हुआ) अनासक्त रह कर, आहार
और दाता पर द्वेष नहीं रखता हुआ, दीनता, उदासीनता, दयनीयता और विषाद-रहित होकर, साधना में
बिना खेदित हुए और बिना रुके चलता रहे। अप्राप्त गुणों की प्राप्ति के लिए उद्योग करता हुआ, विनय
एवं क्षमादि गुणों से युक्त होकर, भिक्षु को आहार की गवेषणा करनी चाहिए।

प्रवचन का उद्देश्य और फल

इमं च णं सव्वजगजीव-रक्खणदयदुयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभद्धं सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाण-विउसमणं ।

शब्दार्थ - इमं - ये, सव्वजगजीवरक्खणदयदुयाए - समस्त जगत् के जीवों की रक्षा रूप दया के लिए, पावयणं - प्रवचन, भगवया - भगवान् ने, सुकहियं - उत्तम कहा है, अत्तहियं - आत्मा के लिए हितकारी, पेच्चाभावियं - जन्मान्तर में शुभ फल के दाता, आगमेसिभद्धं - भविष्य में कल्याण के हेतु, सुद्धं - शुद्ध, णेयाउयं - न्याययुक्त, अकुडिलं - कुटिलता से रहित-सरल, अणुत्तरं - प्रधान, सव्वदुक्खपावाण - समस्त दुःख और पापों को, विउसमणं - शान्त करने वाला ।

भावार्थ - समस्त जगत् के जीवों की रक्षा रूप दया के लिए भगवान् ने यह प्रवचन फरमाया है । भगवान् का यह प्रवचन अपनी आत्मा के लिए तथा समस्त जीवों के लिए हितकारी है । जन्मान्तर में शुभ फल का दाता है, भविष्य में कल्याण का हेतु है । इतना ही नहीं, वरन् यह प्रवचन शुद्ध, न्याययुक्त, मोक्ष के प्रति सरल, प्रधान और समस्त दुःखों तथा पापों को शान्त करने वाला है ।

विवेचन - जिनेश्वर भगवान् के प्रवचन-धर्मोपदेश का कारण इस सूत्रांश में बताया है । भगवान् के प्रवचन का उद्देश्य, विश्व के समस्त जीवों की रक्षा और दया है । कोई जीव, किसी को पीड़ित नहीं करे, दया भाव रखे और जीवों की रक्षा करे । इस अहिंसा के पालन से, पालक की आत्मा, पाप-कर्म से बचती हुई अपनी खुद की रक्षा करती है और अन्य प्राणियों की भी रक्षा करती है । भगवान् ने इस अहिंसा धर्म को शुद्ध एवं न्याययुक्त बताया है ।

अहिंसा महाव्रत की प्रथम भावना

तस्स इमा पंच भावणाओ पढमस्स वयस्स होति । पाणाइवायवेरमण-परिरक्खणदुयाए पढमं ठाण-दमण-गुणजोगजुंजणजुगंतरणिवाइयाए दिट्ठिए ईरियव्वं कीड-पयंग-तस-थावर-दयावरेण णिच्चं पुप्फ-फल-तय-पवाल-कंद-मूल-दग-मट्ठिय-बीय-हरिय-परिवज्जिएण सम्मं । एवं खलु सव्वपाणा ण हीलियव्वा ण णिंदियव्वा ण गरहियव्वा ण हिंसियव्वा ण छिंदियव्वा ण भिंदियव्वा ण वहेयव्वा ण भयं दुक्खं च किंचि लब्धा पावेउं एवं ईरियासमिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा असबलमसंकिलिडुणिव्वणचरित्तभावणाए अहिंसाए संजए सुसाहू ।

शब्दार्थ - तस्स = उस, पंच - पाँच, भावणाओ - भावनाएँ, पढमस्स - प्रथम, वयस्स -

महाव्रत, होति - है, पाणाइवाय-वेरमण-परिरक्षण-दयदुयाए - प्राणातिपात विरमण रूप पहले महाव्रत की रक्षा रूप दया के लिए, ठाणगमणगुणजौगजुंजणजुगंतरणिवाइयाए - स्व पर गुणवृद्धि के लिए साधु को ठहरने में और चलने में भूमि पर एक युग मात्र, दिट्ठिए - दृष्टि रखना, ईरियव्वं - ईर्यासमिति पूर्वक, कीडपयंगतसथावरदथावरेण - कीट, पतंग, त्रस और स्थावर जीवों की रक्षा करना, णिच्चं - सदैव, पुप्फफलतयपवालकंदमूलदगमड्डियबीयहरियपरिवग्जिएण - फूल, फल, त्वचा, प्रवाल, कंद, मूल, पानी, मिट्टी, बीज और हरीकाय को वर्जित करना, सम्मं - सम्यक् प्रवृत्ति, एवं - इस प्रकार, सम्मपाणा - सभी प्राणियों की, ण हीलियव्वा - अवज्ञा न करे, ण णिंदियव्वा - निंदा नहीं करे, ण गरहियव्वा - गर्हा न करे, ण हिंसियव्वा - हिंसा न करे, ण छिंदियव्वा - छेदन नहीं करे, ण भिंदियव्वा-भेदन न करे, ण वहेयव्वा - वध न करे, किंचि - किंचित् मात्र भी, भयं - भय, य - और, दुक्खं - दुःख, ण लब्भा पावेउं - न दे, एवं - इस प्रकार, ईरियासमिडुजोगेण - ईर्यासमिति द्वारा, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, भाविओ भवइ - भावित होती है, असबलमसंकिलिडुणिव्वणचरित्तभावणाए - उसका चारित्र और परिणाम निर्मल, विशुद्ध और अखण्डित होता है, अहिंसए - अहिंसक, संजए - संयमधारी, सुसाहु - मोक्ष का साधक उत्तम साधु।

भावार्थ - इस अहिंसा महाव्रत की पाँच भावनाएँ हैं। 'प्राणातिपातविरमण' नामक प्रथम महाव्रत की रक्षा रूप दया के लिए और स्व-पर गुण-वृद्धि के लिए साधु चलने और ठहरने में युग-प्रमाण भूमि पर दृष्टि रखता हुआ ईर्यासमितिपूर्वक चले, जिससे उसके पाँव के नीचे दब कर कीट, पतंगादि त्रस और स्थावर जीवों की घात न हो जाए। चलते या बैठते समय साधु सदैव पुष्प, फल, त्वचा, प्रवाल, कन्द, मूल, पानी, मिट्टी, बीज और हरीकाय को वर्जित करता-टालता-बचाता हुआ सम्यक् प्रवृत्ति करे। इस प्रकार ईर्यासमितिपूर्वक प्रवृत्ति करते हुए साधु सभी प्राणियों, या किसी भी प्राणी की, अवज्ञा या हीलना नहीं करे, न निन्दा करे, हिंसा भी नहीं करे और न छेदन, भेदन और वध करे। किसी भी प्राणी को किञ्चित् मात्र भी भय और दुःख नहीं दे। इस प्रकार ईर्यासमिति से अन्तरात्मा भावित-पवित्र होती है। उसका चारित्र और परिणति निर्मल, विशुद्ध एवं अखण्डित होती है। वह अहिंसक होता है। ऐसा अहिंसक संयत, उत्तम साधु होता है।

विश्लेषण - अहिंसा महाव्रत की पाँच भावनाओं में से प्रथम भावना-ईर्यासमिति रूप है। चलने, फिरने, बैठने आदि आवश्यक कार्यों में बहुत सावधानीपूर्वक जीवों की यतना करने का इस प्रथम भावना में विधान किया है। इस भावना में शारीरिक प्रवृत्ति को नियन्त्रित करने का उपदेश दिया है।

द्वितीय भावना - मन-समिति

बिडयं च मणेण पावएणं पावगं अहम्मियं दारुणं णिस्संसं वह-बंध-परिकिलेसबहुलं भयभरणपरिकिलेससंकिलिट्ठं ण कयावि मणेण पावएणं पावगं

किंचि वि ज्ञायव्वं। एवं मणसमिडजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा असबलमसंकिलिडुणिव्वणचरित्तभावणाए अहिंसए संजए सुसाहू।

शब्दार्थ - खिडयं - दूसरी, मणेण - मन से, पावएणं - पापकारी, पावगं - पापयुक्त विचार, अहम्मियं - अधार्मिक, दारुणं - दारुण, णिस्संसं - नृशंस, वहबंधपरिकिलेसबहुलं - प्राणियों का वध, बन्धन, अत्यंत परिताप, भयमरणपरिकिलेससंकिलिडुं - भय, मरण और क्लेश इत्यादि हिंसा सम्बन्धी, ण कयावि - कदापि नहीं, मणेण - मन से, पावएणं - पापकारी, पावगं - पापयुक्त विचार नहीं करे, किंचि वि - किंचित् मात्र भी, ण ज्ञायव्वं - चिंतन नहीं करना, एवं - इस प्रकार, मणसमिडजोगेणं - मन समिति के व्यापार से, भाविओ - भावित, भवइ - होता है, अंतरप्पा - अन्तरात्मा - असबलमसंकिलिडुणिव्वणचरित्तभावणाए - उसका चरित्र और परिणाम निर्मल, विशुद्ध और अखण्डित होता है, अहिंसए - अहिंसक, संजए - संयमधारी, सुसाहू - उत्तम साधु।

भावार्थ - अहिंसा महाव्रत की दूसरी भावना 'मन-समिति' है। साधु, अपने मन को पापकारी-कलुषित बनाकर पापी विचार नहीं करे, न मलिन मन बनाकर अधार्मिक, दारुण एवं नृशंसता पूर्ण विचार करे, तथा वध-बन्धन और परितापोत्पादक विचारों में लीन भी नहीं बने। जिनका परिणाम भय, क्लेश और मृत्यु है-ऐसे हिंसा युक्त पापी विचारों को अपने मन में किञ्चित् मात्र भी स्थान नहीं दे। ऐसा पापी ध्यान कदापि नहीं करे। इस प्रकार मन समिति की प्रवृत्ति से अन्तरात्मा भावित-पवित्र होती है। ऐसी विशुद्ध मन वाली आत्मा का चरित्र और भावना निर्मल-विशुद्ध तथा अखण्डित होती है। वह साधु अहिंसक, संयमी एवं मुक्ति साधक होता है। उसकी साधुता उत्तम होती है।

विवेचन - मन को हिंसाकारी पाप-पूर्ण विचारों से कलुषित नहीं करना। यह अहिंसा महाव्रत की दूसरी भावना है। मन-समिति का पालन करने से भाव अहिंसकता आती है। बिना मन-समिति के भाव-अहिंसकता एवं भाव-संयम नहीं होता। शरीर और वचन से अहिंसा का पालन करते हुए भी यदि मन में हिंसा के परिणाम हों, तो वह द्रव्य-अहिंसक, द्रव्य-संयमी या द्रव्य-महाव्रती होगा। उसकी मानसिक पापी परिणति उसे स्वदया से वंचित रख कर पापकर्मों के बन्धन में बाँधती रहेगी। पापपूर्ण विचारों से अन्य प्राणियों की हिंसा तो नहीं होती, परन्तु खुद की आत्मा की हिंसा होती रहती है। पापपूर्ण विचार, खुद की आत्मा के लिए दुःखों का मूलारोपण है। मन-समिति के पालक की आत्मा उज्ज्वल, पवित्र एवं विशुद्ध होती। उसकी साधुता उत्तम है। वह मुक्ति के निकट होता रहता है।

तृतीय भावना - वचन-समिति

तइयं च वइए पावियाए पावगं ण किंचिवि भासियव्वं। एवं वइ-समिय-जोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा सबलमसंकिलिडुणिव्वण-चरित्तभावणाए अहिंसए संजए सुसाहू।

शब्दार्थ - तइयं - तीसरी, वइए - वचन से, पावियाए - पापकारी, पावगं - पापयुक्त वचन, ण भासियव्वं - नहीं बोलना चाहिए, वइसमिइजोगेण - वचन-समिति के व्यापार से, भाविओ भवइ - भावित होना, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, असबलमसंकिलिदुणिव्वणचरित्तभावणाए - उसका चारित्र और परिणाम निर्मल, विशुद्ध और अखण्डित होता है, अहिंसाए-अहिंसक, संजए-संयमधारी, सुसाहू-सुसाधु।

भावार्थ - अहिंसा महाव्रत की तीसरी भावना वचन-समिति है। कुवचनों से किंचित् मात्र भी पापकारी-आरंभकारी वचन नहीं बोलना चाहिए। वचन-समितिपूर्वक वाणी के व्यापार से अन्तरात्मा निर्मल होती है। उसका चारित्र एवं भाव निर्मल विशुद्ध एवं परिपूर्ण होता है। वचन-समिति (भाषा-समिति) का पालक अहिंसक, संयमी तथा मोक्ष का उत्तम साधक होता है। उसकी साधुता प्रशंसनीय होती है।

विवेचन - वचनों से भी जीवों में क्लेश, परिताप एवं दुःख उत्पन्न किया जाता है। वचनों के बाण से बिंधे हुए जीव, आत्मघात कर लेते हैं। वचनों के दुष्ट व्यापार से जाति, समाज, देश और राष्ट्र में लड़ाई-झगड़े, उपद्रव एवं युद्ध तक हो सकते हैं। सत्य होते हुए भी क्रुदु, आघातकारक, छेद-भेद एवं बधकारक वचनों का प्रयोग, हिंसाकारी तथा मृषावाद है। मिथ्या उपदेश एवं सावद्य प्रचार भी वचन-समिति के पालक के लिए त्याज्य हैं। अतएव अहिंसा के पालक को वचनगुप्ति का पालक बन कर आवश्यकतानुसार निर्दोष वाणी का उच्चारण करना चाहिए।

चतुर्थ भावना - आहारैषणा समिति

चउत्थं आहारएसणाए सुद्धं उंछं गवेसियव्वं अण्णाए अगठिए अदुट्टे अदीणे अकलुणे अविसाई अपरितंतजोगी जयणंघडणकरणचरियविणयगुणजोगसंपओगजुत्ते भिक्खू भिक्खेसणाए जुत्ते समुदाणेऊण भिक्खचरियं उंछं घेत्तूण आगओ गुरुजणस्स पासं गमणागमणाइयारे पडिक्कमणपडिक्कंते आलोयणदायणं य दाऊण गुरुजणस्स गुरुसंदिट्टस्स वा जहोवएसं णिरइयारं च अप्पमत्तो, पुणरवि अणेसणाए पयओ पडिक्कमित्ता पसंते आसीणसुहणिसण्णे मुहुत्तमित्तं य झाणसुहजोगणाण-सज्झायगोवियमणे धम्ममणे अविमणे सुहमणे अविग्गहमणे समाहियमणे सद्धासंवेगणिज्जरमणे पवयणवच्छलभावियमणे उट्टिऊण य पहट्टुट्टे जहारायणियं णिमंतइत्ता य साहवे भावओ य विइण्णे य गुरुजणेणं उपविट्टे।

शब्दार्थ - चउत्थं - चतुर्थ भावना, आहारएसणाए - आहार की गवेषणा के लिए, सुद्धं - शुद्ध, उंछं - थोड़े-थोड़े, गवेसियव्वं - गवेषणा करे, अण्णाए - अज्ञात रहता हुआ, अगठिए - गूढ़ नहीं होता हुआ, अदुट्टे - द्वेषभाव नहीं लाता हुआ, अदीणे - दीन-भाव रहित, अकलुणे - करुण भाव नहीं बताता हुआ, अविसाई - विषाद नहीं करे, अपरितंतजोगी - मन वचन और काया के योगों को अखिन्न

रखता हुआ, जयण - संयम में प्रयत्नशील, घडणकरण - अप्राप्त गुणों की प्राप्ति के लिए उद्योग करने वाला, चरियविणयगुणजोगसंपउत्ते - विनय और क्षमा आदि गुणों से युक्त होकर, भिक्खू - साधु, भिक्खेसणाए - भिक्षा की गवेषणा के लिए, जुत्ते - प्रवृत्ति करे, समुदाणेऊण - सामुदानिक, भिक्खचरियं - भिक्षाचरी द्वारा, उंछं - थोड़ा-थोड़ा, घेत्तुण - ग्रहण करके, आगओ - अपने स्थान आया हुआ, गुरुजणस्स - गुरुजन के, पासं - पास, गमणागमणाइयारे - गमनागमन के अतिचारों की, पडिक्कमणपडिक्कंते - निवृत्ति के लिए ईर्यापथिक प्रतिक्रमण, य - और, आलोयणदायणं - आहार पानी का क्रम दिखाना, दाऊण - दिखलाकर, गुरुजणस्स - गुरु महाराज के निकट, गुरुसंदिट्ठस्स - गुरु महाराज द्वारा आदेश दिए हुए गीतार्थ के पास, वा - अथवा, जहोवएसं - यथोपदेश, णिरइयारं - निरतिचार, अप्पमत्तो - प्रमाद रहित होकर, पुणरवि - फिर, अणेसणाए - अनेषणा जनित दोषों की निवृत्ति के लिए, पयओ - प्रयत्नपूर्वक, पडिक्कमिन्ता - कायोत्सर्ग करना, पसंते - शान्त चित्त होकर, आसीणसुहणिसणणे - सुखपूर्वक बैठे, मुहुत्तमित्तं - एक मुहूर्तमात्र, जाणसुहजोगणाण-सङ्गायगोवियमणे - ध्यान करे तथा शुभयोग का आचरण करे, एवं पूर्व पठित ज्ञान का चिंतन और स्वाध्याय करे, धम्ममणे - मन को धर्म में स्थापित करे, अविमणे - विशाद का भाव नहीं आने दे, सुहमणे - शुभ मन-युक्त, अविग्गहमणे - कलह का भाव उत्पन्न न होने दे, समाहियमणे- समाहित मन वाला, सद्दासंवेगणिञ्जरमणे - मन में धर्म की श्रद्धा, मोक्ष की अभिलाषा और निर्जरा की भावना करे, पवयणवच्छलभावियमणे - प्रवचन वत्सलता में मन को लगाता हुआ, य - और, पहइत्तुडे - अत्यन्त हर्ष एवं तुष्टि के साथ, उट्टिऊण - उठकर, जहारायणियं - यथारत्नाधिक (संयम में अपने से बड़े) साहवे-साधुओं को क्रमानुसार, णिमंतइत्ता-भोजनार्थ आमन्त्रित करे, भावओ-भावपूर्वक, विइणणे-उनकी इच्छानुसार देने के पश्चात्, गुरुजणेणं - गुरु की आज्ञा पाकर, उपविट्ठे-उचित स्थान पर बैठ जाये।

भावार्थ - अहिंसा महाव्रत की चौथी भावना 'एषणा समिति' है। आहार की गवेषणा के लिए गृहसमुदाय में गया हुआ साधु, थोड़े-थोड़े आहार की गवेषणा करे। आहार के लिए गया हुआ साधु, अज्ञात रहता हुआ अर्थात् अपना परिचय नहीं देता हुआ, स्वाद में गूढ़ता, लुब्धता एवं आसक्ति नहीं रखता हुआ गवेषणा करे। यदि आहार तुच्छ, स्वादहीन या अरुचिकर मिले, तो उस आहार पर या उसके देने वाले पर द्वेष नहीं लाता हुआ, दीनता, विवशता या करुणा भाव न दिखाता हुआ, समभावपूर्वक आहार की गवेषणा करे। यदि आहार नहीं मिले, कम मिले या अरुचिकर मिले, तो मन में विषाद नहीं लावे और अपने मन वचन और काया के योगों को अखिन्न-अखेदित रखता हुआ संयम में प्रयत्नशील रहे। अप्राप्त गुणों की प्राप्ति में उद्यम करने वाला एवं विनयादि गुणों से युक्त साधु भिक्षा की गवेषणा में प्रवृत्त होवे। सामुदानिक भिक्षाचरी से थोड़ा-थोड़ा आहार लाकर, अपने स्थान पर आया हुआ साधु, गुरुजन के समीप गमनागमन सम्बन्धी अतिचारों की निवृत्ति के लिए ईर्यापथिकी प्रतिक्रमण करे। इसके बाद जिस क्रम से आहार-पानी की प्राप्ति हुई हो, उसकी आलोचना करे और आहार दिखावे। फिर

गुरुजन के निकट या गुरु के निर्देशानुसार गीतार्थादि मुनि के पास अप्रमत्त होकर विधिपूर्वक, अतिचार रहित होकर, अनेषणा जनित दोषों की निवृत्ति के लिए पुनः प्रतिक्रमण (कायोत्सर्ग) करे। इसके बाद शान्त चित्त सुखपूर्वक बैठे और मुहूर्त मात्र ध्यान करे तथा ध्यान और शुभयोग का आचरण करता हुआ ज्ञान का चिंतन एवं स्वाध्याय करे और अपने मन को श्रुत-चारित्र रूप धर्म में स्थापित करे। फिर आहार करता हुआ साधु मन में विषाद एवं व्यग्रता नहीं लाता हुआ मन को शुभ योग युक्त रखे। समाधि युक्त रखे। मन में धर्म की श्रद्धा, मोक्ष, अभिलाषा एवं कर्म-निर्जरा की भावना रखे। निर्ग्रन्थ-प्रवचन के प्रति वात्सल्य भाव को धारण करे, फिर हर्षपूर्वक उठ कर यथा-रत्नाधिक (जो अपने से संयम में बड़े हों उन) को क्रमानुसार भोजन करने के लिए आमन्त्रित करे और उनकी इच्छानुसार उन्हें भवपूर्वक भोजन देने के पश्चात् गुरुजन की आज्ञा प्राप्त होने पर उचित स्थान पर बैठे।

विवेचन - अण्णाए - अज्ञात- "अज्ञातो-अनवगतो दायकजनेरयं श्रीमान् प्रव्रजितोऽस्ति इति म ज्ञातः अकथितः स्वयमेव यथाहं श्रीमान् पूर्वमभूवं इति।" अर्थात्-साधु अज्ञात रहे। दाता यह न जानता हो कि यह साधु श्रीमंत कुल से निकला है (या इसमें कोई विशेषता है) साधु भी अपना परिचय नहीं दे कि मैं गृहस्थवास में कोई दरिद्र या नंगा-भूखा नहीं, परन्तु श्रीमंत (या अधिकारी था) अथवा मैं ऐसा तपस्वी आदि हूँ। अपनी जाति सम्बन्ध आदि का परिचय नहीं दे।

आहार करने की विधि

संपमज्जिरुण ससीयं कायं तहा करयलं अमुच्छिअ अगिद्धे अगठिए अगरहिए अणञ्जोववण्णे अणाइले अलुद्धे अणत्तट्टिए असुरसुरं अचवचवं अदुयमविलंबियं अपरिसाडियं आलोयभायणे जयं पयत्तेण ववगय-संजोग-मणिंगालं च विगयधूमं अक्खोवजणाणुलेवणभूयं संजमजायामायाणिमित्तं संजमभारवहणट्टयाए भुंजेज्जा पाणधारणट्टयाए संजएण समियं एवं आहारसमिइजोगेणं भाविओ भवइ अंतरप्पा असबलमसंकिलिट्टणिव्वणचरित्तभावणाए अहिंसए संजए सुसाहू।

शब्दार्थ - ससीयं - मस्तक सहित, **कायं -** शरीर को, **तहा -** तथा, **करयलं -** करतल को, **संपमज्जिरुण -** भली प्रकार से पूँज कर आहार करे, **अमुच्छिअ -** मूर्च्छित न हो, **अगिद्धे -** गृद्ध न हो, **अगठिए -** आसक्त न हो, **अगरहिए -** गर्हा न करे, **अणञ्जोववण्णे -** रस में मन को एकाग्र न करे, **अणाइले -** भावों को दूषित न करे, **अलुद्धे -** लुब्ध न हो, **अणत्तट्टिए -** स्व-स्वार्थ के साथ परार्थ पर भी ध्यान रखे, **असुरसुरं -** सुरसुर का शब्द नहीं करे, **अचवचवं -** चवचव की ध्वनि नहीं करे, **अदुयं -** बहुत शीघ्र आहार न करे, **अविलंबियं -** बहुत विलम्बपूर्वक भी आहार न करे, **अपरिसाडियं -** आहार के कण को नीचे नहीं गिरावे, **आलोयभायणे -** दिखाई देने वाले पात्र में, **जयं पयत्तेण -** यतनापूर्वक योगों को वश में रखे, **ववगयसंजोगमणिंगालं -** संयोजना तथा इंगाल दोष से रहित, **विगयधूमं -** धूम-दोष

वर्जित, अक्खोवज्जणाणुलेखणभूयं - गाड़ी के पहियों की धुरा में अंजन तथा घाव पर लेप के समान, संजमजायामायाणिमित्तं - संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए, संजमभारवहणट्टयाए - संयमभार वहन करने के लिए, य - और, पाणधारणट्टयाए - प्राण धारण करने के लिए, भुंजेज्जा - भोजन करे, एवं - इस प्रकार, आहारसमिइजोगेणं - आहार-समिति का, समियं - सम्यक् पालन करने वाले, संजएण - साधु की, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, भाविओ भवई - भावित होती है, असबलमसंकिलिट्टणिट्ठणचरित्तभावणाए - उसका चारित्र और परिणाम निर्मल, विशुद्ध और अखण्डित होता है, अहिंसए - अहिंसक, संजए - संयमधारी, सुसाहु - मोक्ष का साधक उत्तम साधु।

भावार्थ - फिर मस्तक सहित शरीर तथा करतल को भली प्रकार से पूँज कर आहार करे। आहार करता हुआ साधु, आहार के स्वाद में मूर्च्छित नहीं होवे, गूढ़, लुब्ध एवं आसक्त नहीं बने। अपना ही स्वार्थ नहीं सोचे। विरस-या रस-रहित आहार हो, तो उसकी निन्दा नहीं करे। मन को रस में एकाग्र नहीं करे। मन में कलुषता नहीं लावे। रस लोलुप नहीं बने। भोजन करता हुआ 'सुरसुर' या 'चव चव' की ध्वनि नहीं होने दे। भोजन करने में न तो अति शीघ्रता करे और न अति धीरे-विलम्बपूर्वक करे। भोजन करते समय आहार का अंश नीचे नहीं गिरावे। ऐसे भाजन में भोजन करे जो भीतर से भी पूरा दिखाई देता हो अथवा भोजन-स्थान अन्धकार युक्त नहीं हो। भोजन करता हुआ साधु अपने मन, वचन और काया के योगों को वंश में रखे। भोजन को स्वादयुक्त बनाने के लिए उसमें कोई अन्य वस्तु नहीं मिलावे अर्थात् 'संयोजना दोष' और 'इंगाल दोष' नहीं लगावे। अच्छे आहार की सराहना भी नहीं करे। अनिच्छनीय आहार की निन्दा रूप 'धूम-दोष' भी नहीं लगावे।

जिस प्रकार गाड़ी को सरलतापूर्वक चलाने के लिए उसकी धुरी में अंजन, तेल आदि लगाया जाता है और शरीर पर लगे हुए घाव को ठीक करने के लिए लेप-मरहम लगाया जाता है, उसी प्रकार संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए, संयम के भार को वहन करने के लिए तथा प्राण धारण करने के लिए भोजन करे। इस प्रकार आहार-समिति का सम्यक् रूप से पालन करने वाले साधु की अन्तरात्मा भावित होती है। उसकी चारित्र और भावना निर्मल विशुद्ध एवं अखण्डित है। वह संयमवन्त अहिंसक साधु, मोक्ष का उत्तम साधक होता है।

विवेचन - इस चौथी भावना में आहार प्राप्ति और भोजन करने की कैसी उत्तम विधि बताई गई है? ऐसी निर्दोष, उत्तम एवं परिपूर्ण विधि भी निर्ग्रन्थ-धर्म की ही विशेषता है।

पंचमी भावना - आदान निक्षेपण समिति

पंचमं आयाणणिक्खेवणसमिइ पीढ-फलग-सिज्जा-संथारग-वत्थ-पत्त-कंबल-दंडग-रयहरण-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाई एयं वि संजमस्स उवबूहणट्टयाए

वायातवदंसमसगसीयपरिरक्खणट्टयाए उवगरणं रागदोसरहियं परिहरियव्वं संजमेणं
णिच्चं पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणयाए अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइ सययं
णिविखयव्वं च गिण्हियव्वं च भायणभंडोवहिउवगरणं एवं आयाणभंडणिविखेवणा
समिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा असबलमसंकिलिट्टणिव्वणचरित्तभावणाए
अहिंसए संजए सुसाहू ।

शब्दार्थ - पंचमं - पाँचवीं, आयाणणिविखेवणासमिइ - आदाननिक्षेप-समिति, पीठ-फलक-
सिग्जा-संथारग-वत्थ-पत्तकंबल-दंडग-रयहरण-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाई - पीठ, फलक,
शय्या संस्तरक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, चोलपट्टा, मुंहपत्ति, पादप्रौच्छन, एयंथि - इन,
संजमस्स - संयम की, उववूहणट्टयाए - वृद्धि के लिए, वायातवदंसमसगसीयपरिरक्खणट्टयाए -
वायु, आतप, दंशमशक और शीत निवारण के लिए, उवगरणं - उपकरण, रागदोसरहियं - राग-द्वेष रहित
हो, परिहरियव्वं - धारण करना, संजएण - साधु को, णिच्चं - सदा, पडिलेहणपप्फोडणपमज्जणयाए-
प्रतिलेखना, प्रस्फोटन और रजोहरण द्वारा प्रमार्जन, अहो - दिन में, य - और, राओ - रात में, अप्पमत्तेण
होइ - अप्रमत्त होकर, सययं - सतत्-सदाकाल, णिविखयव्वं - रखे, गिण्हियव्वं - ग्रहण करे,
भायणभंडोवहिउवगरणं - भण्डोपकरणों को, एवं - इस प्रकार, आयाणभंडणिविखेवणासमिइजोगेण-
आदान-भंड-निक्षेपणा समिति का यथावत् पालन करे, भाविओ - भावित, भवइ - होता है, अंतरप्पा -
अन्तरात्मा, असबलमसंकिलिट्टणिव्वणचरित्तभावणाए - उसका चारित्र और परिणाम निर्मल विशुद्ध
और अखण्डित होता है, अहिंसए - अहिंसक, संजए-संयमधारी, सुसाहू - मोक्ष का साधक उत्तम साधु ।

भावार्थ - अहिंसा महाव्रत की पाँचवीं भावना 'आदान-निक्षेपण' समिति है। संयम साधना में
उपयोगी ऐसे उपकरण (साधन) को यतनापूर्वक ग्रहण करना एवं यतनापूर्वक रखना-'आदान-निक्षेपण'
समिति है। साधु को पीठ, फलक, शय्या, संस्तरक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, चोलपट्टक,
मुखवस्त्रिका, पादप्रौच्छन आदि उपकरण, संयमवृद्धि के लिए तथा वायु, आतप, दंशमशक और शीत से
बचाव करने के लिए हैं। इन्हें राग-द्वेष रहित होकर सदैव धारण करना चाहिए। इन उपकरणों की
प्रतिलेखना (देखना-निरीक्षण करना) प्रस्फोटना (झटकना-फटकना) प्रमार्जना (रजोहरण से पूंजना)
करनी चाहिए। दिन और रात में-सदैव अप्रमत्त रहता हुआ मुनि, पात्र और भण्डोपकरण ग्रहण करे और
रखे। इस प्रकार आदान-निक्षेपणा समिति का यथावत् पालन करने से, साधु की अन्तरात्मा अहिंसा धर्म
से प्रभावित होती है। उसका चारित्र और आत्म-परिणाम निर्मल, विशुद्ध होता है और महाव्रत
अखण्डित रहता है। वह संयमवान् अहिंसक साधु मोक्ष का उत्तम साधक होता है।

एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहिं पंचहिं वि कारणेहिं
मणवयणकायपरिरक्खएहिं णिच्चं आमरणंतं य एस जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया
अणासवो अकलुसो अच्छिहो असंकिलिट्टो सुद्धो सब्बजिणमणुण्णाओ ।

शब्दार्थ - एवमिणं - इस प्रकार यह, संवरस्स दारं - संवर द्वार, संवरियं - सेवन किया हुआ, सुप्पणिहियं - सुप्रणिहित, होइ - होता है, इमेहिं - इन, पंचहिं - पाँच, कारणेहिं - कारणों से, मणवयकायपरिरक्खिण्हिं - मन, वचन और काया को गुप्त रखने रूप, णिच्चं - सदा, आमरणंतं - मरण पर्यन्त, एस - इस, जोगो - योग का, णेयव्वो - पालन करना, धिइमया - धैर्यवान्, मइमया - बुद्धिमान्, अणासवो - अनाश्रव, अकलुसो - पाप-रहित, अच्छिदो - छिद्र-रहित, असंकिलिदो - संक्लेश-रहित, सुद्धो - शुद्ध, सव्वजिणमणुण्णाओ - समस्त तीर्थंकरों द्वारा आज्ञापित।

भावार्थ - इस प्रकार सम्यक् रूप से सेवन किया हुआ यह प्रथम संवर द्वारा सुरक्षित होता है। बुद्धिमान् और धैर्यवान् मनुष्य को चाहिए कि वह अपने मन, वचन और काया को सुरक्षित रखने के लिए सदैव इन पाँच कारणों (भावनाओं) से जीवनपर्यन्त इस अहिंसा योग का पालन करे। यह अनाश्रव है, अकलुष, निष्पाप है। आश्रव रूपी छिद्र से रहित है। मानसिक संक्लिष्टता से वंचित है। यह शुद्ध है और सभी जिनेश्वरों द्वारा आज्ञापित है।

एवं पढमं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तिरियं किट्टियं आराहियं आणाए अणुपालियं भवइ। एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं।

॥ पढमं संवरदारं सम्पत्तं। तिबेमि ॥

शब्दार्थ - एवं - इस प्रकार, पढमं - प्रथम, संवरदारं - संवरद्वार, फासियं - स्पृष्ट, पालियं - पालित, सोहियं - शोभित, तिरियं - अन्तिम ध्येय तक पहुँचाया, किट्टियं - कीर्तित, आराहियं - आराधित, आणाए - आज्ञा का, अणुपालियं - अनुपालित, भवइ - होता है, णायमुणिणा भगवया-ज्ञात-कुलोत्पन्न भगवान् महावीर स्वामी ने, पण्णवियं - कहा है, परूवियं - प्ररूपणा की है, पसिद्धं - प्रसिद्ध, सिद्धं - प्रमाण संगत, सिद्धवरसासणमिणं - अपने कार्य को सिद्ध करने वाले तीर्थंकर भगवान् की प्रधान आज्ञा, आघवियं - सम्यक् प्ररूपण, सुदेसियं - भली प्रकार उपदेशित, पसत्थं - प्रशस्त, पढमं - प्रथम, संवरदारं - संवरद्वार, सम्पत्तं - समाप्त हुआ, तिबेमि - ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ - इस प्रकार पाँचों भावनाओं का पालन करने से प्रथम संवरद्वार स्पर्शित, पालित, शोभित (या शोधित) होता है, पार पहुँचाया जाता है, कीर्तित होता है, आराधित होता है और तीर्थंकर भगवान् की आज्ञानुसार पालित होता है। इस प्रकार ज्ञात-कुलोत्पन्न भगवान् महावीर ने कहा है, प्ररूपणा की है। जिनेश्वर भगवन्तों का यह अहिंसा धर्म सिद्ध है, प्रसिद्ध है। कृतकृत्य ऐसे जिनेश्वर भगवान् ने इसकी आज्ञा दी है। यह भगवान् द्वारा प्ररूपित है, उपदेशित है। यह निग्रंथ प्रवचन प्रशस्त है। प्रथम संवर-द्वार समाप्त हुआ। ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ अहिंसा नामक प्रथम संवर द्वार समाप्त ॥

सत्य-वचन नामक द्वितीय संवर द्वार

सत्य की महिमा

जंबू! बिइयं य सच्चवयणं सुद्धं सुचियं सिवं सुजायं सुभासियं सुव्वयं सुकहियं सुदिट्ठं सुपइट्ठियं सुपइट्ठियजसं सुसंजमिय-वयण-बुइयं सुरवर-णरवसभ-पवरबलवग-सुविहियजणबहुमयं, परमसाहुधम्मचरणं, तवणियमपरिग्गहियं सुगइपहदेसगं य लोगुत्तमं वयमिणं। विज्जाहरगगणगमणविज्जाणसाहकं सग्गमग्ग-सिद्धि-पहदेसगं अवितहं तं सच्चं, उज्जुयं अकुडिलं भूयत्थं अत्थओ विसुद्धं उज्जोयकरं पभासगं भवइ सव्वभावाण जीवलाए, अविसंवाइ जहत्थमहुरं।

शब्दार्थ - जंबू - हे जंबू, बिइयं - द्वितीय, सच्चवयणं - सत्य वचन, सुद्धं - शुद्ध, सुचियं - पवित्र, सिवं - कल्याणकारी, सुजायं - शुभ अर्थ का कथन करने वाला, सुभासियं - सुभाषित, सुव्वयं - सुव्रत, सुकहियं - भली प्रकार कथित, सुदिट्ठं - सुदृष्ट, सुपइट्ठियं - सुप्रतिष्ठित, सुपइट्ठियजसं - सुप्रतिष्ठित यश वाला, सुसंजमियवयणबुइयं - वचन पर पूर्ण नियन्त्रण रखने वाले पुरुषों द्वारा भाषित, सुरवर-णरवसभपवरबलवगसुविहियजणबहुमयं - उत्तम देव तथा नर-श्रेष्ठ बलवानों में उत्तम तथा नियमित जीवन व्यतीत करने वाले पुरुषों द्वारा भाषित, परमसाहुधम्मचरणं - उत्तम साधुओं का धर्माचरण रूप, तवणियमपरिग्गहियं - तप और नियमों से स्वीकृत, सुगइपहदेसगं - सुगति मार्ग का उपदेश करने वाला, विज्जाहरगगणगमणविज्जाणसाहकं - विद्याधर तथा आकाश-गमन विद्या का साधन, सग्गमग्गसिद्धिपहदेसगं - स्वर्ग-मार्ग तथा सिद्धि-मार्ग का प्रवर्तक, अवितहं - मिथ्यावाद का अभाव, तं - यह, सच्चं - सत्य वचन, उज्जुयं - सरल, अकुडिलं - कुटिलता रहित, भूयत्थं - सत् पदार्थ का कहने वाला, अत्थओ - अर्थ, विसुद्धं - विशुद्ध, उज्जोयकरं - सत् पदार्थों को प्रकाशित करने वाला, पभासगं - कथन करने वाला, सव्वभावाण - समस्त पदार्थों का, जीवलोए - संसार में, अविसंवाइ - विसंवाद के दोष-रहित, जहत्थमहुरं - यथार्थ मधुर।

भावार्थ - गणधर भगवान् सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि-हे जंबू! दूसरा संवर-द्वार सत्य वचन है। सत्य वचन शुद्ध है, पवित्र है, कल्याण का कारण है, शुभ अर्थ का प्रकाशक है, सुभाषित है, सुव्रत, सुकथित, सुदृष्ट, सुप्रतिष्ठित एवं सुप्रतिष्ठित-यश युक्त है। सुसंयमशील मनुष्यों द्वारा बोला जाने वाला, उत्तम जाति के देवों, नरवृषभों एवं बलवानों में उत्तम तथा नियमित जीवन वाले महानुभावों द्वारा भाषित है। उत्तम साधुओं का धर्माचरण रूप है। तप और नियम के लिए परमावश्यक है। विद्याधर तथा आकाशगामिनी-विद्या का साधन भी सत्य वचन है। सत्य भाषण लोक में उत्तम है, स्वर्ग एवं मोक्ष-मार्ग दिखाने वाला है, एवं मिथ्यावाद से रहित है। सत्य-वचन सरल है, कुटिलता से रहित है, सत्य

वस्तु का प्ररूपक है, विशुद्ध अर्थ बताने वाला है। सत्य तत्त्व को प्रकाशित करने वाला है। इस जीव लोक के समस्त पदार्थों का प्रकाशक सत्य वचन ही है। सत्य-भाषण किसी भी प्रकार के विसंवाद से रहित है। यथार्थ एवं मधुर है।

विवेचन - प्रथम अहिंसा नामक संवरद्वार के बाद दूसरा सत्यभाषण नामक संवरद्वार है। यदि सत्यभाषण नहीं हो, तो अहिंसा-संवर अपूर्ण रह जाता है। मिथ्यावाद स्व और पर का अहितकर्ता है, जो अहितकारी हो, वह पूर्ण अहिंसक कैसे हो सकता है? अतएव पूर्ण अहिंसक के लिए सत्यवादी होना अति आवश्यक है। इसके बिना सर्वविरति नहीं हो सकती। इसीलिए सूत्रकार ने सत्यव्रत नामक दूसरे धर्मद्वार का प्रतिपादन किया है।

सत्य वचन शुद्ध है, क्योंकि सत्यभाषी के मन में मृषावाद का मल नहीं होता। उसकी आत्मा असत्य के पाप से मलिन नहीं होती। अतएव सत्य शुद्ध है और जो शुद्ध है, वह पवित्र है, हितकारी है यावत् मुक्ति का हेतु है। उत्तम मनुष्य ही सत्य-भाषण करते हैं। यह सत्य-वचन, जाति आदि से अधम कहे जाने वाले मनुष्य को भी उत्तम बना देता है। जो उत्तम पुरुष हो गए हैं, उन सभी ने सत्य का आचरण किया था। असंख्य देवों के स्वामी इन्द्र और मनुष्यों के स्वामी नरेन्द्र-चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव आदि तथा संतजनों ने सत्य-भाषण का आदर किया है। जो उत्तम साधु हैं, उनका तो यह महाव्रत है। वे इसका पालन जीवन पर्यन्त त्रिकरण-त्रियोग से करते हैं। तपस्या भी सत्याचरण युक्त होने पर शुद्ध होती है। नियम भी सत्यता युक्त हो, तभी प्रशस्त होते हैं। जिस तप और नियम में सत्य नहीं, वे असम्यक् एवं अकल्याणकारी होते हैं। स्वर्ग एवं मुक्ति रूपी सुगति का उपदेश भी सत्य-वचन से ही होता है। मृषावाद एवं मिथ्य-भाषण से सुगति का उपदेश नहीं हो सकता।

विद्याधर मनुष्य, आकाशगामिनी-विद्या की साधना करते हैं, वह आकाशगामिनी विद्या भी सत्य-भाषी के ही सिद्ध होती है। इस विद्या के प्रभाव से वे आकाश-मार्ग से यथेच्छ विचरण करते हैं। सत्य-भाषण ही स्वर्ग एवं मुक्तिमार्ग का प्रदर्शक है।

सत्यभाषी सरल होता है, क्योंकि उसके मन में माया-कूट-कपट एवं छल रूपी वक्रता नहीं होती। ठग़ाई या वंचना रूपी कुटिल-भाव नहीं होते। इसलिए सत्य सरल होता है।

वस्तु स्वरूप को यथातथ्य बताने वाला भी सत्य-वचन ही है। असत्य-भाषण के द्वारा न तो सम्यक् अर्थ प्रकाशित होता है और न तत्त्व ही। जहाँ असत्य का निवास हो, वहाँ तत्त्व अथवा लोक का स्वरूप सत्य एवं यथार्थ रूप से प्रकट नहीं हो सकता, फिर वह असत्य भले ही उस व्यक्ति का अपना हो या उसे किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त हुआ हो-अनन्तर या परम्पर।

पच्चक्खं दयिवयं व जं तं अच्छेकरांग अवत्थंतरेसु बहुएसु मणुसाणां, सच्चेण महासमुहमज्जे वि मूढाणिया वि पोया सच्चेण य उदगसंभमम्मि वि ण वुज्झइ ण य मरंति थाहं ते लहंति। सच्चेण य उदगसंभमम्मि वि ण वुज्झइ ण य मरंति थाहं ते

लहंति। सच्चेण य अगणिसंभममि वि ण डञ्जंति उज्जुगा मणुस्सा। सच्चेण य तत्ततेल्लतउलोहसीसगाइं छिवंति धरंति ण य डञ्जंति मणुस्सा। पव्वयकडकाहिं मुच्चंते ण य मरंति सच्चेण य परिग्गहिया, असिपंजरगया समराओ वि णिइंति अणहा य सच्चवाई, वहबंधभियोगवेर-घोरेहिं पमुच्चंति य अमित्तमञ्जाहिं णिइंति अणहा य सच्चवाई, सादेव्वाणि य देवयाओ करंति सच्चवयणे रत्ताणं।

शब्दार्थ - पच्चक्खं - प्रत्यक्ष, दधिवयं व - देव के समान, अच्छेरकारगं - आश्चर्यकारक, अवत्थंतेरेसु बहुसु - बहुत-सी विपत्तियों के आने पर भी, मणुस्साणं - मनुष्यों के लिए, सच्चेणं - सत्य के प्रभाव से, महासमुहमञ्जे - महान् समुद्र के मध्य में, मूढाणिया - दिशा-भ्रमित नाविक की, पोया - नौका, सच्चेण - सत्य के प्रभाव से, उदगसंभममि वि - जलावर्त में पड़ी हुई, ण मुञ्जाइ - डूबती नहीं, ण मरंति - मरते नहीं, थाहं - थाह को, ते - वे, लहंति - प्राप्त करते हैं, सच्चेण - सत्य के प्रभाव से, अगणिसंभमि - अग्नि के उपद्रव में भी, ण डञ्जंति - नहीं जलते, उज्जुगा - सरल, मणुस्सा - मनुष्य, सच्चेण - सत्य के प्रभाव से, तत्ततेल्लतउलोहसीसगाइं - तप्त तेल, रांगा, लोहा और शीशा को, छिवंति - स्पर्श करते, धरंति - धारण करते, ण डञ्जंति - जलते नहीं, मणुस्सा - मनुष्य, पव्वयकडकाहिं - पर्वत के अग्रभाग से, मुच्चंते - गिरा दिये जाने पर भी, ण मरंति - मरते नहीं, सच्चेण - सत्य के प्रभाव से, परिग्गहिया - चारों ओर से घेर लिया जाने पर भी, असिपंजरगया - तलवारों से युक्त शत्रुओं के समूह द्वारा, समराओ - संग्राम में, णिइंति - निकल आते हैं, अणहा - अक्षत शरीर, सच्चवाई - सत्यवादी मनुष्य, वहबंधभियोगवेरघोरेहिं - वध, बन्धन, बलात्कार और घोर उपद्रवों से भी, पमुच्चंति - मुक्त होते हैं, अमित्तमञ्जाहिं - शत्रुओं के बीच से, णिइंति - निकल आते हैं; अणहा - अक्षत, सच्चवाई - सत्यवादी मनुष्य, सादेव्वाणि - समीपता, देवयाओ - देव भी, करंति - करते हैं, सच्चवयणे रत्ताणं - सत्य-वचन में अनुरक्त रहने वाले मनुष्यों की।

भावार्थ - सत्यभाषी मनुष्य पर यदि विपत्तियाँ आकर घेरा डाल दें, तो भी उसका सत्यव्रत उसके लिए देव के समान आश्चर्यकारी प्रत्यक्ष सहायक होता है। दिग्मूढ नाविक की महासमुद्र के जल-भ्रमर में पड़ी हुई नौका भी सत्य के बल से डूबती नहीं और नौका-विहारी मरते नहीं। वे अथाह जल से निकल कर थाह प्राप्त कर लेते हैं। सत्य के प्रभाव से अग्नि का उपद्रव-दावानल भी नहीं जला सकता। सत्य का आचरण करने वाले सरल मनुष्य यदि उबलते हुए तेल रांगा, लोह और शीशे को हाथों में पकड़ लें, तो भी नहीं जलते। सत्य पालक को यदि कोई पर्वत-शिखर से गिरा दे, तो भी वह नहीं मरता और बच जाता है। सत्यव्रती मनुष्य संग्राम में शत्रु-समूह द्वारा घिरकर भी सुरक्षित निकल जाता है। सत्यभाषी मनुष्य, वध, बन्धन, आक्रमण, बलप्रयोग एवं घोर शत्रुदल की विपत्ति से भी मुक्त हो जाता है। सत्यवाद में अनुरक्त रहने वाले मनुष्य का देव भी सान्निध्य करते हुए सेवा करते हैं। यह सत्य-व्रत की महिमा है।

विवेचन - सत्यव्रती, सत्य के आराधक और सत्य के बल से अपनी आत्मा को बलवान् बनाने वाली भव्यात्मा, प्रथम तो सभी प्रकार की विपत्तियों से सुरक्षित रहती है। यदि पूर्वकर्म के उदय से कभी विपत्ति आ भी जाये, तो वह सत्यव्रती आत्मा का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। उसका सत्यव्रत उसकी इस प्रकार रक्षा करता है, जिस प्रकार किसी देव ने आकर आश्चर्यजनक रूप से रक्षा की हो। सत्यव्रत का पालक, समुद्र के भंवरचक्र, वायुप्रकोप, बड़वानल या किसी भी प्रकार के भयानक उपद्रव से घिर कर भी सुरक्षित रहकर किनारे आ जाता है। उसे दावानल भी नहीं जला सकता और शत्रु सेना भी क्षति नहीं पहुँचा सकती। उस सत्यधर्मी सत्पुरुष को पर्वत-शिखर से गिरा देने पर भी अंग-भंग नहीं होता। वह सभी प्रकार की आपत्ति-विपत्तियों से बचा रहता है। देव भी उसके प्रशंसक और सहायक होते हैं। कहा भी है कि -

“सत्येनाऽग्निर्भवेच्छीतोऽगाधाम्बुधिरपि स्थलम् ।

नाऽसिः छिनत्ति सत्येन, सत्यान्न दशते फणी ।”

- सत्यवादी के समक्ष अग्नि भी शीतल हो जाती है। अगाध समुद्र भी स्थल के समान हो जाता है। तलवार की धार भी भोंधरी हो जाती है और सर्प भी नहीं डसता। यह सत्यव्रत की महिमा है।

तं सच्चं भगवं तित्थयरसुभासियं दसविहं चोदसपुव्वीहिं पाहुडत्थविइयं महरिसीण य समयप्यइण्णं देविंदणरिदभासियत्थं वेमाणियसाहियं महत्थं मंतोसहिविज्जासाहणत्थं चारणगणसमणसिद्धविज्जं मणुयगणाणं वंदणिज्जं अमरगणाणं अच्चणिज्जं असुरगणाणं य पूयणिज्जं अणेगपासंडिपरिग्गहियं जं तं लोगम्मि सारभूयं, गंभीरयरं महासमुदाओ, थिरयरगं मेरुपव्वयाओ, सोमयरगं चंदमंडलाओ, दित्तयरं सूरमंडलाओ विमलयरं सरयणहयलाओ, सुरभियरं गंधमादणाओ जे वि य लोगम्मि अपरिसेसा मंतजोगा जवा य विज्जा य जंभगा य अत्थाणि य सत्थाणि य सिक्खाओ य आगमा य सव्वाइं वि ताइं सच्चे पइट्टियाइं ।

शब्दार्थ - तं - यह, सच्चं - सत्य, भगवं - भगवान्, तित्थयरसुभासियं - तीर्थकरों ने बड़ी उत्तमता के साथ वर्णन किया, दसविहं - दस भेद, चोदसपुव्वीहिं - चौदह पूर्वधारियों ने, पाहुडत्थविइयं - पूर्व के एक विशिष्ट भाग में इसे भली-भांति जाना था, महरिसीण - बड़े-बड़े महर्षियों ने, य - और, समयप्यइण्णं - सिद्धान्त रूप से उपदेश दिया, देविंदणरिदभासियत्थं - देवेन्द्र तथा नरेन्द्रों ने सत्य भाषण के प्रयोजन का अनुभव किया है, वेमाणियसाहियं - वैमानिक देवों को भी उपादेय, महत्थं - महान् अर्थ वाला, मंतोसहिविज्जासाहणत्थं - मंत्र तथा औषधी और विद्याओं की सिद्धि का साधन, चारणगणसमणसिद्धविज्जं - चारणगण और श्रमणों को आकाशगमन और वैक्रिय विद्याओं की सिद्धि, मणुयगणाणं - मनुष्यगण का, वंदणिज्जं - वन्दनीय, अमरगणाणं - देवगण का, अच्चणिज्जं -

अर्चनीय, असुरगणाणं - असुरगण का, य - और, पूयणिज्जं - पूजनीय, अणेगपासंडिपरिगहियं - अनेक पाखण्डियों द्वारा स्वीकृत, लोगम्मि - जगत् में, सारभूयं - सारभूत, गंभीरयरंमहासमुद्दाओ - महान् समुद्र से भी अत्यन्त गम्भीर है, थिरयरगंमेरुपव्वयाओ - मेरुपर्वत से भी अधिक स्थिर है, सोमयरगंचंदमंडलाओ - चन्द्रमण्डल से भी अधिक सौम्य है, दित्तरंसूरमंडलाओ - सूर्य-मंडल से भी अधिक प्रकाशवान् है, विमलयरंसरयणहयलाओ - शरत्काल के आकाश से भी अधिक निर्मल है, सुरभियरं गंधमादणाओ - गन्धमादन पर्वत से भी अधिक सुगन्धिमय है, जे वि - दूसरे जितने भी, लोगम्मि - लोक में, अपरिसेसा - विशेष-समस्त, मंतजोगा - वशीकरण आदि मंत्र-योग, जवा - मंत्रविद्या का जाप, विज्जा - प्रज्ञप्ति आदि विद्याएं, जंभगा - जृम्भक देव, अत्थाणि - अस्त्र, सत्थाणि-शस्त्र, सिक्खाओ - शिक्षा, आगमा - आगम, सव्वाइं - सभी, ताइं - वे, सच्चे - सत्य में, पइड्डियाइं - प्रतिष्ठित हैं।

भावार्थ - तीर्थंकर भगवंतों ने सत्य का बड़ी उत्तमता के साथ वर्णन किया है। सत्य वचन के दस भेद हैं। चौदह पूर्वधर, श्रुतकेवली महापुरुषों ने सत्य को सत्यप्रवाद पूर्व से प्रकाशित किया है। महर्षियों ने सत्य को सिद्धान्त के रूप में प्रचारित किया है। देवेन्द्रों और नरेन्द्रों ने सत्य-भाषण रूप धर्म के प्रयोजन एवं परिणाम का अनुभव किया है। वैमानिक देवों ने भी सत्य की साधना का फल पाया और सत्य वचन का आदर किया है। यह सत्य महान् अर्थ वाला है। जीवों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह मंत्र, औषधि और विद्याओं को सिद्ध करने का साधन है। सत्य वचन के प्रभाव से ही चारणगण और श्रमणों को आकाश-गमन एवं वैक्रिय-विद्या की सिद्धि होती है। सत्य, मनुष्यगणों के लिए वन्दनीय है, देवगण के लिए अर्चनीय तथा असुरगण के लिए पूजनीय है। अनेक प्रकार के व्रतों का पालन करने वाले पाखण्डियों ने भी सत्य को स्वीकार किया है। यह सत्य, लोक में सारभूत है। सत्य, महासमुद्र से भी अति गम्भीर है, मेरुपर्वत से भी अत्यधिक स्थिर है, चन्द्रमण्डल से भी अत्यन्त सौम्य है, सूर्य-मंडल से भी अधिक तेजस्वी (प्रकाशमान्) है, शरदकाल के आकाश से भी अत्यन्त निर्मल है और गन्धमादन पर्वत से भी अधिक सुगन्धित है। इस लोक में जितने भी वशीकरणादि मंत्र, योग, जाप, विद्याएं, जृम्भक देव, अस्त्र-शस्त्र, शिक्षा एवं आगम हैं, वे सभी सत्य में प्रतिष्ठित हैं अर्थात् सत्यवादी को ही मंत्रयोगादि सिद्ध होते हैं।

विवेचन - सत्य वचन के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए सूत्रकार ने सत्य के दस भेद बतलाए हैं। सत्य तो एक ही है, किन्तु विवक्षा भेद से वह दस प्रकार का बताया गया है। यथा -

१. जनपद सत्य - जो वस्तु जिस देश में, जिस नाम से पुकारी जाती है, वह वहाँ का जनपद सत्य है- उस देश का सत्य है। जैसे - कोकण देश में 'जल' को 'पच्छ' कहते हैं, पंजाब में मक्की को 'कूकेड़ी' और बंगाल में गाय को 'गाभी' कहते हैं, क्योंकि यह देश-भाषा है और रूढ़ है। इसमें आशय असत्य नहीं है। अतएव यह 'जनपद सत्य' है।

२. सम्मत सत्य - प्राचीन आचार्यों, विद्वानों अथवा लोक-समूह ने जिस शब्द का जो अर्थ मान लिया, वह 'सम्मत सत्य है' है। जैसे - 'पंकज' शब्द का योगिक अर्थ तो है - कीचड़ में उत्पन्न होने वाला और कीचड़ में उत्पन्न होते हैं-मेढ़क, शैवाल, कुमुद, कुवलय, तापरस और कमल आदि। किन्तु विद्वानों ने पंकज शब्द का अर्थ केवल-'कमल' मान लिया है। अतएव यह सम्मत सत्य है।

३. स्थापना सत्य - किसी वस्तु में किसी दूसरी वस्तु का आरोपण करना। सदृश या असदृश आकार वाली वस्तु में किसी अन्य वस्तु की स्थापना करके उसे उस स्थापित नाम से पुकारना-स्थापना सत्य है। जैसे - शतरंज के मोहरों को हाथी, घोड़ा, बादशाह, वजीर आदि कहना, १ के ऊपर दो बिन्दी ०० लगाकर सौ १०० कहना, क ख आदि अक्षरों की आकृति भी ध्वनि की स्थापना रूप है। पत्र या पुस्तक में ध्वनि की आकृति 'क ख' आदि रूप में होती है, यह स्थापना सत्य है तथा किसी के नाम से स्थापित अनघड़ स्थापना और मूर्ति-चित्र आदि भी स्थापना सत्य है।

४. नाम सत्य - गुण रहित अथवा गुणहीन वस्तु का गुणयुक्त नाम रखना। जैसे-'कुलवर्द्धन' नाम उस व्यक्ति का दिया गया कि जिसके जन्म के बाद कुल का ही क्षय हो गया। वह अपुत्र ही मरा और वंश-परम्परा नष्ट हो गई। लक्ष्मीचन्द नाम दरिद्र का, अमरचन्द नाम बाल-अवस्था में ही मृत्यु पाने वाले का तथा सौभाग्यवती बाल विधवा का होना, गुणयुक्त नहीं होते हुए भी 'नामतः सत्य' है।

५. रूप सत्य - रूप की मुख्यता से किसी को सम्बोधन करना रूप सत्य है। जैसे - साधु का वेश धारण करने वाले किसी असाधु को भी 'साधु' कहना, स्त्री वेशधारी पुरुष को 'स्त्री' कहना, नाटक के पात्र को वेश के कारण 'राजा' या 'इन्द्र' कहना।

६. प्रतीत सत्य - किसी वस्तु की अपेक्षा दूसरी वस्तु को छोटी या बड़ी आदि कहना। जैसे-मध्यमा अंगुली की अपेक्षा अनामिका को छोटी और अनामिका की अपेक्षा मध्यमा को बड़ी कहना। इस प्रकार की अपेक्षावाची वाणी प्रतीत सत्य है।

७. व्यवहार सत्य - व्यावहारिक बात। जैसे - जलता तो है पर्वत पर रहा हुआ घास या लकड़ियाँ, किन्तु कहा जाता है - 'पर्वत जलता है।' चूता है पानी, परन्तु कहा जाता है - 'मटका चूता है', स्थिर पथ के लिए कहना कि - 'यह मार्ग अमुक नगर जाता है।' यह सब व्यावहारिक वचन है, इसे 'व्यवहार सत्य' कहते हैं।

८. भाव सत्य - भाव की विशेषता से वचन व्यवहार करना। जैसे तोते में गौण रूप में अन्य रंग होने पर भी उसे हरे रंग का कहना, आम में कुछ न कुछ खट्टापन होता है, किन्तु मधुरता की मुख्यता से उसे मीठा कहना।

९. योग सत्य - किसी वस्तु का संयोग देख कर उसकी मुख्यता से पुकारना। जैसे - हाथ में दण्ड देख कर 'दण्डी' छत्रयुक्त को 'छत्री', घुड़सवार को घोड़े वाला, गाड़ीवान् आदि।

१०. उपमा सत्य - किसी अमुक गुण की समानता से किसी दूसरी वस्तु से उसकी तुलना करना,

जैसे - मुख की सुन्दरता एवं सौम्यता से स्त्री 'चन्द्रमुखी', तालाब को 'समुद्र' के समान और ज्वार को 'मोती' के समान कहना-'उपमा सत्य' है।

उपरोक्त दस प्रकार की भाषा, विविध अपेक्षाओं से युक्त होने और बोलने वाले के मन में मृषावाद के भाव नहीं होने से-सत्य-भाषा है।

देविंदनरिदभासियत्थं - देवेन्द्र और नरेन्द्र का भासित अर्थ। देवेन्द्र और नरेन्द्र को सत्य भाषण का परिणाम भासित हो चुका है। देवेन्द्र-पद और चक्रवर्ती तथा वासुदेव का उत्तम पद, उन साधनों को ही प्राप्त होता है, जिन्होंने धर्म की साधना की है, सत्यव्रत का पालन किया है और वर्तमान में भी वे सत्य का आदर करने वाले हैं।

वैमाणियसाहियं - वैमानिक देवों द्वारा साधित। वैमानिक देवों ने भी सत्य का साधन किया है। चार जाति के देवों में वैमानिक देव उत्तम हैं और उनमें भी क्रमशः उच्च स्थानों के देव, उच्च साधना के फलस्वरूप होते हैं। सम्यग् दृष्टि, देश-विरत और सर्वविरत आत्माएं धर्माचरण के फलस्वरूप उच्चकोटि के वैमानिक देवों में उत्पन्न होती हैं। उनके लिए वहाँ भी सत्य-भाषण उपादेय होता है। इसलिए सत्य-साधकों में वैमानिक देवों की मुख्यता बताई गई है।

अणोगपासंडिपरिगहियं - 'अनेकपाखण्डिभिः परिगृहितं तेऽपि सत्यभाषिणा चरणशरणं कुर्वन्ति, नानाविधव्रतिभिरंगीकृत' - अनेक पाखण्डियों ने भी सत्य का ग्रहण किया है। वे भी सत्यभाषी के चरण की शरण लेते हैं। नाना प्रकार के व्रतियों ने सत्य को अंगीकार किया है। 'पाषंड' शब्द का अर्थ 'व्रतधारी' भी होता है और 'अन्ययूथिक' भी। अन्ययूथिकों ने भी सत्य को स्वीकार किया है। जैसे आजीवक मत के उपासक भी त्रसजीवों की हिंसा नहीं करते, बड़, पीपल, गूलर आदि के फल नहीं खाते और कर्मादान का सेवन नहीं करते (भगवती ८-५) वैसे वे और अन्य मत वाले भी सत्य को स्वीकार करते हैं-यद्यपि वे असम्यग्दृष्टि हैं। प्रथम गुणस्थान में भी मन और वचन के औठों योग माने ही हैं और 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' का उनका घोष भी है ही। अतएव अपनी मान्यता के अनुसार अन्य-मतावलम्बियों को सत्य का ग्राहक मानना अनुचित नहीं होगा। तत्त्व ज्ञानीगम्य।

सदोष सत्य का त्याग

सच्चं वि य संजमस्स उवरोहकारगं किंचि ण वत्तव्वं हिंसा सावज्जसंपउत्तं भेयविकहकारगं अणत्थवायकलहकारगं अणज्जं अववाय-विवायसंपउत्तं वेलंबं ओजधेज्जबहुलं णिल्लज्जं लोयगरहणिज्जं दुहिट्ठं दुस्सुयं अमुणियं, अप्पणो श्रवणा परेसु णिंदा ण तंसि मेहावी, ण तंसि धण्णो, ण तंसि पियधम्मो, ण तंसि कुलीणो, ण तंसि दाणवई, ण तंसि सूरु, ण तंसि पडिरूवो, ण तंसि लट्ठो, ण पंडिओ, ण बहुस्सुओ ण वि य तंसि तवस्सी, ण यावि परलोयणिच्छयमई असि, सव्वकालं

जाइकुलरूववाहिरोगेण वावि जं होई वज्जणिज्जं दुहओ उवयारमइक्कंतं एवं विहं सच्चं वि ण वत्तव्वं ।

शब्दार्थ - सच्चं वि - जो सत्य, संजमस्स - संयम में, उवरोहकारगं - बाधक होता हो, किंचि-किंचित् भी कदापि, ण - नहीं, वत्तव्वं - बोलना, हिंसासावज्जसंपउत्तं - हिंसा तथा अन्य कोई पाप, भेयविकहकारगं - चारित्र-नाशक और स्त्री आदि की विकथा, अणत्थवायकलहकारगं - निःसार वचन, कलहकारी वचन, अणज्जं - अनार्य-न्याय-रहित, अववाय-विवायसंपउत्तं - अपवाद और विवाद युक्त, वेलंब - दूसरों के हृदय में क्लेश उत्पन्न करने वाला, ओजधेज्जबहुलं - बल प्रयोग और ढिठाई परिपूर्ण, णिल्लज्जं - रज्जा-रहित, लोयगरहणिज्जं - लोक-निन्दित, दुहिट्ठं - विकृत दृष्टि से देखा हुआ, दुस्सुयं-दुःश्रुत-भली-भांति न सुना हुआ, अमुणियं - भली-भांति न जाना हुआ-विकृत रूप से जाना हुआ, अप्पणो-थवणा - स्वयं की स्तुति रूप, परेसु - दूसरों की, णिंदा - निंदा, ण तंसि मेहावी - तुम बुद्धिमान नहीं हो, ण तंसि धण्णो - तुम धन्य अथवा धनवान् नहीं हो, ण तंसि पियधम्मो - तुम प्रियधर्मी नहीं हो, ण तंसि कुलीणो - तुम कुलीन नहीं हो, ण तंसि दाणवई - तुम दानदाता नहीं हो, ण तंसि सूरु - तुम शूरवीर नहीं हो, ण तंसि पडिरूवो - तुम सुन्दर नहीं हो, ण तंसि लड्ढो - तुम सौभाग्यवान् नहीं हो, ण पंडिओ - तुम पंडित नहीं हो, ण बहुस्सुओ - तुम बहुश्रुत नहीं हो, ण वि य तंसि तवस्सी-न तुम तपस्वी हो, ण यावि परलोयणिच्छयमई - परलोक के विषय में तुम्हारी बुद्धि निश्चित नहीं है, सव्वकालं - सर्वदा, जाइकुलरूववाहिरोगेण - जाति, कुल, रूप, व्याधि और रोग को प्रकाशित करना, वज्जणिज्जं - वर्जनीय, दुहओ - दोनों प्रकार से, उवयारमइक्कंतं - उपकारक नहीं है, एवं विहं-इस प्रकार का, सच्चं वि - सत्य होते हुए भी, ण वत्तव्वं - नहीं बोलना चाहिए।

भावार्थ - आत्मा के लिए सत्य परम हितकारी है। किन्तु वह होना चाहिए निर्दोष। जिस सत्य से संयम में क्षति पहुँचती हो, जिस भाषण से हिंसादि पाप होता हो या पाप का समर्थन होता हो, जिससे अहिंसादि संयम एवं सामायिकादि चारित्र की कुछ भी हानि होती हो, जो स्त्री-कथादि राग-द्वेष तथा मिथ्यात्व, अविरति आदि पाप-कथा से युक्त हो, निःसार वचन, क्लेशोत्पादक, न्याय रहित, अपवाद (निन्दा) रूप, विसंवाद (झगड़ा) उत्पन्न करने वाला, दूसरों के मन में क्लेश उत्पन्न करने वाला, बल-प्रयोग एवं ढिठाई से भरा हुआ, लज्जा-रहित, लोक-निन्दित, भली प्रकार से नहीं देखा, नहीं सुना, नहीं जाना और नहीं समझा हुआ, अपने-आपकी प्रशंसा और दूसरे की निन्दा रूप वचन आदि सत्य भी हो, तो कभी भी नहीं बोलना चाहिए। दूसरों को हीन बताने वाले वचन, जैसे कि - 'तू बुद्धिमान नहीं (बुद्धिहीन) है, तू धन्य (धन्यवाद का पात्र अथवा धनवान्) नहीं है, तू पण्डित नहीं, बहुश्रुत नहीं, तपस्वी नहीं और परलोक के विषय में तुम्हारी मति निश्चित नहीं है। इस प्रकार जो वचन सत्य होते हुए भी निन्दित हो, जाति, कुल, रूप, व्याधि और रोग से हीनता प्रकट करने वाला हो, दूसरे के मन में पीड़ा उत्पन्न करने वाला हो, तो इस प्रकार का वचन त्यागने योग्य है। जो द्रव्य और भाव अथवा

लौकिक और लोकोत्तर दोनों प्रकार से उपकारी नहीं है, इस प्रकार का वचन सत्य हो, तो भी नहीं बोलना चाहिए।

द्विवेचन - सत्य-भाषण का महत्त्व बताने के बाद आगमकार महर्षि उस सदोष सत्य से सावधान करते हैं, जो दुःखदायक हो, आघातकारी हो, पापवर्द्धक हो यावत् पीड़ाकारी हो। 'असत्य-भाषण नहीं करना' इस प्रकार असत्य-त्याग रूप विरति तो होती है, परन्तु सभी प्रकार का सत्य बोलना ही चाहिए-ऐसी बात नहीं। बोलने की आवश्यकता हो, तब निर्दोष सत्य बोलना चाहिए। आगमकार भगवंत ने निर्दोष-वाणी बोलने के विषय में आचारांग, सूयगडांग, दशवैकालिक आदि में विस्तृत विधान किये हैं।

बोलने योग्य वचन

अह केरिसगं पुणाइ सच्चं तु भासियच्चं? जं तं दच्चेहिं पज्जवेहिं य गुणेहिं कम्महिं बहुविहेहिं सिप्पेहिं आगमेहिं य णामक्खाय-णिवाय-उवसग्ग तद्धियसमास-संधिपदहेउ-जोगियउणाइकिरियाविहाण-धाउसरविभत्तिवण्णजुत्तं तिकल्लं दसविहं वि सच्चं जह भणियं तह य कम्मुणा होइ दुवालसविहा होइ भासा, वयणं वि य होइ सोलसविहं। एवं अरहंतमणुणायं समिक्खियं संजएण कालम्मि य वत्तच्चं।

शब्दार्थ - अह - तब, केरिसगं - कैसा, पुणाइ - पुनः, सच्चं - सत्य-वचन, भासियच्चं - बोलना चाहिए, जं तं - वह सत्य-वचन, दच्चेहिं - द्रव्य से, पज्जवेहिं - पर्याय से, गुणेहिं - गुण से, कम्महिं - कर्म से, बहुविहेहिं - सिप्पेहिं - अनेक प्रकार के शिल्प तथा चित्रकर्म से, आगमेहिं - आगमयुक्त, णामक्खाय - नाम, आख्यात, णिवाय - निपात, उवसग्ग - उपसर्ग, तद्धिय - तद्धित, समास - समास, संधि - संधि, पद - पद, हेउ - हेतु, जोगिय - यौगिक, उणाइ - उणादि-कृदन्त, किरियाविहाण - क्रिया-विधान, धाउ - धातु, सर - अकारादि स्वर, विभत्ति - विभक्ति, वण्णजुत्तं - वर्णों से युक्त, तिकल्लं - भूत, भविष्य और वर्तमान से युक्त, दसविहं - दस प्रकार का, सच्चं - सत्य, भणियं - बोलना, जह - जैसा, तह - वैसा, कम्मुणा - क्रिया द्वारा, दुवालसविहा - बारह प्रकार की, भासा - भाषा, होइ - है, य - और, सोलसविहं - सोलह प्रकार का, वयणं - वचन, एवं - इस प्रकार, अरहंत-अरिहंतों ने, अणुणायं - आज्ञा दी, संजएण - संयमधारी को, समिक्खियं - सोच-विचार कर, कालम्मि - अवसर में, वत्तच्चं - भाषण करना चाहिए।

भावार्थ - अब किस प्रकार के वचन बोलना चाहिए, यह बताते हुए आगमकार स्वयं निर्देशित करते हैं कि जो सत्य-वचन द्रव्य, पर्याय, गुण, कर्म, अनेक प्रकार के शिल्प, आगम (सिद्धान्त) नाम, आख्यात, निपात, उपसर्ग, तद्धित, समास, सन्धि, पद, हेतु, यौगिक, उणादि, क्रियाविधान, धातु, स्वर, विभक्ति एवं व्यंजनों से युक्त, भूत, भविष्य और वर्तमान-इन तीनों कालों से युक्त और दस प्रकार के सत्य बोलना चाहिए। जिस प्रकार बोला जाये उसी प्रकार हाथ आदि की क्रिया से भी सूचित करना

चाहिये अथवा कार्य होना चाहिये। भाषा, बारह प्रकार की है और सोलह प्रकार के वचन हैं। इस प्रकार अरिहंतों ने सत्य के स्वरूप को निर्णय करके निर्दोष सत्य बोलने की आज्ञा दी है। संयमी आत्माओं को चाहिए कि सम्यक् विचार-पूर्वक बोलने के समय निर्दोष सत्य बोलना चाहिए।

विवेचन - इस सूत्र में निर्दोष सत्य-भाषण की अनुज्ञा दी गई है।

द्रव्य-जो त्रिकालवर्ती-शाश्वत हो, नित्य हो, जैसे जीव पुद्गल आदि द्रव्य हैं।

पर्याय-द्रव्य की नवीन-पुरातन आदि क्रमवर्ती अवस्था।

गुण-जीव-द्रव्य के ज्ञानादि और पुद्गल-द्रव्य के वर्णादि गुण।

कर्म-कृषि, शिल्प आदि व्यापार रूप।

नाम-व्युत्पन्न अव्युत्पन्न भेद से दो प्रकार का है। जिनदास आदि नाम व्युत्पन्न हैं और डित्थ आदि नाम अव्युत्पन्न हैं।

आख्यात - क्रियापद जो भूत, भविष्य और वर्तमान भेद से तीन प्रकार का है।

निपात - अर्थ में विशेषता लाने वाले 'खलु' 'इव' 'च' 'वा' आदि शब्द।

उपसर्ग - धातु के साथ लगने वाले 'प्रो' 'परा' 'सम्' 'अपि' आदि। इनसे धातु के अर्थ में भिन्नता आती है। जैसे-'हार' शब्द के आगे 'प्र' उपसर्ग लगने से 'प्रहार' और 'आ' लगने से आहार बन जाता है।

तद्धित - जिस शब्द के अन्त में प्रत्यय हो। जैसे - गो शब्द के प्रत्यय लगने पर 'गव्य' और नाभि शब्द से 'नाभेय' बनता है।

समास - परस्पर सम्बन्धित दो या अधिक पदों के मध्य की विभक्ति का लोप करके मिलाये हुए अनेक पद। अनेक पदों को मिलाकर एक करना जैसे-राजपुरुष, गोदुग्ध आदि।

सन्धि-मेल-मिलन। वर्णों के मिलने से जो ध्वनि होती है। जैसे-'श्रावकः अत्र' 'श्रावकोऽत्र' 'कवलाहार' 'दुग्धपान' आदि।

पद-विभक्ति का अन्तिम शब्द। वाक्य का एक विभाग।

हेतु-साध्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखने वाला। जैसे धूम के हेतु से अग्नि का अनुमान करना। साध्य रूप अग्नि को बताने वाला हेतु 'धुआँ' है।

योगिक-योग से सम्बन्धित शब्द। जैसे-पद्मनाभ, नीलकान्त दण्डी आदि।

उणादि-जिस शब्द के अन्त में उण् प्रत्यय हो, जैसे-साधु, भिक्षु, स्वादु, कारु आदि।

क्रियाविधान - जिस शब्द में क्रियाविधान मुख्य हो। जैसे-पाचक, पाठक, कुंभकार, बुनकर, कृषक आदि।

धातु - शब्दों का वह मूल जिससे क्रियाएं बनी या बनती हैं। संस्कृत में भू, कृ, घृ आदि धातु।

स्वर - अकार आदि अक्षर अथवा षड्ज आदि स्वर।

विभक्ति - शब्द के आगे लगा हुआ वह प्रत्यय या चिह्न जिससे शब्द का क्रियापद से सम्बन्ध जाना जाता है।

प्रथमा से सप्तमी तथा सम्बोधन रूप।

व्यंजन - 'क' से 'ह' तक के अक्षर, जो स्वर की सहायता के बिना नहीं बोले जा सकते।

भाषा के बारह भेद-१. प्राकृत २. संस्कृत ३. मागधी ४. पैशाची ५. सौरसेनी और ६. अपभ्रंश। इनके गद्य और पद से १२ भेद हुए।

वचन के सोलह प्रकार - १. एकवचन २. द्विवचन ३. बहुवचन ४. पुल्लिंग ५. स्त्रीलिंग ६. नपुंसकलिंग ७. भूतकाल, ८. भविष्यकाल ९. वर्तमानकाल १०. परोक्ष ११. प्रत्यक्ष १२. उपनीत वचन (गुणवाचक) १३. अपनीत वचन (दूषण बताने वाला) १४. उपनीत-अपनीत वचन (कुछ गुण और कुछ दोष बताने वाला) १५. अनीतोपनीत वचन (पहले दोष बता कर फिर कोई गुण बताने वाला) और १६. अध्यात्म वचन।

भगवतोपदेशित सत्य महाव्रत का सुफल

इमं य अलिय-पिसुण-फरुस-कडुय-चवलवयण-परिरक्खणट्टयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसीभइं सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाणं विउसमणं।

शब्दार्थ - इमं - ये, अलिय-पिसुण-फरुस-कडुय-चवल-वयण-परिरक्खणट्टयाए - झूठ, चुगली, कठोर, कटु और चपल वचनों से प्राणियों की रक्षा के लिए, पावयणं - प्रवचन, भगवया - भगवान् ने, सुकहियं - भली-भांति प्रतिपादन किया, अत्तहियं - आत्मा के लिए हितकारी, पेच्चाभावियं-जन्मांतर में शुभ फल देने वाला, आगमेसिभइं - भविष्य में कल्याण का हेतु, सुद्धं - शुद्ध, णेयाउयं - न्याययुक्त, अकुडिलं - कुटिलतारहित, अणुत्तरं - प्रधान, सव्वदुक्ख-पावाणं - समस्त दुःख और पापों को, विउसमणं - शान्त करने वाला।

भावार्थ - झूठ, चुगली, कठोर, कटु एवं चपल वचनों और उसके कटुफल से प्राणियों की रक्षा करने के लिए भगवान् ने उत्तम प्रकार से यह सत्य-भाषण रूप प्रवचन कहा है। यह जिन-प्रवचन आत्मा के लिए हितकारी है, भवान्तर में शुभ फल देने वाला है, भविष्य में कल्याणकारी है, शुद्ध है, न्याययुक्त है, अकुटिल (सरल) है, अनुत्तर-उत्तमोत्तम है और समस्त दुःखों और पापों को शान्त करने वाला है।

विवेचन - झूठ चुगली आदि सदोष सत्य और उससे उत्पन्न पाप के कटुफल से होने वाले दुःख से बचाने के लिए जिनेश्वर भगवंत ने निर्दोष सत्य-भाषण का विधान करने वाला यह प्रवचन कहा है, जो जीवों के लिए हितकारी, सुखकारी और कल्याणकारी है।

सत्य महाव्रत की पांच भावनाएं

प्रथम भावना-बोलने की विधि

तस्स इमा पंच भावणाओ। बिइयस्स वयस्स अलियवयणस्स वेरमण-परिक्खणट्टयाए। पढमं सोऊण संवरट्टं परमट्टं सुट्टु जाणिऊणं ण वेगियं ण तुरियं ण चवलं ण कडुयं ण फरुसं ण साहसं ण य परस्स पीडाकरं सावज्जं सच्चं च हियं च मियं च गाहगं च सुद्धं संगयमकाहलं च समिक्खियं संजएण कालम्मि य वत्तव्वं। एवं अणुवीइ-समिइ-जोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा संजयकरचरणणयणवयणो सूरुो सच्चज्जवसंपुण्णो।

शब्दार्थ - तस्स - इस, इमा- ये, पंच - पांच, भावणाओ - भावनाएं, बिइयस्स - दूसरे, वयस्स- महाव्रत, अलिय-वयणस्स - मिथ्या वचन की, वेरमण - निवृत्ति रूप, परिक्खणट्टयाए - रक्षा के लिए, पढमं - प्रथम, सोऊणं - श्रवण करना, संवरट्टं - मोक्षदायक, परमट्टं - परम अर्थ युक्त, सुट्टु - भली प्रकार, जाणिऊण - जान कर, ण - नहीं, वेगियं - वेगपूर्वक, तुरियं - शीघ्रतापूर्वक, चवलं - चपलतापूर्वक, कडुयं - कटु, फरुसं - कठोर, साहसं - बिना सोचे-विचारे, य - और, परस्स - दूसरों को, पीडाकरं - पीड़ाकारी, सावज्जं - सावद्य-पापयुक्त, सच्चं - सत्य-वचन, हियं - हितकारी, मियं - मितकारी, गाहगं - कथित अर्थ को स्पष्ट बताने वाला, सुद्धं - शुद्ध, संगयं - संगत, अकाहलं- स्पष्ट वचन, समिक्खियं - विचार पूर्वक, संजएण - साधु को, कालम्मि - अवसर पर, वत्तव्वं - बोलना चाहिए, अणुवीइ-समिइ-जोगेण - अनुवीचि समिति के योग से, भाविओ - भावित, भवइ - होता है, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, संजय-कर-चरण-णयण-वयणो - कर, चरण, नेत्र और मुख का संयम वाला, सूरुो - शूरवीर, सच्चज्जवसंपुण्णो - सत्य तथा सरलता से परिपूर्ण।

भावार्थ - मिथ्या-भाषण से निवृत्त होने रूप दूसरे महाव्रत की रक्षा करने के लिए पांच भावनाएं हैं। इनमें से पहली भावना-सम्यक् प्रकार से विचारपूर्वक बोलना है। गुरु से सम्यक् प्रकार से श्रवण करके, संवर के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला, परमार्थ (मोक्ष) का साधक ऐसे सत्य को भली प्रकार से जानने के बाद बोलना चाहिए। बोलते समय न तो वेगपूर्वक (व्याकुलता युक्त) बोलना चाहिए, न त्वरित (शीघ्रतापूर्वक) और न चपलता से बोलना चाहिए। कटुवचन, कठोर वचन, साहसपूर्ण (अविचारी) वचन, दूसरे जीवों को पीड़ित करने वाले वचन और सावद्य (पापकारी) वचन नहीं बोलना चाहिए-भले ही वे वचन सत्य हों। ऐसे सावद्य वचनों का त्यागकर, हितकारी, परिमित, अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने वाले, शुद्ध, हेतुयुक्त और स्पष्ट वचन, विचारपूर्वक बोलना चाहिए। इस प्रकार इस 'अनुविचि-समिति' रूप प्रथम भावना से साधक की अन्तरात्मा प्रभावित होती है। इससे

साधक के हाथ, पांव, आँखें और मुंह संयमित रहते हैं। इसका साधक शूरवीर होता है। वह सत्य एवं सरलता से सम्पन्न होता है।

विवेचन - दूसरे महाव्रत की पांच भावनाएँ हैं। इनमें से प्रथम भावना-अनुविचिन्त्य भाषा समिति-सम्यक् विचारपूर्वक-समझ-सोचकर वचन-व्यवहार करने सम्बन्धी है। सूत्रकार कहते हैं कि दूसरे संवर के आराधक श्रमण का वचन-व्यवहार भी 'संवरद्वे' संवर साधना में उपयोगी 'परमद्वे' - मोक्ष साधना के अनुकूल होता है।

वचन योग से युक्त मनुष्य को प्रयोजनवश दूसरे मनुष्यों से बोलना पड़ता है। संसार-त्यागी साधु को भी गृहस्थों से वचन-व्यवहार करना पड़ता है। वह वचन-व्यवहार यदि बिना सोचे-समझे किया जाये, तो पापकारी होता है। सोच-समझकर विवेक पूर्वक बोला हुआ सत्य ही निर्दोष होकर संवर का साधक हो सकता है। सदोष सत्य मारक भी हो जाता है, किन्तु निर्दोष सत्य तो तारक ही होता है।

दूसरी भावना-क्रोध-त्याग

बिइयं कोहो ण सेवियव्वो, कुद्धो चंडिविकओ मणुओ अलियं भणेज्ज, पिसुणं भणेज्ज, फरुसं भणेज्ज, अलियं पिसुणं फरुसं भणेज्ज, कलहं करिज्जा, वेरं करिज्जा, विकहं करिज्जा, कलहं वेरं विकहं करिज्जा, सच्चं हणेज्ज, सीलं हणेज्ज, विणयं हणेज्ज, सच्चं सीलं विणयं हणेज्ज, वेसो हवेज्ज, वत्थुं हवेज्ज, गम्पो हवेज्ज, वेसो वत्थुं गम्पो हवेज्ज, एयं अण्णं च एवमाइयं भणेज्ज कोहगिसंपलित्तो तप्पा कोहो ण सेवियव्वो। एवं खंतीइ भाविओ भवइ अंतरप्पा संजय-कर-चरण-णयण-वयणो सूरु सच्चज्जवसंपण्णो।

शब्दार्थ - बिइयं - द्वितीय, कोहो - क्रोध, ण सेवियव्वो - नहीं करना, कुद्धो - क्रोधी, चंडिविकओ - चाण्डाल रूप, मणुओ - मनुष्य, अलियं भणेज्ज - झूठ बोलता है, पिसुणं भणेज्ज - पिशुनकारी अथवा चुगली करने वाला वचन बोलता है, फरुसं भणेज्ज - कठोर वचन बोलता है, अलियं पिसुणं फरुसं भणेज्ज - मिथ्या, पिशुन और कठोर तीनों एक साथ बोलता है, कलहं करिज्जा - कलह करता है, वेरं करिज्जा - वैर करता है, विकहं करिज्जा - विकथा करता है, कलहं वेरं विकहं करिज्जा - कलह, वैर और विकथा तीनों एक साथ करता है, सच्चं हणेज्ज - सत्य का हनन करता है, सीलं हणेज्ज - शील का हनन, विणयं हणेज्ज - विनय का हनन, सच्चं सील विणयं हणेज्ज - सत्य, शील और विनय-तीनों का एक साथ हनन, वेसो हवेज्ज - अप्रिय होता है, वत्थुं हवेज्ज - दोषों का निवास-स्थल होता है, गम्पो हवेज्ज - गम्य अर्थात् अनादरणीय होता है, वेसो वत्थुं गम्पो हवेज्ज - अप्रिय, दोषों का स्थान और तिरस्कार का पात्र होता है एयं - ये, अण्णं - अन्य, एवमाइयं - इस तरह

की, भणेज्ज - कहता, कोहगिगसंपलित्तो - क्रोधाग्नि से जलता है, तम्हा - इसलिए, कोहो - क्रोध, ण सेवियव्वो - नहीं करना, एवं - इस प्रकार, खंतीइ - क्षमा गुण, भाविओ - भावित, भवइ - होना, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, संजय-कर-चरण-णयण-वयणो - वह पुरुष कर, चरण, नेत्र और मुख का संयम वाला, सूरु - शूरवीर, सच्चज्जवसंपण्णो - सत्य तथा सरलता से सम्पन्न।

भावार्थ - दूसरी भावना 'क्रोध-निग्रह' है। साधक को क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोधी-मनुष्य चांडिक्य=प्रचण्ड=रौद्र रूप हो जाता है। क्रोधावेश में वह झूठ भी बोलता है, पिशुनता-चुगली भी करता है और कटु एवं कठोर वचन भी बोलता है। वह मिथ्या, पिशुन और कठोर ये तीनों प्रकार के वचन एक साथ बोलता है। क्रोधी-मनुष्य क्लेश करता है, वैर करता है, विकथा करता है। क्लेश, वैर और विकथा-ये तीनों एक साथ भी करता है। वह सत्य का हनन करता है। शील का हनन करता है। क्रोधी-मनुष्य दूसरों के लिए द्वेष का पात्र (अप्रिय) होता है, दोषों का घर होता है और तिरस्कृत-अपमानित होता है। वह अप्रिय, दोषों का घर और तिरस्कृत-इन तीनों का पात्र होता है। क्रोधाग्नि से जलता हुआ मनुष्य, उपरोक्त दोष और ऐसे अन्य अनेक दोषपूर्ण वचन बोलता है। इसलिए दूसरे महाव्रत के पालक को क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध का त्याग कर, क्षमा को धारण करने से अन्तरात्मा प्रभावित होती है। इस प्रकार क्रोध का निग्रह कर क्षमा-गुण को धारण करने वाले साधक के हाथ, पांव, आँखें और वचन, संयम में स्थित-पवित्र रहते हैं। ऐसा शूरवीर साधक सत्यवादी एवं सरल होता है।

यह क्रोध-निग्रह रूप दूसरी भावना है। क्रोधावेश में बोला हुआ सत्य भी पापाश्रव का कारण होता है।

तीसरी भावना-लोभ-त्याग

तइयं लोभो ण सेवियव्वो, १. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं खेत्तस्स व वत्थस्स व कएण २. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, कित्तीए लोभस्स व कएण ३. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, इड्डीए व सोक्खस्स व कएण ४. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, भत्तस्स व पाणस्स व कएण ५. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, पीढस्स व फलगस्स व कएण ६. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, सेजाए व संथारगस्स व कएण ७. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, वत्थस्स व पत्तस्स व काएण ८. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, कंबलस्स व पायपुंछणस्स व कएण ९. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, सीसस्स व सिस्सीणी व कएण, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, अण्णोसु य एवमाइसु बहुसुकारणसएसु लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, तम्हा लोभो ण सेवियव्वो, एवं मुत्तिए भाविओ भवइ अंतरप्पा संजयकर-चरण-णयण-वयणो सूरु सच्चज्जवसंपण्णो।

शब्दार्थ - तइयं - तृतीय, लोभो - लोभ का, ण सेवियव्वो - सेवन नहीं करना, लुद्धो - लोभी, लोलो - चंचल, भणेज्ज - बोलता है, अलियं - झूठ, खेत्तस्स - क्षेत्र, य - और वत्थुस्स - वास्तु-मकान, कित्तीए - कीर्ति, लोभस्स - लोभ, इड्डीए - ऋद्धि, सोक्खस्स - सुख, भत्तस्स - भात-आहार, पाणस्स - पानी, पीढस्स - पीठ, फलगस्स - फलक, सेज्जाए - शय्या, संथारगस्स - संस्तारक, वत्थस्स - वस्त्र, पत्तस्स - पात्र, कंबलस्स - कम्बल, पायपुंछणस्स - पादप्रोच्छन, सीसस्स-शिष्य, सिस्सीणीए - शिष्यणी, अण्णेसु - अन्य बहुत-से, एवमाइसु - इसी प्रकार के, बहुसु - बहुत-से, कारणसएसु - सैकड़ों कारणों से, भणेज्ज - बोलता है, अलियं - झूठ, तम्हा - इसलिए, लोभो - लोभ का, ण सेवियव्वो - सेवन नहीं करना, एवं - इस प्रकार, मुत्तीए - मुक्त अर्थात् लोभ-त्याग, भाविओ - भावित, भवइ - होती है, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, संजय-कर-चरण-णयण-वयणो-हाथ, पैर, नेत्र और मुख का संयम वाला, सूरु-शूरवीर, सच्चज्जवसंपण्णो - सत्य तथा सरलता से सम्पन्न।

भावार्थ - लोभ-त्याग रूप तीसरी भावना है। सत्य महाव्रत के पालक को लोभ से दूर रहना चाहिए। लोभ से प्रेरित मनुष्य का सत्य व्रत टिक नहीं सकता। वह झूठ बोलने लगता है। लोभ से ग्रसित मनुष्य क्षेत्र, वास्तु, कीर्ति (मान-प्रतिष्ठा) ऋद्धि, सुख, खान-पान, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, आसन, शयन, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोच्छन, शिष्य और शिष्या के लिए और इसी प्रकार के अन्य सैकड़ों कारणों से झूठ बोलता है। इसलिए मिथ्या-भाषण के मूल इस लोभ का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। इस प्रकार लोभ का त्याग करने से अन्तरात्मा पवित्र होती है। उस साधक के हाथ, पाँव, नेत्र और मुख संयम से शोभित होते हैं। वह शूरवीर साधक, सत्य एवं सरलता से सम्पन्न होता है।

विवेचन - लोभ-साधक वचन भी सत्य व्रत का घातक होता है। अतएव लोभ-त्यागी ही सच्चा महाव्रती हो सकता है।

चाहे क्रोध हो या लोभ, भावों में क्रोधादि का प्रवेश होते ही आँखों एवं चेहरे पर उसका संग झलक उठता है और हाथ-पाँव एवं शरीर में कम्पन भी होती है। क्रोधादि भावों का हाथों के संकेत और वचन से उच्चारण होता है तथा तदनुरूप चरण भी उठते हैं।

चौथी भावना-भय त्याग

चउत्थं ण भीइयव्वं, भीयंखु भया अइंति लहुयं, भीओ अबित्तिज्जओ मणूसो, भीओ भूएहिं धिप्पइ, भीओ अण्णं वि हु भेसेज्जा, भीओ तवसंजमं वि हु मुएज्जा, भीओ य भरं ण णित्थरेज्जा सप्पुरिसणिसेवियं य मग्गं भीओ ण समत्थो अणुचरिउं, तम्हा ण भीइयव्वं। भयस्स वा वाहिस्स वा रोगस्स वा जराए वा मच्चुस्स वा अण्णस्स वा एवमाइयस्स एवं धेज्जेण भाविओ भवइ अंतरप्पा संजयकर-चरण-णयण-वयणो सूरु सच्चज्जवसंपण्णो।

शब्दार्थ - चउत्थं - चतुर्थ, ण - नहीं, भीइयव्वं - भयभीत, भीयं - हरे हुए, भया - भय, अइंति-आता है, लहुयं - शीघ्र, भीओ - भयभीत, अब्बित्तिज्जओ - किसी का सहायक न होना, मणूसो - मनुष्य, भूएहिं - भूत, चिप्पिइ - ग्रहण करना, अप्पं वि - दूसरों को भी, भेसेज्जा - भयभीत करता है, तवसंजमं - तप-संयम, मुएज्जा - छोड़ देता है, भरं - भार को, ण णित्थरेज्जा - पार पहुँचाने में असमर्थ, सप्पुरिसणिसेवियं - सत्पुरुषों द्वारा सेवित, मग्गं - मार्ग में, ण समत्थो - समर्थ नहीं होता, अणुचरिउं-विचरण करने में, तम्हा - इसलिए, भयस्स - भय से, वाहिस्स - व्याधि, रोगस्स - रोग, वा - और, जराए - बुढ़ापा, मच्चुस्स - मृत्यु से, अणस्स - अन्य, एवमाइयस्स - इस प्रकार के, धेज्जेण - धैर्य से, भाविओ - भावित, भवइ - होता है, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, संजयकर-चरण-णयण-वयणो - हाथ, पैर, नेत्र और मुख का संयम वाला, सूरु - शूरवीर, सच्चज्जवसंपण्णो - सत्य तथा सरलता से सम्पन्न होता है।

भावार्थ - चौथी भावना भय-त्याग से निष्पन्न होती है। भय को त्याग कर निर्भय बनने वाला साधक, सत्य-महाव्रत का पालक होता है। भयग्रस्त मनुष्य के सामने सदैव भय के निमित्त उपस्थित रहते हैं। भयाकुल मनुष्य किसी का सहायक नहीं बन सकता। भयाक्रांत मनुष्य, भूतों के द्वारा ग्रसित हो जाता है। एक डरपोक मनुष्य दूसरे को भी भयभीत कर देता है। डरपोक मनुष्य डर के मारे तप और संयम को भी छोड़ देता है। वह उठाये हुए भार को बीच में ही पटक देता है-पार नहीं पहुँचाता। भयभीत मनुष्य सत्पुरुषों द्वारा सेवित मार्ग में विचरण करने में समर्थ नहीं होता। इस प्रकार भय को पाप का कारण जान कर त्याग करके निर्भय होना चाहिए। भय के कारण-व्याधि, रोग, बुढ़ापा, मृत्यु और ऐसे अन्य प्रकार के भयों से साधु को भयभीत नहीं होना चाहिए। धैर्य धर कर निर्भय होने से अन्तरात्मा प्रभावित होती है-निर्मल रहकर बलवान् बनती है। निर्भय साधक के हाथ, पाँव, नेत्र और मुख आदि संयमित रहते हैं। वह शूरवीर साधक, सत्य-धर्मी होता है एवं सरलता के गुण से सम्पन्न होता है।

पाँचवीं भावना-हास्य-त्याग

पंचमग्गं हासं ण सेवियव्वं अलियाइं असंतगाइं जंपंति हासइत्ता परपरिभवकारणं च हासं, परपरिवायप्पियं च हासं, परपीलाकारगं च हासं, भेयविमुत्तिकारगं च हासं, अण्णोण्णजणियं च होज्ज हासं, अण्णोण्णगमणं च होज्ज मम्मं, अण्णोण्णगमणं च होज्ज कम्मं, कंदप्पाभियोगगमणं च होज्ज हासं, आसुरियं किच्चिसत्तणं च जणेज्ज हासं, तम्हा हासं ण सेवियव्वं। एवं मोणेण भाविओ भवइ अंतरप्पा संजय-कर-चरण-णयण-वयणो सूरु सच्चज्जवसंपण्णो।

शब्दार्थ - पंचमग्गं - पाँचवीं, हासं - हास्य, ण सेवियव्वं - सेवन नहीं करना, अलियाइं - मिथ्या,

असंतगाई - असद्भूत, **जंपंति** - बोलता है। **हासइत्ता** - हास्यकारी, **परपरिभवकारणं** - दूसरे के अपमान का कारण होता है, **परपरिवाद्यपियं** - पर-परिवादप्रिय है, **परपीलाकारणं** - पर-पीड़ा का कारण बनता है, **भेयविमुक्तिकारणं** - साधु के चरित्र का नाश करने का कारण, **अण्णोण्णजणियं होज्ज** - परस्पर-उट्टा मजाक करने से उत्पन्न, **हासं** - हास्य, **अण्णोण्णगमणं** - परस्पर की गुप्त बातें, **घ** - और, **मम्मं** - मर्म, **होज्ज** - प्रकट होते हैं, **अण्णोण्णगमणं** - परस्पर गमन सम्बन्धी, **कम्मं** - निर्दित-कर्म, **कंदप्पाभियोगगमणं** - कान्दर्पिक और आभियोगिक में गमन, **आसुरियं** - असुर जाति के देवों में, **किल्बिसत्तणं** - किल्बिषी देवों में, **तम्हा** - इसलिए, **हासं** - हास्य का, **ण सेवियव्वं** - सेवन नहीं करना, **एवं** - इस प्रकार **मोणेण** - मौन से, **भाविओ** - भावित, **भवइ** - होता है, **अंतरप्पा** - अन्तरात्मा, **संजय-कर-चरण-णयण-वयणो** - हाथ, पैर, नेत्र और मुख के संयम वाला, **सूरो** - शूरवीर, **सच्चज्जवसंपण्णो** - सत्य तथा सरलता से सम्पन्न।

भावार्थ - पांचवीं भावना हास्य का त्याग है। इसलिए दूसरे महाव्रत के पालक को चाहिए कि वह हास्य (हँसी) नहीं करे। हँसी करने वाला मनुष्य मिथ्या और असत्य-भाषण करता है। हँसी, दूसरे व्यक्ति का अपमान करने में कारणभूत बन जाती है। पराई निन्दा करने में रुचि रखने वाले भी हँसी का अवलम्बन लेते हैं। हँसी, दूसरों के लिए पीड़ाकारी होती है। हँसी से चरित्र का भेदन (विनाश) होता है। हँसी एक दूसरे के मध्य होती है और हँसी-हँसी में परस्पर की गुप्त बातें प्रकट होती हैं। एक दूसरे के गर्हित कर्म प्रकट होते हैं। हँसी करने वाला व्यक्ति कान्दर्पिक और आभियोगिक भाव को प्राप्त होकर वैसी गति का बन्ध करता है। हँसोड़ मनुष्य आसुरी एवं किल्बिषी भाव को प्राप्त कर जैसे देवों में उत्पन्न होता है। इस प्रकार हास्य को अहितकारी जानकर त्याग करना चाहिए। मौन के द्वारा हास्य का त्याग करना चाहिए। इससे अन्तरात्मा पवित्र होती है। ऐसे साधक के हाथ पांव, नेत्र और मुख संयमित रहते हैं। वह हास्य-त्यागी शूरवीर, सच्चाई और सरलता से सम्पन्न होता है।

विवेचन - हँसी भी सत्य-महाव्रत को नष्ट करने वाली है। इसलिए शास्त्रकार पांचवीं भावना में हँसी का त्याग करने का उपदेश करते हैं।

भेयविमुक्तिकारणं - इसका अर्थ किया है - चरित्र का भेदन (विनाश) तथा निस्पृहता का लुप्त होना तथा 'विमूर्ति'-विकृतनयनवदनादित्वेन विकृतशरीराकृतिः तद्भेदकारकं हास्यं (हास्य से मुख-नेत्र आदि शरीर की आकृति विकृत हो जाती है) अथवा 'उपहासेन संग्रामो जात इति सम्प्रदायः' - उपहास से ऐसा भेद भी उत्पन्न हो जाता है कि जिससे संग्राम तक छिड़ जाता है-ऐसा अर्थ भी करते हैं। 'भेद विमुक्ति कारक' का अर्थ-हँसी के परिणामस्वरूप मैत्री-सम्बन्धी भी टूट जाते हैं-भी हो सकता है।

उपसंहार

एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं, इमेहिं पंचहिं वि कारणेहिं मण-वयण-काय-परिरक्खिण्हिं णिच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया अणासवो अकलुसो अच्छिहो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सव्व-जिण-मणुण्णाओ ।

शब्दार्थ - एवमिणं - यह, संवरस्स - संवर का, दारं - द्वार, सम्मं - भली-भांति, संवरियं - पालन करने से, सुप्पणिहियं - सुप्रणिहित-सुरक्षित, होइ - होता है, इमेहिं - इन, पंचहिं - पांच, कारणेहिं- कारणों से, मण-वयण-काय-परिरक्खिण्हिं - मन, वचन और काया द्वारा रक्षण करता हुआ, णिच्चं - सदैव, आमरणंतं - मरण-पर्यन्त, एस - इस, जोगो - व्रत का, णेयव्वो - पालन करना, धिइमया - धैर्य सम्पन्न, मइमया - बुद्धिमान्, अणासवो - आस्रव रहित, अकलुसो - कलुषता-रहित, अच्छिहो - छिद्र-रहित, अपरिस्सावी - कर्मों के प्रवेश से रहित, असंकिलिट्ठो - संक्लेश-रहित, सव्वजिणमणुण्णाओ - सभी जिनेश्वरों द्वारा आज्ञापित है ।

भावार्थ - इस प्रकार पांच भावनाओं से युक्त इस संवरद्वार का सम्यक् रूप से पालन करने से महाव्रत सुरक्षित रहता है । इसलिए धैर्य सम्पन्न बुद्धिमान् साधु को चाहिए कि मन, वचन और काया से दूसरे महाव्रत की रक्षा करता हुआ, इन पांच भावनाओं का जीवन-पर्यन्त पालन करता रहे । यह महाव्रत आस्रव का निरोधक, कलुषित भावों से रहित-शुभ भावों से युक्त, छिद्र रहित, कर्मों के आगमन का अवरोधक तथा संक्लेश से रहित है । भूत, भविष्य और वर्तमान के सभी जिनेश्वर भगवंतों द्वारा आज्ञापित-उपदिष्ट है ।

एवं विइयं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहियं भवइ । एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं ।

॥ विइयं संवरदारं सम्पत्तं ॥ त्ति बेमि ॥

शब्दार्थ - एवं - इस प्रकार, विइयं - द्वितीय, संवरदारं - संवर-द्वार, फासियं - स्पृष्ट, पालियं-पालित, सोहियं - शोभित, तीरियं - तीरित, किट्टियं - कीर्तित, आराहियं - आराधित, भवइ - होता है, णायमुणिणा भगवया - ज्ञातृ-कुलोत्पन्न भगवान् महावीर स्वामी द्वारा पण्णवियं - फरमाया, परूवियं-परूपित, पसिद्धं - प्रसिद्ध, सिद्धं - सिद्ध, सिद्धवरसासणं - अपने कार्य को सिद्ध करने वाले तीर्थंकर

भगवान् की प्रधान आज्ञा, **आषवियं** - सम्यक् प्ररूपित, **सुदेसियं** - भली प्रकार उपदेशित, **पसत्थं** - प्रशस्त, **बिड्यं** - द्वितीय, **संवरदारं** - संवर-द्वार, **सम्मत्तं** - समाप्त हुआ, **त्तिबेयि** - ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ - इस प्रकार यह दूसरे संवर-द्वार का स्पर्श, पालन एवं शोधन होता है, पार पहुँचाया जाता है, कीर्तित एवं आराधित होता है और जिनेश्वर की आज्ञा के अनुसार अनुपालित एवं आराधित होता है। इस प्रकार ज्ञात कुलोत्पन्न भगवान् महावीर स्वामी ने कहा है। प्ररूपित किया है। यह मार्ग विश्व में प्रसिद्ध एवं प्रमाणों से सिद्ध है। समस्त प्रयोजन सिद्ध करने वाले ऐसे तीर्थंकर भगवन्त की यह प्रधान आज्ञा है, उनके द्वारा प्ररूपित है, उत्तम प्रकार से उपदेशित है और प्रशस्त है। यह दूसरा संवर-द्वार पूर्ण हुआ, ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ सत्य-वचन नामक द्वितीय संवर द्वार समाप्त ॥

दत्तानुज्ञात नामक तृतीय संवर-द्वार

अस्तेय का स्वरूप

जंबू! दत्तमणुण्णाय-संवरो णाम होइ तइयं सुव्वया! महव्वयं गुणव्वयं परदव्व-हरणपडिविरइ-करणजुत्तं अपरिमिय-मणंत-तणहाणुगय-महिच्छ-मण-वयण-कलुस-आयाण-सुणिग्गहियं सुसंजमिय-मण-हत्थपायणिहुयं णिग्गंथं णिट्ठियं णिरुत्तं णिरासवं णिब्भयं विमुत्तं उत्तमणर-वसभ-पवर-बलवग-सुविहियजण-सम्मत्तं परमसाहुधम्म-चरणं।

शब्दार्थ - जंबू - हे जम्बू!, दत्तमणुण्णायसंवरो - दत्तानुज्ञात संवर अर्थात् विधिपूर्वक दिया हुआ, णाम - नाम, होइ - है, तइयं - तृतीय, सुव्वया - हे सुव्रत!, महव्वयं - महाव्रत, गुणव्वयं - गुणों में प्रधान, परदव्व-हरण-पडि-विरइ-करणजुत्तं - परद्रव्य हरण करने की विरति से युक्त, अपरिमियमणंत - अपरिमित अनन्त, तणहाणु-गय-महिच्छ - तृष्णापूर्वक अत्यन्त इच्छा से, मण-वयण-कलुस - मन और वचन कलुषित होते हैं, आयाणसुणिग्गहियं - उसका इस व्रत से सर्वथा निग्रह होता है, सुसंजमियमणहत्थपायणिहुयं - मन, हाथ और पांव संयम से रत रहते हैं, णिग्गंथं - ग्रन्थियों से रहित, णिट्ठियं - प्रधान, णिरुत्तं - परम उपादेय, णिरासवं - आस्रव-रहित, णिब्भयं - भय-रहित, विमुत्तं - मुक्त, उत्तमणर-वसभ-पवर-बलवग-सुविहियजण-सम्मत्तं - मनुष्यों में उत्तम वृषभ के समान श्रेष्ठ एवं परम बलवान् महापुरुषों द्वारा सम्मान्य, परमसाहुधम्मचरणं - परम धर्म समझकर उत्तम साधु पुरुषों द्वारा आचरित।

भावार्थ - श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं - 'हे सुव्रती जम्बू! दत्तानुज्ञात (दत्त-दिये हुए आहारादि, अनुज्ञात-'ले लो'-इस प्रकार आज्ञा प्राप्त पीठ-फलकादि) नामक यह तीसरा संवर द्वार है। यह महान् व्रत है, सदगुणों का प्रधान हेतु है। यह संवर पराये द्रव्य को हरण करने की दुर्वृत्ति से रोकने-विरत करने वाला है। जो मनुष्य अविरत हैं और जिनके मन में, संसार में रही हुई अनन्त वस्तुओं को प्राप्त करने की अपरिमित इच्छा है और प्राप्त द्रव्य को बिना व्यय किये दबाये रखने रूप महान् तृष्णा रही हुई है। उस जीव के मन में सदा कलुष बना रहता है। उसके वचन भी कलुष एवं तृष्णा से युक्त होते हैं। किन्तु जो व्यक्ति इस व्रत को धारण करके पालन करता है। उसके यह अपरिमित इच्छा और तृष्णा रूपी महापाप रुक जाता है। इच्छा और तृष्णा के रुक जाने से उस आत्मा का मन भी स्वच्छ एवं संयम में रत रहता है और वचन तथा हाथ-पांव आदि की प्रवृत्ति भी पाप से विरत रह कर संयमित रहती है। यह महाव्रत बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थ-लोभ की गाँठ से रहित है। समस्त धर्मों में प्रकर्ष उत्पन्न करने वाला-निष्ठायुक्त है। सर्वज्ञ भगवन्तों से उपदिष्ट है। आस्रव-रहित है, निर्भय बनाने वाला है और

विमुक्त-लोभ रूपी बन्धन से रहित है। यह अदत्त-त्याग महाव्रत, केवल सामान्यजनों द्वारा ही आचरित नहीं, अपितु उत्तम नर-वृषभ (जिनेश्वर भगवंत) बलवान् (चक्रवर्त्यादि) एवं श्रेष्ठ महापुरुषों तथा साधुजनों द्वारा सम्मान्य है तथा परम साधु-सन्त महानुभावों का उत्तम धर्माचरण है।

विवेचन - दूसरे महाव्रत का पालन एवं रक्षण तभी हो सकता है जबकि अदत्तत्याग रूप तीसरा महाव्रत का पालन किया जाये। अदत्तग्राही को असत्याचरण भी करना पड़ता है। अतएव अदत्त-त्याग के लिए सूत्रकार ने तीसरे महाव्रत का विधान किया है।

दत्तानुज्ञात व्रत का अर्थ-स्वामी द्वारा हाथ से दिया हुआ और लेने की अनुज्ञा प्राप्त वस्तु है।

अनुज्ञात-आज्ञा में स्वामी की आज्ञा के अतिरिक्त देवाज्ञा-आगमाज्ञा का समावेश भी किया जाता है।

जत्थ य गामागर-णगर-णिगम-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-संबाह-पट्टणासमगयं च किंचि दव्वं मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-कंस-दूस-रयय-वरकणग-रयणमाइं पडियं पम्हुट्टं विप्पणट्टं ण कप्पइ कस्सइ कहेउं वा गिण्हउं वा अहिरण्णसुवणियेण समलेट्टुकंचणेणं अपरिग्गहसंवुडेणं लोगम्मि विहरियव्वं।

शब्दार्थ - जत्थ - जहाँ कहीं, गामागर-णगर-णिगम-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-संबाह-पट्टणासमगयं - ग्राम, आकर, नगर, निगम, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, संबाध, पत्तन और आश्रम आदि स्थानों में, किंचिद्वि - कुछ भी, दव्वं - द्रव्य, मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-कंस-दूस-रयय-वरकणगरयणमाइं - मणि, मोती, शिला, प्रवाल, कांसा, वस्त्र, पीतल, चांदी, सोना तथा रत्न आदि पडियं - पड़े हों, पम्हुट्टं - उसका स्वामी भूल गया हो, विप्पणट्टं - खोज करने पर भी उसे मिली न हो, तो वह वस्तु, ण कप्पइ - नहीं कल्पती, कस्सइ - किसी को, कहेउं - कहना, गिण्हउ - ग्रहण करना, अहिरण्णसुवणियेण - हिरण्य और सुवर्ण के त्यागी होकर, समलेट्टुकंचणेणं - मिट्टी और सोने को समान समझने वाले, अपरिग्गह संवुडेणं - परिग्रह-रहित और गुप्तेन्द्रिय होकर, लोगम्मि - लोक में, विहरियव्वं - विचरना चाहिए।

भावार्थ - जहाँ कहीं ग्राम, आकर, नगर, निगम, खेड, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, संबाध, पत्तन और आश्रम में मणि, मोती, शिला, प्रवाल, कांसा, वस्त्र, चांदी, सोना और रत्नादि कुछ भी द्रव्य पड़ा हो, उस वस्तु का स्वामी भूल गया हो या उसके खोजने पर भी नहीं मिली हो, तो उस वस्तु के विषय में किसी को कहना अथवा स्वयं ग्रहण करना साधु के लिए अकल्पनीय-अकृत्य है। साधु, चांदी-सोना आदि का त्यागी होता है। उसे मिट्टी और सोने को समान समझ कर तथा निष्परिग्रही एवं संवृत रहकर लोक में विचरना चाहिए।

जं वि य हुज्जाहि दव्वजायं खल्लगयं खेत्तगयं रण्णमंतर-गयं वा किंचि पुप्फ-फल-तथप्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ट-सक्कराइ अप्पं च बहुं च अणुं च थूलगं वा

 ण कप्पइ उग्गहम्मि अदिण्णम्मि गिण्हउं जे, हणि हणि उग्गहं अणुण्णविय गिण्हियव्वं
 वज्जेयव्वो सव्वकालं अचियत्तघरप्पवेसो अचियत्तभत्तपाणं अचियत्तपीढ-फल-सिज्जा
 संधारग-वत्थ-पत्त-कंबल-दंडग-रयहरण-णिसिज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पाय-
 पुंछणाइ भायण-भंडोवहि-उवगरणं परपरिवाओ परस्स दोसो परववएसेणं जं च
 गिण्हइ परस्स णासेइ जांच सुकयं दाणस्स य अंतराइयं दाणविप्पणासो पिसुण्णं चव
 मच्छरियं च ।

शब्दार्थ - जं - जो, हुज्जाहि - पड़ी हो, दव्वजायं - वस्तु, खलगयं - खलिहान में, खेत्तगयं -
 खेत में, रण्णमंतरगयं - वन में, वा - अथवा, पुप्फ-फल-तयप्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ट-सक्कराइ-
 फूल, फल, वृक्ष की छाल, प्रवाल, कंद, मूल, तृण, काष्ठ और कंकर आदि, अप्प - अल्पमूल्य की, बहं-
 बहुमूल्य की, अणुं - छोटी, थूलगं - बड़ी, ण कप्पइ - नहीं कल्पती, उग्गहम्मि - अपने अवग्रह में-
 उपाश्रय में भी, अदिण्णम्मि - बिना दी हुई, गिण्हउं - ग्रहण करना, हणि हणि - प्रतिदिन, उग्गहं -
 गृहस्थ की, अणुण्णविय - आज्ञा लेकर, गिण्हियव्वं - ग्रहण करना, वज्जेयव्वो - वर्जना चाहिए,
 सव्वकालं - सदा, अचियत्तघरप्पवेसो - अप्रतीतकारी घर में प्रवेश करना, अचियत्तभत्तपाणं -
 अप्रतीतकारी घर से आहार पानी, अचियत्तपीढफल-सिज्जा-संधारग-वत्थ-पत्त-कंबल-दंडग-
 रयहरण-णिसिज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पाय-पुंछणाइ - अप्रतीतकारी घर से पीढ, फलक, शय्या,
 संस्तारक, वस्त्र, पात्र कम्बल, दण्ड, रजोहरण, आसन, चोलपट्टा, मुंहपत्ति और पादप्रोच्छन, भायण-
 भंडोवहि-उवगरणं - भाजन, भण्डोपकरण और उपधि, परपरिवाओ - परपरिवाद-दूसरों की निंदा,
 परस्स - दूसरे के, दोसो - दोषों का, परववएसेणं - परनिमित्त, ण गिण्हइ - ग्रहण न करे, परस्स -
 दूसरे के, णासेइ - छिपाना, सुकयं-सुकृत, दाणस्स-दान में, अंतराइयं - अन्तराय देना, दाणविप्पणासो-
 दान का अपलाप करना, पिसुण्णं - चुगली करना, मच्छरियं - मात्सर्य करना-ईर्षा करना ।

भावार्थ - साधु को ग्रामानुग्राम विचरते हुए कहीं खेत में खलिहान में अथवा वन में-फूल, फल,
 वृक्ष की छाल, प्रवाल (अंकुर) कन्द, मूल, तृण, काष्ठ और कंकर आदि कुछ भी वस्तु पड़ी हो । वह अल्प
 हो या अधिक, अल्प मूल्य वाली हो या बहुमूल्य हो, छोटी हो या बड़ी, बिना गृहस्थ के दिये (अथवा
 गृहस्थ की आज्ञा के बिना) ग्रहण करना नहीं कल्पता है, भले ही वह वस्तु अपने अवग्रह (उपाश्रय) में
 हो । साधु को आवश्यक ग्राह्य वस्तु प्रतिदिन गृहस्थ की आज्ञा लेकर ही ग्रहण करनी चाहिए ।

साधु के लिए अप्रतीतिकारक घर में प्रवेश करना सदैव वर्जनीय है और ऐसे अप्रतीतिकारक घर
 से आहार, पानी, पीढ, फलक, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र कम्बल, दण्ड, रजोहरण, आसन,
 चोलपट्टक, मुंहपत्ती, पादप्रोच्छन, भाजन, भण्डोपकरण और उपधि आदि कुछ भी नहीं लेना चाहिए ।
 साधु को दूसरों की निंदा नहीं करनी चाहिए और दूसरे के दोषों को किसी से कहना भी नहीं चाहिए ।

अन्य साधुओं (आचार्य अथवा रोगी आदि) के लिए जो आहारादि लाये हों, उसका स्वयं उपभोग नहीं करना चाहिए। दूसरों के सुकृत-उत्तम आचार (सद्गुणों अथवा उपकार) को छिपाना, किसी को प्राप्त होते हुए दान में बाधक बनना, दिये हुए दान का अपलाप करना, किसी की चुगली करना तथा गुणोंजनों को देखकर मात्सर्य भाव-ईर्ष्या करना, इन सभी दुर्गुणों का त्याग करना चाहिए।

विवेचन - इस सूत्र में साधु को अल्पमूल्य अथवा अमूल्य (जो बिकती नहीं है और यों ही पड़ी हुई मिल जाती है) जैसे-सूखे हुए पत्ते, फूल, घास का तिनका, कंकर, मिट्टी आदि ऐसी नगण्य वस्तु को भी बिना आज्ञा के ग्रहण नहीं करने का आदेश दिया गया है। ऐसी वस्तु यदि उपाश्रय में हो (जिसकी आज्ञा लेकर ही साधु ठहरते हैं) तो भी बिना आज्ञा के नहीं लेनी चाहिए। यह विधान 'दत्तानुज्ञात' महाव्रत को सम्पूर्ण रूप से सुरक्षित रखता है और अदत्त-त्याग व्रत को परिपुष्ट करता है।

शंका - साधु ग्रामादि में हो, तब तो गृहस्थ की आज्ञा ले सकता है। किन्तु वन में जा रहे हों और वहाँ सूखे पत्र, तिनके, मिट्टी या कंकर अथवा कांटा लेने की आवश्यकता हो, तब उस निर्जन वन में किस की आज्ञा प्राप्त करे? हर किसी गृहस्थ की आज्ञा तो ली भी नहीं जा सकती। जो वस्तु जिसके अधिकार-क्षेत्र की नहीं, उसकी आज्ञा उससे कैसे प्राप्त की जा सकती है?

समाधान - आगम में इसकी विधि बताई है, जिसमें अनुज्ञा देने वाले- १. देवेन्द्र २. राजा ३. गृहपति (मण्डलेश, ठाकुर या जागीरदार) ४. सागरी (गृहस्थ) और ५. साधर्मिक। भगवती सूत्र श० १६ उ० २ में इसका उल्लेख है। जहाँ कोई आज्ञा देने वाला नहीं हो, वहाँ देवेन्द्र की आज्ञा लेकर वैसी उपेक्षणीय वस्तु ली जा सकती है।

जो वस्तु सदा से उपेक्षणीय रही, जिस पर कभी किसी ने अधिकार नहीं जमाया, जिसका कोई मूल्य ही नहीं और जिसे लेने पर कोई कभी टोंकता भी नहीं, ऐसे सूखे पान, घास का तिनका, पत्थर आदि के लिए गृहस्थों को तो किसी से आज्ञा लेने की आवश्यकता ही नहीं होती, परन्तु साधु अदत्त-त्यागी होने से निकटस्थ किसी भी गृहस्थ की आज्ञा ले सकता है। जिस वस्तु पर किसी एक का अधिकार नहीं, उस पर सब का अधिकार होता है। इसलिए ऐसी वस्तु की अनुज्ञा कोई भी व्यक्ति दे सकता है। मनुष्य का योग नहीं मिलने पर देवेन्द्र की आज्ञा से भी काम चल सकता है-जो भगवान् महावीर प्रभु को उनके शासन के साधु-साध्वी के लिए प्राप्त हो चुकी है।

'अचियत्तघरप्पवेशो' - का टीका में-'अप्रीतिकारक घर में प्रवेश' अर्थ किया है। यह अर्थ दो प्रकार से बनता है। यथा-साधु उस घर में प्रवेश नहीं करे कि जिसके प्रति स्वयं का विश्वास नहीं हो अथवा लोक में अप्रतीतिकारी माना जाता हो। दूसरा अर्थ यह भी है-जिसके हृदय में साधु के प्रति प्रीति अथवा विश्वास नहीं, उस घर में साधु को प्रवेश नहीं करना चाहिए।

दंडग - दण्ड-ओघनिर्मुक्ति गा० ७३० में लट्टी, विलट्टी दंड और विदंड का स्वरूप बतलाया है। दण्ड का प्रमाण-'दंडो बाहुप्रमाणो'-बाहु-कन्धे तक लम्बा होता है। इसका उपयोग 'दुद्रुपसुसाण-साक्यधिवस्त्रलविसमेसु उदगमग्नेसु। लट्टी सरीररक्खा तवसंजमसाहिया भणिया' ॥ ७३१ ॥

- दुष्ट पशु श्वान सिंहादि से रक्षा करने के लिए, कीचड़ एवं दलदल, विषम (उबड़खाबड़ भूमि) और जल में प्रवेश करते समय शरीर रक्षार्थ तथा तप-संयम की साधना में लाठी उपयोगी कही गई है।

दण्ड साधारणतया रोगी, वृद्ध एवं दुर्बल शरीरी के लिए आवश्यक हो सकता है, सभी साधुओं के लिए, रजोहरण के समान सदैव रखना आवश्यक नहीं है।

चोलपट्टक - नग्नता ढकने के लिए, धोती के स्थान पर पहिने का साधुओं का अधोवस्त्र।

पादप्रौछन - पांवाँ की धूल दूर करने का-पांव पोंछने का वस्त्र या ऊनी साधन-प्रमार्जनी।

उपधि - 'उप सामीप्येन संयमं धारयति पोषयति चेत्यर्थः स च पात्रादिरूप। संयम के समीप रहे, संयम में सहायक बने, संयम का पोषण करे, वह पात्रादि रूप उपधि है (ओघनिर्युक्ति भा० गा० १४ पत्र १२) इसके दो भेद हैं - औधिक और औपग्रहिक। सामान्य रूप से सभी के सदैव उपयोग में आने वाले साधन को 'औधिक' और कारण से किसी के कभी काम में आने वाले को 'औपग्रहिक' कहते हैं। औधिक उपधि - १. पात्र २. पात्रबन्ध ३. पात्रस्थापन (पात्र के नीचे बिछाने का कपड़ा) ४. पात्र-केसरिका (पात्र पोंछने का कपड़ा) ५. पटल (पात्र ढकने का वस्त्र) ६. रजस्त्राण (पात्र पर लपेटने का वस्त्र) ७. गोच्छक (पात्रादि साफ करने का वस्त्र) ८-१०. तीन चादरें ११. रजोहरण १२. मुखवस्त्रिका १३. मात्रक और १४. चोलपट्टक।

इन में से जिनकल्पी मुनि कम से कम रजोहरण और मुखवस्त्रिका, ये दो और अधिक से अधिक १ से लगाकर १२ तक के उपकरण रख सकते हैं। अन्त के दो सहित १४ स्थविरकल्प साधु के लिए औधिक उपकरण हैं। साध्वियों के विशेष हैं (ओघनि० गा० ६६६ से ७२२ तक)

औपग्रहिक - संस्तारकोत्तरपट्ट, वर्षाकाल में विशेष उपकरण लेना पड़े, दण्ड, यष्टि, चर्म, चर्मकोश, नखशोधनी, चिलिमिली आदि।

उपकरण - जो ज्ञानादि में उपयोगी हो, ज्ञान-दर्शन चारित्र के धारक शरीर एवं ज्ञानादि साधना में उपकारी हो, वह 'उपकरण' है। यदि ज्ञानादि में उपकारी नहीं हो, तो वह उपकरण नहीं होकर 'अधिकरण'-शस्त्र या कर्मबन्ध का कारण होता है (ओघनि० गा० ७४०-७४१)।

'दाणाविप्यणासो' का अर्थ-'दत्तादानलोपः' - दिये हुए दान का अपलाप करना (दाता के नाम को छिपाना) किया है। इसका दूसरा अर्थ-'दान-भावना नष्ट करना' भी हो सकता है। जैसे- 'साधु के अतिरिक्त अन्य किसी को दान देना, पाप का पोषण करना है, 'जो किसी को देता है, उसे दान का फल वापिस लेने के लिए जन्म धारण करना पड़ता है' आदि असत्य प्रचार करके श्रोता की दान-भावना नष्ट करना। यह अर्थ भी हो सकता है।

व्रत विराधक और चोर

जे वि य पीढ-फलग-सिज्जा-संधारग-वंत्थ-पाय-कंबल-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ
भायण भंडोवहिउवगरणं असंविभागी असंगहरुई तवतेणे य वइतेणे य रूवतेणे य

आयारे चैव भावतेणे य सहकरे झंझकरे कलहकरे वेरकरे विकहकरे असमाहिकरे सया अय्यमाणभोइ सययं अणुबद्धवेरे य णिच्चरोसी से तारिसए णाराहए वयमिणं ।

शब्दार्थ - जे - जो, पीढ-फलक-सिज्जा-संधारग-वत्थ-पाय-कंबल-मुहपोत्ति य पायपुंछणाइ-पीढ, फलक, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, मुंहपत्ति और पादप्रोछन आदि, भायण भंडोवहिउवगरणं - भोजन, भंडोपकरण और उपधि, असंविभागी - संविभाग नहीं करता, असंगहरुई-परिमित उपकरणों का और यथायोग्य शिष्यादि का यथोचित संग्रह नहीं करता, तवतेणे - तप का चोर, वइतेणे - वचन का चोर, रूवतेणे - रूप का चोर, य - और, आयारे - आचार का, भावतेणे - भाव का चोर, सहकरे - रात्रि के समय जोर-जोर से शब्द करने वाला, झंझकरे - सावद्य वचन बोलने वाला या गच्छ में फूट डालने वाले वचन बोलने वाला, कलहकरे - कलह करने वाला, विकहकरे - विकथा करने वाला, असमाहिकरे - असमाधि करने वाला, सया - सदा, अय्यमाणभोइ - अपरिमाण भोजी, सययं - सदा, अणुबद्धवेरे - वैर बढ़ाने वाला, य - और, णिच्चरोसी - सदा कोप करने वाला, से - वह, तारिसए - ऐसा साधु, ण आराहए - आराधक नहीं हो सकता ।

भावार्थ - जो साधु, पीढ, फलक, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, मुंहपत्ति, पादप्रोछनादि तथा भण्डोपकरण और उपधि आदि का संविभाग नहीं करता और संयमोपकारक उपकरण तथा शिष्य के संग्रह की रुचि नहीं रखता, जो तप का चोर है, वचन का चोर है, रूप का चोर है, आचार का चोर है और भाव का चोर है, जो प्रहरभर रात व्यतीत होने पर भी जोर-जोर से बोलता है, गच्छ में भेद उत्पन्न करता है, क्लेश करता है, वैर उत्पन्न करता है, विकथा करता है, अशान्ति उत्पन्न करता है, जो सदैव अपरिमाण भोजी (प्रमाण से अधिक खाता) है, वैर बढ़ाने में सदैव संलग्न रहता है और रोष में सदा तप्त रहता है (कुपित रहता है) ऐसा साधु, इस व्रत का आराधक नहीं होता ।

विवेचन - तपस्तेन - तप का चोर । शारीरिक दुर्बलता देखकर कोई पूछे-“तपस्वी संत आप ही होंगे ?” तब वह - ‘साधु तो तपस्वी होते ही हैं’, कहे या मौन रहकर पूछने वाले के मन में अपने को ‘निरभिमानी तपस्वी’ मनवाने का दंभ करे अथवा तपस्वी नहीं होते हुए भी अपने को तपस्वी बतावे, तो वह तप का चोर है ।

वचनस्तेन - वचन-सिद्धि के अभाव में अपने को वचन-सिद्ध बताने वाला अथवा वाक्-छल से लोगों को छलने वाला ।

रूपस्तेन - रूप का चोर । साधु का रूप धारण करके असाधुता का सेवन करने वाला-दुराचारी ।

आचारस्तेन - शिथिलाचारी और अनाचारी होकर भी अपने को उत्तम आचारवान् के रूप में प्रसिद्ध करने वाला ।

भावस्तेन - श्रुतज्ञानादि विशिष्ट गुणों का सद्भाव न होने पर भी अपने को बहुश्रुत, गीतार्थ, विशिष्ट ज्ञानी एवं उत्तम आराधक बतलाने वाला ।

आराधक की वैयावृत्य विधि

अह केरिसए पुणाइं आराहए वयमिणं? जे से उवहि-भत्त-पाण-संगहण-दाण-कुसले-अच्चंतबाल-दुब्बल-गिलाण-वुड्ड-खवग-पवत्ति-आयरिय-उवञ्जाए सेहे साहम्मिए तवस्सी-कुल-गण-संघ-चेइयट्टे य णिज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सियं दसविहं बहुविहं करेइ, ण य अचियत्तस्सगिहं पविसइ, ण य अचियत्तस्स गिण्हइ भत्तपाणं, ण य अचियत्तस्स सेवइ पीढ-फलग-सिज्जा-संधारग-वत्थ-पाय-कंबल-दंडग-रयहरण-णिसिज्ज-चोलपट्टय-मुहपोत्तियं पायपुंछणाइ-भायण-भंडोवहिउवगरणं ण य परिवायं परस्स जंपइ, ण यावि दोसे परस्स गिण्हइ पर ववएसेण वि ण किंचि गिण्हइ ण य विपरिणामेइ किंचि जणं ण यावि णासेइ दिण्णसुकयं दाऊणं य ण होइ पच्छाताविए संभागसीले संग्गहोवग्गहकुसले से तारिसए आराहए वयमिणं ।

शब्दार्थ - अह - अब, केरिसए - कैसा साधु, पुणाइं - फिर, आराहए - आराधना, वयमिणं - इस व्रत की, जे - जो, उवहि-भत्त-पाण-संगहण-दाण-कुसले - उपधि ग्रहण करने और आहार-पानी का संग्रह तथा संविभाग करने में कुशल, अच्चंतबाल दुब्बल गिलाण वुड्ड खवग - अत्यन्त दुर्बल, बालक, ग्लान, वृद्ध, क्षपक-उत्कट तपस्वी, पवत्ति-आयरिय-उवञ्जाए - प्रवर्तक, आचार्य, उपाध्याय, सेहे - शैक्ष-नवदीक्षित, साहम्मिए - साधर्मिक, तवस्सी - तपस्वी, कुल - कुल, गण - गण, संघ - संघ, चेइयट्टे - ज्ञान के लिए अथवा चित्त की शांति के लिए, य - और, णिज्जरट्ठी - निर्जरा के लिए, वेयावच्चं - वैयावृत्य, अणिस्सियं - कीर्ति आदि की इच्छा से रहित, दसविहं - दस प्रकार की, बहुविहं - बहुत प्रकार की, अचियत्तस्स - अप्रतीतकारी, गिहं - घर में, ण पविसइ - प्रवेश नहीं करता, भत्तपाणं - आहार पानी, गिण्हइ - ग्रहण करना, पीढ - पीठ, फलग - फलक, सिज्जा - शय्या, संधारग - संस्तारक, वत्थ - वस्त्र, पाय - पात्र, कंबल - कम्बल, दंडग - दण्डक, रयहरण - रजोहरण, णिसिज्ज-निषद्या-आसन, चोलपट्टय - चोलपट्टा, मुहपोत्तिय - मुंहपत्ति, पायपुंछणाइ - पादप्रौंछन, भायण - भाजन, भंडोवहिउवगरणं - भण्ड, उपधि और उपकरणों का, ण सेवइ - सेवन नहीं करता, परिवायं - परिवाद, परस्स - दूसरों का, ण जंपइ - नहीं कहता, दोसे - दोषों को, परववएसे ण - दूसरों के बहाने से, ण विपरिणामेइ - विमुख नहीं करता, दिण्णसुकयं - दान और सुचारित्र को, ण णासेइ - नहीं छिपाता, दाऊण - देकर या वैयावृत्य करके, पच्छाताविए - पश्चात्ताप, संभागसीले - यथायोग्य विभाग करने वाला, संग्गहोवग्गहकुसले - योग्य शिष्यों का संग्रह करने, भात-पानी देने में और शास्त्राध्ययन कराने में कुशल, तारिसए - इस प्रकार का, से - वह, आराहय - आराधना, वयमिणं - व्रत की ।

भावार्थ - कैसा साधु इस तीसरे महाव्रत की आराधना कर सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में

बताया है कि - जो साधु, संयम-साधना में आवश्यक ऐसे उपकरण के संग्रह और आहार-पानी प्राप्त कर साधर्मो-साधुओं को देने में कुशल है। जो अत्यन्त दुर्बल, बाल, ग्लान (रोगी) वृद्ध, क्षपक (जो मास-खमणादि उत्कट तप करता है) प्रवर्तक, आचार्य, उपाध्याय, नवदीक्षित शिष्य, साधर्मिक, तपस्वी, कुल, गण, संघ की दस प्रकार अथवा बहुत प्रकार की वैयावृत्य, कीर्ति आदि की इच्छा के बिना चैत्यार्थ (ज्ञान प्राप्ति के लिए) और निर्जरा के लिए करता है, जो अप्रीति वाले घर में प्रवेश नहीं करता, अप्रीतिकारी घर से आहारादि नहीं लेता और न अप्रीतिकारी घर के पीढ़, शय्या, संस्तरक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्डक, रजोहरण, निषद्या, चोलपट्टक, मुंहपत्ति, पादप्रोँछन, भाजन, उपधि, भण्डोपकरण का सेवन नहीं करता, दूसरों की निन्दा नहीं करता, दूसरों के दोषों को ग्रहण नहीं करता, आचार्य अथवा रोगी आदि के बहाने से कोई वस्तु नहीं लेता, किसी व्यक्ति को दानादि धर्म से विमुख नहीं बनाता, किसी के दान और सदाचरण को छुपाता नहीं, जो आहारादि लाकर देने (वैयावृत्य करने) के बाद पछतावा नहीं करता, जो प्राप्त आहारादि का यथायोग्य विभाग करता है, जो योग्य शिष्य तथा उपकरणादि का संग्रह करने, आहारादि देने और अध्ययन कराने में कुशल है-ऐसा साधु, इस व्रत की आराधना करता है।

विवेचन - शरीरधारियों के लिए आहारादि पर वस्तुओं की आवश्यकता होती ही है-साधुओं के लिए भी। गृहस्थ लोगों की साधन-प्राप्ति निर्दोष नहीं होती, किन्तु साधुओं का जीवन निर्दोष होता है। उन्हें आवश्यक सामग्री निर्दोष रीति से ही प्राप्त करनी होती है। इस सूत्र में विविध स्थिति वाले साधुओं और उनकी आवश्यकताओं का उल्लेख कर तदनुकूल वैयावृत्य करने का निर्देश किया है।

अत्यंतबाल - आठ वर्ष की उम्र वाला साधु।

क्षपक - "क्षपको विकृष्ट तपस्वी मासक्षपणादि निरन्तर कर्ता"-मासखमणादि निरन्तर उत्कट तप करने वाले।

प्रवर्तक - 'सीदन्त प्रतिचरणधर्मप्रवर्तते प्रवर्तावयति स प्रवर्तकः'-चारित्र्य धर्म में प्रवृत्ति करने और साधुओं से यथायोग्य प्रवृत्ति कराने वाले।

कुल - एक गुरु के शिष्यों का समुदाय अथवा-एक ही वाचनाचार्य से ज्ञानाध्ययन करने वाले शिष्यों का समूह।

गण-अनेक कुलों से बना हुआ समूह।

संघ-गण-समूह का संग्राहक तथा साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका-यह चतुर्विध संघ।

चेइयद्वे - चैत्यार्थ=चैत्य के लिए। टीकाकार चैत्य शब्द का अर्थ करते हैं-'जिन प्रतिमा'। यह अर्थ पंचम काल में उत्पन्न, अपने समय में बहु विकसित और व्यापक बनी हुई मूर्तिपूजा के प्रभाव से हुआ होगा, जबकि साधु मन्दिर-मूर्ति के लिए स्वयं आरम्भ-समारम्भ करवाते थे। स्थान-स्थान पर मंदिर बनवाना, मूर्ति स्थापित करना, प्रतिष्ठा करवाना, महापूजा का आरम्भ करना, संघ निकाल कर

यात्रा करना आदि अनेक कार्य करते थे। धर्म-साधना का मुख्य आधार मंदिर-मूर्ति बन चुका था। अन्यथा यह अर्थ यहाँ लागू ही कैसे हो सकता है? क्योंकि इस सूत्र में वैयावृत्य के पात्रों और वैयावृत्य के साधनों का उल्लेख किया गया है। वैयावृत्य के पात्र हैं - 'अच्चंतबाल-दुब्बल.....संघ' और वैयावृत्य के साधन हैं - 'उवहिभत्तपाण.....।' सोचना चाहिए कि उपधि और भातपानी-आहारादि की आवश्यकता मानव शरीरधारी अत्यन्तबाल से लगाकर संघ तक के साधुओं को होती है, मूर्ति को नहीं। "भत्तपाणपीढ यावत् उवगरण" में से कोई भी वस्तु मूर्ति के लिए आवश्यक या व्यवहार के योग्य नहीं है। ये सब साधुओं के लिए ही उपयोगी हैं। अतएव यहाँ मूर्ति अर्थ उचित नहीं होगा।

स्थानांग सूत्र स्थान १०, भगवती श० २५ उ० ७ तथा व्यवहार सूत्र उ० १० में वैयावृत्य करने योग्य पात्र दस ही बताये हैं। यथा - १. आचार्य २. उपाध्याय ३. स्थविर ४. तपस्वी ५. ग्लान ६. शैक्ष ७. कुल ८. गण ९. संघ और १०. साधर्मिक। तत्त्वार्थ सूत्र अ० ९ सूत्र २४ में भी ये ही पात्र बताये हैं। इसमें से किसी में भी जिन-प्रतिमा का उल्लेख नहीं है। इस प्रकार वैयावृत्य के स्थान पर मूर्ति अर्थ अनुचित, असंगत एवं असत्य है। यहाँ ज्ञान प्राप्त्यर्थ-ज्ञान प्राप्ति के लिए अर्थ ठीक रहता है। उत्तराध्ययन अ० १ गा० ४६ में लिखा है कि - 'पसण्णा लाभइस्संति विउलं अड्ढियं सुयं' - वैयावृत्यादि गुण से प्रसन्न हुए गुरु, विपुल अर्थयुक्त श्रुतज्ञान का लाभ देते हैं। अतएव ज्ञानार्थी के लिए वैयावृत्य आवश्यक है और वैयावृत्य निर्जरा का भी कारण है।

'चेइयडे' का अर्थ-आचार्यादि की प्रसन्नता के लिए भी किया है। उनकी प्रसन्नता श्रुत-दान का कारण होती है। रायपसेणी सूत्र में भगवान् महावीर के वर्णन में 'चेइय' का अर्थ टीकाकार ने-'चैत्यं सुप्रशस्त मनोहेतुत्वात्' - शुभ एवं प्रशस्त मन के हेतु किया है।

साधर्मिक - 'एक श्रद्धारुचिः साधर्मिकः श्रुतलिंग प्रवचनैकः रीति।' जिनकी श्रद्धा एक हो, जिनका श्रुत, लिंग और प्रवचन एक प्रकार का हो, जिनका आचार-विचार एक समान हो। व्यवहार सूत्र उ० २ भाष्य गाथा १० में साधर्मों के १२ भेद इस प्रकार किये हैं -

१. **नाम साधर्मिक** - समान नाम वाला, दो व्यक्तियों का एक ही-सा नाम होना। जैसे देवदत्त नामक मनुष्य से दूसरे देवदत्त नाम वाले व्यक्ति का नाम एक ही समान होता है। (अथवा-नाममात्र को साधर्मो। वास्तविक जैन से नाममात्र के जैन करे जैन कहलाने मात्र की साधर्मिकता होती है।)।

२. **स्थापना साधर्मिक** - साधर्मों के चित्र-मूर्ति आदि सद्भाव या किसी अक्ष (पासा) वराट (कौड़ी) में साधर्मों की असद्भाव स्थापना करना।

३. **द्रव्य साधर्मिक** - जिसमें भविष्य में साधर्मिकता के गुण प्रकट होंगे अथवा जिसमें भूतकाल में साधर्मिकता के गुण थे (वर्तमान में साधर्मिकता के भाव से रहित)।

४. **क्षेत्र साधर्मिक** - समान क्षेत्रिय-एक देश के निवासी।

५. **काल साधर्मिक** - एक काल में उत्पन्न अथवा समकालीन।

६. **प्रवचन साधर्मिक** - एक सिद्धान्त को मानने वाले, एक प्रकार की श्रद्धा वाले ऐसे साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका।

७. **लिंग साधर्मिक** - एक ही प्रकार के वेश वाले-रजोहरण और मुखवस्त्रिका युक्त साधु-साध्वी तथा श्रमणभूत श्रावक।

८. **दर्शन साधर्मिक** - समान दर्शनी क्षायोपशमिक, ओपशमिक और क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपने हो समान दृष्टि वाले से समानता होना।

९. **ज्ञान साधर्मिक** - मति आदि ज्ञान की समानता युक्त।

१०. **चारित्र साधर्मिक** - सामायिकादि समान चारित्र वाले साधु-साध्वी।

११. **अभिग्रह साधर्मिक** - समान अभिग्रह वाले-जिन्होंने तप-साधना करके आहारादि ग्रहण में एक समान नियम लिया हो।

१२. **भावना साधर्मिक** - अनित्यादि भावना में समान रूप से बरतने वाले।

उपरोक्त बारह प्रकार के साधर्मिकों में श्रावक भी साधु का साधर्मिक है-प्रवचन, दर्शन और ज्ञान की अपेक्षा।

आराधना का फल

इमं च परदव्व-हरण-वेरमण-परिरक्खणद्वयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभदं सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाणं विउवसमणं।

शब्दार्थ - इमं - ये, परदव्व-हरण-वेरमण-परिरक्खणद्वयाए - पर-द्रव्य हरण त्याग व्रत की रक्षा के लिए, पावयणं - प्रवचन, भगवया - भगवान् ने, सुकहियं - कहे हैं, अत्तहियं - आत्म-हितार्थ, पेच्चाभावियं - जन्मान्तर में शुभ फल देने वाले, आगमेसिभदं - भविष्य में कल्याण का हेतु, सुद्धं - शुद्ध, णेयाउयं - न्याययुक्त, अकुडिलं - कुटिलतारहित सरल, अणुत्तरं - प्रधान, सव्वदुक्खपावाणं - समस्त दुःख और पापों को, विउवसमणं - शान्त करने वाले।

भावार्थ - पराये द्रव्य के हरण रूप पापकृत्य से विरत करने वाले इस महाव्रत की रक्षा के लिए भगवान् ने उत्तम प्रवचन कहा है। यह व्रत आत्मा के लिए हितकारी है, परभव में शुभ फल देने वाला है और भविष्य में कल्याणकारी है। यह प्रवचन शुद्ध है, न्याय से युक्त है, कुटिलता-रहित सरल है, उत्तमोत्तम है और समस्त दुःखों और पापों को शान्त करने वाला है।

अस्तेय व्रत की पांच भावनाएं

तस्स इमा पंच भावणाअं होति परदव्व-हरण-वेरमण-परिरक्खणद्वयाए।

प्रथम भावना-निर्दोष उपाश्रय

पढमं देवकुल-सभा-प्यवा-वसह-रुक्खमूल-आराम-कंदरागर-गिरि-गुहा-कम्मउज्जाण-जाणसाला-कुवियसाला-मंडव-सुण्णघर-सुसाण-लेण-आवणे अण्णम्मि य एवमाइयम्मि दग-मट्टिय-बीज-हरिय-तसपाण असंसत्ते अहाकडे फासुए विवित्ते पसत्थे उवस्सए होइ विहरियव्वं। आहाकम्मबहुले य जे से आसिय-सम्मज्जिय-उस्सित्तसोधि-छायण-दूमण-लिंपण-अणुलिंपण-जलण-भंडचालणं अंतो बहिं च असंजमो जत्थ वड्डइ संजयाण अट्टा वज्जियव्वो हु उवस्सओ से तारिसए सुत्तपडिकुट्टे। एवं विवत्तवासवसहिसमिडजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा णिच्चं-अहिगरणकरणकारावणपावकम्मविरओ दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई।

शब्दार्थ - तस्स - उसकी, पंच - पांच, भावणाओ - भावनाएं, तइयस्स - तीसरे की, होति - हैं, परदव्वहरणवेरमण - पर-द्रव्य के हरण से विरमण रूप, परिक्खणट्टाए - रक्षा के लिए।

पढमं - प्रथम, देवकुल - मंदिर, सभा - सभा, प्यवा - प्रपा-प्याऊ, आवसह - संन्यासी लोगों का मठ, रुक्खमूल - वृक्ष का मूल, आराम - बगीचा, कंदरा - गुफा, आगर - खान, गिरिगुहा - पर्वत की गुफा, कम्म - चूना आदि बनाने का स्थान, उज्जाण - उद्यान, जाणसाला - रथशाला, कुवियसाला - घर का सामान रखने का स्थान, मंडव - मण्डप, सुण्णघर - शून्य घर, सुसाण - श्मशान, लेण - पर्वत के नीचे का घर, आवणे - आपण-दुकान, अण्णम्मि - अन्य स्थान में, एवमाइयम्मि - इसी प्रकार के, दग-मट्टिय-बीज-हरिय-तसपाणअसंसत्ते - जल, सचित्त, मिट्टी, बीज, हरी वनस्पति और बेइन्द्रिय आदि त्रस प्राणी से रहित, अहाकडे - गृहस्थ ने निज के लिए बनाया हो, फासुए - प्रासुक, विवित्ते - विविक्त, पसत्थे - प्रशस्त, उवस्सए - उपाश्रय में, विहरियव्वं - ठहरना, आहाकम्मबहुले - आधाकर्म दोष की बहुलता वाला हो, आसिय - जल के छींटे डाला हुआ, सम्मज्जिय - झाड़ू से कचरा निकाला हुआ, उस्सित्त - उत्सिक्त-जल का विशेष रूप से छिड़काव किया गया हो, सोहिय - शोभित, छायण - छप्पर आदि से छाया गया हो, दूमण - चूना आदि लगाकर सफेद किया गया हो, लिंपण - लीपा हुआ, अणुलिंपण - बार-बार लीपा गया, जलण - अग्नि जलाई हो, भंडचालण - बरतन आदि हटाये हों, जत्थ - जहाँ, अंतो - भीतर, य - तथा, बहिं - बाहर, असंजमो - असंयम की, वड्डइ - वृद्धि, संजयाणअट्टा - साधु के लिए, वज्जियव्वो - वर्जित करना, तारिसए - ऐसा, उवस्सओ - उपाश्रय, सुत्तपडिकुट्टे - शास्त्र से वर्जित, एवं - इस प्रकार, णिच्चं - सदा, विवत्तवासं - विविक्तवास, वसहि - स्थान, समितिजोगेण - समिति का पालन करने से, अंतरप्पा-अन्तरात्मा, भाविओ - भावित, भवइ - होता है, अहिगरणकरणकारावणपावकम्मविरओ - दुर्गतिजनक कार्यों के करने और कराने रूप पाप-कर्म से निवृत्त होना, दत्तमणुण्णायउग्गहरुई - दिये हुए और अनुज्ञा किये हुए पदार्थ को ही ग्रहण करने की रुचि वाला।

भावार्थ - दूसरों के द्रव्य के हरण रूप पाप कर्म से निवृत्त करने वाले इस तीसरे महाव्रत की रक्षा करने के लिए पांच भावनाएं होती हैं।

प्रथम भावना - साधुओं को ठहरने के लिए निर्दोष स्थान (उपाश्रय) का निर्देश करने वाली यह पहली भावना है। वे स्थान ये हैं - देवकुल-व्यंतरादि के मंदिर, सभा (जहाँ लोग एकत्रित होकर मंत्रणा करते हैं) प्याऊ, आवसथ (सन्यासियों का मठ) वृक्ष के नीचे, आराम (बगीचा), कन्दरा (गुफा) आकर (खान) पर्वत की गुफा, कर्म (लोहार आदि की शाला, जहाँ लोह पर क्रिया की जाती है, कुंभकार आदि के स्थान) उद्यान (उपवन) यानशाला (रथ, गाड़ी आदि वाहन रखने के स्थान) कुप्यशाला (घर के बरतन आदि रखने का स्थान) मण्डप (उत्सव का स्थान या विश्राम-स्थल) शून्य घर, श्मशान, लयन (पर्वत की तलहटी में बना हुआ) आपण (दुकान) और इसी प्रकार के अन्य स्थानों में, जो सचित्त जल, मिट्टी, बीज, हरी वनस्पति और बेइन्द्रियादि त्रस प्राणियों से रहित हों, गृहस्थ ने अपने लिए बनाये हो, प्रासुक (निरवद्य) हो, विविक्त (स्त्री, पशु और नपुंसक से रहित) हो और प्रशस्त (निर्दोष एवं शुभ) हों, ऐसे उपाश्रय में साधु को ठहरना चाहिए।

ऐसे स्थान में नहीं रहना चाहिए जो आधाकर्म बहुल (साधु के लिए आरम्भ करके बनाया) हो, साधु के रहने के लिए जल छिटक कर धूल दबाई हो, झाड़ू लगाकर साफ किया हो, विशेष रूप से जल छिटका हो, सुशोभित किया हो, ऊपर छाया हो, चूना आदि पोता हो, लीपा हो, विशेष रूप से लीपा हो, शीत निवारण के लिए अग्नि जलाई हो या दीपक जलाया हो, बरतन आदि हटाकर अन्यत्र रखे हों, जहाँ भीतर या बाहर रहने से असंयम की वृद्धि होती हो, तो ऐसे स्थान साधु के लिए वर्जित हैं। ऐसे स्थानों का त्याग करना चाहिए। ऐसे उपाश्रय साधु के लिए सूत्र के प्रतिकूल हैं।

इस प्रकार विविक्त-वसित रूप समिति का पालन करने से अन्तरात्मा प्रभावित होती है और दुर्गति के कारण ऐसे पापकर्म करने, कराने से निवृत्ति होती है तथः दत्तानुज्ञात स्थान की रुचि होती है।

विवेचन - साधु 'अनगार' होता है। साधु का अपना कोई घर नहीं होता, फिर भी उसे किसी स्थान पर ठहरना ही पड़ता है। प्रथम भावना में वैसे निर्दोष स्थानों का उल्लेख किया है जो पूर्णतया निर्दोष हो कर संयम के अनुकूल हों।

द्वितीय भावना-निर्दोष संस्तारक

विइयं आराम उज्जाणकाणवणप्यदेसभागे जं किंचि इक्कडं व कठिणगं च जंतुगं च परा-मेर-कुच्च-कुसुडब्भ-पलाल-मूयगवक्कयं पुप्फ-फल-त्रय-प्यवाल-कंद-मूल-तण-कट्ट-सक्कराइ गिण्हइ सेज्जोवहिस्स अट्टा ण कप्पए उग्गहे अदिण्णम्मि गिण्हउं जे हणि हणि उग्गहं अणुण्णवियं गिण्हियव्वं एवं उग्गहसमिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पाणिच्चं अहिगरण-करण कारावण-पावकम्पविरए दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई।

◇ अन्य प्रतियों में 'वक्कय' के स्थान पर 'पव्वय' तथा 'वलय' पाठ हैं।

शब्दार्थ - खिड़यं - द्वितीय, आराम - बगीचा, उज्जाण - उद्यान, काणण - नगर का निकटवर्ती वन, वणप्पदेसभागे - वन प्रदेश, इक्कडं - सूखा घास, कठिणगं - कठिनक-तृण विशेष, जंतुगं - जलाशय में उत्पन्न होने वाला तृण विशेष, परा - एक प्रकार का घास, मेर - मुंज, कुच्च - कुर्च-जिससे कूची आदि बनाई जाती है, कुसु - कुश, डब्भ - डाभ, पलाल - पलाल, मूयग - मूयक-एक प्रकार का तृण विशेष, वक्कय - वल्कल, पुप्फ - फूल, फल - फल, तय - त्वचा, प्वाल - प्रवाल, कंद - कन्द, मूल - मूल, तण - तृण, कट्टु - काष्ठ, सबकराइ - शर्करा, सेज्जोवहिस्सअट्टा - बिछाने तथा अन्य कार्य के लिए, गिण्हइ - ग्रहण करना, उग्गहे - अवग्रह, अदिण्णम्मि - बिना आज्ञा, ण कप्पए- नहीं कल्पता, हणि हणि - प्रतिदिन, जे - जो, अणुण्णविय - आज्ञा लेकर, गिण्हियव्वं - ग्रहण करना, एवं - इस प्रकार, णिच्चं - सदा, उग्गहसमिड्जोगेण - अवग्रह समिति का पालन करने से, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, भाविओ - भावित, भवइ - होती है, अहिगरण-करण-कारावण-पावकम्म-विरए - दुर्गतिजनक कार्यों के करने और कराने रूप पापकर्मों से रहित, दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई - प्रदत्त और अनुज्ञा की हुई वस्तु को ही ग्रहण करने वाला।

भावार्थ - दूसरी भावना अनुज्ञात-संस्तारक है। आराम, उद्यान, कानन और वन-प्रदेश में सूखा घास, कठिनक (तृण विशेष) जलाशयोत्पन्न तृण, परा (तृण विशेष) मेर (मुंज) कूर्च, कुश, डाभ, पलाल, मूयक, वल्कल, पुष्प, फल, त्वचा, प्रवाल, कन्द, मूल, तृण, काष्ठ और कंकरादि बिछाने या अन्य कार्य के लिए ग्रहण करना हो और वह वस्तु उपाश्रय के भीतर हो, तो भी आज्ञा प्राप्त किये बिना ग्रहण करना साधु के लिए कल्पनीय नहीं है। जिस स्थान में मुनि ठहरा है, उसमें रहे तृण आदि के ग्रहण करने की भी प्रतिदिन आज्ञा लेनी चाहिए। इस प्रकार अवग्रह-समिति का सदैव पालन करने से अन्तरात्मा पवित्र होती है और दुर्गति-दायक पाप-कर्मों के करने-कराने से निवृत्त होती है तथा दत्तानुज्ञात वस्तु ही ग्रहण करने की रुचि होती है।

तृतीय भावना-शय्या-परिकर्म वर्जन

तइयं पीढ-फलग-सिज्जा-संधारगट्टयाए रुक्खा ण छिंदियव्वा ण छेयणेण भेयणेण सेज्जा कारियव्वा जस्सेव उवस्सए वसेज्ज सेज्जं तत्थेव गघेसिज्जा, ण य विसमं समं करेज्जा ण णिवायपवायउस्सुगतं ण डंसमसगेसु खुभियव्वं अग्गी धूमो ण कायव्वो, एवं संजमबहुले संवरबहुले संवुडबहुले समाहिबहुले धीरे काएण फासयंतो सययं अज्झप्पज्जाणजुत्ते समिए एगे चरिज्ज धम्मं, एवं सेज्जासमिड्जोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा णिच्चं अहिगरण-करणकारावण-पावकम्मविरए दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई।

शब्दार्थ - तइयं - तृतीय, पीढ-फलग-सेज्जा-संधारगट्टयाए - पीढ, फलक, शय्या और संस्तारक के लिए, रुक्खा - वृक्ष, ण छिंदियव्वा - छेदन नहीं करना, छेयणेण - छेदन, भेयणेण - भेदन, सिज्जा-

शय्या, कारियव्वा - करवाना, जस्सेव - जिसके, उवस्सए - उपाश्रय, वसेज्ज - ठहरे, सिज्ज - शय्या, तत्थेव - वहीं, गवेसिज्जा - गवेषणा करे, विसमं समं ण करेज्जा - विषम को सम नहीं करे, ण णिवायपवाय उस्सुगत्तं - वायु सहित या रहित स्थान में उत्सुकता न करे, ण डंसमसगेसु खुभियव्वं- डांस और मच्छर आदि के विषय में क्षुब्ध नहीं होंवे, अग्गी धूमो ण कायव्वो - अग्नि अथवा धूआ नहीं करे एवं इस प्रकार, संजमबहुले - संयम की प्रधानता वाला, संवरबहुले - संवर की प्रधानता वाला, संवुडबहुले - संवृत्तपन की प्रचुरता वाला, समाहिबहुले - समाधि सम्पन्न, धीरे - धैर्यशाली, काएण फासयंतो - शरीर से पालन करता हुआ, सययं - निरन्तर, अज्झप्पज्झाणजुत्ते - अध्यात्म-ध्यान से युक्त, समिए - समिति वाला, एगे - अकेला, चरिज्ज - आचरण करे, धम्मं - धर्म का, सेज्जासमिइजोगेण - शय्या-समिति के योग से, भाविओ - भावित, भवइ - होती, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, णिच्चं - सदा, अहिगरण-करणकारावण-पावकम्मविरए - दुर्गतिजनक कार्यों के करने-कराने रूप पाप-कर्म से विरत, दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई - दत्त और आज्ञा प्राप्त अवग्रह की रुचि वाला।

भावार्थ - तीसरी "शय्या-परिकर्म वर्जन" भावना है। साधु, पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक के लिए वृक्षों का छेदन नहीं करे और वृक्षों का छेदन-भेदन कराकर शय्या नहीं बनवावे, किन्तु जिस गृहस्थ के उपाश्रय (घर) में साधु ठहरे, वहीं शय्या की गवेषणा करे। यदि वहाँ ठहरने की भूमि विषम (ऊबड़-खाबड़) हो, तो उसे सम (बराबर) नहीं करे। यदि वहाँ वायु का संचार न हो या अधिक हो, तो उत्सुकता (अरुचि) नहीं रखकर समभाव पूर्वक रहे। यदि डांस-मच्छरों का परीषह उत्पन्न हो जाए, तो क्षुब्ध नहीं होकर शान्त रहे। उन डांस-मच्छरों का निवारण करने के लिए न तो अग्नि प्रज्वलित करे और न धुआँ ही करे। इस प्रकार निर्दोष चर्या से उस साधु के जीवन में अत्यधिक संयम, विस्तृत संवर, कषायों और इन्द्रियों पर विशेष, विजय, चित्त में प्रसन्नता एवं शांति की बहुलता होती है। वीतराग-भाव की वृद्धि करने वाला धीर-वीर श्रमण, उत्पन्न परीषहों को अपने शरीर पर झेलता हुआ अध्यात्म ध्यान से सतत सम्पन्न रहे और समितियों का पालन करता हुआ, स्वयं अकेला (रागादि रहित) होकर धर्म का आचरण करे। इस प्रकार सदैव शय्या समिति के योग से (शय्या परिकर्म वर्जन करने से) अन्तरात्मा विशुद्ध होती है और दुर्गतिदायक कृत्यों के करण-करावन रूप पापकर्मों से वंचित रहती है। वह प्रशस्तात्मा दत्तमनुज्ञात अवग्रह ग्रहण करने की रुचि वाला होता है।

चतुर्थ भावना-अनुज्ञात भक्तादि

चउत्थं साहारण-पिंडपायलाभे सति भोत्तव्वं संजएणं समियं ण सायसूपाहियं ण खद्धं ण वेगियं ण तुरियं ण चवलं ण साहसं ण य परस्स पीलाकारसावज्जं तह भोत्तव्वं जह से तइयवयं ण सीयइ साहारणपिंड-पायलाभे सुहुमं अदिण्णा-दाणवयणियम-विरमणं एवं साहारणपिंडपायलाभे समिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा णिच्चं अहिगरण-करणकारावण-पावकम्मविरए दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई।

शब्दार्थ - चउत्थं - चतुर्थ, साहारण-पिंडपायलाभे - सब साधुओं के लिए सम्मिलित आहार आदि के मिलने पर, भोत्तव्वं - आहार करना, संजएणं - साधु को, समियं - सम्यक् यतनापूर्वक, ण सायसूपाहियं - न शाक और सूप की अधिकता वाला, ण खब्बं - साथ बैठकर स्वयं अधि या जल्दी-जल्दी नहीं खाना, ण वेगियं - वेग युक्त नहीं, ण तुरियं - शीघ्रतापूर्वक, ण चवलं - चंचलतापूर्वक नहीं, ण साहसं - बिना विचारे नहीं, ण य परस्स पीलाकारसावज्जं - और दूसरों को पीड़ाकारक तथा सदोष रीति से नहीं, तह भोत्तव्वं - इस प्रकार खाना चाहिए, जह से तइयव्वं - जिस प्रकार तीसरा व्रत, ण सीयइ - नष्ट नहीं हो, साहारण पिंडपायलाभे - साधारण पिण्डपात के लाभ में, सुहुमं - सूक्ष्म, अदिण्णादाणवयणियसविरमणं - अदत्तादान विरमण व्रत से आत्मा का नियमन करने वाला, एवं - इस प्रकार, साहारणपिंडपायलाभे - साधारण पिण्डपात के लाभ से, समिइजोगेण - समिति के योग से, भाविओ - भावित, भवइ - होती है, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, णिच्चं - सदैव, अहिगरण करण कारावण पावकम्मविरए - अधिकरण रूप पाप-कर्म के करने-कराने रूप कर्म से विरत, दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई - दत्त और अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला।

भावार्थ - अनुज्ञातभक्तादि चौथी भावना है। साधु का कर्तव्य है कि वह गुरु आदि रत्नाधिकों की आज्ञा प्राप्त करके ही अशन-पानादि का उपभोग करे। साथ के सभी साधुओं के लिए जो आहारादि सम्मिलित रूप में प्राप्त हुआ है, उसे सभी के साथ समिति एवं शांतिपूर्वक खाना चाहिए। खाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जिससे अदत्तादान का पाप नहीं लगे। उस सम्मिलित आहार में से शाक तथा दाल स्वयं अधिक नहीं खावे। अपने भाग के आहार से न तो अधिक खावें और न शीघ्रतापूर्वक खावें। खाने में चपलता नहीं लावें। खाते समय असावधानी नहीं रखें, किन्तु सोच समझकर उचित रीति से खावें। भोजन करने में इस बात का विवेक रखें कि जिससे दूसरे साधु को पीड़ा उत्पन्न नहीं हो। सम्मिलित रूप से प्राप्त आहार का भोजन इस प्रकार करें कि जिससे तीसरे महाव्रत में किसी प्रकार का दोष नहीं लगे। यह अदत्तादान-विरमण रूप महाव्रत बड़ा सूक्ष्म है। साधारण रूप से आहार और पात्र का लाभ होने पर समिति पूर्वक आचरण करने से अन्तरात्मा विशुद्ध होती है और दुर्गति-दायक कुकृत्यों के करने-कराने रूप पाप-कर्म से दूर रहती है। वह पवित्रात्मा दत्तमनुज्ञात आहारादि ग्रहण करने की रुचि वाली होती है।

पंचमी भावना-साधर्मिक विनय

पंचमं साहम्मिए विणओ पंडजियव्वो उवगरणपारणासु विणओ पंडजियव्वो वायणपरियट्टणासु विणओ पंडजियव्वो दाणर्गहण-पुच्छणासु विणओ पंडजियव्वो णिक्खमणपवेसणासु विणओ पंडजियव्वो, अण्णेसु य एवमाइसु बहुसु कारणसएसु विणओ पंडजियव्वो। विणओ वि तवो, तवो वि धम्मो तम्हा विणओ पंडजियव्वो। गुरुसु साहुसु तवस्सीसु य, एवं विणएण भाविओ भवइ अंतरप्पा णिच्चं अहिगरणं करण-कारावण-पावकम्मविरए दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई।

शब्दार्थ - पंचमगं - पांचवीं, साहम्मिए - साधर्मिक, विणओ - विनय, पंडजियव्वो - करना चाहिए, उवगरणपारणासु - ग्लान तपस्वी एवं ज्ञानी साधु का, विणओ पंडजियव्वो - विनय करना चाहिए, वायणपरियट्टणासु - सूत्र ग्रहण रूप वाचना में और आवृत्ति में, विणओ पंडजियव्वो - विनय करना चाहिए, दाणगहणपुच्छणासु - देने में, ग्रहण करने में और पृच्छा में, विणओ पंडजियव्वो-विनय करना चाहिए। णिव्वखमण-पवेसणासु - स्थान से निकलने व प्रवेश करने में आवश्यकीय आदि, विणओ पंडजियव्वो - विनय करना चाहिए, अण्णेसु य एवमाइसु - अन्य और इसी प्रकार के, बहुसु काणसएसु - बहुत से सैंकड़ों कारणों से, विणओ पंडजियव्वो - विनय करना चाहिए, विणओ वि तवो - विनय भी तप है, तवो वि धम्मो - तप भी धर्म है, तम्हा - इसलिए, विणओ पंडजियव्वो-विनय करना चाहिए, गुरुसु साहुसु तवस्सीसु - गुरु, साधु और तपस्वियों का, विणएण - विनय करने से, भाविओ - भावित, भवइ - होती है, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, णिच्चं - सदैव, अहिगरण-करण-कारावणपावकम्मविरए - अधिकरण रूप पाप के करने व कराने से विरत होता है, दत्तमणुण्णाय उग्गहरुई - दत्त और अनुज्ञात अवग्रह में रुचि वाला।

भावार्थ - साधर्मिक विनय रूप पांचवीं भावना है। साधर्मिक साधुओं का विनय करे, ज्ञानी तपस्वी एवं ग्लान साधु का विनय एवं उपकार करने में तत्पर रहे। सूत्र की वाचना तथा परावर्तना करते समय गुरु का वन्दन रूप विनय करे। आहारादि दान प्राप्त करने और प्राप्त दान को साधुओं को देने तथा सूत्रार्थ की पुनः पृच्छा करते समय गुरु महाराज की आज्ञा लेने एवं वन्दना करने रूप विनय करे। उपाश्रय से बाहर जाते और प्रवेश करते समय आवश्यकी तथा नैषेधिकी उच्चारण रूप विनय करे। इसी प्रकार अन्य अनेक सैंकड़ों कारणों (अवसरों) पर विनय करता रहें मात्र अनशनादि ही तप नहीं है, किन्तु विनय भी तप है। केवल संयम ही धर्म नहीं, किन्तु तप भी धर्म है। इसलिए गुरु साधु और तपस्वियों का विनय करता रहे। इस प्रकार सदैव विनय करते रहने से अन्तरात्मा पवित्र होती है और दुर्गति के कारण ऐसे पापकृत्यों के करने-कराने रूप पापकर्म से रहित होती है। इससे दत्तअनुज्ञात पदार्थ को ग्रहण करने की रुचि होती है।

उपसंहार

एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ, सुप्पणिहियं, इमेहिं पंचहिं वि कारणेहिं मण-वयण-काय-परिरक्खिएहिं णिच्चं आमरणंतं य एस जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया अणासवो अकलुसो अछिदो अपरिस्सावी असंकिलिदो सव्व जिणमणुण्णाओ।

शब्दार्थ - एवमिणं - ऐसा करने से, संवरस्स दारं - संवर-द्वार का, सम्मं - भली-भांति, संवरियं-पालन करना, होइ - होता है, सुप्पणिहियं - सुप्रणिहित-सुरक्षित, इमेहिं - इन, पंचहिं - पांच, कारणेहिं-कारणों से, मण-वयण-काय-परिरक्खिएहिं - मन, वचन और काया द्वारा रक्षण करना, णिच्चं - सदैव,

आमरणंतं - मरण पर्यंत, एसजोगो - इस व्रत का, षोडशो - पालन करना, धिइमया - धैर्य सम्पन्न, मइमया - बुद्धिमान्, अणासवो - अनाश्रव, अकलुसो - अकलुषता रहित, अच्छिदो - छिद्र रहित, अपरिस्सावी - कर्मों के प्रवेश से रहित, असंकिलिद्धो - संक्लेश रहित, सब्ब जिणमणुण्णाओ - सभी जिनेश्वरों द्वारा आज्ञापित।

भावार्थ - इस प्रकार पांच भावनाओं से युक्त इस संवर-द्वार का सम्यक् रूप से पालन करने से महाव्रत सुरक्षित रहता है। इसलिए धैर्य-सम्पन्न, बुद्धिमान् साधु को चाहिए कि मन वचन और काया से इस महाव्रत की रक्षा करता हुआ, इन पांच भावनाओं का जीवन पर्यंत पालन करता रहे। यह महाव्रत आस्रव का निरोधक, कलुषित भावों से रहित शुभ भावों से युक्त, छिद्र-रहित, कर्मों के आगमन का अवरोधक तथा संक्लेश से रहित है। यह भूत, भविष्य और वर्तमान के सभी जिनेश्वर भगवंतों द्वारा आज्ञापित (उपदिष्ट) है।

एवं तइयं संवरदारं फासियं पालियं सोहिय तीरियं किट्टियं आराहियं आणाए अणुपालियं भवइ। एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आचवियं सुदेसियं पसत्थं।

॥ तइयं संवरदारं सम्पत्तं तिबेमि ।

शब्दार्थ - एवं - इस प्रकार, तइयं - तृतीय, संवरदारं - संवर-द्वार, फासियं - स्पृष्ट, पालियं - पालित, सोहियं - शोभित, तीरियं - तीरित, किट्टियं - कीर्तित, आराहियं - आराधित, भवइ - होता है, एवं - इस प्रकार, णायमुणिणा भगवया - ज्ञात कुलोत्पन्न भगवान् महावीर स्वामी ने, पण्णवियं - कहा है, परूवियं - प्ररूपणा की, पसिद्धं - प्रसिद्ध, सिद्धं - सिद्ध, सिद्धवरसासणमिणं - अपने कार्य को सिद्ध करने वाले तीर्थंकर भगवान् की प्रधान आज्ञा युक्त है, आचवियं - सम्यक् प्ररूपित है, सुदेसियं - भली प्रकार उपदेशित है, पसत्थं - प्रशस्त है, तइयं - तृतीय, संवरदारं - संवरद्वार, सम्पत्तं - समाप्त हुआ, तिबेमि - ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ - इस प्रकार यह तीसरे संवरद्वार का स्पर्शन, पालन एवं शोधन होता है, पार पहुँचाया जाता है, कीर्तित एवं आराधित होता है और जिनेश्वर की आज्ञा के अनुसार अनुपालित होता है। इस प्रकार ज्ञातकुलोत्पन्न भगवान् महावीर स्वामी ने कहा है, प्ररूपित किया है। यह मार्ग विश्व में प्रसिद्ध एवं प्रमाणों से सिद्ध है। समस्त प्रयोजन सिद्ध करने वाले ऐसे तीर्थंकर भगवंत की यह प्रधान आज्ञा है। भगवान् द्वारा प्ररूपित है। उत्तम प्रकार से उपदेशित है और प्रशस्त है। यह तृतीय संवरद्वार पूर्ण हुआ, ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ दत्तानुज्ञात नामक तृतीय संवरद्वार समाप्त ॥

ब्रह्मचर्य नामक चतुर्थ संवरद्वार

ब्रह्मचर्य की महिमा

जंबू! इत्तो य बंधचेरं उत्तम-तव-णियम-णाम-दंसण-चरित्त-सम्पत्त-विणय-मूलं यमनियमगुणप्पहाणजुत्तं हिमवंतमहंततेयमंतं पसत्थगंभीर-थिमियमज्झं अज्जव-साहुजणाचरियं मोक्खमग्गं विसुद्धसिद्धिगइणिलयं सासयमव्वाबाहमपुणब्भं पसत्थं सोमं सुभं सिवमयलमक्खयकरं जइवर-सारक्खियं सुचरियं सुभासियं ✧ णवरि मुणिवरेहिं महापुरिसधीरसूर-धम्मियधिइमंताण य सया विसुद्धं सव्वं भव्वजणाणुचिण्णं णिस्संकियं णिब्भयं णित्तूसं णिरायासं णिरुवलेवं णिव्वुइधरं णियमणिप्पकंपं तवसंजममूलदलियणेम्मं पंचमहव्वयसुरक्खियं समिइगुत्तिगुत्तं ।

शब्दार्थ - जंबू - हे जंबू!, इत्तो य - यहाँ से आगे, बंधचेरं - ब्रह्मचर्य व्रत, उत्तम-तव-णियम-णाण-दंसण-चरित्त-सम्पत्त-विणय-मूलं - उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र सम्यक्त्व और विनय का मूल, यमनियमगुणप्पहाणजुत्तं-यम, नियम और उत्तमोत्तम गुणों से युक्त, हिमवंतमहंततेयमंतं-हिमवान् पर्वत के समान महान् और तेजस्वी, पसत्थगंभीरथिमियमज्झं - जिसका मध्य-अंतःकरण प्रशस्त, गंभीर और स्थिर है, अज्जवसाहुजणाचरियं - सरल भाव युक्त साधु पुरुषों से आसेवित, मोक्खमग्गं - मोक्ष का मार्ग, विसुद्धसिद्धिगइणिलयं - विशुद्ध मोक्ष गति के स्थानभूत, सासयमव्वाबाहमपुणब्भवं - शाश्वत, बाधा रहित और पुनर्जन्म को रोकने वाला, पसत्थं - प्रशस्त, सोमं - सौम्य, सुभं - शुभ, सिवमयलमक्खयकरं-शिव-निरुपद्रव अचल और अक्षय या पूर्णता प्रदान करने वाला, जइवरसारक्खियं-प्रधान मुनियों से सुरक्षित, सुचरियं - भली प्रकार से आचरण किया हुआ, सुभासियं - सम्यक् प्रकार से उपदिष्ट, णवरि - केवल, मुणिवरेहिं - उत्तम मुनियों ने, महापुरिसधीरसूरधम्मियधिइमंताण - उत्तम महापुरुषों, अत्यन्त साहसी, शूर, धार्मिक एवं धृतिमंत पुरुषों से, सया - सदा, विसुद्धं - पूर्ण विशुद्धि के साथ, भव्वं - भव्य, भव्वजणाणुचिण्णं - भव्यजनों द्वारा पालित, णिस्संकियं - शंका-रहित, णिब्भयं-भय-रहित, णित्तूसं - तुष-निस्सारता से रहित, णिरायासं - खेद-रहित, णिरुवलेवं - स्नेह के उप-लेप से रहित, णिव्वुइधरं - निवृत्ति-घर-चित्त-शांति का घर, णियमणिप्पकंपं - नियम से अविचल, तवसंजममूलदलियणेम्मं - तप और संयम के मूल-दल के समान, पंचमहव्वय सुरक्खियं - पांच महाव्रतों में विशेष सुरक्षित, समिइगुत्तिगुत्तं - पांच समिति और तीन गुप्तियों से गुप्त।

✧ 'सुसाहियं' पाठ भी है।

भावार्थ - गणधर भगवान् सुधर्मा स्वामीजी महाराज कहते हैं कि हे जम्बू! अब ब्रह्मचर्य नामक चतुर्थ संवरद्वार का वर्णन किया जाता है।

अनशनादि उत्तम तप और पिण्डविशुद्धि आदि नियम तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल ब्रह्मचर्य है अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालक ही ज्ञानादि उत्तम गुणों को प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मचर्य व्रत, यम-नियम और उत्तमोत्तम गुणों से युक्त है। जिस प्रकार सभी पर्वतों में हिमवान् पर्वत महान् और प्रभावशाली है, उसी प्रकार सभी व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत महान् भी है और प्रभावशाली भी है। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से अन्तःकरण प्रशस्त, गंभीर और स्थिर होता है। सरल हृदय वाले साधुजन इसका आचरण करते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत मोक्ष का मार्ग है। सिद्धगति प्राप्ति के लिए अप्रशस्त-रागादि रहित और विशुद्ध स्थान है।

शाश्वत है - विशुद्ध एवं दोष रहित पाला हुआ ब्रह्मचर्य शाश्वत जीवन देने वाला है। फिर वह ब्रह्मचर्य शाश्वत हो जाता है। (विशुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत का पालक, यदि देवलोक में जाता है, तो उच्च वैमानिक देव होता है-जिससे उसका ब्रह्मचर्य (मैथुन-रहित जीवन, बिना विरति के भी) स्थिर रहता है और उसके बाद मनुष्य भ्रव में बाल ब्रह्मचारी अवस्था में ही प्रव्रजित होकर सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार उसका ब्रह्मचर्य शाश्वत-सादि-अपर्यवसित हो जाता है) अव्याबाध है, पुनर्जन्म का अवरोधक है। प्रशस्त है, सौम्य है, शुभ है, शिव (सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित) है, अचल (स्थिर) है, अक्षय (पूर्णता प्रदान करने-स्थिर रखने वाला) है। श्रेष्ठ यतिवर्यों-श्रमणश्रेष्ठों द्वारा रक्षित है। ब्रह्मचर्य का पालन करना श्रेष्ठ है। महर्षियों ने ब्रह्मचर्य का उत्तम उपदेश दिया है। जो महापुरुष धीर, वीर, गंभीर, धैर्यवान् और धार्मिक हैं, वे ही शुद्ध रूप से सदैव ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। ब्रह्मचर्य भव्य है और भव्यजनों द्वारा आचरित है। निःशंक है-ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला महानुभाव कामभोग के त्यागी होने के कारण शंका-रहित होते हैं। उन्हें किसी का भी भय नहीं होता। जिस प्रकार तुस (छिलके) रहित चावल स्वच्छ होता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी भी दोष रहित शुद्ध होते हैं। ब्रह्मचारी खेद से भी रहित होते हैं। ब्रह्मचारी भव्यात्मा निर्लिप्त होते हैं। उनमें मोह की लिप्तता नहीं होती। ब्रह्मचर्य निर्वृत्ति (चित्तशान्ति) का घर है। नियम से निष्प्रकम्प (अचल-अटल) है। तप और संयम का तो यह मूल ही है। पांच महाव्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा का प्रमुख स्थान है। समिति और गुप्ति (नव वाङ्मूल रूप ब्रह्मचर्य गुप्ति) से गुप्त-रक्षित है।

झाणणवरकवाडसुकय* मज्झप्पदिण्णफलिह सण्णद्धो * च्छइयदुग्गइपह-सुगइपहदेसगं च लोगुत्तमं च वयमिणं पउमसरतलागपालिभयं महासगडअरगतुंबभूयं

* 'सुकय' के आगे 'रक्खण' पाठ भी है।

* 'सण्णद्धो' के स्थान 'सण्णद्धबद्धो' भी है।

महाविडिमरुक्खकबंधभूयं महाणगरपागार-कवाडफलिहभूयं रज्जु पिणिद्धो य इंदकेऊ
विसुद्धणेगगुणसंपिणद्धं जम्मि य भग्गम्मि होइ सहसा सव्वं संभग्गमथियचुण्णिय-
कुसल्लियं-पल्लट्ट-पडिय-खंडिय-परिसडिय-विणासियं विणय-सीलतवणियमगुण-
समूहं ।

शब्दार्थ - झाणवरकवाडसुकयमग्गण्णदिण्णफलिहं - रक्षा के लिए उत्तम ध्यान रूप सुविरचित
कपाट वाला और अध्यात्म-सद्भावनामय चित्त रूप अर्गलामय, सण्णद्धोच्छइयदुग्गईपहं - दुर्गति के
मार्ग का अवरोधक-प्रतिबंधक, सुगइपहदेसगं - सुगति के मार्ग को दिखाने वाला, य - और, लोगुत्तमं-
लोक में सर्वोत्तम, वयमिणं - यह व्रत, पउमसरतलागणालिभूयं - पद्म-सरोवर की पाल तुल्य, महा-
सगडअरगतुंबभूयं-बड़े रथ के चक्र में लगे हुए आरक-लट्टों के नाभि तुल्य, महाविडिमरुक्खकबंधभूयं-
अतिशय विस्तार वाले बड़े वृक्ष के स्कन्ध समान, महाणगरपागारकवाडफलिहभूयं - बड़े नगर के प्राकार
में कपाट की आगल के समान, रज्जुपिणिद्धोइंदकेऊ - डोरी से बंधे हुए इन्द्र-ध्वज की तरह,
विसुद्धणेगगुणसंपिणद्धं - अनेक विशुद्ध गुणों से युक्त, जम्मिय भग्गम्मि - जिसके भंग होने पर,
सहसासव्वं - सहसा सभी, संभग्गमथियचुण्णियकुसल्लियं-पल्लट-पडिय-खंडिय-परिसडिय-
विणासियं - संभग्न, मथा हुआ, चूर्ण किया हुआ, शल्ययुक्त, पर्वत के ऊपर से शिला की तरह धर्म से
लुढ़का हुआ, गिरा हुआ, खण्डित बुरी हालत में पहुँचा हुआ, विणयसीलतवणियमगुण-समूहं -
विनय, शील, तप और नियम आदि गुण-समूह ।

भावार्थ - ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए धर्म-ध्यान रूपी कपाट है, जिससे विकार रूपी चोर प्रवेश
ही नहीं कर सकते। उस कपाट के उत्तम-भावना रूपी अर्गला है, जो कपाट को खुलने ही नहीं देती।
ब्रह्मचर्य व्रत दुर्गति के द्वार को बन्द करके पूर्णरूप से रोक देता है और सुगति के मार्ग को प्रदर्शित
करता है। ब्रह्मचर्य व्रत इस लोक में सर्वोत्तम व्रत है। जिस प्रकार पद्म सरोवर एवं तालाब की रक्षा,
उसकी पाल से होती है, उसी प्रकार अन्य सभी व्रतों की रक्षा ब्रह्मचर्य से होती है। अतएव ब्रह्मचर्य धर्म
रूपी सरोवर की रक्षिका पाल के समान है। जिस प्रकार गाड़ी या रथ के पहिये के आरों को चक्र की
नाभि धारण करती है, उसी प्रकार क्षान्ति आदि गुणों को ब्रह्मचर्य धारण करता है। जिस प्रकार पथिकों
और पशु-पक्षियों के लिए विस्तृत एवं विशाल वृक्ष आधारभूत होता है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य भी सभी
व्रतों का आधारभूत है। धर्म रूपी महानगर की रक्षा करने के लिए ब्रह्मचर्य व्रत, प्रकोट के कपाट की
दृढ़ अर्गला के समान है। जिस प्रकार अनेक रस्सियों से बंधा हुआ इन्द्रध्वज, महोत्सव की शोभा
बढ़ाता है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत भी अनेक विशुद्ध गुणों से सुशोभित है।

ब्रह्मचर्य के खण्डित होने पर विनय, शील, तप और नियमादि समस्त गुणों का समूह, उसी प्रकार
नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार कठोर भूमि पर पटका हुआ मिट्टी का घड़ा फूट जाता है। ब्रह्मचर्य नष्ट
होने पर सभी गुण दही के समान मथित हो जाते हैं और चने के समान चूर्ण-विचूर्ण हो जाते हैं। शरीर

में पैठे हुए शल्य के समान विदारित हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य के नष्ट होने पर अन्य व्रत उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार पर्वत-शिखर से गिरा हुआ चाषाण-खण्ड नष्ट होता है-खण्डित हो जाता है। जिस प्रकार कुष्ठादि महारोग से शरीर घृणित एवं विद्रूप हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य खण्डित होने पर सभी गुण दूषित हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य के विनाश से समस्त गुणों का विनाश हो जाता है। अतएव ब्रह्मचर्य व्रत को सावधानी के साथ सुरक्षित रखना चाहिए।

ब्रह्मचर्य की ३२ उपमाएं

तं बंधं भगवंतं १. गहगणणक्खत्तारगाणं वा जहा उडुवई, २. मणिमुत्त-सिलप्पवालरत्तरयणागराणं य जहा समुद्धो, ३. वेरुलिओ चेव जहा मणीणं, ४. जहा मउडो चेव भूसणाणं, ५. वत्थाणं चेव खोमजुयलं, ६. अरविंदं चेव पुप्फजेट्टं, ७. गोसीसं चेव चंदणाणं, ८. हिमवंत्तो चेव ओसहिणं, ९. सीतोदा चेव णिण्णगाणं, १०. उदहीसु जहा सयंभूरमणो, ११. रुयगवर चेव मंडलियपव्वयाणं पवरे, १२. एरावण इव कुंजराणं, १३. सीहोव्व जहा मियाणं पवरे, १४. पवगाणं चेव वेणुदेवे, १५. धरमो जहा पण्णगिंदराया, १६. कप्पाणं चेव बंधलोए, १७. सभासु य जहा भवे सुहम्मा १८. ठिइसु लवसत्तमव्व पवरा, १९. दाणाणं चेव अभयदाणं, २०. किमिराउ चेव कंबलाणं २१. संघयणे चेव वज्जरिसहे, २२. संठाणे चेव समचउरंसे, २३. झाणेसु य परमसुक्कञ्जाणं, २४. णाणेसु य परमकेवलं तु पसिद्धं, २५. लेसासु य परमसुक्कलेस्सा, २६. तित्थयरे चेव जहा मुणीणं, २७. वासेसु जहा महाविदेहे, २८. गिरिराया चेव मंदरवरे, २९. वणेसु जहा णंदणवणं पवरं, ३०. दुमेसु जहा जंबू, सुदंसणा विसुयजसा जीयणामेण य अयं दीवो, ३१. तुरगवई गयवई रहवई णरवई जह विसुए चेव, ३२. राया रहिए चेव जहा महारहगए, एवमणोगा गुणा अहीणा भवंति एग्गम्मि बंधचेरे जम्मि य आराहियम्मि आराहियं वयमिणं सव्वं सीलं तवो य विणओ य संजमो य खंती गुत्ती मुत्ती तहेव इहलोइय-पारलोइयजसे य कित्ती य पच्चओ य, तम्हा णिहुयण बंधचेरं चरियव्वं सव्वओ विसुद्धं जावज्जीवाए जाव सेयट्टिसंजओ त्ति एवं भणियं वयं भगवया।

शब्दार्थ - तं - यह, बंधं - ब्रह्मचर्य, भगवंतं - भगवान् है, गहगणणक्खत्तारगाणं - ग्रहगण, नक्षत्र और तारागण में, वा जहा उडुवई - जैसे चन्द्रमा, मणिमुत्तसिलप्पवालरत्तरयणागराणं-मणि, मोती, शिला, प्रवाल-विद्रुम मणि स्वत्तरल अर्थात् पदारग आदि रत्नों की उत्पत्ति स्थान, य जहा

समुद्रो - जैसे समुद्र है, वेरुलिओ चेष जहा मणिणं - मणियों के बीच जैसे वैदुर्य मणि प्रधान है, जहा मउडो चेष भूसणाणं - आभूषणों के बीच जैसे मुकुट, वत्थाणं चेष खोमजुअलं - वस्त्रों में जैसे क्षौमयुगल कपास का वस्त्र, अरविंदं चेष पुष्पजेट्टं - फूलों में जैसे अरविन्द-कमल, गोसीसं चेष चंदणाणं - चन्दनों में जैसे गोशीर्ष, हिमवंतो चेष ओसहीणं - औषधियों की उत्पत्ति-स्थान में हिमवान् के समान, सीतोदा चेष णिण्णाणाणं - नदियों में शीतोदा नदी के समान, उदहीसु जहा सयंभूरमणो - समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र के समान, रुयगवर चेष मंडलियपव्वयाणं पवरे - माण्डलिक गोल पर्वतों में रुचकवर गिरि के समान, एरावण इव कुंजराणं - हाथियों में एरावत हाथी, सीहोव्व जहा मियाणं पवरे - मृगों में जैसे सिंह प्रधान है, पवगाणं चेष वेणुदेवे - सुवर्ण-कुमारों के बीच जैसे वेणुदेव, धरणो जहा पण्णागिंदराया - नागकुमारों में जैसे धरणेन्द्र, कप्पाणं चेष बंभलोए - कल्प-देवलोक में जैसे ब्रह्मलोक, सभासु य जहा भवे सुहम्मा - सभाओं में जैसे सुधर्मा-देवसभा, ठिइसु लवसत्तमव्व पवरा-स्थितियों में जैसे अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थिति, दाणाणं चेष अभयदाणं - दानों में अभयदान, किमिराउ चेष कंबलाणं - कम्बलों में कृमिरागा-रक्त कम्बल, संघयणो चेष वज्जरिसहे - संहननों में वज्रऋषभ-नाराच संहनन, संठाणे चेष समचउरंसे - संस्थानों में समचतुरस्र संस्थान, झाणेसु य परमसुक्कज्झाणं - ध्यानों में परम शुक्लध्यान, पाणेसु य परम केवलं पसिद्ध - ज्ञानों में केवल परम ज्ञान प्रसिद्ध है, लेसासु य परमसुक्कलेसा - लेश्याओं में परम शुक्ललेश्या, तित्थयरे चेष जहा मुणीणं-मुनियों में तीर्थंकर, वासेसु जहा महाविदेहे - क्षेत्रों में महाविदेह, गिरिराया चेष मंदरवरे - पर्वतों में जैसे मन्दर-मेरु पर्वत, वणेसु जहा णंदणवणं पवरं - वनों में जैसे नन्दन वन श्रेष्ठ है, दुमेसु जहा जंबू सुदंसणा विसुय जसा - वृक्षों में जैसे जम्बू सुदर्शन वृक्ष विश्रुत-विख्यात कीर्ति वाला है, जीय णामेण य अयं दीवो - जिसके नाम से यह द्वीप-जम्बूद्वीप कहा जाता है, तुरगवई गयवई रहवई णरवई जह वीसुए चेष - अश्वपति, गजपति, रथपति और नरपति राजाओं के समान विख्यात, राया रहिए चेष जहा महारहगए - महारथ पर चढ़ा हुआ रथिक राजा, एवमणेगा गुणा अहीणा भवंति - इस प्रकार अनेक गुण, पूर्ण और स्वाधीन होते हैं, एग्गम्मि बंभचरे जम्मि य आराहियम्मि - एक ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर, आराहियं वयमिणं सव्वं - यह सब निर्ग्रन्थव्रत पालित होता है, सीलं - शील, तवो - तप, विणओ - विनय, संजमो - संयम, खंति गुत्ति मुत्ति - क्षमा, गुप्ति और मुक्ति, तहेव - इसी प्रकार, इहलोइयपारलोइयजसे य कित्ती य - इस लोक और परलोक में यश और कीर्ति, पच्चओ - विश्वास का कारण, तम्हा - इसलिए, णिहुएण - स्थिर चित्त से, बंभचेरं चरियव्वं - ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, सव्वओ विसुद्धं - सर्वथा विशुद्ध, जावजीवाए - आजीवन, जाव सेयट्ठि - यावत् श्वेतास्थि अर्थात् मृत्यु पर्यन्त, संजओ - साधु को, एवं भणियं वयं भगवया - इस प्रकार भगवान् महावीर ने प्रतिपादन किया है।

भावार्थ - यह ब्रह्मचर्य भगवान् (ऐश्वर्य सम्पन्न) है। इसकी उपमाएं इस प्रकार हैं -

१. जिस प्रकार ग्रहगण, नक्षत्र और तारों के समूह में चन्द्रमा श्रेष्ठ एवं प्रधान है, उसी प्रकार समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत श्रेष्ठ एवं प्रधान है।

२. जिस प्रकार मणि, मोती, शिला, प्रवाल और रक्त-रत्न आदि रत्नों का उत्पत्ति स्थान समुद्र है, उसी प्रकार समस्त व्रतों का उत्पत्ति स्थान ब्रह्मचर्य है।

३. जैसे मणियों में वैडूर्यमणि ४. भूषणों में मुकुट ५. वस्त्रों में क्षोमयुगल ६. पुष्पों में ज्येष्ठ अरविन्द पुष्प ७. चन्दनों में गोशीर्ष चन्दन ८. औषधियुक्त पर्वतों में हिमवान् पर्वत ९. नदियों में शीतोदा १०. समुद्रों में स्वयंभूरमण ११. गोल पर्वतों में रुचकवर १२. हाथियों में ऐरावत १३. मृगों में श्रेष्ठ मृगराज-सिंह १४. सुपर्णकुमार देवों में वेणुदेव १५. नागकुमारदेवों में धरणेन्द्र १६. कल्प-विमानों में ब्रह्मदेव लोक १७. सभाओं में इन्द्र की सुधर्म सभा १८. स्थिति में उत्तम लवसप्तम देवों की स्थिति १९. दानों में अभयदान २०. कम्बलों में किरमची रंग का कम्बल २१. संहननों में वज्र-ऋषभनाराच संहनन २२. संस्थानों में समचतुरस्र संस्थान २३. ध्यान में परम शुक्ल-ध्यान २४. ज्ञानों में प्रसिद्ध परम केवलज्ञान २५. लेश्याओं में परम शुक्ल लेश्या २६. मुनियों में तीर्थंकर २७. क्षेत्रों में महाविदेह २८. पर्वतों में गिरिराज मेरु पर्वत २९. वनों में श्रेष्ठ नन्दन वन और ३०. वृक्षों में सुदर्शन नामक जम्बू वृक्ष विख्यात एवं यशस्वी है और उसी के नाम से यह द्वीप 'जम्बूद्वीप' कहलाता है। उसी प्रकार सभी व्रतों में श्रेष्ठ एवं उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत है।

३१. जिस प्रकार अश्वपति, गजपति, रथपति और नरपति विख्यात होते हैं। हयदल, गजदल, रथसेना और पदातिसेना से नरेन्द्र सुशोभित होता है, उसी प्रकार व्रताधिराज ब्रह्मचर्य भी सभी व्रतों का अधिपति है।

३२. जिस प्रकार महारथ पर आरुढ़ महाराजा (वासुदेव) शत्रु-सैन्य को नष्ट करता है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य का पालक महात्मा, कर्म-समूह को नष्ट करता है।

एक ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना करने वाले अनेक गुण अपने-आप आधीन हो जाते हैं। इसकी आराधना करने से शील, तप, विनय, संयम, क्षांति, गुप्ति, मुक्ति आदि सभी गुणों की आराधना हो जाती है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से इसलोक और परलोक में यश और कीर्ति व्याप्त हो जाती है। लोगों में प्रतीति होती है। इसलिए निश्चलता से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। साधु को चाहिए कि जीवनभर एवं मृत्युपर्यन्त सभी प्रकार से शुद्धतापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करे। इस प्रकार स्वयं भगवान् महावीर ने इस महाव्रत का महत्त्व बतलाया है।

महाव्रतों का मूल

तं च इमं -

पंच महव्वयसुव्वयमूलं, समणमणाइलसाहुसुचिण्णं।

वेरविरामणपज्जवसाणं, सव्वसमुद्दमहोदहितित्थं ॥ १ ॥

शब्दार्थ - तं - वह, इमं - यह, पंचमहव्यसुख्यमूलं - पांच महाव्रत रूप सुव्रतों का मूल, समणमणाइलसाहुसुचिण्णं - शुद्ध भाव वाले साधुओं द्वारा सम्यक् प्रकार से भावपूर्वक सेवन किया गया, वैरधिरामणपज्जवसाणं - वैरभावकी निवृत्ति और अन्त करने वाला, सव्वसमुद्धमहोदहितित्थं - सभी समुद्रों में बड़े ऐसे स्वयम्भूरमण समुद्र के समान दुस्तर-ऐसे संसार समुद्र से तिराने वाला तीर्थ।

भावार्थ - यह ब्रह्मचर्य व्रत, पांच महाव्रत रूपी सुव्रतों का मूल है। उत्तम आचार वाले शुद्ध स्वभावी संतों से सेवित है। वैर-विरोध की निवृत्ति करके शांति करने वाला है और सभी समुद्रों में अत्यन्त विशाल ऐसे स्वयंभूरमण महासमुद्र के समान जो संसार-समुद्र है, उसे पार करने के लिए ब्रह्मचर्य तीर्थ के समान है।

विवेचन - ब्रह्मचर्य का सम्यक् प्रकार से-नियमपूर्वक पालन करने वाले का पुद्गलानन्दीपन छूट जाता है। परिग्रह की लालसा का बड़ा कारण अब्रह्म है। जब स्त्री नहीं तो पुत्र-पौत्रादि भी नहीं, फिर धन की लालसा क्यों हो? वैर-विरोध और झगड़े का बड़ा कारण कनक और कामिनी (स्त्री और धन) होता है। ब्रह्मचारी के ये दोनों कारण नहीं रहते। अतएव वैर-विरोध का कारण भी नहीं रहता। ऐसे उत्तम ब्रह्मचारी के प्रभाव से दूसरों के वैर-विरोध भी नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मचारी की बलवान् आत्मा अपने आत्म बल से संसार-समुद्र को तिर कर मुक्त हो जाती है।

तित्थयरोहि सुदेसियमगं, णरयतिरिच्छविवज्जियमगं।

सव्वपवित्तिसुणिम्मियसारं, सिद्धिविमाणं अवंगुयदारं ॥ २ ॥

शब्दार्थ - तित्थयरोहि - तीर्थकरों से, सुदेसियमगं - उत्तम प्रकार से दिखाया हुआ मार्ग, णरयतिरिच्छविवज्जियमगं - नरक तथा तिर्यच गति के मार्ग को बन्द करने वाला, सव्वपवित्ति सुणिम्मियसारं - सभी पवित्र अनुष्ठानों को सारयुक्त करने वाला, सिद्धि विमाणं अवंगुयदारं - सिद्धि और वैमानिक गति के द्वार को खोलने वाला।

भावार्थ - तीर्थकर भगवतों ने ब्रह्मचर्य गुप्ति का उत्तम मार्ग बतलाया है। इस लोकोत्तम मार्ग के पथिक के नरक और तिर्यच गति के मार्ग रुक जाते हैं। इन दुर्गति के मार्गों को रोक कर जीवों को सुखी होने की उत्तम साधना ब्रह्मचर्य है। सभी प्रकार की पवित्र वस्तुओं में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ एवं सार रूप है। इसके पालक के लिए सिद्धगति और वैमानिक देवलोक के द्वार खुले रहते हैं।

देव-णरिद-णमंसियपूयं, सव्वजगुत्तममंगलमगं।

दुद्धरिसं गुणणायगमेक्कं, मोक्खपहस्स वडिंसगभूयं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ - देवणरिदणमंसियपूयं - देवों तथा नरेन्द्रों से नमस्कृत और पूजनीय, सव्वजगुत्तम-मंगलमगं - विश्व के सभी मंगल-मार्गों का प्रधान, दुद्धरिसं - किसी से पराभव नहीं पाने वाला, गुणणायगमेक्कं - अद्वितीय गुणों का एकमात्र नायक, मोक्खपहस्स - मोक्ष मार्ग का, वडिंसगभूयं - शिरोभूषण रूप।

भावार्थ - ब्रह्मचारी को देव और नरेन्द्र भी नमस्कार करते हैं, इतना ही नहीं देव और नरेन्द्र ब्रह्मचारी शुद्धात्मा की पूजा-सत्कार करते हैं। संसार के सभी प्रकार के मंगल-मार्गों में ब्रह्मचर्य उत्तमोत्तम मंगल-मार्ग है। विशुद्ध ब्रह्मचारी न तो किसी से दबता है और न कोई उसे डिगा सकता है। ब्रह्मचर्य महाव्रत अन्य सभी व्रतों और गुणों का एकमात्र नायक है और मोक्षमार्ग के लिए मस्तक के मुकुट के समान है।

ब्रह्मचर्य के घातक निमित्त

जेण सुद्धचरिएण भवइ सुबंभणो सुसमणो सुसाहू स इसी स मुणि स संजए स एव भिक्खू जो सुद्धं चरइ बंभचेरं। इमं च रइरागदोस-मोह-पवड्डणकरं किंमज्झपमाय दोसपासत्थ-सीलकरणं अब्भंगणाणि य तेल्लमज्जणाणी य अभिक्खणं कक्ख-सीस-कर-चरण-वयण-धोवण-संबाहण-गायकम्म-परिमद्धणाणुलेवण-चुण्णवास-धुवण-सरीर-परिमंडण-बाउसिय-कहसिय-भणिय-णट्टगीयवाइय-णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-पेच्छण-वेलंबगं जाणिय सिंगारागाराणि य अण्णाणि य एवमाइयाणि तवसंजम-बंभचेर-घाओवघाइयाइं अणुचरमाणेणं बंभचेरं वज्जियव्वाइं सव्वकालं।

शब्दार्थ - जेण सुद्धचरिएण - जिसके शुद्ध आसेवन करने से, भवइ - होता है, सुबंभणो - सच्चा ब्राह्मण, सुसमणो - यथार्थ तपस्वी, सुसाहू = सच्चा साधु, स इसी -वही ऋषि है, स मुणि - वही मुनि है, स संजए - वही संयत है, स एव भिक्खू - वही भिक्षु है, जो सुद्धं चरइ बंभचेरं - जो शुद्ध रीति से ब्रह्मचर्य का पालन करता है, इमं च - और इस, रइरागदोसमोहपवड्डणकरं - रति-विषय-राग, राग-स्नेह-राग, द्वेष और मोह को बढ़ाने वाला, किंमज्झपमायदोसपासत्थसीलकरणं - प्रमाद दोष और ज्ञानादि आचार से पृथक् करने वाला निस्सार, अब्भंगणाणि - घृत आदि की मालिश अथवा उबटन करना, तेलमज्जणाणि - तेल की मालिश कर स्नान करना, अभिक्खणं - बार-बार, कक्ख सीस-कर-चरण वयण - काँख-बगल शिर, हाथ, पांव और मुख को, धोवण - धोना, संबाहण - पगचम्पी करना, गायकम्म परिमद्धण - शरीर का मर्दन करना, अणुलेवण - चन्दन आदि का लेपकरना, चुण्णवास - सुगन्धित द्रव्यों से शरीर को सुवासित करना, धुवण - अगर आदि से धूप देना, सरीरपरिमंडण - शरीर को मण्डित-सुशोभित करना, बाउसिय - चारित्र को बकुश बनाने वाली क्रिया, कहसिय - हास्य करना, भणिय - विकारयुक्त बोलना, णट्ट - नृत्य करना, गीय - गीत गाना, वाइय - बाजा बजाना, णडणट्टग-नाच करने वाले नटों का खेल, जल्ल - रस्सी पर खेलने वाले, मल्ल - कुशती लड़ने वाले, पेच्छण - इन सब को देखना, वेलंबगं - विदूषक की हास्य-चेष्टाएं, जाणिय - और जो, सिंगारागाराणि - शृंगार-रस के स्थान हैं, अण्णाणि - अन्य, एवमाइयाणि - इसी प्रकार के, तवसंजमबंभ-चेरघाओवघाइयाइं - तप, संयम और ब्रह्मचर्य की घात व उपघात करने वाले, अणुचरमाणेणं -

पालन करने वाले को उपरोक्त बातें, बंधचरे - ब्रह्मचारी को, वज्रियव्वाङ् - वर्जना करना चाहिए, सव्यकालं - सदाकाल।

भावार्थ - ब्रह्मचर्य के शुद्धतापूर्वक पालन करने से ही सुब्राह्मण, सुश्रमण और सुसाधु होते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत का निर्दोष रीति से पालन करने वाला ही ऋषि है, मुनि है, संयत है और वही भिक्षु है। ब्रह्मचर्य महाव्रत के साधक को न तो इन्द्रियों के विषयों में रति (रुचि-आसक्ति) रखनी चाहिए न स्त्रियादि पर राग रखना चाहिए और न त्याग विरति आदि उत्तमगुणों तथा अमनोज्ञ वर्णादि पर द्वेष करना चाहिए, क्योंकि रति, राग और द्वेष से मोह की वृद्धि होती है। वैसा कार्य नहीं करना चाहिए जिसमें कोई सार नहीं हो। प्रमाद को त्याग कर अप्रमत्त बने और शय्यातरपिण्ड ग्रहण आदि शिथिलाचार को छोड़ कर शुद्धाचारी बने। सुखशीलियापन को अपना कर शरीर पर घृत, तैल आदि का मर्दन, अभ्यंग, उबटन और स्नानादि नहीं करे। काँख, मस्तक, हाथ, पांव और मुख को बार-बार धोना, पगचम्पी करना, शरीर का मर्दन करना, चन्दनादि का लेप करना, सुगन्धित चूर्णादि से शरीर को सुगन्धित करना, धूप से सुवासित करना, शरीर को अलंकृत एवं सुशोभित करना, नखकेशादि संवारना और चारित्र को बकुश (अचारित्र से मिश्रित) करना आदि दूषणों का त्याग करना चाहिए। हँसना-हँसाना, विकृत अथवा विकारोत्पादक वचन बोलना, गायन, वादन, नृत्य और नाटक करना आदि कार्य और नटों के खेल, रस्सी पर चढ़ कर किया जाने वाला खेल, मल्लों की लड़ाई और भाँड आदि विदूषकों के चोचले और इसी प्रकार के अन्य दृश्य एवं शब्द आदि देखना-सुनना ब्रह्मचारी के लिए वर्जित है। ये तप-संयम और ब्रह्मचर्य के लिए घातक एवं उपघातक हैं। ये शृंगार-रस के स्थान हैं। ब्रह्मचर्य के पालक को इन सभी दोषों का सदा के लिए त्याग करना चाहिए।

विवेचन - इस सूत्र में सूत्रकार महर्षि, ब्रह्मचर्य शुद्धि का उपदेश करते हुए कामवर्द्धक वासना जगाने वाले मोह-मद को उत्तेजित कर ब्रह्मचर्य का नाश करने वाले निमित्तों से बचने का उपदेश कर रहे हैं। जिस प्रकार धनवान् मनुष्य चोर-डाकुओं और जेबकतरो से सावधान रहता है। उसी प्रकार ब्रह्मचारी को भी इन विकारी दृश्यों, शब्दों, रसों, गन्धों और स्पर्शों से बचते ही रहना चाहिए। तभी ब्रह्मचर्य रूपी आत्म-धन सुरक्षित रहता है।

ब्राह्मण - जो ब्रह्मचर्य का शुद्धतापूर्वक पालन करे। सूत्रकार इसी को 'सुबंधगो' - उत्तम ब्राह्मण कहते हैं। जैसे सर्वत्यागी महाव्रतधारी साधु को भी ब्राह्मण विशेषण लगाया है और श्रावक को भी। सुब्राह्मण तो ब्रह्मचर्य का विशुद्ध एवं पूर्णरूप से पालक ही हो सकता है।

ब्रह्मचर्य रक्षक नियम

भावियव्वो भवइ य अंतरप्पा इमेहि तव-णियम-सील जोगेहि णिच्चकालं। किं ते? अण्हाणग-अदंतधावण-सेय-मल-जल्लधारणं मूणवयकेसलोए य खम-दम-

अचेलग-खुप्पिवास-लाघव-सीउसिण कट्टिसिज्जा-भूमिणिसिज्जा-परघरपवेस-लद्धावलद्ध-माण्णावमाण-णिंदण-दंसमसग-फास-णियम-तव-गुण-विणय-माइएहिं जहा से थिरतरगं होइ बंधचेरं। इमं च अबंधचेर-विरमण-परिरक्खणट्टयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभदं सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्ख-पावाणं विउसमणं।

शब्दार्थ - भावियव्यो - भावित, भवइ - होता है, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, इमेहिं - इन, तवणियमसीलजोगेहिं - तप, नियम और शील आदि गुणों के, णिच्चकालं - सदैव, किं ते - वे कौन-से हैं? अण्णाणग - स्नान नहीं करना, अदंतधावण - दातुन न करना, सेयमलजल्लधारणं - पसीना और मैल को धारण करना, मूणवय - मौन व्रत धारणा करना, केसलोए - केश-लोच करना, खम-दम-अचेलग - क्षमा, इन्द्रियों का निग्रह और वस्त्र रहित या अल्पवस्त्र रखना, खुप्पिवास - भूख-प्यास सहन करना, लाघव - उपधि से हल्कापन, सीउसिण - सर्दी और गर्मी, कट्टिसिज्जा - काष्ठ-शय्या, भूमिणिसिज्जा - भूमि-शयन; परघरपवेस - पराये घर में जाना, लद्धावलद्धमाण्णावमाण - लाभ और अलाभ में तथा मान या अपमान, णिंदण - निन्दा, दंसमसगफास - डाँस, मच्छर आदि का कष्ट सहना, णियम-तवगुण-विणयमाइएहिं - नियम, तप, गुण और विनय आदि से, जहा से थिरतरगं होइ बंधचेरं- जिससे उस व्रती का ब्रह्मचर्य अत्यन्त स्थिर हो, इमं च- और यह, अबंधचेर-विरमण-परिरक्खणट्टयाए- मैथुन से निवृत्ति रूप व्रत की रक्षा के लिए, पावयणं - प्रवचन, भगवया - भगवान् ने, सुकहियं - उत्तम प्रकार से कहा है, अत्तहियं - आत्मा के लिए हितकारी, पेच्चाभावियं - परलोक में शुभ-फलदायक, आगमेसिभदं - भविष्य में कल्याण का कारण, सुद्धं - शुद्ध, णेयाउयं - न्याययुक्त, अकुडिलं - कुटिलता-रहित, अणुत्तरं - प्रधान, सव्वदुक्ख-पावाणं - समस्त दुःख और पापों को, विउसमणं - शान्त करने वाले।

भावार्थ - जिन तप, नियम, शील और शुभयोग आदि गुणों का नित्य एवं निरन्तर सेवन करने से अन्तरात्मा पवित्र होती है, वे नियम कौन से हैं? स्नान नहीं करना, दांतों को धोकर चमकीले नहीं बनाना, स्वेद (पसीना) और पसीने से मिश्रित मैल को शरीर से पृथक् नहीं करना, मौन रहना (अनावश्यक नहीं बोलना) केशों को लोच करना, क्षमा करना, इन्द्रियों का दमन करना, निर्वस्त्र या अल्प-मूल्य के अल्प वस्त्र से रहना, भूख-प्यास सहन करना, अल्प उपकरणों से हल्का रहना, शीत और उष्ण का परीषह सहन करना, लकड़ी के पटिये पर सोना या भूमि पर ही शयन करना, भिक्षा के लिए पराये घरों में जाना, लाभ और अलाभ, मान और अपमान तथा निन्दा को समभाव से सहन करना, डाँस-मच्छर के परीषह को सहना, अभिग्रहादि नियम और अनशनादि तप, मूलोत्तर गुण और विनयादि गुणों को धारण करना। जिन गुणों के धारण करने से ब्रह्मचर्य स्थिर हो, उन सभी गुणों का सेवन करना

चाहिए। अब्रह्म त्याग व्रत की रक्षा के लिए भगवान् ने यह उत्तम प्रवचन कहा है। यह प्रवचन स्व-पर आत्मा के लिए हितकारी है। भवान्तर में शुभ-फल देने वाला है और भविष्य में कल्याणकारी है। शुद्ध है, न्याययुक्त है, अकुटिल (सरल) है, उत्तमोत्तम है और पापों का उपशमन करके समस्त दुःखों को दूर करने वाला है।

विवेचन - जब तक जीव में वेदमोहनीय कर्म का उदय है, तब तक वैसे निमित्त सुप्त मोह को जाग्रत कर उद्दीप्त कर सकते हैं। आत्मा में सुखशीलियापन की भावना उत्पन्न होती है, तब शरीर-संस्कार की रुचि होती है और तभी दबे हुए विकारी भावों के उठने का अवकाश रहता है। 'स्नानं दर्पकरं'-स्नान, कन्दर्प को जगाने वाला है। केश-विन्यास भी श्रृंगार है। शरीर एवं वस्त्रादि को सुशोभित करने से वेदमोहनीय कर्म में साधारण उदय को उत्तेजना मिलती है। जिस से ब्रह्मचर्य को क्षति पहुँचने की संभावना रहती है। आत्म (धर्म) भावना से ब्रह्मचर्य सुरक्षित रहकर पुष्ट होता है और उदय निष्फल होता है। परन्तु देह-भावना (विभूषा वृत्ति) व्रत को क्षति पहुँचाती है। इसीलिए परमोपकारी सूत्रकार भगवंत, शरीर-संस्कार की वृत्ति त्यागने का उपदेश देते हैं। इन नियमों का पालन करने से ब्रह्मचर्य स्थिर होता है, पुष्ट होता है और उत्तमोत्तम फल देता है।

ब्रह्मचर्य व्रत की पांच भावनाएं

प्रथम भावना-विविक्त-शयनासन

तस्स इमा पंच भावणाओ चउत्थं वयस्स होति अबंभचेरविरमण-परिरक्खणदुयाए ।
पढमं सयणासण-घर-दुवार-अंगण-आगास-गवक्ख-साल-अभिलोयण-पच्छवत्थुग-
पसाहणग-णहाणिगावगाससा अवगासा जे य वेसियाणं अच्छंति य जत्थ इत्थियाओ
अभिरक्खणं मोहदोस-रइराग-वड्डणीओ कहंति य कहाओ बहुविहाओ ते वि हु
वज्जणिज्जा इत्थिसंसत्त-संकिलिद्धा अण्णे वि य एवमाइ अवगासा ते हु वज्जणिज्जा ।
जत्थ मणोविब्भमो वा भंगो वा भंसणा (भसंगो) वा अट्टं रुद्धं य हुज्ज झाणं तं तं
वज्जेज्जवज्जभीरु अणाययणं अंतपंतवासी एवमसंसत्तवास-वसही समिइ-जोगेण
भाविओ भवइ अंतरप्पा, आरयमण-विरयगाम-धम्मे जिइंदिए बंभचेरगुत्ते ।

शब्दार्थ - तस्स - उस, इमा - ये, पंच भावणाओ - पांच भावनाएं, चउत्थं वयस्स - चतुर्थ व्रत की, होति - होती है, अबंभचेर-विरमण-परिरक्खणदुयाए - अब्रह्मचर्य से निवृत्ति रूप व्रत की रक्षा के लिए, पढमं - प्रथम, सयणासण - शय्या और आसन, घरदुवार - गृहद्वार, अंगण - आंगन, आगास-आकाश, गवक्ख - गवाक्ष, साल - शाला, अभिलोयण - अभिलोकन-बैठकर देखने का ऊँचा स्थान,

पच्छवत्थुग - पश्चाद् गृह-पीछे का घर, **पसाहणग** - प्रसाधन, **णहाणिगावगासा** - शरीर के मंडन और स्नान करने के स्थान, **अवगासा** - स्थानों पर, **जे** - जिन, **य** - और, **वेसियाणं** - वेश्याएँ, **अच्छंति** - बैठती हैं, **य** - और, **जत्थ** - जहाँ, **इत्थियाओ** - स्त्रियाँ, **अभिव्खणं** - बार-बार, **मोहदोसरइराग-वड्डुणीओ** - मोह, द्वेष, रति और राग को बढ़ाने वाली, **कहिंति** - कहती हैं, **कहाओ** - कथाएँ, **बहुविहाओ** - बहुत प्रकार की, **ते** - उनको, **वज्जणिज्जा** - त्याग करे, **इत्थिसंसत्तसंक्लिद्धा** - स्त्री सम्बन्ध से व्याप्त-संक्लिष्ट, **अण्णे वि य** - और दूसरे भी जो, **एवमाइ** - इस प्रकार के, **अवगासा** - स्थान, **ते** - हु, **वज्जणिज्जा** - वे भी वर्जनीय हैं, **जत्थ** - जहाँ, **मणोविब्भमो** - मन की भ्रांति, **वा** - अथवा, **भंगो** - सर्वथा भंग, **वा** - अथवा, **भंसगो** - देशतः भंग, **वा** - अथवा, **अटुंरुदं व** - आर्त्त और रौद्र, **हुज्ज झाणं** - ध्यान हो, **तं तं वज्जेज्जवज्जभीरु अणायतणं** - उस-उस अनायतन-योग्य स्थान का पाप-भीरु त्याग करे, **अंतपंतवासी** - अन्त-प्रान्त स्थान अर्थात् दोष-रहित स्थान में निवास करे, **एवमसंसत्त-वास-वसही-रामिइ-जोगेण** - इस प्रकार स्त्री आदि के संसर्ग से रहित स्थान में ठहरने रूप समिति के योग से, **भाविओ** - भावित, **भवइ** - होता है, **अंतरप्पा** - अन्तरात्मा, **आरयमण-विरय-गामधम्मे** - ब्रह्मचर्य में मर्यादा से आरक्त मन वाला तथा इन्द्रिय-लोलुपता से रहित, **जिइंदिए** - जितेन्द्रिय, **बंधचेरगुत्ते** - ब्रह्मचर्य से गुप्त।

भावार्थ - अब्रह्मचर्य रूप चौथे पाप की निवृत्ति रूप इस महाव्रत की रक्षा के लिए पाँच भावनाएँ हैं। इनमें प्रथम भावना यह है।

जिस स्थान पर स्त्रियों का संसर्ग हो, उस स्थान पर साधु सोए नहीं, आसन लगाकर बैठे नहीं। जिस घर के द्वार का आँगन, अवकाश-स्थान (खुली जगह-छत आदि) गवाक्ष (खिड़की-गोख आदि) शाला, अभिलोकन (दूरस्थ वस्तु देखने का) स्थान, पीछे का द्वार या पीछे का घर, शृंगार-गृह और स्नानघर आदि जहाँ स्त्रियाँ हो या दिखाई दे, उन स्थानों को वर्जित करे। जिस स्थान पर बैठकर स्त्रियाँ, मोह, द्वेष रहित और राग बढ़ाने वाली अनेक प्रकार की बातें करती हैं, वैसी कथा-कहानियों कहती हैं और जिन स्थानों पर वेश्याएँ बैठती हैं, उन स्थानों को वर्जित करें। वे स्थान स्त्रियों के संसर्ग से संक्लिष्ट हैं, दोषोत्पत्ति के कारण हैं।

ऐसे अन्य सभी स्थानों का साधु त्याग कर दे। जहाँ रहने से मन में भ्रांति उत्पन्न होकर ब्रह्मचर्य को क्षति युक्त करे, ब्रह्मचर्य देशतः या सर्वतः नष्ट होता हो, आर्त्त और रौद्र ध्यान उत्पन्न हो, उन सभी स्थानों का त्याग करे। ब्रह्मचर्य को नष्ट करने वाले पाप से डरने वाले साधु के लिए ये स्थान रहने के योग्य नहीं हैं। इसलिए साधु, अन्त-प्रान्त आवास (अन्त-इन्द्रियों के प्रतिकूल पर्ण-कुटि आदि, प्रान्त-शून्यगृह श्मशानादि ऐसे निर्दोष स्थान में रहे। इस प्रकार स्त्री और नपुंसक) के संसर्ग रहित स्थान में रहने रूप समिति के पालन से अन्तरात्मा पवित्र होती है। जो साधु ब्रह्मचर्य के निर्दोष पालन में तत्पर होकर इन्द्रियों के विषयों से वंचित रहता है, वह जितेन्द्रिय एवं ब्रह्मचर्य-गुप्त कहलाता है।

विवेचन - ब्रह्मचर्य व्रत की सुरक्षा के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है- 'विविक्त शयनासन' - स्त्री, नपुंसक और पशुओं से रहित एकान्त स्थान की। पुरुष के लिए मैथुन सेवन का प्रमुख साधन स्त्री है। अतएव सूत्रकार ने इस पाठ में पुरुष की अपेक्षा से स्त्रीयुक्त स्थान में रहने का निषेध किया है, किन्तु उपलक्षण से नपुंसक और पशु युक्त स्थान भी वर्जित समझना चाहिए। स्त्री की अपेक्षा यही पाठ, पुरुष नपुंसक और पशु युक्त स्थान निषिद्ध समझना चाहिए।

मनुष्यों में मैथुन संज्ञा, अन्य जीवों से अधिक मानी गई है और मैथुन मुख्यतः स्त्री-पुरुष-में होता है। वेदोदय के कारण एक दूसरे को देखते ही आकर्षित होते हैं, इसलिए सूत्रकार ने ब्रह्मचर्य रक्षा के लिए सर्वप्रथम स्त्रीयुक्त स्थान को वर्जित बताया है। यह ब्रह्मचर्य रक्षा की प्रथम वाङ् है। जो लोग स्त्री और पुरुष के विशेष सम्पर्क, अमर्यादित सह-निवास पर और सह व्यवसाय पर जोर देते हैं, वे चारित्रिक विशुद्धि की उपेक्षा करते हैं। उन्हें विशुद्ध दृष्टि से सोचना चाहिए।

द्वितीय भावना-स्त्री-कथा वर्जन

बिइयं णारीजणस्स मञ्जे ण कहियव्वा कहा विचित्ता विब्बोय-विलास-संपउत्ता हाससिंगार-लोइयकहव्व मोहजणणी ण आवाह-विवाह-वर-कहा विव इत्थीणं वा सुभग-दुभगकहा चउसट्ठिं य महिलागुणा ण वण्ण-देस-जाइ-कुल-रूव-णाम-णेवत्थ-परिजण-कहा इत्थियाणं अण्णा वि य एवमाइयाओ क्कहाओ सिंगार-कलुणाओ तवसंजमबंभचेर-घाओवघाइयाओ अणुचरमाणेणं बंभचेरं ण कहियव्वा ण सुणियव्वा ण चिंतियव्वा। एवं इत्थीकहविरइसमिइजोगेणं भाविओ भवइ अंतरप्पा आरयमण-विरयगामधम्मे जिइंदिए बंभचेर गुत्ते।

शब्दार्थ - बिइयं - द्वितीय, णारी जणस्स - स्त्रियों के, मञ्जे - बीच में, ण कहियव्वा - न कहनी चाहिए, कहा विचित्ता - विचित्र प्रकार की कथा, विब्बोय विलास संपउत्ता - विव्वोक-स्त्रियों की कामुक चेष्टा विलास-स्मित-कटाक्ष युक्त, हाससिंगार-लोइयकहव्व - हास्य और शृंगार-रस प्रधान लौकिक कथा की तरह, मोहजणणी - मोह उत्पन्न करने वाली, ण आवाह-विवण्ण वरकहाविव - द्विरागमन-गौना और विवाह की कथा भी न कहनी चाहिए, इत्थीणं वा सुभग-दुभग-कहा - स्त्रियों की सौभाग्य दुर्भाग्य की कथा, चउसट्ठियं महिलागुणा - स्त्रियों की चौसठ कलाएं, ण वण्ण-देस-जाइ-कुल-रूव णाम-णेवत्थ-परिजण कहा - स्त्रियों के वर्ण-रंग, रूप, देश, जाति, कुल, रूप - सौन्दर्य, नाम, नेपथ्य और परिजन सम्बन्धी कथाएं, अण्णा वि य एवमाइयाओ - अन्य भी इसी प्रकार की, क्कहाओ सिंगार कलुणाओ- शृंगार और करुणा से युक्त कथाएँ, तव-संजम-बंभचेर-घाओवघाइयाओ- तप, संयम और ब्रह्मचर्य की घात और उपघात करने वाली, अणुचरमाणेणं बंभचेरं - ब्रह्मचर्य के पालन

करने वाले को, ण कहियव्वा - न कहनी चाहिए, ण सुणियव्वा - न सुननी चाहिए, ण चिंतियव्वा - न चिंतन करनी चाहिए, एवं - इस प्रकार, इत्थी कहविरइसमिइजोगेणं - स्त्री कथा से विरति रूप समिति के योग से, भाविओ - भावित, भवइ - होती है, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, आरयमण-विरयगामधम्मे - मैथुन से निवृत्त और इन्द्रिय लोलुपता से रहित, जिइंदिए - जितेन्द्रिय, बंभचेर गुत्ते - ब्रह्मचर्य गुप्त।

भावार्थ - दूसरी भावना है-स्त्रियों के मध्य बैठकर विविध प्रकार की कथा-वार्ता नहीं कहना। स्त्रियों के विव्वोक (स्त्रियों की कामुक-चेष्टा) विलास (स्मित-कटाक्षादि) हास्य और शृंगार युक्त लौकिक कथा-कहानियाँ नहीं कहें। ऐसी कथाएँ मोह उत्पन्न करती हैं। विवाह और द्विरागमन तथा वरवधू सम्बन्धी रसीली बातें और स्त्रियों के सौभाग्य-दुर्भाग्य के वर्णन भी नहीं करना चाहिए। महिलाओं के काम-शास्त्र वर्णित चौसठ गुण, उनके वर्ण, देश, जाति, कुल, रूप, नाम, नेपथ्य (वेश-भूषा) और परिजन सम्बन्धी वर्णन भी नहीं करना चाहिए। स्त्रियों के शृंगार रस, करुणाजन्य विलाप आदि तथा इसी प्रकार की अन्य मोहोत्पादक कथा भी नहीं कहनी चाहिए। ऐसी कथाएँ तप, संयम और ब्रह्मचर्य की घात और उपघात करने वाली होती हैं। ऐसी कथाएँ ब्रह्मचर्य पालक को नहीं कहनी चाहिए और न किसी से सुननी ही चाहिए तथा मन में इस प्रकार का चिन्तन भी नहीं करना चाहिए। इस प्रकार स्त्री सम्बन्धी कथा से निवृत्त रहने रूप समिति का पालन करने से अन्तरात्मा पवित्र रहती है। इस प्रकार निर्दोषतापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालक साधु, इन्द्रियों के विषयों से विरत रहकर जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचर्य-गुप्त का धारक होता है।

विवेचन - पुरुष के लिए स्त्रियों का संसर्ग ब्रह्मचर्य के लिए घातक है-यह जान कर यदि कोई कहे कि सभा में धर्मोपदेश देने और धर्म-कथा कहने में क्या दोष है? इस विचारणा को भी अवकाश नहीं देने के लिए सूत्रकार कहते हैं कि केवल स्त्रियों की सभा में किसी भी प्रकार की कथा-वार्ता नहीं करनी चाहिए। धर्म-कथा के लिए भी स्त्रियों का संसर्ग नहीं होना चाहिए। पुरुषयुक्त स्त्रियों की सभा में धर्म-कथा हो सकती है, केवल स्त्रियों की सभा में नहीं।

स्त्रियों की सभा में तो साधु का उनसे साक्षात्कार होता है, इसलिए उन्हें देखने-निरखने और कदाचित् बोलने का प्रसंग आ सकता है, किन्तु स्त्रियों से दूर-परोक्ष रह कर भी स्त्रियों की काम-चेष्टा, हास्य विलास, रूप-सौंदर्यादि का वर्णन और चिंतन भी नहीं करना चाहिए। वर्णन और चिंतन से अनुराग उत्पन्न होता है और यह अनुराग ही ब्रह्मचर्य के लिए हानिकारक बन सकता है। जब स्त्रियों से दूर रहकर, स्त्रीकथा एवं चिन्तन निषिद्ध है तब साक्षात् संसर्ग की तो बात ही कहाँ रही? सूत्रकार ने स्त्री सम्बन्धी उसी वर्णन और चिंतन का निषेध किया है-जो रागवर्द्धक-मोह को जगाने वाला हो! वैराग्य-वर्द्धक, मोह-शामक वर्णन-चिंतन का निषेध नहीं है, क्योंकि यह ब्रह्मचर्य-रक्षक है।

महिलाओं के ६४ गुण - टीकाकार ने आलिंगनादि आठ गुण और उन आठ में प्रत्येक के

आठ-आठ भेद, इस प्रकार चौसठ गुण बतलाये। यथा - 'चतुःषष्टिश्च महिला-गुणाः आलिङ्गना दीनामष्टानां कर्मणां प्रत्येकमष्टाष्टभेदत्वेन चतुष्षष्टिर्जायते।' इसके बाद लिखा है - 'गीतनृत्योचित्यादयोऽपि नामतः चतुःषष्टिभेदा अपि संति।' ये गीत-नृत्यादि चौसठ कलाएँ हैं। जिनका उल्लेख पांचवें आस्रवद्वार में किया गया है। पूज्य श्री हस्तीमल जी म. सा. ने अपने प्रश्नव्याकरण के परिशिष्ट में इन चौसठ कलाओं को ही 'महिलागुण' नाम से दिया है।

स्त्रियों की देशकथा - जैसे-कश्मीर, लाट आदि देश की स्त्रियाँ बहुत सुन्दर, मृदुभाषिणी, रतिनिपुण और उन्नत उरोजवाली होती हैं। यथा - "लाटदेशीयाः कोमलवचना रतिनिपुणाः सुस्तन्यो भवति।"

जाति कथा - उन ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति की स्त्रियों को धिक्कार है कि जो विधवा होने पर जीवनभर मृतक के सम्मान निरानंद रहती हैं। यदि वे अपनी जाति की रीति के विपरीत थोड़ा भी कुछ करती हैं, तो निन्दित एवं बहिष्कृत हो जाती हैं। इसके विपरीत शूद्र जाति की स्त्रियाँ धन्य है कि जो लाख पति वाली होकर भी निन्दित नहीं होतीं। उन्हें न तो वैधव्य-दुःख होता है और न एक पति पर ही आश्रित रहना पड़ता है। यथा - 'धिग् ब्राह्मणी विधवा या, जीवन्ती मृता इव धन्ये मन्ये जने शूद्रा पतिलक्ष्येऽप्य-निन्दिता।'

कुलकथा - चौलुक्यादि क्षत्रिय कुल की स्त्रियाँ बड़ी साहसी होती हैं। ये पति के मरने पर प्रेम-विहीन हो, जीवित ही अपने पति के साथ अग्नि में जलकर मर जाती हैं। यथा - "अहो चौलुक्य-पुत्रीणां साहसो जगतोऽधिकं। पत्युर्मुत्यौ विशंत्यग्नौ या प्रेमरहिता अपि।"

रूपकथा - अमुक स्त्री चन्द्रमुखी है। अमुक की आँखें हिरणी के समान आकर्षक हैं। गौरवर्णी होकर भी लम्बोतरे मुंह वाली युवती से तो लावण्यवती श्यामा अति मोहक होती है, आदि। कहा है कि - 'चन्द्रवक्त्रा सरोजाक्षी, सद्गीःपीनघनस्तनी। किं लाटीनामतः साऽस्य, देवानामपि दुर्लभा।' अर्थात् लाट-देशीय महिलाएँ चन्द्रवदनी, कमलनयनी, मधुरभाषिणी और पुष्ट एवं उन्नत स्तन वाली होती हैं। ऐसी स्त्रियाँ किसे नहीं भाएंगी? वे तो देवों के लिए भी दुर्लभ होती हैं।

नाम-कथा - अमुक युवती का नाम-'वसंतसेना' वास्तव में गुण-निष्पन्न है। उसकी बहिन 'प्रियदर्शना' भी नयनाभिराम है। किन्तु अमुक का 'मोहिनी' नाम तो निरर्थक ही है। जिसे देखते ही घृणा होती है।

नेपथ्य-कथा - स्त्रियों की वेश-भूषा का वर्णन करना और कहना कि - अमुक प्रकार का वेश अच्छा है, शोभनीय है और अमुक पहनावा खराब है, भद्दा है। घूँघट निकालना और पर्दे में रहना बुरा है। खुले मुंह और चुस्त वस्त्र अच्छे हैं आदि। टीकाकार ने इस स्थान पर - "धिग्नारीरौदीच्या बहुवसनाच्छादितांगलतिकत्वात् यद्यौवनं न यूनां चक्षुर्मोदाय नो भवति" - उत्तर दिशा की स्त्रियों को धिक्कार है जो अनेक वस्त्रों में आच्छादित रहती हैं। इस प्रकार पूर्णरूप से ढकी हुई रहने से उनका यौवन और सौंदर्य युवकों की आँखों को आनन्दित नहीं कर सकता।

परिजन-कथा - अमुक स्त्री दासी-सेविका होते हुए भी वह और उसकी पुत्रियाँ और परिवार बड़ा सुन्दर, मोहक, चतुर, स्नेहशील और आकर्षक है। व्यवहार कुशल हैं। यथा - "चेटिका परिवारोऽपि, तस्याः कान्तो विचक्षणः भावज्ञः स्नेहवान् दक्षो, विनीतः सुकुलस्तथा।"

तृतीय भावना—स्त्रियों के रूप-दर्शन का त्याग

तइयं णारीणं हसिय-भणियं चेडिय-विपेक्खिय-गइ-विलास-कीलियं-विब्बोइय-णट्ट-गीय-वाइय-सरीर-संठाण-वण्ण-कर-चरण-णयण-लावण्ण-रूव-जोव्वण-पयोहरा-धर-वत्थालंकार-भूसणाणि य गुज्झोवगासियाइं अण्णाणि य एवमाइयाइं तव संजम बंभचेरघाओवघाइयाइं अणुचर-माणेणं बंभचेरं ण चक्खुसा ण मणसा ण वयसा पत्थेयव्वाइं पावकम्माइयं एवं इत्थीरूवविरइ-समिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा आरयमण-विरयगामधम्मे जिइंदिए बंभचेरगुत्ते।

शब्दार्थ - तइयं - तृतीय, णारीणं - स्त्रियों के, हसिय-भणियं - हास्य और विकारयुक्त भाषण, चेडिय - चेष्टा, विपेक्खिय - विप्रेक्षण-कटाक्ष, गइ - गति-चाल, विलास-कीलियं - विलास और क्रीड़ा, विब्बोइय - कामोत्पादक शृंगार चेष्टा, णट्ट - नाच, गीय - गीत, वाइय - बाजा बजाना, सरীরसंठाण - शरीर का गठन, वण्ण - वर्ण, करचरणणयण - हाथ, पाँव और आँखों का, लावण्ण-रूव-जोव्वण - लावण्य रूप और यौवन, पयोहराधर - स्तन, अधर, वत्थालंकार-भूसणाणि - वस्त्र, अलंकार और शरीर का मण्डन, य - और, गुज्झोवगासियाइं - गुह्य एवं लज्जनीय अंगों को, अण्णाणि य एवमाइयाइं - इसी प्रकार के अन्य, तवसंजमबंभचेर-घाओवघाइयाइं - तप, संयम और ब्रह्मचर्य की घात और उपघात करने वाली, अणुचरमाणेणं बंभचेरं - ब्रह्मचर्य पालक को, ण चक्खुसा ण मणसा ण वयसा - आँखों से न देखे, मन से न सोचे और वचनों से न बोले, ण पत्थेयव्वाइं पावकम्माइं - पापयुक्त कर्मों की प्रार्थना-इच्छा भी नहीं करे, एवं - इस प्रकार, इत्थी-रूव-विरइ-समिइजोगेण - स्त्रियों के रूप दर्शन की विरति रूप समिति के योग से, भाविओ - भावित, भवइ - होती है, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, आरयमण विरयगामधम्मे - मैथुन से निवृत्त और इन्द्रिय लोलपुता से रहित, जिइंदिए - जितेन्द्रिय, बंभचेरगुत्ते - ब्रह्मचर्य गुप्त।

भावार्थ - तीसरा भावना रूपदर्शन-वर्जन है। ब्रह्मचारी पुरुष स्त्रियों की हास्य-मुद्रा, रागवर्द्धक वचन, विकारोत्पादक-चेष्टा, कटाक्षयुक्त दृष्टि, चाल, विलास (हावभाव) क्रीड़ा, कामोत्पादक शृंगारिक चेष्टाएँ, नाच, गीत, वाद्य, शरीर का गठन एवं निखार, वर्ण (रंग) हाथ, पाँव, आँखें, लावण्य, रूप, यौवन, पयोधर (स्तन), ओष्ठ, वस्त्र, अलंकार और आभूषण आदि से की हुई शरीर की शोभा और जंघा आदि गुप्त अंग तथा इसी प्रकार के अन्य दृश्य नहीं देखे। इन्हें देखने की चेष्टा, तप, संयम और ब्रह्मचर्य का घात एवं उपघात करने वाली है और पापकर्म युक्त है। ब्रह्मचर्य के पालक को स्त्रियों के

रूप आदि का मन से भी चिंतन नहीं करना चाहिए, न आँखों से देखना चाहिए और न वचन से रूप आदि का वर्णन करना चाहिए। इस प्रकार स्त्रियों के रूप-दर्शन त्याग रूप समिति का पालन करने से अन्तरात्मा प्रभावित होती है। वह साधु मैथुन से निवृत्त एवं इन्द्रिय-लोलुपता से रहित होकर जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचर्य-गुप्ति का धारक होता है।

विवेचन - स्त्रियों के सौंदर्य का निरीक्षण वर्णन और चिंतन भी ब्रह्मचर्य का घातक होता है। रूप-निरीक्षण मानसिक विकास को बढ़ा कर ब्रह्मचर्य नष्ट कर देता है। अतएव रूप-दर्शन का त्याग अत्यावश्यक है। यह भावना मुख्यतः ब्रह्मचर्य की चौथी और गौणरूप से दूसरी और पांचवीं बाड़ का विधान करती है।

चतुर्थ भावना—पूर्वभोग-चिंतन त्याग

चउत्थं पुव्वरय-पुव्व-कीलिय-पुव्व-संगंथगंथ-संथुया जे ये आवाह-विवाह-चोल्लगेसु य तिहिसु जण्णेसु उस्सवेसु य सिंगारागार-चारुवेसाहिं हावभावपललिय-विक्खेव-विलास-सालिणीहिं अणुकूल-पेम्मिगाहिं सद्धिं अणुभूया सयणसंपओगा उउसुहवरकुसुम-सुरभि-चंदण-सुगंधिवर वास-धूव-सुहफरिस-वत्थ-भूसण-गुणोववेया रमणिज्जा उज्जगेय-पउर-णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्टिग-वेलंबग-कहग-पव्वग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइत्ततुंब-विणिय-ताला-यर-पकरणाणि य बहूणि महुरसरगीय-सुस्सराइं अण्णाणि य एवमाइयाणि तवसंज्जेबंभचेर-घाओवघाइयाइं अणुचरमाणेणं बंभचेरं णं ताइं समणेण लब्भा दट्टं ण कहेउं ण वि सुमरिउं जे एवं पुव्वरयं-पुव्वकीलिय-विरइ-समिइ-जोगेण भाविओ भवइ अंतरप्या आरयमण-विरयगामधम्मे जिइंदिए बंभचेरगुत्ते ।

शब्दार्थ - चउत्थं - चतुर्थ, पुव्वरय - पहले भोगे हुए विषय-भोग, पुव्वकीलिय - पूर्व क्रीडित, पुव्वसंगंथ - गृहस्थावस्था के सम्बन्ध, गंथसंथुया - पूर्व के परिचित, जे ये - जो ये लोग, आवाह विवाह-चोल्लगेसु - द्विरागमन-गौना-विवाह, चूड़ा-कर्म-प्रथम मुण्डन प्रसंग में, तिहिसु जण्णेसु उस्सवेसु य - पर्वतिथियों, यज्ञों नागादि पूजाओं और उत्सवों में, सिंगारागार-चारुवेसाहिं - शृंगार के घर के समान सुन्दर वेष वाली, हावभावपललिय-विक्खेव-विलास-सालिणीहिं - हाव-भाव, ललित, विक्षेप और विलास से सुशोभित, अणुकूल-पेम्मिगाहिं - अनुकूल प्रेमिकाओं के, सद्धिं - साथ, अणुभूया सयणसंपओगा - अनुभव किये हुए शयन आदि विविध काम-शास्त्रोक्त प्रयोग, उउसुहवरकुसुम - ऋतुओं में सुखदायक फूल, सुरभि - सुगन्धित, चंदण - चंदन, सुगंधिवरवास - श्रेष्ठ सुगन्ध वाले सुवास, धूव - धूप, सुहफरिस वत्थ - सुखद स्पर्श वाले वस्त्र, भूसण - भूषण, गुणोववेया - गुणों से युक्त,

रमणिज्जा - रमणीय, उज्जगेय-पउर-णडणडुग - आतोद्य-वाद्य ध्वनि, गान, बहुत-से नट तथा नर्तक, जल्ल - रस्सी पर खेलने वाले, मल्ल - कुशती करने वाले, मुट्टिग - मुष्टि से प्रहार करने वालों का दंगल, वेत्तंबग-कहग - विदूषकों का हास्य तथा उनके बोलने का ढंग, पव्वग - प्लवक-तैराक, लासग-रास-लीला, आइक्खग - शुभाशुभ कहने वाले, लंख - लम्बे बांस पर खेलने वाले, मंख - चित्रमय पाटिया लेकर फिरने वाले भिक्षुक, तूणइल्ल - तूण नामक वाद्य बजाने वाले, तुंबवीणिय - वीणा बजाने वाला, तालायरपकरणाणि - तालचर आदि की क्रियाएँ, य - और, बहुणि महरसरगीयसुस्सराइं - बहुत-से मधुर ध्वनि वाले गायकों में गीत और सुन्दर स्वर, अण्णाणि य एवमाइयाणि - और इसी प्रकार के अन्य, तवसंजमेबंभचेरघाओवघाइयाइं - तप, संयम और ब्रह्मचर्य की घात और उपघात करने वाले, अणुचरमाणेणं बंभचेरं - ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, ण ताइं समणेण लब्भा ददुं - उस साधु को कामोद्दीपन करने वाले वे सभी पदार्थ नहीं देखना, ण कहेउं - वर्णन नहीं करना, ण वि सुमरिउं - स्मरण भी नहीं करना चाहिए, एवं - इस प्रकार, पुव्वरयं-पुव्वकीलिय-विरइ-समिइ-जोगेणं - पूर्ववत्, पूर्व क्रीडित-स्मरण विरति रूप समिति के योग से, भाविओ - भावित, भवइ - होता है, अंतरप्पा-अन्तरात्मा, आरयमणविरयगामधम्म - मैथुन से निवृत्त और इन्द्रिय लोलुपता से रहित, जिइंदिए - जितेन्द्रिय, बंभचेरगुत्ते - ब्रह्मचर्य से गुप्त।

भावार्थ - चौथी भावना 'भोगस्मृति-विवर्जन' है। गृहस्थवास में रहे हुए स्त्री के साथ भोगे हुए कामभोग और की हुई क्रीड़ा तथा साली-साराहेली आदि के साथ हुए मोहक सम्बन्धों और स्त्री-पुत्रादि के स्नेहादि का स्मरण-चिन्तन नहीं करे। वैवाहिक प्रसंग, पत्नी का द्विरागमन, पुत्र का चूड़ाकर्म (मुण्डन) अन्न प्रासनादि प्रसंगों को भी स्मरण नहीं करे। स्त्रियों के साथ मदनत्रयोदशी या वसंतोत्सवादि पर की हुई क्रीड़ा अथवा नाग आदि के यज्ञ और इन्द्र महोत्सवादि के समय स्त्रियों के विशिष्ट शृंगार एवं उत्तम परिवेग, हाव-भाव, ललित-मोहक चेष्टाएँ, कटाक्ष, विलास आदि से सुशोभित, अपने अनुकूल प्रेमिकाओं के साथ किये हुए शयनादि भोगों का स्मरण नहीं करे।

ऋतुओं के सुगन्धित एवं सुखदायक पुष्पों, सुगन्धित द्रव्यों, चन्दन इत्रादि और धूप, सुखद स्पर्श, वस्त्र, आभूषण आदि गुणों से युक्त, रमणीय वाद्य, गीत, नटों का नाटक और नृत्य, रस्से पर किया जाता हुआ खेल, मल्लों की कुशती, मुष्टियुद्ध, विदूषकों की भांड-चेष्टाएँ, तैराकी के दृश्य, रासलीला, शृंगार-रस युक्त कहानियाँ, बांस के अग्रभाग पर किये जाने वाले खेल, चित्र-फलक दिखाकर किया जाने वाला मनोरंजन, तूण नामक बाजा, वीणावाद्य, तालबद्ध नृत्य और इसी प्रकार के अन्य बहुत-से मधुर स्वर के गायन आदि का स्मरण नहीं करे। इनके स्मरण से तप-संयम और ब्रह्मचर्य का घातोपघात होता है। ब्रह्मचर्य के पालक साधु को वैसे दृश्य भी नहीं देखना चाहिए, न वैसे कथा-वार्ता करनी चाहिए और न मोहवर्द्धक बातों का स्मरण ही करना चाहिए। इस प्रकार पूर्वावस्था के काम-भोगों का स्मरण नहीं करने रूप समिति का पालन करने से अन्तरात्मा प्रभावित होती है। ऐसा साधक इन्द्रियों के विकारों से रहित, जितेन्द्रिय एवं ब्रह्मचर्य गुप्ति का धारक होता है।

विवेचन - गृहस्थाश्रम में भोगे हुए काम-भोगों का स्मरण नहीं करने रूप इस चौथी भावना का मुख्य सम्बन्ध ब्रह्मचर्य की छठी वाड़ से है।

पंचम भावना-स्निग्ध सरस भोजन-त्याग

पंचमगं आहार-पणीय-णिद्ध-भोयण-विवज्जए संजए सुसाहू ववगय-खीर-दहि सप्पि-णवणीय-तेल्ल-गुल-खंड-मच्छंडिग-महु-मज्ज-मंस-खज्जग-विगइ-परिचिय-कयाहारे ण दप्पणं ण बहुसो ण णिइगं ण सायसूपाहियं ण खद्धं तहा भोत्तव्वं जहा से जायामायाय भवइ, ण य भवइ विब्भमो ण भंसणा य धम्मस्स। एवं पणीयाहार-विरइ-समिइ-जोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा आरयमण-विरयगामधम्मे जिइंदिए बंभचेरगुत्ते।

शब्दार्थ - पंचमगं - पांचवीं, आहार-पणीय-णिद्ध-भोयण-विवज्जए - प्रणीत भोजन सरस आहार और स्निग्ध भोजन का परिहार करने वाला, संजए - संयमी, सुसाहू - सुसाधु, ववगय - दूर हुआ, खीर - दूध, दहि - दही, सप्पि - घी, णवणीय - नवनीत-मक्खन, तेल्ल - तेल, गुल - गुड़, खंड - खाँड, मच्छंडिग - मिश्री, महु - मधु, मज्ज - मद्य, मंस - मांस, खज्जग - खाँड से लिप्त पकवान, विगइ - शरीर में विकार उत्पन्न करने वाला, परिचिय कयाहारे - त्याग करे, ण दप्पणं - दर्प कारक आहार न करे, ण बहुसो - बहुत बार नहीं खावे, ण णिइगं- नित्य सरस आहार न करे, ण सायसूपाहियं- न दाल और शाक की अधिकता वाला, ण खद्धं - और अधिक भी-नहीं, तहा भोत्तव्वं - उतना खाना चाहिए, जहा - जिससे, जायामायाय - संयम-यात्रा का निर्वाह, भवइ - हो जाय, ण य भवइ विब्भमो- विभ्रम-मन की चंचलता नहीं हो, ण भंसणा य धम्मस्स - ब्रह्मचर्य-धर्म का नाश भी नहीं हो, एवं - इस प्रकार, पणीयाहार-विरइसमिइ-जोगेण - प्रणीताहार विरति रूप समिति के योग से युक्त, भाविओ- भावित, भवइ - होती है, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, आरयमण-विरयगाम-धम्मे - मैथुन से निवृत्ति और इन्द्रिय-लोलुपता से रहित, जिइंदिए - जितेन्द्रिय, बंभचेरगुत्ते - ब्रह्मचर्य से गुप्त।

भावार्थ - पांचवीं भावना प्रणीत-सरस आहार का त्याग करना है। जो आहार घृतादि स्निग्ध पदार्थों से पूर्ण हो, जिसमें रस टपकता हो, ऐसे विकारवर्द्धक आहार का साधु को त्याग करना चाहिए। खीर, दही, दूध, मक्खन, तेल, गुड़, शक्कर, मिश्री, मधु, मद्य, मांस और रस पिलाये हुए खाजे आदि मिष्टान्न का आहार करने से शरीर में विकार उत्पन्न होता है। इसलिए ऐसे प्रणीत रस का त्याग करना चाहिए। जिस आहार में खाने से दर्प-विकार उत्पन्न हो और वृद्धि हो, उसका नित्य सेवन नहीं करे, न

दिन में ही अधिक बार भोजन करे तथा शाक दाल का भी अधिक सेवन नहीं करे, न प्रमाण से अधिक खावे। साधु उतना ही भोजन करे, जितने से उसकी संयम-यात्रा का निर्वाह हो, चित्त में विभ्रम नहीं हो और धर्म से भ्रष्ट भी नहीं हो। सरस आहार के त्याग रूप इस समिति का पालन करने से साधक की अन्तरात्मा प्रभावित होती है। वह मैथुन-विरत मुनि इन्द्रिय-जन्य विकारों से रहित जितेन्द्रिय होकर ब्रह्मचर्यगुप्ति का पालक होता है।

विवेचन - खान-पान का शरीर पर प्रभाव होता है। पौष्टिक एवं विकार-वर्द्धक आहार से इन्द्रियाँ सशक्त होती हैं और विकार उत्पन्न होता है। यह विकार ब्रह्मचर्य का घातक बन जाता है। इसलिए ब्रह्मचारी को पौष्टिक आहार का त्याग करना आवश्यक है। यह प्रभावना मुख्यतः सातवीं वाड़ से सम्बन्ध रखती है। किन्तु अतिमात्रा में आहार करने रूप आठवीं वाड़ तथा उपलक्षण से नौवीं वाड़ से भी सम्बन्धित है, क्योंकि इस भावना का भाव शरीर पोषण त्याग से है। नौवीं वाड़ शरीर की शोभा बढ़ाने पर प्रतिबन्ध लगाती है। तात्पर्य यहाँ की ब्रह्मचर्य की पाँच भावनाओं में नौ वाड़ का समावेश हो जाता है।

उपसंहार

एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहिं पंचहिं वि कारणेहिं मण-वयण-त्थाय-परिरक्खिण्हिं णिच्चं आमरणंतं च एसो जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया अणासवो अकलुसो अच्छिदो अपरिस्सावी असंकिलिदो सव्वजिणमणुण्णाओ।

शब्दार्थ - एवमिणं - यह, संवरस्स - संवर, दारं - द्वार, सम्मं - भली-भांति, संवरियं - पालन करना, होइ - होता है, सुप्पणिहियं - सुप्रणिहित-सुरक्षित, इमेहिं - इन, पंचहिं - पाँच, कारणेहिं - कारणों से, मण-वयण-काय-परिरक्खिण्हिं - मन, वचन और काया द्वारा रक्षण करना, णिच्चं - सदैव, आमरणंतं - मरण पर्यंत, एस जोगो - इस व्रत का, णेयव्वो - पालन करना, धिइमया-धैर्य-सम्पन्न, मइमया - बुद्धिमान्, अणासवो - अनाश्रवक, अकलुसो - कलुषता-रहित, अच्छिदो - छिद्र-रहित, अपरिस्सावी - कर्मों के प्रवेश से रहित, असंकिलिदो - संक्लेश-रहित, सव्व-जिणमणुण्णाओ - सभी जिनेश्वरों द्वारा आज्ञापित।

भावार्थ - इस प्रकार पाँच भावनाओं से युक्त इस संवरद्वार का सम्यक् रूप से पालन करने से महाव्रत सुरक्षित रहता है। इसलिए धैर्य सम्पन्न, बुद्धिमान् साधु को चाहिए कि मन, वचन और काया से इस चौथे महाव्रत की रक्षा करता हुआ, इन पाँच भावनाओं का जीवनपर्यन्त पालन करता रहे। यह महाव्रत, आस्रव का निरोधक, कलुषित भावों से रहित शुभ भावों से युक्त, छिद्र-रहित, कर्मों के

आगमन का अवरोधक तथा संक्लेश से रहित है। यह भूत, भविष्य और वर्तमान के सभी जिनेश्वरों भगवंतों द्वारा आज्ञापित-उपदिष्ट है।

एवं चउत्थं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं आराहियं आणाए अणुपालियं भवइ। एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं। त्तिबेमि ॥

चउत्थं संवरदारं सम्मत्तं

शब्दार्थ - एवं - इस प्रकार, चउत्थं - चतुर्थ, संवरदारं - संवरद्वार, फासियं - स्पृष्ट, पालियं - पालित, सोहियं - शोभित, तीरियं - तारित, किट्टियं - कीर्तित, आराहियं - आराधित, भवइ - होता है, एवं - इस प्रकार, णायमुणिणा भगवया - ज्ञातृकुलोत्पन्न भगवान् महावीर स्वामी ने, पण्णवियं - कहा है, परूवियं - प्ररूपणा की, पसिद्धं - प्रसिद्ध, सिद्धं - सिद्ध, सिद्धवरसासणमिणं - अपने कार्य को सिद्ध करने वाले तीर्थंकर भगवान् की प्रधान आज्ञा, आघवियं - सम्यक् प्ररूपणा, सुदेसियं - भली प्रकार उपदेशित, पसत्थं - प्रशस्त, चउत्थं - चतुर्थ, संवरदारं - संवरद्वार, सम्मत्तं - समाप्त हुआ, त्तिबेमि - ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ - इस प्रकार इस चतुर्थ संवरद्वार का स्पर्शन, पालन एवं शोभन होता है, पार पहुँचाया जाता है, कीर्तित एवं आराधित होता है और जिनेश्वर की आज्ञा के अनुसार अनुपालित होता है। इस प्रकार ज्ञातृ-कुलोत्पन्न भगवान् महावीर स्वामी ने कहा है, प्ररूपित किया है। यह मार्ग विश्व में प्रसिद्ध है, प्रमाणों से सिद्ध है। समस्त प्रयोजन सिद्ध करने वाले ऐसे तीर्थंकर भगवंत की यह प्रधान आज्ञा है। भगवान् द्वारा प्ररूपित है, उपदेशित है एवं प्रशस्त है। यह चतुर्थ संवरद्वार पूर्ण हुआ-ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ ब्रह्मचर्य नामक चतुर्थ संवरद्वार समाप्त ॥

परिग्रहत्याग नामक पंचम संवरद्वार

हेय-ज्ञेय और उपादेय के तेतीस बोल

जंबू! अपरिग्रहसंबुडे य समणे आरंभ-परिग्रहाओ विरए, विरए कोह-माण-माया-लोहा। एगे असंजमे, दो चेव रागदोसा, तिण्णिण य दंड-गारवा य गुत्तीओ तिण्णिण-तिण्णिण य विराहणाओ, चत्तारि कसाया झाण-सण्णा-विकहा तथा य हुंति चउरो, पंच य किरियाओ समिइ-इंदिय-महव्वयाइं च, छज्जीवणिकाया, छच्च लेसाओ, सत्त भया, अट्ट य मया, णव चेव य बंधचेर-वयगुत्ती, दसप्पगारे य समणधम्मए, एगारस य उवासगाणं, बारस य भिक्खुपडिमा, तेरस किरियाठाणा य चउहस भूयगामा, पण्णरस परमाहम्मिया, गाहा सोलसया, सत्तरस असंजमे, अट्टारस अबंधे, एगुणवीसइ णायज्झयणा, वीसं असमाहिट्टाणा।

शब्दार्थ - जंबू - हे जंबू!, अपरिग्रहसंबुडे - मूर्च्छा-रहित और इन्द्रिय तथा कषाय के संवरण वाला, समणे - श्रमण, आरंभपरिग्रहाओ - आरम्भ और परिग्रह से, विरए - निवृत्त, कोह-माण-माया-लोहा - क्रोध, मान, माया और लोभ से, एगे - एक, असंजमे - असंयम, दो चेव रागदोसा - राग और द्वेष रूप दो बन्ध, तिण्णिण य दंडगारवा - तीन दण्ड और तीन गारव, गुत्तीओ तिण्णिण - तीन गुप्तियाँ, तिण्णिण य विराहणाओ - तीन विराधनाएँ, चत्तारि कसाया - चार कषाय, झाणसण्णा - ध्यान, संज्ञा, विकहा तथा य हुंति चउरो - और ऐसे ही चार विकथाएँ, पंच य किरियाओ - पांच क्रियाएँ, समिइइंदिय महव्वयाइं - समितियाँ, इन्द्रिँ और महाव्रत भी पांच हैं, य - और, छज्जीवणिकाया - छह जीवनिकाय, छच्च लेसाओ - छह लेश्याएँ, सत्त भया - सात भय, अट्ट य मया - आठ मद-स्थान, णव चेव य बंधचेरवयगुत्ती - ब्रह्मचर्य व्रत की नौ गुप्तियाँ, दसप्पगारे य समणधम्मए - दस प्रकार का श्रमण-धर्म, एगारस य उवासगाणं - श्रावकों की ग्यारह पडिमा, बारस य भिक्खुपडिमा - साधु की बारह पडिमा, तेरस किरिया ठाणा - क्रिया स्थान तेरह, चउहस भूयगामा - जीवों के चौदह भेद, पण्णरस परमाहम्मिया - परमाधार्मिक पन्द्रह, गाहासोलसया - सोलह गाथा, सत्तरस असंजमे - सतरह प्रकार का असंयम, अट्टारस अबंधे - अठारह प्रकार का अब्रह्मचर्य, एगुणवीसइ णायज्झयणा - ज्ञाताधर्मकथा सूत्र के उन्तीस अध्ययन, वीसं असमाहिट्टाणा - असमाधि स्थान बीस।

भावार्थ - गणधर सुधर्मा स्वामीजी महाराज कहते हैं कि हे जंबू! श्रमण वही है जो परिग्रह से रहित और इन्द्रियों के विषयों तथा कषाय से वंचित हो। आरम्भ और परिग्रह तथा क्रोध, मान, माया

और लोभ से विरत संयती, एक प्रकार के असंयम से रहित होता है। राग और द्वेष, ऐसे दो प्रकार के बन्ध, तीन प्रकार के दण्ड और तीन गौरव से रहित हो, तीन गुप्ति से गुप्त हो। तीन विराधना से बचा हुआ, चार कषाय को नष्ट करने वाला, चार ध्यान में से आर्त्त और रौद्र का वर्जक तथा धर्म और शुक्ल का सेवी, आहारादि चार संज्ञा, चार विकथा और पांच क्रिया से विरत, पांच समिति का पालक, पांच इन्द्रियों का शासक, पांच महाव्रतों का पालक, छह जीविकाय का रक्षक, छह लेश्यों में अशुभ लेश्याओं का त्यागी, सात भय और आठ मद से रहित, नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य-गुप्ति और दस प्रकार के श्रमण-धर्म का पालक हो। उपासक की ग्यारह प्रतिज्ञा, भिक्षु की बारह प्रतिज्ञा, तेरह क्रिया-स्थान, चौदह भूतग्राम (जीव समुदाय), पन्द्रह परमाधार्मिक देव, सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन, सतरह असंयम, अठारह अब्रह्मचर्य, ज्ञातासूत्र के उन्नीस अध्ययन, बीस असमाधि स्थान।

विवेचन - इस पांचवें संवरद्वार में सूत्रकार महर्षि ने बहुत ही गंभीर भावों का समावेश किया है। अपरिग्रह महाव्रत का द्रव्य और भाव से पालन करने वाले के सभी महाव्रत अपने आप पलते हैं। जो द्रव्य और भाव से अपरिग्रही है, वह स्त्री का परिग्रह नहीं रख सकता और वेदोदय के वशीभूत नहीं होता। इस प्रकार अपरिग्रही से ब्रह्मचर्य व्रत अपने-आप पलता रहता है। जो अपरिग्रही है, वह अदत्तग्रहण क्यों करेगा? अपरिग्रही के झूठ बोलने और हिंसा करने का प्रयोजन ही क्या रहता है? क्रोधादि आभ्यन्तर कषायों के त्यागियों के मन में दुराशय या हिंसा-मृषादि का भाव ही नहीं आ पाएगा। इस प्रकार अपरिग्रही सर्वसंयत की आत्मा से सभी दुर्गुण दूर हो जाते हैं और सभी सदगुण निवास करने लगते हैं। अपरिग्रह महाव्रतधारी द्रव्य-भाव श्रमण की श्रद्धा, त्याग और चारित्र का स्वरूप बताते हुए, एक से लगाकर तेतीस भेदों का उल्लेख किया गया है। यथा -

१. एक प्रकार का असंयम - वह अनियंत्रित अवस्था, जिसमें विरति का सर्वथा अभाव हो और मात्र असंयम ही हो। प्रथम से चतुर्थ गुणस्थान तक के जीवों की असंयमी परिणति। भेद-विवक्षा से असंयम के सतरह प्रकार समवायांगसूत्र में बताये हैं। वे सभी भेद संग्रहनय से एक असंयम में समाविष्ट होते हैं। भेद स्वरूप का प्रतिपादन संयमी के हित के लिए होता है। असंयमी के लिए तो असंयम या अविरति ही पर्याप्त है।

२. बन्ध के दो भेद-राग और द्वेष। मोहनीय की २८ और सभी कर्मों की १४८ या १५८ प्रकृतियों के बन्धक, मुख्यतया ये दो भेद ही हैं। अठारह पापों का विस्तार भी इन दो भेदों से ही होता है।

३. दंड तीन - मन, वचन और काया के अशुभ योग से अपराध करके दण्ड का भागी बनना।

गारव तीन - ऋद्धि, रस और सुख का घमण्ड करना।

ये सभी भेद हेय हैं, त्यागने योग्य हैं।

तीन गुप्ति - मन, वचन और शरीर को पापमय प्रवृत्ति से रोक कर शुभ प्रवृत्ति में स्थित रखना।

तीन विराधना - ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना नहीं करके विराधना करना।

४. चार कषाय - संसार एवं पाप को बढ़ाने वाले-ऐसे क्रोध, मान, माया और लोभ का सेवन करना।

चार ध्यान-आर्त्त और रौद्र - इन दो दुर्ध्यानों में रमण करना हेय है और धर्म तथा शुक्ल-ये दो उत्तम ध्यान उपादेय हैं।

चार संख्या - १. आहार २. भय ३. मैथुन और ४. परिग्रह की इच्छा - आसक्ति। यह त्यागने योग्य हैं।

५. पांच क्रिया - १. कायिकी २. आधिकरणिकी ३. प्राद्वेषिकी ४. पारितापनिकी और ५. प्राणातिपातिकी। अथवा १. आरम्भिकी २. पारिग्रहिकी ३. मायाप्रत्यया ४. अप्रत्याख्यान-प्रत्यया और ५. मिथ्यादर्शन प्रत्यया। ये सभी क्रियाएँ कर्मबन्ध की कारण हैं, अतएव त्यागनीय हैं।

पांच समिति - १. ईर्या समिति २. भ्राषा समिति ३. एषणा समिति ४. आदानभण्डमात्र निक्षेपणा समिति और ५. उच्चार-प्रस्त्रवण-खेल-जल्ल-संधाण परिस्थापनिका समिति। ये पांचों समितियाँ आवश्यक प्रवृत्ति के लिए उपयोगी हैं, उपादेय हैं।

पांच इन्द्रियाँ - १. श्रोत २. चक्षु ३. घ्राण ४. रसना और ५. स्पर्श। इन्हें अपने-अपने विषयों में जाने से रोक कर संयम में रखना चाहिए।

पांच महाव्रत - प्राणातिपात-विरमणादि पांचों महाव्रतों का पालन करना।

६. छह जीविकायाद - पृथ्वीकायादि छह प्रकार के जीवों की हिंसा का त्याग करना।

छह लेश्या - १. कृष्ण २. नील ३. कापोत ४. तेजो ५. पद्म और ६. शुक्ल। इनमें से प्रथम की तीन लेश्याएं अप्रशस्त (अशुभ) हैं और बाद की तीन लेश्याएं प्रशस्त (शुभ) हैं।

७. सात भय - १. इहलोक भय २. परलोक भय ३. आदान भय ४. अकस्मात् भय ५. आजीविका भय ६. अपयश भय और ७. मृत्यु भय। ये सभी भय त्याज्य हैं।

८. आठ मद - १. जाति मद २. कुल मद ३. बल मद ४. रूप मद ५. तप मद ६. लाभ मद ७. श्रुत मद और ८. ऐश्वर्य मद। सभी मद त्याज्य हैं।

९. ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियाँ - १. विविक्त शयनासन सेवन २. स्त्रीकथा विवर्जन ३. स्त्री युक्त आसन परिहार ४. स्त्रियों का रूप दर्शन त्याग ५. स्त्रियों के शृंगार, करुण तथा हास्यादि शब्द श्रवण त्याग ६. पूर्वभोग स्मृति त्याग ७. प्रणीत आहार त्याग ८. अति आहार वर्जन और ९. विभूषा त्याग।

श्रमणधर्म दस - १. क्षांति २. मुक्ति (निर्लोभता) ३. आर्जव (ऋजुता) ४. मार्दव (नम्रता) ५. लघुता (अल्पोपधि) ६. सत्य ७. संयम ८. तप ९. त्याग और १०. ब्रह्मचर्य।

श्रावक की ग्यारह प्रतिमा - १. दर्शन प्रतिमा २. व्रत ३. सामायिक ४. पौषध ५. कायोत्सर्ग

६. ब्रह्मचर्य ७. सचित्त त्याग ८. आरम्भ त्याग ९. प्रेष्य त्याग १०. उद्दिष्ट त्याग और ११. श्रमण भूत प्रतिमा। विस्तृत स्वरूप दशाश्रुत स्कन्ध दशा ६ या मोक्षमार्ग में देखना चाहिए।

बारह भिक्षु प्रतिमा का स्वरूप दशाश्रुत स्कन्ध अ० ७ या मोक्षमार्ग में देखें।

क्रिया स्थान तेरह - १. अर्थदण्ड २. अनर्थदण्ड ३. हिंसा ४. अकस्मात् ५. दृष्टिविपर्यास ६. मृषावाद ७. अदत्तादान ८. आध्यात्म ९. मानदण्ड १०. मित्र दण्ड ११. माया १२. लोभ और १३. ईर्यापथिक।

भूतग्राम चौदह - १. सूक्ष्म एकेन्द्रिय २. बांदर एकेन्द्रिय ३. बेइन्द्रिय ४. तेइन्द्रिय ५. चतुरेन्द्रिय ६. असंज्ञी पंचेन्द्रिय और ७. संज्ञी पंचेन्द्रिय। इन सात के अपर्याप्त और पर्याप्त-यों कुल चौदह भेद हुए।

परमाधर्मी देव पन्द्रह - नैरयिक जीवों को क्रूरतापूर्वक दण्ड देने वाले भवनपति जाति के महान् अधार्मिक देव। इनके भेद हैं - १. आम्र २. आम्र रस ३. शाम ४. सबल ५. रुद्र ६. वैरुद्र ७. काल ८. महाकाल ९. असिपत्र १०. धनुष ११. कुंभ १२. बालुक १३. चैतरणी १४. खरस्वर और १५. महाषोष।

असंयम के सतरह भेद - १. पृथ्वीकाय असंयम २. अप्काय ३. तेजस्काय ४. वायुकाय ५. वनस्पतिकाय ६. बेइन्द्रिय ७. तेइन्द्रिय ८. चौरिन्द्रिय ९. पंचेन्द्रिय, इनमें असंयमी होना १०. अजीवकाय असंयम ११. प्रेक्षा १२. उपेक्षा १३. परिस्थापनिका १४. अप्रमार्जना १५. मर्न असंयम १६. वचन, असंयम और १७. काय असंयम। इनके विपरीत संयम के भी १७ भेद हैं।

अब्रह्मचर्य के अठारह भेद - औदारिक शरीर (मनुष्य तिर्यच) से अब्रह्म का सेवन १. स्वयं करे २. अन्य से करावे ३. अनुमोदन करे १. मन २. वचन और ३. काया से। इस प्रकार तीन करण का तीन योग से गुणन करने से औदारिक सम्बन्धी ९ भेद हुए, इसी प्रकार ९ भेद वैक्रिय शरीर सम्बन्धी है, कुल १८ भेद हुए। इनके विपरीत ब्रह्मचर्य के भी १८ भेद हैं।

असमाधि के बीस स्थान - १. द्रुत-द्रुत (शीघ्रातिशीघ्र) चलना २. अप्रमार्जित चलना ३. दुष्प्रमार्जित चलना ४. अतिरिक्त शय्यासन ५. रात्रिक परिभाषण ६. स्थविरोपघात ७. भूतोपघात ८. ज्वलनशीलता ९. क्रोध करना १०. पृष्टमांसिकता ११. बार-बार निश्चयकारी भाषा बोलना १२. कलह उत्पन्न करना १३. शांत विवाद को उभारना १४. अकाल में स्वाध्याय करना १५. रजलिप्त हाथ-पांव से आसन-शयन करना १६. रात्रि में जोर से बोना १७. गण या गच्छ में भेद (फूट) डालना १८. क्लेशोत्पादक वचन बोलना १९. दिनभर खाना और २०. अनैषणीय लेना। (दशाश्रुतस्कन्ध दशा १)

एगवीसाय-सबला य, बावीसं परिसहा य, तेवीसाए सूयगड्ज्जयणा, चउवीसविहा देवा, पण्णवीसाए भावणा, छव्वीसा दसाकप्पवधहाराणं उद्देसणकाला, सत्तावीसा

अणगारगुणा, अट्टावीसा आयारकप्पा, एगुणतीसा पावसूया, तीसं मोहणीयट्टाणा, एगतीसाए सिद्धाङ्गुणा, बत्तीसा य जोगसंगहे सुरिदा ❁ तित्तीसा आसायणा, एग्गाइयं करित्ता एगुत्तरियाए वुट्ठिए तीसाओ जाव उ भवे तिगाहिया ❁ विरइपणिहीसु ❁ य एवमाइसु बहुसु ठाणेसु जिणपसत्थेसु ❁ अवितहेसु सासयभावेसु अवट्टिएसु संकं कंखं णिराकरित्ता सहहए सासणं भगवओ अणियाणे अगारवे अलुद्धे अमूढमणवयण-कायगुत्ते ।

शब्दार्थ - एगवीसा सबला - इक्कीस शबल दोष, बावीसं परिसहा - बाईस परीषह, तेवीसए सूयगडञ्जयणा - सूयगडांग सूत्र के तेईस अध्ययन, चउवीसविहा देवा - चौबीस प्रकार के देव, पण्णवीसाए भावणा - पच्चीस भावना, छव्वीसा उद्देशणकाला - छब्बीस उद्देशन काल, सत्तावीसा अणगारगुणा - अनगार के सत्ताईस गुण, अट्टावीसा आयारकप्पा - अट्टाईस आचार-प्रकल्प, एगुणतीसा पावसूया - उनतीस पाप-श्रुत, तीसं मोहणीयट्टाणा - तीस मोहनीय स्थान, एगतीसाए सिद्धाङ्गुणा-सिद्धों के इक्कीस गुण, बत्तीसा जोगसंगहे - बत्तीस योग-संग्रह, बत्तीसा सुरिदा - बत्तीस सुरेन्द्र, तित्तीसा आसायणा - तेतीस आशातना, एग्गाइयं - एक से लेकर, करित्ता एगुत्तरियाए वुट्ठिए - क्रमशः एक-एक क्री वृद्धि करते हुए, तीसाओ जाव उ भवे तिगाहिया - यावत् तीन अधिक तीस अर्थात् तेतीस होते हैं, इन सब में तथा, विरइ पणिहीसु - निवर्तन योग्य स्थानों से निवृत्त होना, एवमाइसु बहुसु ठाणेसु - इस प्रकार के बहुत-से स्थानों में, जिणपसत्थेसु अवितहेसु सासयभावेसु अवट्टिएसु - तीर्थकरों के शासित, सत्य और शाश्वत-नित्य भाव अवस्थित-सदा समान रहने वाले हैं उनमें, संकं कंखं णिराकरित्ता - शंका और कांक्षा को हटाकर, सहहए सासणं भगवओ - भगवान् के शासन की श्रद्धा करना, अणियाणे - निदान-रहित, अगारवे - गारव-रहित, अलुद्धे - लोभ-रहित, अमूढमणवयण-कायगुत्ते - मूर्खता-रहित और मन, वचन और शरीर से गुप्त ।

❁ यहाँ प्रतियों में पाठ भेद हैं - 'सुरिदा' शब्द बीकानेर और पूज्य श्री घासीलालजी म. सा. वाली प्रति में 'जोग संगहे' के बाद है, किन्तु श्री ज्ञानविमलसूरि वाली प्रति और पूज्य श्री हस्तीमल जी म. सा. वाली प्रति में 'तित्तीसा आसायणा' के बाद आया है। इसमें तेतीस बोलों ने बत्तीस सुरेन्द्र और एक नरेन्द्र इस प्रकार तेतीस माने। पू० श्री हस्तीमल जी म. सा. के भावार्थ में तो 'बत्तीस या चौसठ इन्द्र' लिखा है, परन्तु अन्वयार्थ में तेतीस आशातना के बाद 'सुरेन्द्र आदि को एक आदि संख्या युक्त करके.....लिखा है।

हमारी दृष्टि में 'सुरिदा' शब्द 'जोगसंगहे' के बाद और 'तित्तीसा आसायणा' के पूर्व होना चाहिए। सुरेन्द्रों में नरेन्द्र को मिलाकर तेतीस करना उचित प्रतीत नहीं होता। फिर बहुश्रुत कहें वही सत्य है।

❁ 'तिगाहिया' के स्थान पर 'एगाहिया' शब्द श्री ज्ञानविमलसूरि वाली प्रति में है जो समझ में नहीं आया।

❁ 'विरइपणिहीसु' के आगे 'अविरतीसु' - शब्द भी है।

❁ "जिणपसाहिएसु"-पाठ भी है।

भावार्थ - इक्कीस सबल-दोष, बाईस परीषह, सूत्रकृतांग के-तेईस अध्ययन, चौबीस प्रकार के देव, पच्चीस भावनाएं, दशा-कल्प-व्यवहार के उद्देशन काल छब्बीस, अनगार के सत्ताईस गुण, अट्ठाईस आचार-प्रकल्प, उत्रतीस पाप-श्रुत, महामोहनीय के तीस स्थान, सिद्धों के इकतीस गुण, बत्तीस योगसंग्रह बत्तीस देवेन्द्र और तेतीस आशातना। इस प्रकार एक से लगाकर क्रमशः एक-एक की वृद्धि करते हुए यावत् तेतीस तक के भेदों में श्रद्धान और हेयोपादेय में विवेक युक्त होकर, त्यागने योग्य स्थानों का त्याग करे और आराधने योग्य का पालन करे। इस प्रकार जिनेश्वर देवों से प्ररूपित सत्य एवं शाश्वत भाव वाले बहुत से अवस्थित स्थानों में संदेह और आकांक्षा को हटाकर निदान, गारव और लुब्धता से रहित तथा समझदारी से मन, वचन और काया से गुप्त (संयमी) बने और जिनेश्वर भगवान् के शासन में दृढ़ श्रद्धा रखे।

विवेचन - शबल दोष इक्कीस - १. हस्त-कर्म करना २. मैथुन-सेवन ३. रात्रि-भोजन ४. आधाकर्म आहारादि सेवन ५. राजपिण्ड भोगना ६. क्रीत, प्रामित्य (उधार लिया) छिना हुआ, भागीदार की आज्ञा बिना और स्थान पर लाकर दिया हुआ लेना ७. प्रत्याख्यान भंग करना ८. छह महीने पूर्व गण बदलना ९. एक महीने में तीन बार नदी उतरना १०. एक महीने में तीन बार माया का सेवन करना ११. शय्यातर-पिण्ड लेना १२. जान-बूझकर हिंसा करना १३. जानकर झूठ बोलना १४. जानकर अदत्त लेना १५. जानकर सचित्त पृथ्वी पर बैठना-सोना १६. गीली और सचित्त भूमि पर बैठना १७. जानकर सचित्त रज वाली या जीव वाली, बीज, हरी आदि युक्त भूमि, शिला या पाट पर बैठना सोना या कायोत्सर्ग करना १८. जान-बूझकर कन्द, मूल, पत्रादि खाना १९. एक वर्ष में दस बार नदी उतरना २०. एक वर्ष में दस बार माया का सेवन करना और २१. जानकर सचित्त हाथ पात्र आदि से दिया हुआ लेना और भोगना। (दशाश्रुतकन्ध २)

परीषह बाईस - १. क्षुधा २. पिपासा ३. शीत ४. उष्ण ५. दंशमशक ६. अचेल ७. अरति ८. स्त्री ९. चर्चा १०. निषद्या ११. शय्या १२. आक्रोश १३. वध १४. याचना १५. अलाभ १६. रोग १७. तृण-स्पर्श १८. जल्ल (मैल) १९. सत्कार-पुरस्कार २०. प्रज्ञा २१. अज्ञान (अल्प ज्ञान) और २२. दर्शन। (उत्तराध्ययन २)

देव चौबीस - १० भवनपति, ८ व्यन्तर, ५ ज्योतिषी और १ वैमानिक। अथवा-जिनेश्वर देव चौबीस।

भावना पच्चीस - पांच महाव्रतों की प्रत्येक की पांच-पांच भावना हैं। चार महाव्रत की बीस भावना का वर्णन इस सूत्र में चार अध्ययन में हो चुका और इस महाव्रत की पांच भावना आगे कही जायेगी।

अनगार के सत्ताईस गुण - ५ महाव्रतों का पालन, ५ इन्द्रियों का दमन, ४ कषाय का त्याग ये, १४ हुए। १५. भावसत्य १६. करणसत्य १७. योगसत्य १८. क्षमा १९. वैराग्य २०. मनसमाधारण २१.

वचन-समाधारण २२. काय समाधारण २३. ज्ञान २४. दर्शन २५. चारित्र २६. वेदना सहन और २७. मृत्यु सहन।

आचार-प्रकल्प अठाईस - इसके स्वरूप में मत भेद हैं। एक मत से ये भेद इस प्रकार हैं -
१. एक मास का प्रायश्चित्त २. एक मास पांच दिन का प्रायश्चित्त ३. एक मास दस दिन ४. एक मास पन्द्रह दिन ५. एक मास बीस दिन ६. एक मास पच्चीस दिन। इस प्रकार पांच-पांच दिन बढ़ाते हुए पांच मास तक के प्रायश्चित्त के २५ भेद हुए। ये २५ उपघातिक हैं। २६वाँ अनुपघातिक आरोपण २७. कृत्स्न-सम्पूर्ण और २८. अकृत्स्न-अपूर्ण।

दूसरा मत है - आचारांग के २५ अध्ययन और निशीथ के तीन-उपघातिक, अनुपघातिक और आरोपण।

'आचार-प्रकल्प'-इसका अन्य कोई स्वरूप जानने में नहीं आया।

पापश्रुत उनतीस - १. भूमि के गुण-दोष अथवा भूकम्प आदि का फल बताने वाला शास्त्र २. उत्पातों का फल बताने वाले शास्त्र ३. स्वप्न-फल दर्शक ४. अन्तरिक्ष के चिह्नों का फल ५. अंग-स्फुरण ६. स्वर ७. व्यंजन, तिल, मष आदि का फल ८. लक्षण शास्त्र। इन आठ प्रकार के पाप शास्त्रों के १ सूत्र २ वृत्ति और ३ वार्तिक इन तीन प्रकार से २४. भेद हुए। २५. विकथानुयोग २६. विद्यानुयोग २७. मंत्रानुयोग २८. योगानुयोग और २९. अन्यतीर्थिक प्रवृत्तानुयोग, विशेष विवरण समवायांग २९ की टीका में है।

महामोहनीय स्थान तीस -

१. त्रस प्राणियों को क्रूरतापूर्वक पानी में डूबा कर मारना।
२. श्वास रोंध कर मारना।
३. मनुष्यों या अन्य जीवों को घर में बंध कर धूँ (या गैस) से घुटा कर मारना।
४. मस्तक पर घातक प्रहार करके मारना।
५. मस्तक पर गीला चमड़ा बांध कर मारना।
६. मनोरंजन के लिए किसी पागल को बार-बार मारना और उसकी दुर्दशा पर हँसना।
७. मायापूर्वक अपना दुराचरण ढक कर सद्गुणी बनने का दिखावा करना।
८. निर्दोष पर झूठा कलंक लगाना या अपना पाप दूसरों पर थोप कर निर्दोष बनना।
९. सत्य जानकर भी सभा में सच-झूठ मिलाकर-मिश्रित वचन बोलना।
१०. राज्य का मंत्री हो और राजा का विश्वास प्राप्त कर उसकी राज्य-लक्ष्मी हस्तगत करे और रानी का भोग करे तथा राजा को राज्य-भ्रष्ट करके निन्दित करे।
११. ब्रह्मचारी नहीं होते हुए भी अपने को बाल ब्रह्मचारी जाहिर करे।
१२. भोग-गृद्ध होते हुए भी ब्रह्मचारी बनने का ढोंग रच कर सम्मान प्राप्त करे।

१३. उपकारी के धन पर लुब्ध होकर हरण करे।
१४. किसी स्वामी ने अथवा गांव की जनता ने एक सामान्य व्यक्ति को अपना अधिकारी या प्रतिनिधि बनाया अथवा रक्षक नियत किया और उनकी सहायता से वह विपुल सम्पत्ति का स्वामी हो गया। फिर वह अपने स्वामी या उस जनता का विश्वासघात करे।
१५. अपने पालक, स्वामी, राजा, मंत्री, कलाचार्य और धर्माचार्य का घातक।
१६. राष्ट्रनायक, ग्रामाधिपति, यशस्वी, परोपकारी सेठ को मारने वाला।
१७. बहुजन समाज के नेता एवं लोगों के आश्रयदाता को मारने वाला।
१८. संसार त्याग कर प्रव्रजित होने वाले या प्रव्रजित साधु तपस्वी को पतित करने वाला।
१९. अनन्तज्ञानियों की निन्दा करने से।
२०. सत्यमार्ग का लोपक, न्यायमार्ग का उत्थापक, अन्य को पथभ्रष्ट करने से।
२१. उपकारी आचार्य-उपाध्याय की निन्दा करने से।
२२. अभिमानी होकर आचार्यादि की सेवा नहीं करने से।
२३. अल्पज्ञ होते हुए भी अपने को बहुश्रुत एवं रहस्यज्ञ जाहिर करने से।
२४. तपस्वी नहीं होते हुए भी तपस्वी कहला कर सम्मान प्राप्त करने से।
२५. शक्ति होने पर भी रोगी की सेवा नहीं करने से।
२६. हिंसाकारी एवं तीर्थभेदक प्रचार करने से।
२७. मान-पूजा प्रतिष्ठा के लिए वशीकरणादि प्रयोग करने से।
२८. देव एवं मनुष्य सम्बन्धी भोगों की तीव्र अभिलाषा रखने से।
२९. देवों की ऋद्धि आदि की निन्दा या निषेध करने से।
३०. यश-लोलुप होकर भगवान् के समान पूजित होने के लिए देवदर्शन होने, अपने पास देव आने और उनके रहस्य जानने की झूठी डिगें हाँकने से।

(दशाश्रुतस्कन्ध ९)

सिद्धों के इकत्तीस गुण - आठ कर्मों की ३१ प्रकृतियों के क्षय होने से उत्पन्न इकत्तीस आत्मगुण।

५ ज्ञानावरणीय, ९ दर्शनावरणीय, २ वेदनीय, २ मोहनीय (दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय) ४ आयुष्य, २ नाम (शुभ और अशुभ) २ गोत्र और ५ अन्तराय। इनके नष्ट होने से प्रकट होने वाले ज्ञानादि ३१ गुण।

योग-संग्रह बत्तीस-१. आलोचना २. निरपलाप ३. दृढधर्मिता ४. निराश्रित तप ५. शिक्षा ६. निष्प्रतिकर्म ७. अज्ञात तप ८. निर्लोभता ९. तितिक्षा १०. आर्जव ११. शुचि १२. सम्यग्दृष्टि १३. समाधि १४. आचार १५. विनयोपगत १६. धैर्यवान् १७. संवेग १८. प्रणिधि १९. सुविहित २०. संवर २१. दोष-निरोध २२. सर्वकाम विरक्तता २३. मूल-गुण प्रत्याख्यान २४. उत्तरगुण प्रत्याख्यान २५.

व्युत्सर्ग २६. अप्रमाद २७. समयसाधन २८. ध्यान-संवर योग २९. मारणतिय कष्ट सहन ३०. संयोग ज्ञान ३१. प्रायश्चित्त और ३२. अंतिम आराधना। (समवायांग ३२)

सुरेन्द्र बत्तीस - दस भवनपति के २० इन्द्र, ज्योतिषी के २ और वैमानिक के १० इन्द्र, यों ३२ इन्द्र हुए।

आशातना तेतीस -

१. रत्नाधिक के आगे चलना।
२. बराबर चलना।
३. पीछे चलते हुए सट कर चलना।
- ४-६. इसी प्रकार आगे-पीछे और बराबर खड़ा रहना।
- ७-९. इसी प्रकार बैठना।
१०. रत्नाधिक के साथ शौच जावे और एक ही पात्र में पानी हो, तो पहले शौच करे।
११. बाहर से लौटने पर अथवा स्वाध्याय के लिए बाहर जाने पर गुरु से पहले ही ईर्यापथिकी करे।
१२. आगत व्यक्ति से गुरु को ही पहले बात करनी है, उससे शिष्य पहले बात करे।
१३. रात्रि में गुरु पुकारे, तो जागता हुआ भी नहीं बोले।
१४. आहारादि लाने के बाद आलोचना पहले अन्य साधुओं के पास करे और बाद में गुरु के पास करे।
१५. आहारादि ला कर पहले अन्य साधुओं को दिखावे और रत्नाधिक को बाद में दिखावे।
१६. आहारादि के लिए अन्य साधुओं को निमन्त्रित करने के बाद रत्नाधिक को निमन्त्रित करे।
१७. रत्नाधिक को पूछे बिना ही दूसरे साधुओं को उनकी इच्छानुसार आहार दे।
१८. रत्नाधिक के साथ आहार करने पर अच्छी और मनोज्ञ वस्तु शीघ्रतापूर्वक और अधिक खावे।
१९. रत्नाधिक के पुकारने पर सुना-अनसुना करे।
२०. गुरु के पुकारने पर आसन पर बैठे हुए ही उत्तर दे।
२१. गुरु के पुकारने पर प्रश्न पूछे कि 'क्या कहते हो।'
२२. गुरु के तुच्छतापूर्वक 'तू' 'तुम' बोले।
२३. गुरु को कठोर वचनों से बोले और आवश्यकता से अधिक वचन बोले।
२४. अपमान करने के लिए गुरु के वचन ही उन्हें सुनावें।
२५. धर्म-कथा कहते समय गुरु को टोंके।
२६. धर्म-कथा के बीच में भूल बतावे।
२७. गुरु का धर्मोपदेश उपेक्षापूर्वक सुने।
२८. गुरु का धर्मोपदेश चल रहा हो तब परिषद् भंग करने का प्रयत्न करे।

२९. गुरु के उपदेश को रोक कर स्वयं बोलने लगे।
 ३०. गुरु की कही संक्षिप्त बात को उस सभा में ही बार-बार या विस्तार से कहने लगे।
 ३१. रत्नाधिक के आसन-शय्या को पांनों से टुकराने पर क्षमा नहीं माँगे।
 ३२. गुरु के आसन-शय्या पर खड़ा रहे, बैठे या सोवे।
 ३३. गुरु से ऊँचे या समान आसन पर खड़ा रहे, बैठे या सोवे तो आशातना लगे। (दशाश्रुतस्कन्ध ३)

धर्म वृक्ष का स्वरूप

जो सो वीरवर-वयण-विरड-पवित्र-बहुविहप्यारो सम्मत्त-विसुद्ध-मूलो
 धिङ्कंदो विणयवेडओ णिग्गय-तिल्लोक्क-विउलजस-णिविड-पीण-पवर-
 सुजायखंधो पंचमहव्वय-विसालसालो भावणतयंतञ्जाण सुहजोग-णाणपल्लवरंकरधरो
 बहुगुणकुसुमसमिद्धो सील-सुगंधो अणणहवफलो पुणो य मोक्खवरबीजसारो
 मंदरगिरि-सिहर-चूलिआ इव इमस्स मोक्ख-वर-मुत्तिमग्गस्स सिहरभूओ संवरवर-
 पायवो चरिमं संवरदारं।

शब्दार्थ - वीरवर-वयण-विरड-पवित्र-बहुविहप्यारो - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के वचन से की हुई परिग्रह निवृत्ति के विस्तार से जो धर्म-वृक्ष उत्पन्न हुआ वह अनेक प्रकार का है, सम्मत्त विसुद्धमूलो - सम्यक्त्व रूप विशुद्ध मूल वाला, धिङ्कंदो - धैर्य रूपी कंद, विणयवेडओ - विनय रूप वेदिका, णिग्गय-तिल्लोक्क विउल जस-णिविड पीणपत्त-सुजाय-खंधो - तीनों लोकों में व्यापक विशाल यश रूप सघन मोटा और लम्बाई युक्त बड़े स्कन्ध वाला, पंचमहव्वय-विसालसालो-पांच महाव्रत रूपी विशाल शाखा वाला, भावणतयंतञ्जाणसुहजोगणाणपल्लवरंकरधरो - अनित्यता आदि भावना रूप त्वचा और धर्म-ध्यान एवं शुभ योग तथा ज्ञान रूप प्रधान पल्लव के अंकुरों को धारण करने वाला, बहुगुणकुसुमसमिद्धो - बहुत-से उत्तम गुण रूपी फूलों से समृद्ध, सीलसुगंधो - शील के सुगन्ध वाला, अणणहवफलो - अनाश्रव रूप फल वाला, मोक्ख-वरबीजसारो - मोक्ष रूप उत्तम बीज के सार वाला, मंदरगिरि-सिहर-चूलिआ - मन्दराचल पर्वत के शिखर की चोटी के, इव - समान, इमस्स - उसका, मोक्खवर-मुत्तिमग्गस्स - मोक्ष में जाने के लिए निर्लोभिता रूपी जो मार्ग है, सिहरभूओ - शिखर रूप, संवरवरपायवो - अपरिग्रह के उत्तम संवर रूप वृक्ष, चरिमं संवरदारं - अन्तिम संवरद्वार।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा से, परिग्रह से सर्वथा विरत होकर धर्म रूपी वृक्ष का आरोपण करना है। यह धर्मवृक्ष अत्यन्त विस्तृत है और इसकी भेद रूप शाखाएं बहुत हैं। इस अपरिग्रह रूपी धर्म वृक्ष का सम्यग् दर्शन रूपी विशुद्ध मूल है। धृति रूप कन्द है, विनय रूपी वेदिका से धर्मवृक्ष सुशोभित है। तीन लोक में व्याप्त यश, इस धर्मवृक्ष का स्थूल पुष्ट एवं सुदृढ़ स्कन्ध है। पांच महाव्रत

रूपी विशाल शाखाएं हैं। अनित्यादि भावनाएँ इस वृक्ष की त्वचा (छाल) धर्म-ध्यान तथा मन, वचन और काया के शुभ योग और सम्यक् ज्ञान रूपी अंकुरित पल्लव हैं। अनेक प्रकार के गुण रूपी कुसुमों से यह धर्मवृक्ष समृद्ध है। धर्मवृक्ष के गुण रूपी पुष्पों से निकली हुई शील रूपी सुगन्ध से समस्त वातावरण सुगन्धित हो रहा है। संवर रूपी फल से धर्मवृक्ष समृद्ध है। मोक्ष रूपी बीज, धर्म-वृक्ष का परमोत्तम सार है। मोक्ष रूपी सुमेरु पर्वत के शिखर की चूलिका पर पहुँचने के लिए अपरिग्रह महाव्रत-निलोभता-सुमार्ग है। अपरिग्रह महाव्रत इस संवर रूपी धर्मवृक्ष के शिखरभूत हैं। यह महाव्रत संवर धर्म का अन्तिम द्वार है।

विवेचन - इस सूत्र में सूत्रकार महर्षि ने अपरिग्रह व्रत अथवा संवर-धर्म को वृक्ष की सुन्दर उपमा से उपमित किया है। धर्मरूपी कल्पवृक्ष का मूल सम्यग् दर्शन बतलाया है। सम्यग् दर्शन रूपी मूल से प्रारम्भ करके मोक्ष रूपी सार पदार्थ पर्यन्त अन्तिम परिणाम बड़ी उत्तमता के साथ प्रतिपादन किया है। बिना सम्यग् दर्शन रूपी मूल के न तो धर्म रूपी कल्पवृक्ष उत्पन्न हो सकता है और न पत्र, पुष्प यावत् मुक्ति रूपी सार पदार्थ मिल सकता है।

नन्दी सूत्र में धर्म को सुदर्शन पर्वत की उपमा देते हुए सम्यग् दर्शन को पर्वतराज की पीठिका (नींव) के समान आधारभूत बतलाया है।

सम्यक्त्व-संवर रूप मूल में विकसित होता हुआ धर्मवृक्ष, मुक्ति रूपी सम्पूर्ण संवर में परिपूर्ण होकर शाश्वत हो जाता है।

अ-कल्पनीय-अनाचरणीय

जत्थ ण कप्पइ गामागर-णगर-खेड-कब्बड-मंडब-दोणमुह-पट्टणा-समगयं च किंचि अप्पं वा बहं वा अणुं वा थूलं वा तसथावरकायदव्वजायं मणसा वि परिघेत्तुं ण हिरण्ण-सुवण्ण-खेत्तवत्थु ण दासी-दास-भयग-पेस-हय-गय-गवेलगं च ण जाण-जुग-सयणासणाइं म छत्तगं ण कुंडिया ण उवाणहा ण पेहुण-वीयण-तालियंटगा ण या वि अय-तउय-तंब-सीसग-कंस-रयय-जाय-रूव-मणिमुत्ताहार-पुडग-संख-दंत-मणि-सिंग-सेल-काय-वर-चेल-चम्मपत्ताइं महरिहाइं परस्स अज्झोववाय-लोहजणणाइं परियट्ठेउं गुणवओ ण या वि पुष्फ-फल-कंद-मूलाइयाइं सणसत्तरसाइं सव्वधण्णाइं तिहिं वि जोगेहिं परिघेत्तु ओसह-भेसज्ज-भोयणट्टयाए संजएणं किं कारणं? अपरिमियणाणदंसणधरेहिं सील-गुण-विणय-तव-संजमणायगेहिं तित्थयेरेहिं सव्वजगजीववच्छलेहिं तिलोयमहिएहिं जिणवरिदेहिं एस जोणी जंगमाणं दिट्ठा ण कप्पइ जोणिसमुच्छेओ त्ति तेण वज्जंति समणसीहा ।

शब्दार्थ - जत्थ - जहाँ, ण कप्पइ - नहीं कल्पता, गामागर-णगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासमगयं - ग्राम, आकर, नगर, खेड, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन और आश्रम में पड़ा हुआ, किंचि - कुछ भी पदार्थ, अप्पं वा बहं वा - मूल्य से अल्प हो या बहुत, अप्पुं वा थूलं वा - प्रमाण से छोटा हो या बड़ा, तस-थावर-काय-दब्बजायं - वह द्रव्य त्रसकाय रूप हो या स्थावरकाय रूप हो, मणसा वि - मन से भी, परिघेत्तुं - ग्रहण करने का, ण हिरण्ण-सुवण्ण-खेतवत्थु - चांदी, सोना, क्षेत्र और वास्तु-गृह भी ग्रहण करना नहीं कल्पता, ण दासीदास-भयग-पेसहयगयगवेलगं - दासी, दास, भृत्य, प्रेष्य, घोड़ा, हाथी और बैल आदि भी ग्रहण करना नहीं कल्पता, ण जाण-जुग्ग-सयणासणाइ ण छत्तगं - रथ, डोली, शयन आदि और छत्र ग्रहण करना भी नहीं, कल्पता, ण कुंडिया ण उवाणहा - कमण्डलू और जूते भी नहीं, ण पेहुण-वीयण-तात्तिवंटगा - मोर-पिच्छी, बांस आदि का बीजना और तालपत्र के पंखों का ग्रहण करना भी नहीं कल्पता, ण यावि-अय-तउय-तंबसीसग-कंस-रययजायरूव - और लोहा/बंग, ताम्र, सीसा, कास्य, चांदी और सोना, मणिमुत्ताहार-पुडग-संखदंत-मणि-सिंग-सेल-काय-वरचेल चम्म-पत्ताइं महरिहाइं - मणि, शंख, दन्तमणि, प्रधान दाँत, सींग, पाषाण, उत्तम काँच, वस्त्र और चर्मपात्र भी ग्रहण करना नहीं कल्पता, परस्स - दूसरे के हृदय में, अण्णोववाय - इच्छा उत्पन्न होना, लोह जणणाइं - लोभ को उत्पन्न करने वालों, परियड्डेउं - इन्हें ग्रहण करने की, गुणवओ - अपरिग्रह रूप गुण वाले को योग्य नहीं, या वि पुष्फ-फल-कंद-मुलाइयाइं - और पुष्प, फल, कन्द, मूल आदि तथा, सणसत्तरसाइं - सण नामक धान जिनमें सत्तरहवाँ है ऐसे, सव्व-धण्णाइं - सभी धान्यों को भी, तिहिं वि जोगेहिं परिघेत्तुं - मन, वचन और काय रूप तीनों योगों से ग्रहण नहीं करे। ओसह-भेसज्ज-भेयणट्टयाए - औषध, भेषज्य और भोजन के लिए, संजएणं - संयति पुरुष के लिए, किं कारणं - इसका क्या कारण है? अपरिमियणाणदंसणधरेहिं - अपरिमित ज्ञान तथा दर्शन को धारण करने वाले, सीलगुण-विणय-तव-संजमणायगेहिं - शील, गुण, अहिंसा आदि विनय और तप-संयम की उन्नति करने वाले, तित्थयरेहिं - चार तीर्थों की स्थापना करने वाले, सव्वजगजीववच्छलेहिं - जगत् भर के जीवों के वत्सल, तिलोयमहिंएहिं - तीनों लोकों द्वारा पूजित, जिणवरिदेहिं - जिनेन्द्र देव ने, एसजोणी - यह पुष्प फल रूप योनि-उत्पत्ति स्थान, जंगमाणं-त्रस जीवों को, दिट्ठा - देखा है, ण कप्पइ - मुनियों को नहीं कल्पता, जोणि समुच्छेओ - योनि का विनाश करना, तेण - इस कारण, वज्जंति - वर्जन करते हैं, समणसीहा - श्रेष्ठ मुनि।

भावार्थ - अपरिग्रह महाव्रत के धारक को ग्राम, आकर, नगर, खेड, कर्बट, मण्डप, द्रोणमुख, पत्तन और आश्रम में रही हुई कोई भी वस्तु लेना नहीं कल्पता है। वह वस्तु अल्प-मूल्य वाली हो या बहुमूल्य वाली, छोटी हो या बड़ी, त्रस रूप हो या स्थावर काय रूप, उसे लेने की साधु मन से भी इच्छा नहीं करे। चांदी, सोना, क्षेत्र, वास्तु, दास, दासी, भृत्य, प्रेष्य (बाहर भेजा जाने वाला सेवक) घोड़ा, हाथी, गाय, बकरियों, भेड़ आदि पालकी, रथ, शयन, आसन, छत्र, कमण्डलू, पगरखी, मोरपंखी,

तालपंखा, लोहा, रौंदा, ताँबा, शीशा, कांसा, चांदी, सोना, मणि, मोती वाले शीप, शंख, उत्तम (हाथी आदि के) दाँत, पत्थर, कांच, वस्त्र, चर्म आदि बहुमूल्य वस्तुएँ और इनसे बने हुए पात्र नहीं रखें। ये बहुमूल्य वस्तुएँ दूसरों के मन में लोभ उत्पन्न करती हैं और लोग इन्हें प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। इसलिए गुणवान् साधु, ऐसी वस्तुएँ नहीं लेवे। इसी प्रकार पुष्प, फल, कन्द, मूल आदि और सण नामक सत्तरहवां धान्य एवं सभी प्रकार के धान्य, औषध भेषज तथा भोजन के लिए इन वस्तुओं का लेना और संग्रह रखना, निर्ग्रन्थों को मन, वचन और काया रूप तीनों योगों से नहीं कल्पता है। 'क्यों नहीं कल्पता है, क्या कारण है नहीं कल्पने का' ?

अपरिमित (अनन्त) ज्ञान-दर्शन के धारक, शील, गुण, विनय, तप और संयम के नायक, जगत् के समस्त जीवों के वत्सल, त्रिलोक-पूज्य तीर्थंकर जिनवरेन्द्र ने इन त्रस-स्थावर जीवों की योनि (उत्पत्ति) स्थान देखा है। उन जीवों के खेद को जाना है। इन जीवों की योनि का विनाश करना निषिद्ध है। अनाचरणीय है। श्रमणसिंह ने सजीव वस्तुओं को भोजनादि कार्य में लेना वर्जित किया है।

जं वि य ओयणकुम्मास-गंज-तप्पण-मंथु-भुज्जिय-पलल-सूव-सक्कुलि-वेडिम-वरसरक-चुण्ण-कोसग-पिंड-सिहरिणि-वट्ट-मोयग-खीर-दही-सप्पि-णवणीय-तेल्ल-गुड-खंड-मच्छंडिय-महु-मज्ज-मंस-खज्जग-वंजण-विहिमाइयं पणीयं उवस्सए परघरे व रण्णे ण कप्पइ तं वि सण्णिहिं काउं सुविहिया णं ।

शब्दार्थ - ओयण - ओदन-भात, कुम्मास - उड़द, गंज - एक प्रकार का धान्य, तप्पण - सत्तू, मंथु - बोर का चूर्ण, भुज्जिय - भूना हुआ धान्य, पलल - तिल के फूणों का चूर्ण, सूव - दाल, सक्कुलि - तिलपपड़ी, वेडिम - वेडमी पूरी, वरसरक - एक प्रकार का धान्य, चुण्णकोसग - चूर्णकोशक, पिंड - गुड़दि का पिंड, सिहरिणि - शिखरिणी-गुड़ मिश्रित दही, वट्टग - बड़ा, मोयग - मोदक-लडू, खीर - क्षीर, दही - दही, सप्पि - घृत, णवणीय - मक्खन, तेल्ल - तेल, गुड - गुड़, खंड - खाँड, मच्छंडिय - मिश्री, महु - मधु, मज्ज - मद्य, मंस - मांस, खज्जग - खाजे, वंजणविहिमाइयं - साग आदि, पणीयं - प्रणीत आहार, उवस्सए - उपाश्रय में, परघरे - दूसरों के घर में, वा रण्णे - अथवा वन में, ण कप्पइ - नहीं कल्पता है, सण्णिहिं काउं - संचय कर रखना, सुविहियाणं - श्रेष्ठ साधुओं को।

भावार्थ - परिग्रह-त्याग महाव्रत के पाक साधु को आगे कहीं जाने वाली वस्तुओं का संग्रह नहीं करना चाहिए। यथा-ओदन (चावल) कुम्मास (कुल्माष-उड़द) गंज (धान्य विशेष) सत्तू, बोर का चूर्ण, भूना हुआ चना आदि धान्य, पलल (तिलपिष्ट), दाल, तिलपपड़ी, वेडिम पूरी, वरसरक (खाद्य विशेष) चूर्ण-कोशक (कचोड़ी जैसा) पिण्ड (गुड़ आदि) शिखरिणी (गुड़ मिश्रित दही या श्रीखण्ड) वट्टक (बड़ा) मोदक, शीर (दूध), दही, घृत, मक्खन, तेल, गुड़, खाँडसारी, मिश्री, मधु, मद्य, मांस,

खाजा, शाक आदि तथा प्रणीत आहार आदि का अपने उपाश्रय में या दूसरे के घर में अथवा वनप्रदेश में संग्रह करके रखना, सुव्रती साधुओं को नहीं कल्पता।

जं वि य उद्दिष्ट-ठविय-रइयग-पज्जवजायं पक्किण्णं पाउयरण-पामिच्चं मीसगजायं कीयगडं पाहुडं च दाणट्टपुण्णपगडं समणवणीमगट्टयाए वा कयं पच्छाकम्मं पुरेकम्मं णिइकम्मं मक्खियं अइरित्तं मोहरं चेव सय्यगहमाहडं मट्टिवलित्तं अच्छेज्जं चेव अणीसट्टं जं तं तिहिसु जण्णेसु उस्सवेसु य अंतो वा बहिं वा होज्ज समणट्टयाए ठवियं हिंसा-सावज्जसंपउत्तं ण कप्पइ तं वि य परिघेत्तुं।

उद्दिष्ट - उद्दिष्ट-साधु के उद्देश्य से बनाया हुआ।

ठविय - स्थापित-साधु के लिए रखा हुआ।

रइयगं - रचित-फिर से बनाया-बिखरे हुए चूरे को लड्डू जैसा बनाया हुआ।

पज्जवजायं - पर्यवजात-साधु के निमित्त एक पर्याय से दूसरी पर्याय में बदला हुआ।

पक्किण्ण - प्रकीर्ण-जिसमें से बूंद या कण गिर रहे हों ऐसा गिराते हुए दिया जाता हुआ।

पाउयरण - प्रादुष्करण-अन्धेरे में रहे हुए पदार्थ को दीपक आदि से प्रकाशित किया हुआ।

पामिच्चं - प्रामित्य-साधु को देने के लिए उधार लाया हुआ।

मीसगजायं - मिश्रजात-साधु और गृहस्थ दोनों के लिए सम्मिलित बना हुआ।

कीयगडं - क्रीत-साधु के निमित्त खरीदा हुआ।

पाहुडं - प्राभृत-साधु के आगमन की संभावना से मेहमानों को पहले या पीछे भोजन कराना।

दाणट्टा - दान देने के लिए बनाया हुआ आहारादि।

पुण्णपगडं - पुण्य के लिए बनाया हुआ।

समणवणीमगट्टयाए कयं - शाक्यादि भिक्षु और गरीब भिखारियों के लिए बनाया हुआ।

पच्छाकम्मं - पश्चात् कर्म-आहारादि देने के बाद हाथ अथवा पात्र धोने आदि से आरम्भ की संभावना हो।

पुरेकम्मं - पूरःकर्म-द देने के पूर्व हाथ आदि धोने या अन्य प्रकार से दोष लगावे।

णिइकम्मं - नैतिक कर्म-सदैव एक घर से लेना।

मक्खियं - म्रक्षित-सचित्त जल आदि से संस्पृष्ट।

अइरित्तं - अतिरिक्त-शास्त्र में बताये हुए प्रमाण से अधिक भोजन करना।

मोहरं - मौखर्य-दाता की प्रशंसा करने से मिला हुआ आहारादि।

सय्यगहं - स्वयं ग्रहण-दाता की इच्छा बिना अपने-आप ग्रहण किया हुआ।

आहडं - आहत-साधु को दान देने के लिए सामने लाया हुआ।

मट्टिउवलित्तं - मृतिकोपलिप्त-मिट्टी आदि से लीपकर बन्द किये हुए बरतन का वह लेप तोड़कर दिया हुआ।

अच्छेजं - आच्छेद्य-नौकर-चाकर आदि से छीनकर दिया हुआ।

तिहिसु - तिथि-मदन-त्रयोदशी आदि तिथियों में।

जण्णेसु - नागपूजा आदि यज्ञों में।

उस्सवेसु - इन्द्र महोत्सवों आदि उत्सवों के समय।

जं वि - जो आहार।

अंतो - घर के अन्दर।

बहिं - बाहर तैयार करके।

समणट्टयाए - साधु के लिए।

ठवियं - रखा जाता है।

हिंसासावज्जसंपउत्तं - जो वस्तु हिंसा रूपी सावद्य कार्य से युक्त है।

तं वि - ऐसी उपरोक्त वस्तु को।

परिषेत्ते - ग्रहण करना।

ण कप्पइ - साधु को नहीं कल्पता।

भावार्थ - जो आहारादि साधु के लिए बनाया हो, साधु के लिए स्थापित करके रखा हो, बिखरे हुए चूरे को पिण्डभूत या लड्डू जैसा बनाया हो, आकृति आदि पलट कर रखा हो, जिसमें से रस की बूंद या कण गिर रहे हों, अन्धरे में रही हुई वस्तु को दीपक आदि से प्रकाशित किया हो, साधु के लिए उधार ली हो, साधु और गृहस्थ के लिए सम्मिलित बनाया हो, खरीदा हो, साधु की सुविधा के लिए मेहमानों को पहले या पीछे भोजन कराने की व्यवस्था हो, दान देने के लिए बनाई हुई वस्तु, पुण्यार्थ देने की वस्तु, शाक्यादि भिक्षु अथवा कंगाल या भिखारियों के लिए बनाया हुआ, देने के बाद हाथ पात्र आदि धोने रूप दोष लगने वाला हो, पहले ही हाथ आदि धोकर दे, सदैव एक घर से लेना, सञ्चित जल आदि से स्पृष्ट, प्रमाण से अधिक, दाता की प्रशंसा करके प्राप्त करना, दाता की इच्छा के बिना अपने-आप ग्रहण करना, साधु के लिए सम्मुख लाया हुआ, मिट्टी आदि का लेप तोड़ कर दिया जाने वाला, किसी से छीन कर लिया हुआ, महत्त्वपूर्ण मानी गई तिथियों में, यज्ञ में और उत्सव में, जो आहारादि घर के भीतर या बाहर तैयार करके साधु के लिए रखा जाये और जो हिंसादि सावद्य कार्य से युक्त हो, उसे ग्रहण करना साधु के लिए निषिद्ध है।

कल्पनीय - आचरणीय

अह केरिसयं पुणाइ कप्पइ? जं तं एक्कारस-पिंडवायसुद्धं किणण-हणण-पयण-कय-कारियाणुमोयण-णवकोडीहिं सुपरिसुद्धं दसहिं य दोसेहिं विप्पमुक्कं

उग्गम-उप्पायणेसणाए सुद्धं वरगय-चुयचवियचत्तदेहं च फासुयं वरगय-संजोग-
मणिंगालं विगयधूमं छट्टाण-णिमित्तं छक्काय-परिरक्खणट्टा हणि हणि फासुएण-
भिकखेणं वट्टियव्वं ।

शब्दार्थ - अह - अब, केरिसयं - कैसा आहार ग्रहण करना, पुणाइ - पुनः, कप्पइ - कल्पता है, जं तं - जो, एक्कारस पिंडवायसुद्धं - ग्यारह पिंडपात से शुद्ध, किणण-हणण-पयण - खरीदना, हिंसा करना और पकाना, कयकारियाणुमोयण - कृत, कारित और अनुमोदित, णवकोडिहि सुपरिसुद्धं - नव कोटियों से पूर्ण शुद्ध, दसहिं य दोसेहिं विप्पमुक्कं - एषणा के दस दोषों से रहित, उग्गम-उप्पायणेसणाए सुद्धं - उद्गम और उत्पादन रूप सोलह-सोलह दोषों से शुद्ध, व्वगय-चुयचविय-चत्तदेहं - जिसमें से जीव चव गये हैं, फासुयं - प्रासुक, व्वगय-संजोगमणिंगालं - संयोग और इंगाल दोष से रहित, विगय धूमं - धूम दोष से रहित, छट्टाण णिमित्तं - छह कारणों के निमित्त वाला, छक्कायपरिरक्खणट्टा - छह काय के जीवों की रक्षा के लिए, हणि हणि फासुएण-भिकखेणं वट्टियव्वं - प्रतिदिन निर्दोष भिक्षा से निर्वाह करना चाहिए।

भावार्थ - अकल्पनीय आहारादि के त्याग का उल्लेख करने के बाद कल्पनीय आहारादि का विधान करते हुए सूत्रकार बतलाते हैं कि -

अब किस प्रकार का आहारादि ग्रहण करने योग्य है? जो आहार ग्यारह प्रकार से पिण्डपात से विशुद्ध हो, नव-कोटि से परिशुद्ध हो, दस दोषों से रहित हो, उद्गम, उत्पादन और एषणा के दोषों से वंचित होकर शुद्ध निर्दोष हो, निर्जीव, चेतना-रहित-प्रासुक हो। मिश्र भी नहीं हो, परिभोगैषणा संयोजना, अंगार और धूम दोषों से रहित और छह कारण से लिया जाता हो, तो ऐसा आहार कल्पनीय है। छह काय जीवों की रक्षा के लिए साधु को प्रतिदिन निर्दोष भिक्षा से प्राण धारण करना चाहिए।

विवेचन - आहारादि के दोषों को टालकर निर्दोष आहारादि लेने का निर्देश इस सूत्र से किया गया है। इस सूत्र में थोड़े शब्दों में ही विशिष्ट नियमों का सूचन किया है। जैसे -

ग्यारह प्रकार के पिण्डपात से विशुद्ध - आचारांग सूत्र श्रु० २ के 'पिण्डैषणा' नामक प्रथम अध्ययन के ग्यारह उद्देशकों में आहार की जो विधि बताई है, उसके अनुसार निर्दोष आहार लेना।

नी कोटि परिशुद्ध - दस प्रकार के दोषों से मुक्त, एषणा उद्गम और उत्पादन दोषों से रहित। इनका स्वरूप पृ० २१९ पर है, वहाँ से देख लेना चाहिए?

संयोग - संयोजना दोष-स्वाद बढ़ाने के लिए लाई हुई भिन्न भोज्य-वस्तु में वस्तु को मिलाना, जैसे-दाल आदि में नींबू आदि का आचार, मसाला आदि।

अंगार-दोष - रस-लोलुप होकर निर्दोष आहार को भी आसक्तिपूर्वक खाना। इससे संयम में आग लग जाती है।

धूम-दोष - स्वाद-रहित आहार को खेदपूर्वक तथा दाता की निन्दा करते हुए खाना। मूल में इन तीन दोषों का उल्लेख है। उपलक्षण से यहाँ - प्रमाण से अधिक खाने और अकारण खाने के दो दोष और मिलाकर परिभोगैषणा के पांच दोष भी टालने चाहिए।

छह स्थान निमित्त - आहार करने के छह कारण ठाणांग ६ और उत्तराध्ययन अ० २६ में इस प्रकार बताये हैं -

१. क्षुधा-वेदनीय का शमन करने के लिए २. वैयावृत्य करने के लिए ३. ईर्या-समिति का पालन करने के लिए ४. संयम-पालन करने के लिए ५. अपने प्राणों की रक्षा के लिए और ६. धर्म-चिंतन के लिए।

जं वि य समणस्स सुविहियस्स उ रोगायंके बहुप्पकारंमि समुप्पणणे वायाहिग-पित्तसिंभअइरित्तकुविय-तहसण्णिवायजाए व उदय-पत्ते उज्जल-बल-विउल-तिउल * कक्खडपगाढदुक्खे असुभकडुयफरुसे चंडफलविवागे महब्भये जीवियंतकरणे सब्बसरीरपरितावणकरे ण कप्पइ तारिसे वि तह अप्पणो परस्स वा ओसहभेसजं भत्तपाणं चं तं पि सण्णिहिकयं * ।

शब्दार्थ - जं - जो, वि य - यदि, समणस्स सुविहियस्स - सुव्रतधारी श्रमण के, रोगायंके - रोग या आतंक, बहुप्पकारंमि - अनेक प्रकार के समुप्पणणे - उत्पन्न हो जाये, वायाहिग - वात की अधिकता हो, पित्त-सिंभ-अइरित्तकुविय - पित्त और कफ अत्यन्त कुपित हो जायें, तह - तथा, सण्णिवायजाए - सत्रिपात हो जाय, उदयपत्ते - उदय प्राप्त, उज्जल-बल-विउल-तिउल-कक्खड-पगाढ-दुक्खे - सुख से सर्वथा रहित और महान् वेग से विशेष प्रमाण में कठोर और मन वचन और काया के तीनों योग से पूर्ण प्रगाढ़ दुःख में, असुभकडुय-फरुसे - अशुभ और कटु-कठोर स्पर्शयुक्त, चंडफलविवागे - जिसका फलविपाक भयंकर है, महब्भये - महान् भयकारी, जीवियंतकरणे - जीवन का अन्त करने वाला, सब्बसरीरपरितावणकरे - सारे शरीर में परितापना उत्पन्न करने वाला, ण कप्पइ - नहीं कल्पता, तारिसे वि - ऐसे रोगातंक में भी, अप्पणो - अपने, परस्स वा - या दूसरे के लिए, ओसहभेसजं - औषध-भैषज्य, भत्तपाणं - आहार-पानी, तं पि सण्णिहिकयं - यह सब संग्रह करके रखना।

भावार्थ - यदि इस उत्तम व्रत को धारण करने वाले सुश्रमण के शरीर में किसी एक प्रकार का या अनेक प्रकार के भयंकर रोग उत्पन्न हो जाये, वात, पित्त और कफ उग्ररूप से कुपित हो जाये और

* 'तिउल' शब्द न तो शास्त्रोद्धार समिति की प्रति में है, न ज्ञानविमलसूरि वाली प्रति में, किन्तु इसकी टीका में इस शब्द का अर्थ दिया है और पू० श्री हस्तीमल जी म. सा. सम्पादिक भूलपाठ में भी यह शब्द है।

* नीकानेर वाली प्रति में यह पूरा पाठ ही नहीं है। कदाचित् भूल से छूट गया हो।

सन्निपात होकर असह्य, भयंकर एवं प्रगाढ़ वेदना भड़के उठे, जिससे जीवन का अन्त निकट दिखाई दे और समस्त शरीर उग्र परितापना से पीड़ित हो जाये, तो भी उस श्रमण को अपने लिए या वैसे किसी भयंकर रोगी श्रमण के लिए आहार-पानी और औषध-भेषज्य संग्रह करके नहीं रखना चाहिए।

धिवेचन - अपरिग्रह महाव्रतधारी श्रमण को अपना व्रत सुरक्षित रखने के लिए खाना पानादि ऐसी कोई भी वस्तु जो उसी दिन काम में लेने की हो, भविष्य में काम में लेने के लिए संग्रह करके नहीं रखनी चाहिए, भले ही भयंकर रोग उत्पन्न हो जाये और मृत्यु हो जाने जैसी देशा हो जाये, ऐसी विकट स्थिति में भी आहार-पथ्य, पानी या औषधि, सूर्यास्त के बाद नहीं रखनी चाहिए। इस प्रकार जो अपने महाव्रत को सुरक्षित रखते हैं, उनका संयम निर्दोष होता है।

साधु के उपकरण

जं वि य समणस्स सुविहियस्स उ पडिग्गहधारिस्स भवइ भायणभंडोवहिउवगरणं पडिग्गहो पायबंधणं पायकेसरिया पायठवणं य पडलाइं तिण्णेव रयत्ताणं च गोच्छओ तिण्णेव य पच्छागा रयहरण चोल-पट्टग-मुहणंतगमाइयं एयं वि य संजमस्स उववूहणट्टयाए वायायव-दंस-मसग-सीय-परिक्खणट्टयाए उवगरणं रागदोसरहियं परिहरियव्वं, संजएण णिच्चं पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणाए अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइ सययं णिक्खियव्वं च गिण्हियव्वं च भायणभंडोवहि उवगरणं।

शब्दार्थ - जं वि य - और जो भी, समणस्स सुविहियस्स - सुविहित साधु के, पडिग्गहधारिस्स-पात्रादि रखने वाले, भवइ - होता है, भायणभंडोवहिउवगरणं - भोजन-पात्र भाण्ड आदि उपधि रूप उपकरण, पडिग्गहो - पात्र, पायबंधण - पात्र बांधने का कपड़ा, पायकेसरिया - पात्र-केसरिका-पात्र पोंछने का वस्त्र, पायठवणं - पात्र को स्थापित करने का वस्त्र का टुकड़ा, पडलाइं - पात्र ढकने का वस्त्र, तिण्णेव - ये तीन, रयत्ताणं - रजस्त्राण-पात्र लपेटने का वस्त्र, गोच्छओ - गोच्छक-पात्र वस्त्र आदि प्रमार्जन करने के लिए पूजनी, तिण्णेव - तीन, य - और, पच्छागा - पछेवड़ी-चादर, रयहरण - रजोहरण, चोलपट्टग - चोलपट्टा, मुहणंतगं - मुखवस्त्रिका, आइयं - आदि, एयं वि - ये सभी, संजमस्स-संयम की, उववूहणट्टयाए - उपबृंहण अर्थात् वृद्धि के लिए, वायायवदंसमसगसीयं परिक्खणट्टयाए - वायु, धूप, डांस, मच्छर और शीत से रक्षा के लिए, रागदोसरहियं - राग-द्वेष रहित होकर, संजएण - साधु को, उवगरणं - उपकरणों का, परिहरियव्वं - उपभोग करना चाहिए, णिच्चं - सदा, पहिलेहणपप्फोडणपमज्जणाए - पडिलेहण, प्रस्फोटन और प्रमार्जन रूप क्रिया में, सययं - सतत, अप्पमत्तेण - प्रमाद-रहित होकर, अहो य राओ - दिन-रात, भायण-भंडोवहिउवगरणं - भोजन-पात्र, भांड और उपधि रूप उपकरणों को, णिक्खियव्वं - रखना चाहिए, गिण्हियव्वं होइ - ग्रहण करना चाहिए।

भावार्थ - निष्ठा के साथ विधिपूर्वक संयम का पालन करने वाले पात्रधारी श्रमणों के लिए जो भाजन और भंड-उपधि तथा उपकरण होते हैं, वे इस प्रकार हैं - पात्र, पात्र-बन्धन, पात्र-केसरिका, पात्र-स्थापन, तीन पटल, रजस्त्राण, गोच्छक, तीन चादरें, रजोहरण, चोलपट्टक और मुखवस्त्रिका आदि। ये सभी उपकरण संयम की वृद्धि के लिए ग्रहण करने चाहिए तथा राग-द्वेष से रहित होकर वायु, धूप, डांस, मच्छर और शीत से रक्षण पाने के लिए इन उपकरणों को रखना चाहिए।

साधु को अपने उपकरणों का सदैव प्रतिलेखन, प्रस्फोटन और प्रमार्जन करना चाहिए और सतत अप्रमत्त रह कर भण्डोपकरण को रखना और ग्रहण करना-उठाना चाहिए।

विवेचन - साधु को आहार-पानी आदि लाने के लिए पात्र भी चाहिये और पात्र सम्बन्धी वस्त्र भी चाहिए। शरीर-रक्षा के लिए आवश्यक वस्त्र और जीव-रक्षा के लिए रजोहरणादि भी आवश्यक हैं। इस सूत्र में विशिष्ट जिनकल्पी के सिवाय पात्रधारी साधुओं के उपकरणों के नाम बताये हैं। यथा -

पात्र-आहारादि लाने के लिए काष्ठ, मिट्टी या तुम्बे के पात्र।

पात्र-बन्धन - पात्रों को बाँधने का वस्त्र।

पात्र-केसरिका - पात्र पोंछने के लिए वस्त्र का टुकड़ा।

पात्र स्थापन - पात्र के नीचे बिछाने का वस्त्र।

पटल - पात्र ढकने का वस्त्र।

रजस्त्राण - पात्र पर लपेटने का वस्त्र।

गोच्छक - पात्र आदि साफ करने का वस्त्र का टुकड़ा।

प्राच्छादक - पछेवड़ी-ओढ़ने की चादरें।

रजोहरण - भूमि, शय्या, पाट आदि प्रमार्जन करने का ओघा।

चोलपट्टक - गुप्तांग ढकने का अधो-वस्त्र।

मुखवस्त्रिका - वायुकायादि जीवों की रक्षा के लिए मुंहपत्ति।

प्रतिलेखन, प्रमार्जन और प्रस्फोटन का स्वरूप उत्तराध्ययन अ० २६ गा० २४ से २८ तक से जान लेना चाहिए।

उपरोक्त उपकरणों के सिवाय 'आदि' शब्द से मात्रक भी ग्रहण किया जाता है। इन उपकरणों को आवश्यकतानुसार संयम-वृद्धि एवं रक्षा के लिए और असह्य वायु, शीत, उष्णादि से अपने को बचाने के लिए, राग-द्वेष रहित होकर ग्रहण करना चाहिए और इनकी प्रतिलेखना, प्रमार्जना और ग्रहण-स्थापन सदैव सावधानीपूर्वक होनी चाहिए, जिससे विराधना से बचा जा सके।

(प्रथम संवरद्वार पृ० २२९ तथा तृतीय संवरद्वार पृ० २५५ में भी उपकरणों का उल्लेख हुआ है)।

निर्ग्रन्थों का अन्तर्दर्शन

एवं से संजए विमुत्ते णिस्संगे णिप्परिग्गहरुइ णिम्ममे णिण्णेहबंधणे सव्वपावविरए वासीचंदणसमाणकप्पे समतिणमणिमुत्तालेट्टुकंचणे समे य माणावमाणणाए समियरए समियरागदोसे समिए समिइसु सम्पदिट्ठी समे य जे सव्वपाणभूएसु से हु समणे सुयधारए उज्जुए संजए स साहु सरणं सव्वभूयाणं सव्वजगवच्छले सच्चभासए य संसारंतट्टिए य संसारसमुच्छिण्णे सययं मरणाणुपारए पारगे य सव्वेसिं संसयाणं पवयणमायाहिं अट्टुहिं अट्टुकम्म-गंठी-विमोयगे अट्टुमय-महणे ससमयकुसले य भवइ सुहदुहणिव्विसेसे अब्भंतरबाहिरम्मि सया तवोवहाणम्मि सुट्टुज्जुए खंते दंते य हियणिरए ईरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाण-भंड-मत्त-णिव्वखेवणा-समिए उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिठावणिया समिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी चाई लज्जू धण्णे तवस्सी खंतिखमे जिइंदिए सोहिए अणियाणे अब्बहिल्लेस्से अममे अकिंचणे छिण्णगंथे णिरुवलेवे ।

शब्दार्थ - एवं - इस प्रकार, से संजए - वह संयमी, विमुत्ते - विमुक्त-परिग्रह-रहित, णिस्संगे-संग-वर्जित, णिप्परिग्गहरुइ - परिग्रह-रुचि से दूर, णिम्मणे - ममत्व-रहित, णिण्णेहबंधणे - स्नेह-बंधन से रहित, सव्वपावविरए - समस्त पापों से रहित, वासीचंदणसमाणकप्पे - वसूला से मारने वाले और चन्दन का लेप करने वाले-दोनों पर समभाव रखने वाला, समतिणमणिमुत्तालेट्टुकंचणे - तृण और मणि, मोती तथा पत्थर व स्वर्ण में समान भाव रखने वाला, समे य माणावमाणणाए - मान और अपमान में समभाव रखने वाला, समियरए - पाप रूपी रज अथवा काम-भोग रूपी रज को शान्त करने वाला, समियरागदोसे - राग-द्वेष को शान्त करने वाला, समिएसमिइसु - पांच समितियों में सम्यक् प्रवृत्ति वाला, सम्पदिट्ठी - सम्यग्दृष्टि, समे य जे सव्वपाणभूएसु - जो समस्त त्रस-स्थावर जीवों में समभाव रखता है, से हु समणे - वही श्रमण, सुयधारए - श्रुत-धारक, उज्जुए - सरल स्वभावी, संजए-संयमी, से साहु सरणं सव्वभूयाणं - वह साधु सर्वभूत-छह-काय जीवों का शरण-रक्षक है, सव्वजगवच्छले - समस्त जगत् का वत्सल, सच्चभासए - सत्य भाषण करने वाला, य - और, संसारंतट्टिए - संसार के अंत में स्थित, य - तथा, संसारसमुच्छिण्णे - संसार का समुच्छेद करने वाला, सययं मरणाणुपारए - सतत मृत्यु के पार जाने वाला, पारगे य सव्वेसिं संसयाणं - सभी संशयों का पारगामी, पवयणमायाहिं अट्टुहिं - आठ प्रवचन-माता, अट्टुकम्मगंठीविमोयगे - आठ कर्म-ग्रंथियों का छेदन करने वाला, अट्टुमयमहणे - आठ प्रकार के मद का मंथन करने वाला, ससमयकुसले - अपने सिद्धान्तों में कृशल, भवई - होता है, सुहदुह-णिव्विसेसे - सुख-दुःख को समान मानने वाला,

अभिन्तर-बाहिरिम्भि - आभ्यन्तर तथा बाह्य, तवोवहाणाम्भि - तपस्याओं में, सुदुज्जुए - भलीभांति उद्यम करने वाला, खंते दंते य - क्षमावान् और जितेन्द्रिय, हियणिरह - अपना और पर का हित करने वाला, ईरियासमिह - ईर्यासमिति युक्त, भासासमिह - भाषा-समिति युक्त, एसणासमिह - एषणासमिति युक्त, आयाणभंडमत्त-णिकखेवणा-समिह - आदान-भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति युक्त, उच्चार-पासवण-खेलसिंघाण-जल्ल-परिठावणिया-समिह - उच्चार-प्रश्रवण-खेल-सिंघाण-जल्ल परिस्थापनिका समिति से युक्त, मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते - मनोगुप्त, वचनगुप्त और कायगुप्त, गुत्तिंदिए - इन्द्रियों का गोपनकरने वाला, गुत्तबंभयारी - ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला, चाई - त्यागी, लज्जू - लज्जाशील, धण्णे - धन्य, तवस्सी - तपस्वी, खंतिखमे - क्षमाशील, जिइंदिए - जितेन्द्रिय, सोहिए - शोभा सम्पन्न, अणियाणे - निदान-रहित, अबहिल्लेस्से - शुभ लेश्याओं से युक्त, अममे - ममत्व-रहित, अकिंचणे-परिग्रह-रहित, छिण्णगंथे - ग्रंथियों को छेदन करने वाला, णिरुवलेवे - कर्म-लेप से रहित होने वाला।

भावार्थ - इस प्रकार धर्म में स्थित साधु सभी प्रकार के संग-सम्बन्ध और परिग्रह से विमुक्त होता है। परिग्रह में उसकी रुचि भी नहीं रहती। वह मोह-ममता और स्नेह-बन्धन से मुक्त रहता है। निरारम्भी और निष्परिग्रही निर्ग्रन्थ समस्त पापों से विरत होता है। वह 'वासी चन्दन समान कल्प' वाला होता है। जिस प्रकार चन्दन का वृक्ष, उसे काटने वाली वसूले की धार को भी अपनी सुगन्ध देता है, उसी प्रकार मानापमान से रहित निर्ग्रन्थ, अपने निन्दक, ताड़ना-तर्जना और वध करने वाले के प्रति भी द्वेष नहीं रखता और चन्दन का विलेपन कर अर्चन करने वाले अनुरागी के प्रति राग नहीं करता। वह दोनों पर समभाव रखता है। ऐसे निर्ग्रन्थ के लिए तृण और मणि-मुक्ता तथा मिट्टी का ढेला और स्वर्ण एक समान होता है। उनका न तो तृण और पत्थर पर द्वेष है तथा न मणि मुक्ता और स्वर्ण में राग है। वह सम्मान और अपमान में भी भेद-भाव नहीं कर समभाव रखता है। जिस की पापकर्म अथवा भोगवासना रूपी रज शांत हो चुकी है, जिसने राग और द्वेष को उपशान्त कर दिया है, जो ईर्यादि पांच समितियों से सम्पन्न है, सम्यग्दृष्टि से युक्त है और समस्त प्राण, भूत, जीव और सत्त्व में समभाव रखता है, वह 'श्रमण' होता है। ऐसे उत्तम गुणों का धारक सन्त, श्रुतज्ञान का धारक और सरल-स्वभावी होता है। वह निर्ग्रन्थ-श्रमण, संसारी जीवों के लिए शरणभूत-रक्षक है। समस्त जीवों के प्रति उसके हृदय में वात्सल्य भाव (हित-कामना) रहती है। वह सत्यभाषी मुनि, अनन्त संसार-सागर को तैर कर किनारे पहुँच चुका है। ऐसा शुद्ध संयमी श्रमण, दीर्घतम संसार भ्रमण कराने वाले मोह के तन्तु को काट कर नष्ट कर देता है। वह मृत्यु का पार पाकर मृत्युंजय बनने के लिए सतत आगे बढ़ रहा है। वह समस्त संशयों से मुक्त होकर संशयातीत हो चुका है। पांच समिति और तीन गुप्ति रूपी आठ प्रवचन-माता के बल से आठ कर्मों की ग्रंथी को तोड़ने में वह समर्थ होता है। मोह महारिपु के सुभट रूप जाति आठ मद का मंथन करके वह नष्ट कर देता है। वह स्व-समय-अपने सिद्धान्त-निर्ग्रन्थ-प्रवचन में कुशल होता है। वह सुख और दुःख को निर्विशेष-हर्ष-शोकादि रहित-समान अनुभव करता

है। वह बाह्य और आभ्यन्तर तपोपधान में सदैव भली प्रकार से उद्यत रहता है। वह क्षमाशील-दमितेन्द्रिय मुनि स्व-पर हितकारी होता है। ईर्या-समिति, भाषा-समिति, एषणा-समिति, आदान-भांड-मात्र निक्षेपणा-समिति और उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण परिस्थापनिका समिति, इन पांच समितियों से वह युक्त है। मन-गुप्ति, वचन-गुप्ति और काय-गुप्ति—इन तीन गुप्तियों से वह सदैव गुप्त (आत्म-रक्षित) रहता है। अपनी इन्द्रियों को सदैव गुप्त रख कर विषयों की ओर जाने और विकारी बनने से रोक रखता है। उसका ब्रह्मचर्य सुरक्षित है। वह समस्त संग-सम्बन्ध का त्यागी है, वह लज्जावान् (पाप एवं अनाचार से-असंयमी प्रवृत्ति से लज्जित होने वाला) है। ऐसे श्रमण, संयम रूपी धन से धनवान्-धन्य हैं, तपस्वी हैं, क्षमावंत हैं, जितेन्द्रिय हैं, उत्तम गुणों से सुशोभित अथवा शुद्ध हैं, निदान से रहित हैं, शुभ लेश्या से युक्त हैं, ममत्व रहित हैं और अकिंचन-परिग्रह से रहित हैं। ऐसे निष्परिग्रही निर्दोष निर्ग्रन्थ, बाह्य एवं आभ्यन्तर ग्रंथियों को नष्ट कर देते हैं और कर्म-लेप से रहित हो जाते हैं।

विवेचन - इस सूत्र में निर्ग्रन्थ साधकों का अन्तर्दर्शन कराया गया है। कितना भव्य एवं उदात्त है-उन श्रमण-श्रेष्ठों का चरित्र? कैसे आदर्श निर्ग्रन्थ होते हैं-जिन धर्म में?

णिस्संगे - निस्संगता-संसार के संयोग-सम्बन्धों से रहित होकर साधना में अनुरक्ति रखने वाले ही सच्चे निर्ग्रन्थ होते हैं। जो आत्म-साधना की उपेक्षा कर के लोक-साधना राष्ट्र सेवा या लौकिक प्रवृत्ति में लग जाये, स्नेह एवं प्रेम सम्बन्ध बनाते फिरें, वे न तो निःसंग होते हैं और न निर्ग्रन्थ साधु हो सकते हैं। निर्ग्रन्थ-श्रमणत्व की प्रथम शर्त है-लौकिक संयोग-सम्बन्ध का त्याग। उत्तराध्ययन का प्रारम्भ ही "संजोगाविष्णुमुक्कस्स" पद से हुआ है। विनयधर्म की सर्वसाधना, निःसंगत्व की प्राप्ति पर ही हो सकती है। जिसकी साधना आत्म-शुद्धि के लिए-संसार से विमुक्त होने के लिए हैं, उसे तो संसार से निःसंग ही रहना चाहिए। ऐसा पवित्र साधक ही संसार से पार हो सकता है।

णिम्ममे णिण्णेहबंधणे - चाहे माता, पिता, भाई, भगिनी हो या पत्नी-पुत्रादि हो, किसी भी जीव और धन-धान्य, वस्त्रालंकार यावत् शब्दादि अजीव द्रव्य तथा स्थान एवं काल के प्रति ममत्व भाव एवं स्नेह बंधन भी निःसंगता में बाधक होता है। मुक्ति की साधना में ममत्व और स्नेह बाधक है, विरोधी है और बन्धन रूप है। मुक्ति-पथ का पथिक, इन बन्धनों को तोड़ कर ही मुक्त हो सकता है।

वासीचंदणसमाण कण्णे - जिस प्रकार वसूले से छेदने-काटने पर भी चन्दन वसूले की धार को भी सुगन्ध ही देता है, उसी प्रकार साधु भी म्लेच्छ लोगों से मार-पीट, अंगच्छेद या मृत्यु के समान भयंकर कष्ट होने पर भी द्वेष नहीं करे और अनुरागी उपासक से वंदना-स्तुति और सत्कार-सम्मान पाकर भी उस पर राग-रहित होकर समभाव में ही रहे। न तो अनुकूल पर राग करे और न प्रतिकूल पर द्वेष करे। राग-द्वेष नष्ट होने पर ही वीतरागता प्रकट होती है।

संसारंतड्डिए - निर्ग्रन्थता की यथातथ्य साधना करने वाला श्रमण अनादि संसार-सागर को पार

कर किनारे तक पहुँच जाता है और थोड़े समय में ही संसार से उत्तीर्ण होकर सिद्धि नामक शाश्वत स्थान पर पहुँच कर अनन्त जीवन प्राप्त कर लेता है। उसके संसार का सर्वथा अन्त हो जाता है। उसके समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं। वह परमानन्द में लीन-परमात्मा हो जाता है।

छिण्णगंधे - ग्रंथी-मन में पड़ी हुई ममत्व की गाँठ, स्नेह-पाश अथवा अनन्तानुबन्धी कषाय की गाँठ को तोड़-फोड़ कर नष्ट करने वाला, पाठान्तर में, 'छिण्णसोए'-शब्द है। इसका अर्थ है-छिन्न-शोक-जिसका शोक (चिन्ता, खेद, प्रिय-वियोग और अप्रिय संयोग से होने वाला रंज) नष्ट हो चुका अथवा छिन्न-श्रोत-जिसका संसार में भटकाने वाला आस्रव का श्रोत नष्ट हो चुका है।

णिरुवलेवे - निरुपलेप-उपलेप रहित। कर्म के उपलेट से रहित। साधक अवस्था में ऐसा निर्ग्रन्थ, कर्म-लेप से सर्वथा रहित या अबन्धक नहीं होता। उसके सातों कर्मों का बन्ध होता रहता है, किन्तु वह बन्ध हल्का, अल्प प्रकृति, स्थिति, रस और प्रदेश वाला और शीघ्र नष्ट होने योग्य होता है। बन्ध की अपेक्षा निर्जरा अत्यधिक होती है तथा वह शीघ्र ही सर्वथा निर्लेप होने वाला होता है। इसीलिए उसे निर्लिप्त कहा गया है।

इस सूत्र में निर्ग्रन्थ-श्रमण की मोह-मारक साधना का ही विविध गुण-दर्शक शब्दों में बहुत ही उत्तमता के साथ यथातथ्य वर्णन किया गया है। ऐसे उत्तम साधक विश्व-पूज्य होते हैं। इनका आदर्श एवं उदात्त चरित्र भव्यात्माओं के लिए प्रेरणास्पद होता है।

निर्ग्रन्थों की ३१ उपमाएं

सुविमलवरकंसभायणं व मुक्कतोए, संखे विव णिरंजणे, विगयरागदोसमोहे, कुम्पो विव इंदिएसुगुत्ते, जच्चकंचणगं व जायरूवे, पोक्खरपत्तं व णिरुवलेवे, चंदो विव सोमभावयाए, सूरुोव्व दित्ततोए, अचले जह मंदरे गिरिवरे, अक्खोभे सागरोव्व थिमिए, पुंढवी व्व सव्व-फाससहे, तवसा च्चिय भासरासि-छण्णिव्व जायतेए, जलियहुयासणेविव तेयसा जलंते, गोसीसं चंदणं विव सीयले सुगंधे य, हरयो विव समियभावे, उग्घोसियसुणिम्मलंव्व आर्यंसमंडलतलं व्व पागडभावेण सुद्धभावे, सोंडीरे कुंजरोव्व, वसभेव्व जायथामे सीहेव्व जहा मियाहिवे होइ दुप्पधरिसे, सारयसलिलंव्व सुद्धहियये, भारंडे चेव अप्पमत्ते, खग्गिविसाणं व्व एगजाए, खाणुं चेव उड्डुकाए, सुण्णागारेव्व अपडिकम्मे, सुण्णागारावणस्संतो णिवायसरणप्पदी-वज्झाणमिव्व णिप्पकंपे, जहा खुरो चेव एगधारे, जहा अही चेव एगदिट्ठि, आगासं चेव णिरा-लंबे, विहगे विव सव्वओ विप्पमुक्के, कयपरणिलए जहा चेव उरए, अप्पडिबद्धे अणिलोव्व, जीवोव्व अपडिहयगई।

शब्दार्थ - सुविमलवरकंसभायणं व - निर्मल, उत्तम, कांस्य भाजन के समान, **मुक्कतोए -** स्नेह-बंधन से रहित, **संखे विव णिरंजणे -** शंख के समान निर्मल, **विगयरागदोसमोहे -** राग, द्वेष और मोह से दूर, **कुम्भो विव इंदिएसुगुत्ते -** कछुए के समान इन्द्रियों के विषय में गुप्त, **जच्चकंचगंगं व जायरूवे -** जाति सम्पन्न सुवर्ण के समान अपने शुद्ध स्वरूप में रहे, **पोक्खरपत्तं व णिरुवलेवे -** पद्म-पत्र के समान भोग के लेप से रहित, **चंदो विव सोमभावयाए -** चन्द्र के समान सौम्य भाव वाले, **सुरोव्व दित्ततेए -** सूर्य के जैसे तपस्या के तेज वाले, **अचले जह मंदरे गिरिवरे -** मेरु पर्वत के समान अचल, **अक्खोभे सागरो व्व थिमिए -** क्षोभ-रहित सागर के समान शान्त-भाव वाले, **पुढवी व्व सव्व-फाससहे -** पृथ्वी के समान सभी स्पर्शों को सहने वाले, **तवसा च्चिय भासरसि छण्णिणव्व जायतेए -** भस्म की ढेर से ढकी हुई तपस्या रूपी अग्नि के सदृश-बाहर से म्लान परन्तु अन्दर से प्रदीप्त, **जलियहुयासणेविवतेयसाजलंते -** जलती हुई अग्नि के समान ज्ञान रूप तेज से जलते हुए, **गोसीसचंदणं विव सीयले -** गोशीर्ष-चन्दन के समान शीतल और शील रूपी सुगन्ध वाले, **हरयो विव सभियभावे-सरोवर के समान समभाव वाले, उग्घोसिय सुणिम्मलं व्व आयसमंडलतलं व्व -** अच्छा घिसा हुआ अत्यन्त निर्मल दर्पण के तल के समान, **पागडभावेण सुद्धभावे -** प्रकट-निष्कपट भाव से शुद्ध हृदय वाले, **सौंडीरे कुंजरोव्व -** हाथी के समान परीषह सैन्य के लिए शूर, **वसभेव्व जायथामे -** वृषभ के समान जात-स्थाम, **सीहेव्व जहा मियाहिवे -** मृगपति सिंह के समान, **होइ दुप्पधरिसे -** दुष्प्रधर्ष्य होता है, **सारय सलिलं व्व सुद्धहियए -** शरद् काल के पानी के समान शुद्ध हृदय वाला, **भरंडे चेव अप्पमत्ते -** भारंड पक्षी के समान प्रमाद रहित, **खग्गिसाणं व एगजाए -** गेंडे के सींग के समान एक भूत, **खाणुं चेव उड्डुकाए -** खूटे के समान कायोत्सर्ग में शरीर को स्थिर खड़ा रखने वाले, **सुण्णागारेव्व अप्पडिकम्पे -** शून्य घर के समान देह की संभाल नहीं करने वाले, **सुण्णागारावणस्संतो -** शून्य-घर में वर्तमान-रहा हुआ, **णिवायसरणप्पदीवञ्जाणामिव णिप्पकंप्ये -** वायु-रहित घर में दीप की बत्ती की तरह अकम्प, **जहा खुरो चेव एगधारे -** छुरे के जैसे एकधार वाले, **जहा अही चेव एगदिड्डी -** सर्प के जैसे मोक्ष साधन रूप एक दृष्टि वाले, **आगासं चेव णिरालंबे -** आकाश के समान बाह्य आलम्बन-रहित, **विहगे विव सव्वओ विप्पमुक्के -** विहग-पक्षी के समान सबसे विमुक्त, **कयपरणिलए जहा चेव उरए -** सर्प के समान पर गृह में रहने वाला, **अपडिबद्धे अणिलोव्व -** वायु के समान प्रतिबंध रहित, **जीवोव्व अपडिहयगई -** जीव के समान अप्रतिहत गति वाले।

विवेचन - द्रव्य और भाव परिग्रह से रहित निर्ग्रन्थ महात्माओं के उदात्त चरित्र का वर्णन करने के बाद अब आगमकार, विविध उपमाओं से उपमित करते हुए इस सूत्र में उन महात्माओं की महानता बता रहे हैं।

१. **सुविमलवरकंसभायणं व मुक्कतोए -** कांस्य-पात्र के समान निर्लिप्त शुद्ध। जिस प्रकार कांसी के पात्र पर पानी नहीं ठहरता और उस पर से फिसल जाता है, उसी प्रकार मुनिराज भी स्नेह-

रहित होते हैं। मोह को जीतने के लिए स्नेह-रहित होना आवश्यक है। स्नेही जीव, निर्मोही नहीं हो सकता और बिना मोह नष्ट हुए वीतरागता भी प्राप्त नहीं हो सकती।

२. **संखे विष णिरंजणे** - शंख के समान निरंजन-शुद्ध। राग-द्वेष-मोह से रहित। जिस प्रकार शंख पर किसी भी प्रकार का दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता, उसी प्रकार संत भी राग-रंग से वंचित होते हैं। संसारियों और भौतिक वस्तुओं तथा अपने शरीर के प्रति भी उनका राग नहीं होता।

३. **कुम्भो विष इंदियेसु गुत्ते** - कूर्म (कछुए) के समान गुप्तेन्द्रिय। जिस प्रकार कछुए के अंगोपांग की रक्षा उसकी ढाल करती है, उसी प्रकार चारित्र्य रूपी ढाल के नीचे उन पवित्रात्माओं की इन्द्रियाँ सुरक्षित रहती हैं। मन पर अधिकार कर लेने से उनकी इन्द्रियाँ भी उनके अधीन रहती हैं।

४. **जच्चकंचणगं व जायरूवे** - उत्तम स्वर्ण के समान शुद्ध-दोष रहित। जिस प्रकार सोने को कीट नहीं लगता और वह सुन्दर दिखाई देता है, उसी प्रकार निर्मोही संत पर कर्म रूपी कीट नहीं चढ़ता। उनका चारित्र्य सोने के समान निर्मल एवं निष्कलंक रहता है।

५. **पोक्खर पत्तं व णिरुवलेवे** - पुष्कर पत्र=पद्मदल के समान निर्लिप्त। जिस प्रकार कमल का पत्र, कीचड़ से उत्पन्न होकर भी कीचड़ से अलिप्त रहता है। कीचड़ तो ठीक, पर पानी से भी लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार उन महर्षियों की उत्पत्ति विषय-विकार रूपी कीचड़ से होते हुए भी, वे उस कीचड़ से अलिप्त-भिन्न रहते हैं। माता-पितादि के स्नेह रूप पानी से भी वे ऊपर उठ चुके हैं अर्थात् कमल-पत्र के समान वे विषय-विकार रूपी कीचड़ और स्नेह रूपी पानी से ऊपर उठ कर अलिप्त हो चुके हैं।

६. **चंदो विष सोमभावयाए** - चन्द्रमा के समान सौम्य भाव वाले। जिस प्रकार चन्द्रमा सौम्य और शीतल होता है। उसका शीतल प्रकाश, रात्रि को सुहावनी बना देता है। गरमी के दिनों में सूर्य के भीषण ताप से जब हम घबड़ा जाते हैं, तब चन्द्रमा के शीतल प्रकाश वाली रात्रि हमें बहुत ही शान्ति देती है, उसी प्रकार उन अनगार भगवन्तों की पवित्र लेश्या-शुभ परिणाम सभी जीवों के लिए सुख-दायक होते हैं। संसार के त्रि-ताप से तपे हुए घबराए हुए और झुलसे हुए जीवों के लिए वे संतप्रवर, चन्द्रमा के समान शान्ति प्रदायक हैं। उनके चेहरे और वाणी से झरती हुई सुधा में सराबोर होकर भव्य प्राणी अनुपम शान्ति का अनुभव करते हैं।

अंधेरी रात में चन्द्रमा का प्रकाश, पथिकों के लिए आधारभूत होता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व एवं अज्ञान रूपी भाव अन्धकार से भरे हुए इस भयानक संसार में, उन शीतल स्वभाव वाले संतों के ज्ञान का शीतल प्रकाश, मोक्ष-मार्ग के पथिकों के लिए शान्तिदायक होता है।

७. **सुरोव्व दित्तेए** - सूर्य के समान दीप्ततेज। जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से प्रकाशित हो रहा है, उसी प्रकार वे तपोधनी महात्मा अपने तप के तेज से देदीप्यमान होते हैं। तपस्या के प्रभाव से दुर्बल और निर्बल होते हुए भी उनका आत्म-तेज बढ़ जाता है और उस आत्म-तेज के प्रभाव से तपस्वी के चेहरे का तेज भी बढ़ता है।

सूर्य का प्रकाश अन्धकार को मिटाता है, उसी प्रकार उन ज्ञानी महात्माओं का ज्ञान प्रकाश भी अज्ञान रूपी अन्धकार को मिटाने वाला है।

८. **अचले जह मंदरे गिरिवरे** - नगाधिराज सुमन्दर के समान अचल। जिस प्रकार सुमेरु पर्वत भयंकर बवण्डर से भी कम्पित नहीं होता और स्थिर रहता है, उसी प्रकार वे दृढ़ संयमी अनगारसिंह, संयम साधना में उपस्थित होते हुए भयंकर उपसर्ग से भी नहीं डिगते और संयम में अधिकाधिक स्थिर रहकर मृत्यु का भी सामना करते रहते हैं। उन्हें न तो अनुकूल (स्त्री एवं सत्कार) परीषह डिगा सकते हैं और न प्रतिकूल (रोगादि) परीषह डिगा सकते हैं। वे परीषहों और उपसर्गों के सामने धीर-वीर होकर डट जाते हैं।

९. **अकखोभे सागरोव्य थिमिए** - अक्षुब्ध-शान्त समुद्र के समान स्तिमित-निस्तरंग। जिस प्रकार समुद्र गम्भीर होता है, वह क्षुद्र नाले की तरह छलक कर खाली नहीं हो जाता उसी प्रकार निर्ग्रन्थ अनगार भी उदार और गम्भीर होते हैं। वे अनुकूल निमित्तों से प्रसन्न नहीं होते और प्रतिकूल निमित्तों से खिन्न नहीं होते तथा अनार्यों और म्लेच्छजनों द्वारा दिये हुए कष्टों को शान्तिपूर्वक सहन करते हैं। उनकी गम्भीरता को भंग करने की शक्ति किसी देव-दानव में भी नहीं है। वे 'नागश्री' का दिया हुआ हलाहल विष के समान प्राणघातक तुम्बीपाक भी शान्तिपूर्वक खा सकते हैं और सोमिल द्वारा सिर पर आग भी रखवा सकते हैं।

१०. **पुढवीव्व सव्व फाससहे** - पृथ्वी के समान सभी स्पर्श सहने वाले। जिस प्रकार पृथ्वी सर्दी, गर्मी, कूड़ा-करकट, विष्ठा, मूत्र तथा हल-कुदालादि के प्रहार सहती हुई भार-वहन करती है, उसी प्रकार निर्ग्रन्थ मुनिराज भी अपने को वन्दना करने वालों तथा गाली देने और प्रहार करने वालों के प्रति समभाव रखते हुए सभी प्रकार के कष्टों को सहन करते हैं।

११. **तवसा च्विय भासरासि छणिव्व जायतेए** - भस्म के ढेर से आच्छादित अग्नि के समान। राख में दबी हुई अग्नि ऊपर से दिखाई नहीं देती। ऊपर तो केवल राख ही दिखाई देती है, किन्तु उसके नीचे जाज्वल्यमान प्रकाश देने वाली अग्नि है। ऊपर राख आ जाने से अग्नि का तेज नष्ट नहीं होता। उसी प्रकार तपस्वी संत का शरीर दुर्बल, रूक्ष और निस्तेज होते हुए भी उस तेजस्वी आत्मा में तप का तेज विद्यमान रहता है। अग्नि पर राख आ जाने से उसका तेज बाहर नहीं निकलता भीतर ही दबा रहता है, फिर उन भी उन तपोधनी महात्माओं का आत्म-तेज, दुर्बल देह पर भी झलकता है। प्रातः स्मरणीय श्री धन्ना अनगार का शरीर, तपस्या की भट्टी में जल कर निस्तेज हो गया था किन्तु उनका आत्म-तेज इतना बढ़ गया था कि उसकी आभा, कृश शरीर पर भी प्रकट हो रही थी।

१२. **जलियहुयासणे विव तेयसा जलंते** - घृत-सिंचित अग्नि के समान तप के तेज से जाज्वल्यमान जिस प्रकार घृत से सिंचन की हुई अग्नि विशेष रूप से जाज्वल्यमान होती है, उसी प्रकार वे उत्तम श्रमणवर, ज्ञान और तपस्या के तेज से देदीप्यमान होते हैं।

अग्नि अपने को और दूसरों को प्रकाशित करती है वह किसी दूसरे से प्रकाशित नहीं होती, उसी प्रकार तपोधनी निर्ग्रन्थ अपने ज्ञान और तप के प्रभाव से स्वयं देदीप्यमान होकर दूसरे भव्य प्राणियों को भी प्रभावित करते हैं। उन्हें कोई दूसरा प्रभावित नहीं कर सकता।

१३. गोसीसचंदणं विव सीयले सुगंधे य - गोशीर्ष-चन्दन के समान शीतल और सुगन्धयुक्त। गोशीर्ष चन्दन शीतल और सुगन्धित होता है। उसके विलेपन से शरीर शीतल और सुगन्धित होता है। उसी प्रकार उत्तम मुनिराज, कषायान्नि के शान्त हो जाने से शीतल होते हैं और उनके पवित्र चारित्र की सुयश रूपी मिष्ट सुगन्ध चारों ओर फैलती है। तपस्वी होते हुए भी वे स्वभाव से उग्र नहीं होते। तपस्या की पवित्र अग्नि में कषाय का कचरा भस्म हो जाता है। उनके आत्म-तेज का प्रकाश, उष्ण एवं ज्वलन गुण वाला नहीं, किन्तु चन्द्रमा के समान शीतल प्रकाश देता है। उपासकों में उनके चारित्र की बहुत प्रशंसा होती है। यह उनके चारित्र की सुगन्ध का प्रभाव है।

१४. हरयो विव समियभावे - सरोवर के समान शांत। जिस प्रकार हवा के नहीं चलने से सरोवर का जल स्थिर और सम रहता है, उसमें लहरें नहीं उठतीं। उसी प्रकार कषायें उपशांत हो जाने से उन महात्माओं में समत्व आ जाता है। परिस्थिति की विषमता उन्हें उत्तेजित नहीं कर सकती। उनके परिणामों में विचलितता नहीं आती।

सरोवर के उदाहरण में एक चौभंगी भी बताई जाती है। यथा -

१. कुछ सरोवर ऐसे भी हैं कि उनमें से पानी निकल कर बाहर बहता है, किन्तु बाहर से भीतर नहीं आता। उसी प्रकार त्यागी-तपस्वी मुनिराज की ज्ञान-गंगा बाहर बहती रहती है। वे दूसरों को ज्ञानामृत पिलाते हैं, किन्तु स्वयं किसी से ज्ञान ग्रहण नहीं करते। अपने विशिष्ट क्षयोपशम से पूर्ण श्रुतज्ञान प्राप्त करके वे श्रुतकेवली होते हैं या अपने समय के बहुश्रुत एवं गीतार्थ होते हैं। वे दूसरों को ज्ञानदान देते हैं, परन्तु दूसरे से लेते नहीं।

२. समुद्र में बाहर से पानी आता है, परन्तु बाहर नहीं जाता। उसी प्रकार कई मुनि ऐसे होते हैं कि वे ज्ञान ग्रहण करते हैं, परन्तु किसी को देते नहीं। सतत ज्ञानाभ्यास में ही लगे रहते हैं।

३. कुछ सरोवर ऐसे भी होते हैं कि जिनमें बाहर से पानी आता भी है और बाहर जाता भी है। उसी प्रकार कई मुनिवर, ग्यारह अंगों का ज्ञान दूसरे मुनियों को भी पढ़ाते हैं और स्वतः भी ज्ञान पढ़ते हैं।

४. ढाई द्वीप के बाहर ऐसे सरोवर हैं कि जिनमें में न तो पानी बाहर से सरोवर में आता और न सरोवर में से बाहर निकलता। उसी प्रकार कई अनगार भगवंत, जिनकल्प धारण करके विचरते हैं। कई श्रुत पढ़ लेने के बाद स्वाध्याय, ध्यान और तपादि में लीन रहते हैं। वे न तो नया ज्ञान पढ़ते हैं और न किसी को पढ़ाते हैं।

१५. उग्घोसिय सुणिम्मलं च्च आयंसमंडलतलं च्च गगडभावेण सुद्धभावे - घिस कर कोमल बनाये हुए निर्मल दर्पण के समान प्रकट एवं शुद्ध भाव वाले। जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में जैसा रूप

होता है, वैसा ही दिखाई देता है, उसमें अन्तर नहीं आता। उसी प्रकार निर्ग्रन्थ मुनिवरों का हृदय स्वच्छ होता है-भीतर और बाहर एक समान। उनमें छुपाने जैसी कोई बात ही नहीं होती। उनके सरल एवं निष्कपट हृदय का दर्शन, उनके चेहरे, उनकी वाणी और उनकी चर्या से ही हो जाता है।

१६. सौंडीर कुंजरोव्व - गजराज के समान शूर। जिस प्रकार हाथी युद्ध में डट जाता है और भयंकर घाव लगने पर भी पीछे नहीं हटता, उसी प्रकार वे शूरवीर मुनिवर भी परीषह रूपी सेना के सामने डट जाते हैं। वे विपत्तियों से घबड़ा कर पीछे पांव नहीं रखते।

१७. वसभे व्व जायथामे - वृषभ के समान भारक्षम। जिस प्रकार मारवाड़ का धोरी वृषभ, उठाये हुए भार को उत्साहपूर्वक यथास्थान पहुँचाता है, उसी प्रकार वे उत्तम श्रमण स्वीकार किये हुए संयम का, चढ़ते हुए भावों से यथाविधि जीवन पर्यन्त निर्वाह करते हैं। उनके परिणामों में शिथिलता नहीं आती। वे गलियार बैल जैसे नहीं होते, अपितु जातिवन्त वृषभ के समान होते हैं।

१८. सीहेव्व जहा मियाहिवे होइ दुप्पहरिसे - मृगाधिपति सिंह के समान दुष्प्रधर्ष। जिस प्रकार सिंह किसी भी वनचर पशु से पराजित नहीं होता, उसी प्रकार वे श्रमण-सिंह न तो परीषहों से पराजित होते हैं, न मिथ्यात्व और अज्ञान के आक्रमण से भयभीत होते हैं। पाखण्डियों के प्रहार भी उन्हें विचलित नहीं कर सकते। वे सिंह के समान निर्भीक होकर अपनी संयम-यात्रा को आगे बढ़ाते ही रहते हैं।

१९. सारय सलिलं व सुद्धहियए - शरद ऋतु के पानी के समान स्वच्छ एवं निर्मल हृदयों। जिस प्रकार वर्षा के समाप्त हो जाने के बाद शरद ऋतु में जल निथर कर निर्मल हो जाता है, उसमें वर्षा के कारण बह कर आई गंदगी और कूड़ा-करकट नहीं रहता, उसी प्रकार संसार-त्यागी श्रेष्ठ श्रमणवरों का हृदय भी निर्मल रहता है। उदय-भाव के प्रवाह के कारण संसारावस्था में विषय-विकार रूपी आई हुई गंदगी, उन संतप्रवरों के हृदय से दूर होकर शुद्धता आ जाती है। उनके पवित्र हृदय में अप्रशस्त राग-द्वेष के लिए स्थान नहीं रहता है। जिस प्रकार शरीर का मैल, निर्मल जल से दूर होता है, उसी प्रकार वे निर्मल आत्माएं, भव्यात्माओं के आत्म-मैल को दूर करने में सहायक होती हैं।

२०. भारंडे चेव अप्पमत्ते - भारण्ड पक्षी के समान अप्रमत्त। शास्त्रों में आया है कि भारंड पक्षी आकाश में ही उड़ता रहता है। जब वह आहार के लिए पृथ्वी पर आता है, तो पूरी सावधानी के साथ अपने पंखों को फैला कर ही बैठता है और जहाँ खतरों की आशंका हुई कि फौरन उड़ जाता है। उसी प्रकार निर्ग्रन्थ-श्रमण भी अपने ज्ञान-ध्यान रूपी धर्मोद्धान में ही विचरते हैं। वे गृहस्थों के संसर्ग में नहीं रहते। जब उन्हें आहारादि की आवश्यकता होती है, तभी गृहस्थों के घरों में जाते हैं और कार्य होते ही शीघ्र लौट आते हैं। गृहस्थों के यहाँ वे अप्रमत्त-सावधान होकर यह ध्यान रखते हैं कि कहीं उनकी पवित्र साधुता एवं विशुद्ध समाचारी में कोई दोष नहीं लग जाये। जहाँ दोष की आशंका होती है, वहाँ से वे उसी समय चल देते हैं। इस प्रकार वे अपनी संयम-साधना में सदा सावधान रहते हैं।

२१. खगिगविसाणं च्व एगजाए - गेंडे के सींग के समान एकाकी। जिस प्रकार गेंडे के एक ही सींग होता है। वह उस एक ही सींग से अपनी रक्षा करता है, उसी प्रकार निर्ग्रन्थ-अनगार भी राग-द्वेष से रहित एवं आत्मनिष्ठ होकर विचरते हैं। उनका आत्मनिष्ठा रूपी एकाकीपन, रक्षक बन कर उनकी विजय-कूच को आगे बढ़ाता है।

२२. खाणुं च्व उडुकाए - टूठ के समान खड़े रहे हुए। जिस प्रकार सूखे हुए वृक्ष का टूठ, निश्चल खड़ा रहता है। हवा के प्रचण्ड वेग से भी वह नहीं हिलता। उसी प्रकार कायोत्सर्ग में अडोल खड़े हुए मुनिराज, भयंकर उपसर्ग आने पर भी निश्चल और अडिग ही रहते हैं।

२३. सुण्णागारे च्व अप्पडिकम्मे - शून्य घर के समान शरीर-संस्कार से रहित। जिस प्रकार सूना और वीरान घर, अस्वच्छ रहता है। उसकी सफाई नहीं होती। उसी प्रकार आत्मार्थी मुनिवर, अपने शरीर की सार-संभाल नहीं करते। देह की सफाई-सजाई की ओर वे ध्यान ही नहीं देते। उनका ध्यान आत्मा की सफाई की ओर रहता है। वे आत्मा को अधिकाधिक स्वच्छ करने में लगे रहते हैं। देह-दृष्टि का तो वे गृह-त्याग के साथ ही त्याग कर देते हैं।

२४. सुण्णागारावणसंतो - णिवायसरणप्पदीवञ्जाणमिव णिप्पकंपे - शून्य और वायुरहित बन्द गृह में रहे हुए दीपक की तरह अकम्पित। जिस प्रकार वायु-रहित स्थान में दीपक की लौ बुझती नहीं और निष्कम्प होकर जलती रहती है, उसी प्रकार उत्तम संत, शून्य घर आदि में ध्यान धरकर निश्चल खड़े रहते हैं। वे परीषहों के उत्पन्न होने पर भी नहीं डिगते।

२५. खुरो च्व एगधारे - उस्तरे की एक धार के समान। जिस प्रकार उस्तरे के एक ही ओर धार होती है, वह एक ओर से ही चलता है, उसी प्रकार निर्ग्रन्थ अनगार की प्रवृत्ति भी एक उत्सर्ग-मार्ग पर ही होती है। वे अपवाद का आश्रय ही नहीं लेते, क्योंकि अपवाद मार्ग, कमजोरी-विवशता से अपनाया जाता है। उत्तम श्रमण मृत्यु को स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु अपने मार्ग से पीछे हटना स्वीकार नहीं करते।

२६. अही च्वेव एगदिट्ठी - सर्प के समान एक दृष्टि वाले। जिस प्रकार सर्प अपने लक्ष्य की ओर ही दृष्टि रखता है। अलग-बगल की ओर नहीं देखता, उसी प्रकार सुसाधु केवल मोक्ष की ओर ही दृष्टि रख कर आराधना करते रहते हैं। उनका ध्यान मोक्ष की ओर ही रहता है। देव अथवा मनुष्य सम्बन्धी सुख या संसार की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता।

२७. आगासं च्वेव णिरालंबे - आकाश के समान आलम्बन-रहित। अन्य द्रव्यों के लिए आकाश आधारभूत है, किन्तु आकाश के लिए कोई आधार नहीं है। वह स्वतः अपना और दूसरों का आधार है। इसी प्रकार श्रेष्ठ मुनिवर भी अपने ही ज्ञान, दर्शन और चारित्र के आश्रय * से ही मोक्ष-मार्ग में विचरण करते हैं।

* "तत्थ आलम्बणं णाणं दंसणं चरणं तहा"-(उत्तरा० २४)

२८. विहगे विव सव्वओ विप्पमुक्के - पक्षी के समान सभी से सर्वथा विमुक्त। जिस प्रकार पक्षियों के आकाश-विहार में कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। वे स्वेच्छा से जहाँ चाहे चले जाते हैं, उसी प्रकार अप्रतिबद्ध विहारी अनगार भी क्षेत्र विशेष के प्रतिबन्ध से रहित होते हैं। वे अपनी मुनि-मर्यादानुसार विचरते रहते हैं। स्वजनादि अथवा स्थान या क्षेत्रमोह के बन्धन से वे मुक्त होते हैं। अनुयायियों का प्रेम भी उन्हें नहीं रोक सकता। जब तक जंघाबल साथ देता है, तब तक वे अपने कल्प के अनुसार बिना किसी प्रतिबन्ध के विहार करते रहते हैं।

२९. कायपरिणलए जहा चेष उरए - सर्प के समान पर-गृह में रहने वाले। जिस प्रकार सर्प अपने रहने का घर (बिल) नहीं बनाता। वह दूसरे के बनाये हुए बिल में रहता है, उसी प्रकार गृहत्यागी अनगार भगवंत भी अपने लिए घर का निर्माण नहीं करते। गृहस्थों ने अपने लिए जो घर बनाए हैं, उसी में वे ठहरते हैं। सर्प तो बिल बनाने वाले की इच्छा के बिना, उसे दुःखी करके-जबरदस्ती कब्जा कर लेता है। किन्तु अनगार भगवंतों में यह विशेषता रही हुई है कि वे किसी पर बलजबरी नहीं करते। किसी का दिल नहीं दुखाते। वे प्रसन्नता पूर्वक दिये हुए प्रासुक स्थान का उपयोग करते हैं और इसी प्रकार निर्दोष आहारादि ग्रहण करते हैं।

३०. अपडिबद्धे अणिलोव्व - वायु के समान बन्धन-रहित। जिस प्रकार वायु एक स्थान पर नहीं ठहरता। उसका कोई नियत स्थान ही नहीं होता, उसी प्रकार निर्ग्रन्थ-श्रमण के भी कोई घर नहीं होता। वे एक स्थान पर नहीं रह कर ग्रामानुग्राम विचरते हैं। वे किसी क्षेत्र, संघ अथवा व्यक्ति विशेष से बंधे हुए नहीं होते। वायु, गरीब और अमीर सब को स्पर्श करता है, उसी प्रकार वे निष्पृही संत, गरीब-अमीर का भेद रखे बिना सबको धर्मोपदेश देते हैं।

३१. जीवो व्व अपडिहय गई - जीव के समान अप्रतिहत गति वाले। जिस प्रकार पर-भव जाते हुए जीव की गति किसी से भी नहीं रुक सकती, उसी प्रकार वे महात्मा जिस दिशा की ओर विहार करते हैं, उस दिशा में चले ही जाते हैं। शहर, गाँव, अच्छे-बुरे क्षेत्र, उनकी गति अथवा दिशा को मोड़ नहीं सकते। यदि मार्ग में भयानक वन आ जाये अथवा आहारादि की अनुकूलता नहीं हो, तो वे इस प्रतिकूलता से भी नहीं रुक सकते और आर्यदेश में विचरते रहते हैं। वे आत्मिक पथ-मोक्ष मार्ग पर बिना रुके आगे बढ़ते रहते हैं।

गामे गामे एगरायं णयरे णयरे य पंचरायं दुइज्जंते य जिइंदिए जियपरीसहे णिब्भओ विऊ सच्चित्ता-चित्त-मीसगेहिं दव्वेहिं विरायं गए, संचयाओ विरए, मुत्ते, लहुए, णिरवकंखे, जीवियमरणासविप्पमुक्के णिस्संधि णिव्वणं चरित्तं धीरे काएण फासयंते सययं अज्झप्पज्झाणजुत्ते, णिहुए, एगे चरेज्ज धम्मं।

शब्दार्थ - गामे गामे एगरायं - गाँव-गाँव में एक रात, णयरे-णयरे य पंच रायं - नगर-नगर में पांच रात, दुइज्जंते य - विचरता हुआ, जिइंदिए - जितेन्द्रिय, जियपरीसहे - परीषहों को जीतने वाला,

णिष्प्रओ - निर्भय, विक्र - विद्वान्, सच्चित्ताचित्तमीसगेहिं दव्वेहिं - सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यों से, विरायं गए - विरागता प्राप्त, संचयाओ तिरए - संग्रह से दूर, मुत्ते - मुक्त, लहुए - लघु-हल्का, णिरवकंखे - आकांक्षा रहित, जीवियमरणासविप्पमुक्के - जीवन-मरण की आशा से दूर, णिस्संधि- णिव्वणं चरित्तं - सन्धि-चारित्र परिणाम के विच्छेद से रहित, धीरे - धीर, काएण फासयंते - शरीर से पालन करता हुआ, सययं - सदा, अङ्गप्पझाणजुत्ते - अध्यात्म ध्यान से युक्त, णिहुरा - दृढ़ता पूर्वक, एग - राग-द्वेष रहित होकर एकाकी, चरेज्ज धम्मं - धर्म का आचरण करे।

विवेचन -

गामे गामे एगरायं णयरे णयरे पंचरायं - गांवों में एक रात और नगरों में पांच रात। इस पाठ को व्याख्याकार ने भिक्षु प्रतिमा वाले महात्मा से सम्बन्धित बतलाया है। किन्तु प्रतिमाधारी और जिनकल्पी तो शेषकाल में दो रात्रि से अधिक नहीं ठहरते (दशाश्रुतस्कन्ध)। अतः यह पाठ स्थविरकल्पी के विषय में होना चाहिए और रात्रि का अर्थ - एक वार से लगा कर उसी वार (सप्ताह) तक एक रात्रि मानने की धारणा से पांच रात्रि का मास-कल्प हो जाता है। आगे ज्ञानी कहे वही ठीक है।

इमं च परिग्रहवेरमण-परिरक्खणद्वयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभदं सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाणं विउवसमणं।

शब्दार्थ - इमं च - इस, परिग्रहवेरमण-परिरक्खणद्वयाए - परिग्रह-त्याग व्रत की रक्षा के लिए, पावयणं भगवया सुकहियं - भगवान् ने उत्तम प्रकार से प्रवचन कहा, अत्तहियं - आत्महित करने वाला, पेच्चाभावियं - पर-भव में उत्तम फल देने वाला, आगमेसिभदं - भविष्य में कल्याणकारी, सुद्धं - शुद्ध, णेयाउयं - न्याय युक्त, अकुडिलं - कुटिलता-रहित-सरल, अणुत्तरं - श्रेष्ठ, सव्वदुक्खपावाणं विउवसमणं - समस्त पाप और दुःख को उपशांत करने वाला।

भावार्थ - इस परिग्रह-त्याग व्रत की सुरक्षा के लिए भगवान् ने उत्तम प्रवचन-उपदेश दिया है। यह प्रवचन आत्महितकारी है, परभव में उत्तम फल देने वाला है, भविष्य के लिए कल्याणकारी है, शुद्ध है, न्याययुक्त है, सरल है, उत्तमोत्तम है और सभी प्रकार के पाप और दुःख का शमन करने वाला है।

अपरिग्रह व्रत की पांच भावनाएं

प्रथम भावना-श्रोत्रेन्द्रिय-संयम

तस्स इमा पंच भावणाओ चरिमस्स वयस्स होंति परिग्रह-वेरमण-परिरक्खणद्वयाए। पढमं सोइंदिणं सोच्चा सद्दाइं मणुण्णभद्दाइं। किं ते? वरमुरय-मुइंग-पणव-ददुदुर-कच्छभि-वीणा-विपंची-वल्लयि-वद्धीसग-सुघोस-णंदि-

सूसरपरिवाइणि-वंस-तूणग-पव्वग-तंती-तल-ताल-तुडिय-णिग्घोसगीय-वाइयाइं ।
 णड-णट्टग-जल्ल-मल्लग-मुट्टिग-वेलंबग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-
 मंख-तुणइल्ल-तुंबवीणिय-तालायर-पकरणाणि य बहुणि महरसरगीय-सुस्सराइं कंची-
 मेहला-कलाव-पत्तरग-पहेरग-पायजालग-घंटिय-खिंखिणि-रयणोरुजालिय-छुदिय-
 णेउर-चलण-मालिय-कणग-णियल-जालभूसणसद्दाणि, लीलचंकम्ममाणानूदीरियाइं
 तरुणीजणहसिय-भणिय-कलरिभिय-मंजुलाइं गुणवयणाणि व बहुणि महरजण-
 भासियाइं अण्णोसु य एवमाइएसु सद्देसु मणुण्णभद्दएसु ण तेसु समणेण-सज्जियव्वं,
 ण रजियव्वं, ण गिज्जियव्वं ण मुज्जियव्वं ण विणिग्घायं आवजियव्वं, ण लुभियव्वं
 ण तुसियव्वं, ण हसियव्वं, ण सइं च मइं च तत्थ कुज्जा ।

शब्दार्थ - तस्स - उस, इमा - ये, पंच भावणाओ - पांच भावनाएं, चरिमस्स - अंतिम, वयस्स-
 व्रत की, होति - हैं, परिग्गहवेरमण-परिक्खणदुयाए - परिग्रह व्रत की रक्षा के लिए, पढमं -
 प्रथम, सोइंदिणं - श्रोत्रेन्द्रिय से, सोच्चा - सुन कर, सद्दाइं - शब्दों को, मणुण्णभद्दाइं - मनोज्ञ और
 प्रिय, किं ते - कौन-से हैं, वरमुरय - श्रेष्ठ मुरज, मुइंग - मृदंग, पणव - पणव-छोटा ढोल, ददुर -
 दर्दुर, कच्छभि - कच्छपी, वीणा - वीणा, विपंची - विपंची, वल्लयि - वल्लकी, वद्धीसग -
 बद्धीसक, सुधोसणंदि - उत्तम शब्द वाला नदी नामक बाजा, सूसरपरिवाइणि - श्रेष्ठ स्वर वाली
 परिवादिनी, वंस - वंशी, तूणग - तूणक, पव्वग - पर्वक, तंती - तंती, तल - हाथ की ताली, ताल -
 ताल, तुडियणिग्घोसगीय-वाइयाइं - इन बाजों के शब्दों को सुन कर, णड - नट, णट्टग - नर्तक,
 जल्ल - रस्ती बांध कर उस पर नाच करने वाले, मल्लग - मल्ल-पहलवान, वेलंबग - विदुषक, कहग-
 कथक, पवग - प्लवक, लासग - रास गाने वाले, आइक्खग - आख्यायक, लंख - लंख, मंख -
 मंख, तुणइल्ल - तूणइल्ल, तुंब - तुम्ब, वीणिय - वीणिक, य - और, तालायर-तालाचर, पकरणाणि-
 इनके द्वारा किये जाने वाले, बहुणि - अनेक प्रकार के, महरसरगीय-सुस्सराइं - मधुर स्वर वाले गीत
 आदि सुन कर, कंची - कांची, मेहला - मेखला-कन्दोरा, कलाव - कलापक-गले में पहनने का
 आभूषण, पत्तरग - प्रतारक-आभूषण विशेष, पहेरग - प्रहेरक, पायजालग - पैर में पहनने की पायल,
 घंटिय - घण्टिका, खिंखिणि - किंकिणी, रयणोरुजालिय - रत्नों का बना हुआ विशाल जालक,
 छुदिय - क्षुद्रिका, णेउर - नुपुर, चलणमालिय - चरणमालिका, कणगणियल - सोने के कड़े, जाल-
 एक आभूषण विशेष, भूसणसद्दाणि - इन सभी आभूषणों के शब्द सुन कर, लीलचंकम्माण -
 लीलापूर्वक गमन करने वाली युवतियों के, अणुदीरियाइं - कहे हुए शब्द, तरुणीजणहसिय - तरुण
 स्त्रियों का हास्य, भणिय - शब्द, कलरिभिय - मधुरता पूर्वक उच्चारण किये गये शब्द, मंजुलाइं -
 मंजुल शब्द, गुणवयणाणि - प्रशंसा के शब्द, महरजणभासियाइं - मधुर शब्दों को, एवमाइएसु -

इसी प्रकार के, अण्णोसु - दूसरे, मण्णुण्णभइएसुसहेसु - मनोज्ञ एवं मनोहर शब्द सुन कर, समणेण - साधु को, तेसु - उनमें, ण सज्जियव्वं - आसक्त न होना चाहिए, ण रज्जियव्वं - राग न करना चाहिए, ण गिण्णियव्वं - गृद्ध नहीं होना चाहिए, ण मुण्णियव्वं - मूर्च्छित नहीं होना चाहिए, ण विणिग्घायआवज्जियव्वं - अपनी और दूसरों की घात नहीं करनी चाहिए, ण लुभियव्वं - लुब्ध नहीं होना, ण तुसियव्वं - तुष्ट नहीं होना, ण हसियव्वं - हँसना नहीं, ण सइं - स्मरण नहीं करना, ण मइ कुज्जा - विचार नहीं करना, तत्थ - उनका।

भावार्थ - परिग्रह-त्याग नामक अन्तिम महाव्रत की रक्षा के लिए पांच भावनाएं हैं। उनमें में प्रथम भावना श्रोत्रेन्द्रिय-संयम है। प्रिय एवं मनोरम शब्द सुन कर उनमें राग नहीं करना चाहिए। वे मनोरम शब्द कैसे हैं? लोगों में बजाये जाने वाले मृदंग, पणव, दर्दुर, कच्छपी, वीणा, विपंची, वल्लकी, बद्धीसक, सुघोषा, नन्दी, उत्तम स्वर वाली परिवादिनी, बंसी, तूणक, पर्वक, तंती, तल, ताल। इन वाद्यों की ध्वनि, इनके निर्घोष और गति सुन कर इन पर राग नहीं करे तथा-नट, नर्तक, रस्सी पर किये जाने वाले नृत्य, मल्ल, मुष्टिक (मुक्के से लड़ने वाले) विलम्बक (विदूषक) कथक, प्लवक (उछलकूद करने वाले) लासक (रास गाने वाले) आख्यापक (कहानी सुनाने वाले) लंख (बांस पर खेलने वाले) मंख (चित्रपट बताने वाले) तूणइल्ल, तुम्बवीणिक और तालाचर से किये जाने वाले अनेक प्रकार के मधुर स्वर वाले गीत सुनकर आसक्त नहीं बने।

कांची, मेखेला, कलापक, प्रतारक, प्रहेरक, पायजालक (पायल) षण्टिका किंकिणी, रत्नजालक, क्षुद्रिका, नूपुर, चरणमालिका, कनकनिगड (स्वर्ण निर्मित भूषण) और जाल की शब्द-ध्वनि सुन कर तथा लीलापूर्वक गमन करती हुई युवतियों के आभूषणों के टकराने से उत्पन्न ध्वनि, तरुणियों के हास्य वचन, मधुर एवं मंजुल कण्ठ-स्वर, प्रशंसा युक्त मीठे शब्द और ऐसे ही अन्य मोहक शब्द सुन कर साधु, आसक्त नहीं बनें, रंजित नहीं होवे, गृद्ध एवं मूर्च्छित नहीं बने, स्व-पर घातक नहीं होवे, लुब्ध और प्राप्ति पर-तुष्ट नहीं हो, न हंसे और उनका स्मरण तथा विचार भी नहीं करे।

विशेषण - प्रथम भावना में सूत्रकार ने श्रोत्रेन्द्रिय संयम का उपदेश दिया है। इनमें विविध वादिन्द्रों के स्वर, ताल, नृत्य-नाटकादि में होने वाली शब्द-ध्वनियाँ, गीत कथा-कहानी, रास, युवती स्त्रियों के मोहक कण्ठ-स्वर, आभूषणों के हिलने या परस्पर टकराने से उत्पन्न रणकारादि ध्वनि और हास्य-विनोदादि सुनने का निषेध किया है। यदि अकस्मात् वैसे शब्द सुनाई दे, तो उनमें प्रीति, राग एवं आसक्ति नहीं करने का उल्लेख किया है। इस भावना के उपरोक्त पूर्व-भाग में श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा होने वाले राग से बचने की शिक्षा दी गई है। आगे द्वेष-निवारण विधान किया जाता है।

पुणरवि सोइंदिण सोच्चा सहाइं अमण्णुणपावगाइं। किं ते? अक्कोस-फरुस-खिंसण-अवमाणण-तज्जण-णिब्भंछण-दित्तवयण-तासण-उक्कूजिय-रुण्ण-रडिय-कंदिय-णिग्घुट्टरसिय-कलुण-विलवियाइं अण्णोसु य एवमाइएसु सहेसु अमण्णुण-

पावएसु ण तेसु समणेण रूसियव्वं ण हीलियव्वं ण णिंदियव्वं ण खिसियव्वं ण छिंदियव्वं ण भिंदियव्वं ण वहेयव्वं ण दुग्गुञ्जावत्तियाए लब्भा उप्पाएउं एवं सोइंदिय-
भावणा-भाविओ भवइ अंतरप्पा मणुण्णाऽमणुण्ण सुब्भिदुब्भिराग-दोसप्पणिहियप्पा
साहू मणवयणकायगुत्ते संवुडे पणिहिइंदिए चरेज्ज धम्मं ।

शब्दार्थ - पुणरथि - फिर भी, सोइंदिएण - श्रोत्रेन्द्रिय से, सोच्चा - सुन कर, सदाइ - शब्दों को, अमणुण्णपावगाइ - अमनोज्ञ और पापकारी, किं ते - वे कौन से हैं, अवकोसफरुस - आक्रोशकारी और कठोर, खिसण - निन्दाजनक, अवमाणण - अपमान कारक, तज्जण - तर्जना रूप, णिब्भंछण - निर्भत्सना रूप, दित्तवयण - दीप्त-वचन, तासण - त्रास उत्पन्न करने वाले, उक्कूजिय - अव्यक्त शब्द, रुण्ण - रुदन का शब्द, रडिय - इष्ट-वियोग से उत्पन्न दीनतायुक्त शब्द, कंदिय - आक्रन्दनकारी शब्द, णिग्घुट्ट - निर्घोष रूप शब्द, रसिय - रसित-सूअर के समान शब्द, कलुण - करुणाजनक, विलायाइ - विलाप के शब्द, अण्णोसु - दूसरे, एवमाइसु - इसी प्रकार के, सद्दोसु - शब्दों को सुन कर, अमणुण्णपावएसु - अमनोज्ञ और पापकारी, तेसु - उनके विषय में, समणेणं - साधु को, ण रूसियव्वं - क्रोध नहीं करना चाहिए, ण हीलियव्वं - हीलना नहीं करनी चाहिए, ण णिंदियव्वं - निन्दा नहीं करनी चाहिए, ण खिसियव्वं - खिसना नहीं करनी चाहिए, ण छिंदियव्वं - छेदन नहीं करना चाहिए, ण भिंदियव्वं - भेदन नहीं करना चाहिए, ण वहेयव्वं - वध नहीं करना चाहिए, ण दुग्गुञ्जावत्तियाए लब्भा उप्पाएउं - न जुगुप्सा उत्पन्न करना उचित है, एवं - इस प्रकार, सोइंदिय भावणा - यह श्रोत्रेन्द्रिय की भावना है, अंतरप्पा - अंतरात्मा, भाविओ - भावित, भवइ - होता है, मणुण्णामणुण्णसुब्भिदुब्भिरागदोसप्पणिहियप्पा - मनोज्ञ और अमनोज्ञ तथा शुभ और अशुभ शब्द को सुन कर आत्मा में राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं होने दे, साहू - साधु, मणवयणकायगुत्ते - मन वचन और काया से गुप्त होकर, संवुडे-शुद्ध संयम वाला, पणिहिइंदिए-इन्द्रियों का निग्रह करता हुआ, चरेज्जधम्मं-धर्म का आचरण करे।

भावार्थ - इस प्रकार कानों से अरुचिकर लगने वाले अशुभ शब्द सुनाई दे, तो द्वेष नहीं करे। वे कटु लगने वाले शब्द कैसे हैं? आक्रोशकारी, कठोर, निन्दायुक्त, अपमानजनक, तर्जन, निर्भत्सना, दीप्त (कोपयुक्त) त्रासोत्पादक, अव्यक्त, रुदन (अश्रुपात) रटन (जोर से रोने रूप) आक्रन्दकारी, निर्घोष, रसित (सूअर की बोली के समान) कलुण (करुणाजनक) विलाप के शब्द और इसी प्रकार के अन्य अमनोज्ञ अशुभ शब्द सुनाई देने पर, साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए। ऐसे शब्दों की हीलना, निन्दा, खिसना भी नहीं करनी चाहिए। ऐसे अप्रिय शब्द, एवं शब्द करने वालों पर घृणा, छेदन, भेदन और वध नहीं करना चाहिए। यह श्रोत्रेन्द्रिय सम्बन्धी भावना है। इस भावना का यथातथ्य पालन करने से अन्तरात्मा प्रभावित होती है। शब्द मनोज्ञ हो या अमनोज्ञ, शुभ हो या अशुभ सुनाई दे, उनके प्रति राग-द्वेष नहीं करने वाला संवृत साधु, मन, वचन और काया से गुप्त होकर, इन्द्रियों का निग्रह करता हुआ दृढतापूर्वक धर्म का आचरण करे।

द्वितीय भावना-चक्षुरिन्द्रिय-संयम

बिडयं चक्खुइंदिण पासिय रूवाणि मणुण्णाइं भद्दाइं † सच्चित्ताचित्तमीसगाइं कट्ठे पोत्थे य चित्तकम्मे लेब्बकम्मे सेले य दंत-कम्मे य पंचहिं वण्णेहिं अणेग-संठाणसंठियाइं गंठिम-वेडिम-पूरिम-संघाइमाणि य मल्लाइं बहु विहाणि य अहियं णयणमणुसुहयराइं वणसंडे पव्वए य गामागरणयराणि य खुहिय-पुक्खरिणि-वावी-दीहिय-गुंजालिय-सरसरपंतिय सायर बिल-पंतिय खाइयणई-सर-तलाग-वप्पिणी-फुल्लुप्पल-पउमपरिमंडियाभिरामे अणेगसउणगण-मिहुण-वियरिए वरमंडव-विविह-भवण-तोरण-वेइय-देवकुल-सभा-प्पवा-वसह-सुकय-सयणासण-सीय-रह-सयड-जाण-जुग-संदण-णरणारिगणे य सोमपडिरूव-दरिसणिज्जे अलंकिय-विभूसिए पुव्वकयतवप्पभाव-सोहगसंपउत्ते णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्टिय-वेलंबग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंब-वीणिय-तालायर-पकरणाणि य बहूणि सुकरणाणि अण्णेसु य एवमाइएसु रूवेसु मणुण्णभद्दाएसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं ण रजियव्वं जाव ण सइं च मइं तत्थ कुज्जा ।

शब्दार्थ - बिडयं - द्वितीय, चक्खुइंदिण - चक्षु-इन्द्रिय से, पासिय - देख कर, रूवाणि - रूपों को, मणुण्णाइं - मनोज्ञ, भद्दाइं - मनोहर, सच्चित्ताचित्तमीसगाइं - सचित्त अचित्त और मिश्र, कट्ठे - काष्ठ, पोत्थे - पुस्तक या वस्त्र पर, चित्तकम्मे - चित्र कर्म में, लेब्बकम्मे - लेप से बनाये हुए, सेले य - पाषाण पर, दंतकम्मे - हाथी के दांत पर बने हुए, पंचहिं - पांच, वण्णेहिं - वर्णों वाले, अणेगसंठाणसंठियाइं - अनेक प्रकार के आकार वाले, गंठिम - माला के समान गुंथे हुए, वेडिम - गेंद की भांति वेष्टित किये हुए, पूरिम - चपड़ी-लाक्षादि भर कर बनाये हुए, संघाइमाणि - फूल आदि को एक दूसरे से मिला कर उनके समूह से बनाये हुए, मल्लाइं बहुविहाणि य - बहुत प्रकार के माला सम्बन्धी रूप, अहियं णयणमणुसुहयराइं - नेत्र तथा मन को अधिक सुखकारी, वणसंडे - वनखण्ड, पव्वए - पर्वत, गामागरणयराणि - ग्राम आकर तथा नगरों को, खुहिय - छोटा जलाशय, पुक्खरिणि-पुष्करणी, वाणी - बावड़ी, दीहिय - दीर्घिका, गुंजालिय - गुंजालिका, सर - सरोवर, सरपंतिय - सरोवरों की पंक्ति, सायर - सागर, बिलपंतिय - धातुओं की खानों की पंक्ति, खाइय - खाई, णई - नदी, सर - तालाब, वप्पिणी - नहर, फुल्लुप्पलपउम - विकसित उत्पल नील कमल और रक्त कमल, परिमंडियाभिरामे - उनकी शोभा बहुत बढ़ी हुई है, अणेगसउणगणमिहुणवियरिए - अनेक प्रकार की

† 'भद्दाइं' शब्द बीकानेर वाला प्रति में नहीं है।

पक्षी और उनके जोड़े क्रीड़ा कर रहे हैं, वरमंडव - उत्तम मण्डप, विविह - विविध प्रकार के, भवण - भवन, तोरण - तोरण, चेइय - चैत्य, देवकुल - देवकुल, सभा - सभा, प्यवा - प्याऊ, आवसह - परिव्राजकों के मठ, सुकयसयणासण - सुन्दर शय्या और आसन, सीय - पालकी, रह - रथ, सयड - शकट-गाड़े, जाण - यान, जुग्ग - युग्म, संदण - स्यन्दन, णरणारिगणे - स्त्री-पुरुषों के समूह, सोमपडिरूव-दरिसणिज्जे - जो सौम्य और दर्शनीय हों, अलंकिय-विभूसिए - अलंकृत और विभूषित हों, पुव्वकयतवप्पभाव-सोहगसंपउत्ते - जो पूर्वकृत तप के प्रभाव से मनुष्यों के द्वारा माननीय हों, णड - नट, णट्टग - नर्तक, जल्लमल्ल - जल्लमल्ल, मुट्टिय - मौष्टिक मल्ल, वेलंबग - विडम्बक, कहग - कथक, पवग - प्लवक, लासग - लासक, आइक्खग - आख्यायक, लंख - लंख, मंख - मंख, तुणइल्ल - तूणइल्ल, तुंबवीणि य - तुम्बवीणिक, तालयरपकरणाणि - तालचर आदि, बहुणि-विविध प्रकार के, सुकरणाणि - मनोहर खेल, अण्णेसु - दूसरे, एवमाइएसु - इसी प्रकार के, मणुण्णभइएसु - मनोज्ञ और मनोहर, रूवेसु - रूपों को, तेसु - उनमें, समणेणं - साधु को, ण सज्जियव्वं - आसक्त नहीं होना चाहिए, ण रजियव्वं - अनुरक्त नहीं होना चाहिए, जाव - यावत्, सई च मई - स्मरण और विचार, तत्थ - उनका, ण कुज्जा - नहीं करे।

भावार्थ - दूसरी भावना चक्षु-इन्द्रिय संवर है। सचित्त-स्त्री, पुरुष, बालक और पशु-पक्षी आदि, अचित्त-भवन, वस्त्राभूषण एवं चित्रादि, मिश्र-वस्त्राभूषण युक्त स्त्रीपुरुषादि के मनोरम तथा आह्लादकारी रूप आँखों से देख कर उन पर अनुराग नहीं लावे। काष्ठ, वस्त्र और लेप से बनाये हुए चित्र पाषाण और हाथी दाँत की बनाई हुई पांच वर्ण और अनेक प्रकार के आकार युक्त मूर्तियाँ देख कर मोहित नहीं बने। इसी प्रकार गूँथी हुई मालाएँ, वेष्टित किये हुए गेंद आदि चपड़ी लाख आदि भर कर और एक-दूसरे से जोड़ कर समूह रूप से बनाये हुए गजरे आदि और विविध प्रकार की मालाएँ देख कर आसक्त नहीं बने। नेत्र और मन को अत्यन्त प्रिय एवं सुख कर लगने वाले वनखंड, पर्वत, ग्राम, आकर, नगर, छोटे जलाशय, पुष्करिणी, बावड़ी, दीर्घिका, गुंजालिका, सरोवरों की पंक्ति, सागर, धातुओं की खानों की पंक्तियाँ, खाई, नदी, सरोवर, तालाब और नहर आदि तथा उत्पल-कमल, पद्म-कमल आदि विकसित एवं सुशोभित पुष्प, जिन पर अनेक प्रकार के पक्षियों के जोड़े क्रीड़ा कर रहे हैं, सजे हुए मण्डप, विविध प्रकार के भवन, तोरण, चैत्य, देवकुल, सभा, प्याऊ, मठ, सुन्दर शयन-आसन, पालकी, रथ, शकट, यान, युग्म, स्यन्दन, स्त्रीपुरुषों का समूह जो अलंकृत एवं विभूषित हों, सौम्य एवं दर्शनीय हों और पूर्वकृत तप के प्रभाव से सौभाग्यशाली तथा आकर्षक हों, जनमान्य हों, इन सबको देख कर, साधु उनमें आसक्त नहीं बने। इसी प्रकार नट, नर्तक, जल्लमल्ल मौष्टिक, विडम्बक, कथक, प्लवक, लासक, आख्यायक, लंख मंख, तूणइल्ल, तुम्बवीणिक और तालचर आदि अनेक प्रकार के मनोहर खेल करने वाले और इसी प्रकार के अन्य मनोहरी रूप देख कर साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए, न उसमें लीन होना चाहिए यावत् उन रूपों का स्मरण एवं चिन्तन भी नहीं करना चाहिए।

विवेचन - दूसरी भावना चक्षु-इन्द्रिय का विषय-रूपासक्ति का त्याग करना है। रूप आँखों का विषय है दृष्टि के सामने विविध प्रकार के रूप सहज ही आते रहते हैं। किन्तु सुन्दर एवं मनोहर रूपों को चाह कर देखना, देखने के लिए जाना और देख कर अनुरक्त होना-रूप-रंजित होना, इस पाँचवें महाव्रत को दूषित करना है। अतएव इस महाव्रत की रक्षा के लिए सुन्दरता पर किंचित् भी नहीं लुभाना चाहिए।

पुणरवि चक्खिदिण पासयिरूवाइं अमणुण्णपावगाइं । किं ते ? गंडि-कोडिक-कुणि-उयरि-कच्छुल्ल-पइल्ल-कुज्ज-पंगुल-वामण-अंधिल्लग-एगचक्खु-विणिहय-सप्पिसल्लग-वाहिरोगपीलियंविगयाणि मयगकलेवराणि सकिमिणकुहियं च दव्वरासिं अण्णेसु य एवमाइएसु अमणुण्णपावगेसु ण तेसु समणेणं रूसियव्वं जाव ण दुगुंछावतिया वि लब्भा उप्पाएउं एवं चक्खिदिय-भावणा भाविओ भवइ अंतरप्पा जाव चरेज्ज धम्मं ।

शब्दार्थ - पुणरवि - फिर, चक्खिदिण - चक्षु-इन्द्रिय के द्वारा, पासिय - देखकर, रूवाइं - रूपों को, अमणुण्णपावगाइं - अमनोज्ञ और पापकारी, किं ते - वे कौन-से हैं, गंडि - गंडमाला का रोगी, कोडिक - कोढ़-ग्रस्त, कुणि - जिसका एक हाथ कटा हुआ हो, उयरि - जलोदर रोग वाला, कच्छुल्ल - जिसके सारे शरीर में दाद हो रहे हैं, पइल्ल - पैर के श्लोपद रोग वाला, कुज्ज - कूबड़ा, पंगुल - लंगड़ा, वामण - वामन-बौना, अंधिल्लग - जन्मान्ध, एगचक्खु - काना, विणिहय - फूटी आँखों वाला, सप्पि - पीठ में सर्पि रोग वाला, सल्लग - शूल रोग वाला, वाहिरोगपीलियं - व्याधि और रोगों से पीड़ित, विगयाणि - विकृत, मयग-कलेवराणि - मुर्दा-शरीर, सकिमिणकुहियं - जिसमें कीड़े पड़ गये हैं और सड़ गया है ऐसा, दव्वरासिं - द्रव्यों के ढेर को, अण्णेसु - दूसरे, एवमाइएसु - इसी प्रकार के, अमणुण्णपावएसु - अमनोज्ञ और घृणाजनक पदार्थ, तेसु - उनमें, समणेणं - साधु, ण रूसियव्वं - द्वेष नहीं करे, जाव - यावत्, ण दुगुंछावतिया वि लब्भा उप्पाएउं - घृणा उत्पन्न नहीं करना चाहिए, एवं - इस प्रकार, चक्खिदियभावणा भाविओ - चक्षुइन्द्रिय की भावना से भावित, भवइ - होता है, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, चरेज्ज धम्मं - धर्म का आचरण करे।

भावार्थ - मन को बुरे लगने वाले अशुभ दृश्यों को देखकर मन में द्वेष नहीं लावे। वे अप्रिय रूप कैसे हैं ? - गण्डमाला का रोगी, कोढ़ी, कटे हुए हाथ वाला या जिसका एक हाथ या एक पाँव छोटा हो, जलोदररुदि उदर रोग वाला, दाद से विकृत शरीर वाला, पाँव में श्लोपद रोग हो, कूबड़ा, बौना, लंगड़ा, जन्मान्ध, काना, फूटी आँख वाला, सर्पिरोग वाला, शूल रोगी, इन व्याधियों से पीड़ित, विकृत-शरीरी, मृतक-शरीर जो सड़ गया हो, जिसमें कीड़े कुलबुला रहे हों और घृणित वस्तुओं के ढेर तथा ऐसे अन्य प्रकार के अमनोज्ञ पदार्थों को देख कर, साधु उनसे द्वेष नहीं करे यावत् घृणा नहीं लावे।

इस प्रकार चक्षुइन्द्रिय सम्बन्धी भावना से अपनी अन्तरात्मा को प्रभावित करता हुआ-पवित्र रखता हुआ धर्म का आचरण करता रहे।

तीसरी भावना-घ्राणेन्द्रिय-संयम

तइयं घ्राणिंदिण अग्घाइय गंधाइं मणुण्णभइगाइं। किं ते? जलय-थलय-सरस-पुप्फ-फल-पाण-भोयण-कुट्ट-तगर-पत्त-चोयदमणग-मरुय-एला-रस-पिक्कमंसि-गोसीस-सरस-चंदण-कप्पूर-लवंग-अगर-कुंकुम-कक्कोल-उसीर-सेयचंदण-सुगंधसारंग-जुत्तिवर-धूववासे उउय-पिंडिम-णिहारिमगंधिएसु अण्णेसु य एवमाइएसु गंधेसु मणुण्णभइएसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं जाव ण सइं च मइं च तत्थ कुज्जा।

शब्दार्थ - तइयं - तीसरी, घ्राणिंदिण - घ्राणेन्द्रिय से, अग्घाइय - सूँघ कर, गंधाइं - गन्धों को, मणुण्णभइगाइं - मनोज्ञ और उत्तम, किं ते - वे कौन से हैं, जलय-थलय-सरस-पुप्फ - जल और स्थल में उत्पन्न होने वाले उत्तम फूल, फल-पाण-भोयण - फल पानी और भोजन, कुट्ट - कमल का पराग, तगर - तगर, पत्त - तमाल पत्र, चोय - छिलका, दमणग - दमनक-एक प्रकार का फूल, मरुय-मरुआ, एणारस - इलायची का रस, पिक्कमंसि - पकी हुई मांसी, गोसीस-सरस-चंदण - गोशीर्ष नामक सरस चन्दन, कप्पूर - कपूर, लवंग - लौंग, अगर - अगर, कुंकुम - कुंकुम, कक्कोल - कक्कोल, उसीर - वीरण-खश, सेयचंदण - श्वेत चन्दन-मलय चन्दन, सुगंधसारंगजुत्तिवरधूववासे - इन उत्तम गंध वाले पदार्थों का जिसमें सम्मिश्रण है ऐसे धूप की सुगन्ध को, उउयपिंडिम-णिहारिमगंधिएसु- ऋतु के अनुसार उत्पन्न फूल जिनका गन्ध बहुत दूर तक फैलता है उनके गंध को, अण्णेसु - दूसरे, य - और, एवमाइएसु - इसी प्रकार के, गंधेसु - गन्ध वाले पदार्थों को सूँघ कर, मणुण्णभइएसु - मनोज्ञ और श्रेष्ठ, ण तेसु समणे सज्जियव्वं - उनमें साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए, जाव - यावत्, सइं-स्मरण, य-और, मइं - विचार, तत्थ - उनका, ण कुज्जा-नहीं करना चाहिए।

भावार्थ - तीसरी भावना घ्राणेन्द्रिय-संवर है। मनोहर उत्तम सुगन्धों में आसक्त नहीं होना चाहिए। वे सुगन्ध कौन-से हैं? जल और स्थल में उत्पन्न सरस पुष्प और फल तथा भोजन, पानी, कमल का पराग, तगर, तमाल-पत्र, छाल, दमनक, मरुआ, इलायची, पक्कमांसी (एक सुगन्धित द्रव्य) गोशीर्ष नामक सरस चन्दन, कपूर, लौंग, अगर, कुंकुम (केसर) कक्कोल, वीरण (खश) श्वेत चन्दन, (मलय चन्दन) उत्तम गन्धवाले पदार्थों के मिश्रण से बने हुए धूप की सुगन्ध, ऋतु के अनुसार उत्पन्न पुष्प, जिनकी गन्ध दूर तक फैलती है, इसी प्रकार के अन्य मनोज्ञ एवं श्रेष्ठ गन्ध वाले पदार्थों की गन्ध पर साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए यावत् उन गन्धों का स्मरण एवं चिन्तन भी नहीं करना चाहिए।

पुणरवि घ्राणिंदिण अग्घाइय गंधाइं अमणुण्णपावगाइं। किं ते? अहिमड-अस्समड-हत्थिमड-गोमड-विग-सुणग-सियाल-मणुय-मज्जार-सीह-दीविय-मय-

कुहिय-विणट्ट-किविण-बहुदुरभिगंधेसु अण्णेहु य एवमाइएसु गंधेसु अमणुण्ण पावगेसु ण तेसु समणेण रूसियव्वं जाव पणिहियपंचिंदिए चरेज्ज धम्मं ।

शब्दार्थ - पुणरवि - पुनः, घाणिंदिएण - घ्राणेन्द्रिय से, अग्घाइय - सूँघ कर अपने मन में द्वेष न लावे, गंधाइं - गन्धों को, अमणुण्णपावगाइं - अमनोज्ञ और बुरे, किं ते - वे कौन-से हैं, अहिमड-मरा हुआ सर्प, अस्समड - मरा हुआ घोड़ा, हत्थिमड - मरा हुआ हाथी, गोमड - मरा हुआ बैल, विग-भेड़िया, सुणग - कुत्ता, सियाल - शृगाल, मणुय - मनुष्य, मज्जार - बिल्ली, सीह - सिंह, दीविय - द्वीपी-चीता, मय - मृत कलेवर, कुहिय - जो सड़ गये हैं, विणट्ट - विकृत हो गये हैं, किविण - जिनमें कीड़े पड़ गये हैं, बहुदुरभिगंधेसु - अत्यन्त दुर्गन्ध वाले हैं, अण्णेसु - दूसरे, य-और एवमाइएसु-इसी प्रकार के, गंधेसु - गन्ध वाले पदार्थ, अमणुण्णपावगेसु - अमनोज्ञ और बुरे, तेसु - उनमें, समणेण-साधु, ण रूसियव्वं - द्वेष नहीं करे, जाव - यावत्, पणिहियपंचिंदिए - पाँचों इन्द्रियों को वश में रखता हुआ, चरेज्ज धम्मं - धर्म का आचरण करे।

भावार्थ - घ्राणेन्द्रिय से अप्रिय लगने वाली दुर्गन्ध के प्रति द्वेष नहीं करना चाहिए। वे दुर्गन्धित पदार्थ कौन से हैं? मरे हुए सर्प का कलेवर, मरा हुआ घोड़ा, हाथी, बैल, भेड़िया, कुत्ता, शृगाल, मनुष्य, बिल्ली, सिंह, चीता इत्यादि के शव सड़ गए हों, उनमें कीड़े पड़ गए हों, जिनकी दुर्गन्ध अत्यन्त असह्य एवं दूर तक फैली हो और अन्य भी दुर्गन्धमय पदार्थों की गन्ध प्राप्त होने पर, साधु उस पर द्वेष नहीं करे यावत् अपनी पाँचों इन्द्रियों को वश में रखता हुआ धर्म का आचरण करे।

चतुर्थ भावना-रसनेन्द्रिय-संयम

चउत्थं जिब्भिंदिएणसाइयरसाणि मणुण्णभद्दगाइं । किं ते ? उग्गाहिमविविहपाण-भोयण-गुलकय-खंडकय-तेल्ल-घयकय-भक्खेसु-बहुविहेसु लवणरससंजुत्तेसु महुमंस-बहुप्पगारमज्जिय-णिट्ठाणगदालियंब-सेहंब-दुद्धदहि-सरयमज्जवरवारुणी-सीहु-काविसायण-सायट्टारस-बहुप्पगारेसु भोयणेसु य मणुण्ण-वण्णगंधरसफास-बहुदव्व-संभिएसु अण्णेसु य एवमाइएसु रसेसु मणुण्णभद्दएसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं जाव ण सइं च मइं च तत्थ कुजा ।

शब्दार्थ - चउत्थं - चतुर्थ, जिब्भिंदिएण - जिह्वेन्द्रिय द्वारा, साइय - आस्वाद लेकर, रसाणि - रसों का, मणुण्णभद्दगाइं - मनोज्ञ और उत्तम, किं ते - वे कौन-से हैं, उग्गाहिय - घेवर आदि पक्वान्, विविह पाण - विविध प्रकार के पीने योग्य पदार्थ, भोयण - भोजन, गुलकयखंडकय - गुड़ और शक्कर से निर्मित, तेल्लघयकय - तेल और घी में पकाये हुए, भक्खेसु - खाद्य पदार्थों में, बहुविहेसु-विविध प्रकार के, लवणरससंजुत्तेसु - नमकीन स्वाद वाले पदार्थों में, महु - मधु, मंस - मांस,

बहुप्यगारमज्जिय - बहुत प्रकार की मदिरा, **णिट्ठाणग** - बहुमूल्य चीजों से बनाया हुआ द्रव्य, **दालियंब**-कांजी बड़े, **सेहंब** - आम आदि का अचार अथवा इमली की चटनी, **दुद्ध** - दूध, **दही** - दही, **सरय** - सिरका, **मच्च** - मद्य, **वरवारुणि** - उत्कृष्ट मदिरा, **सीहु** - सिधु, **काविसायण** - कापीशायन मदिरा विशेष, **सायट्टारस** - शाक है अठारहवाँ जिनमें ऐसे, **बहुप्यगारेसु** - बहुत प्रकार के, **भोयणोसु** - भोजन, **य** - और, **मणुण्ण-वण्णगंधरसफास-बहुदव्व-संभिएसु** - जिनका वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श बहुत ही उत्तम है और उत्तम पदार्थों से संस्कारित किये गये हैं ऐसे, **अण्णोसु** - दूसरे, **य** - और, **एवमाइएसु** - इसी प्रकार के, **रसेसु** - रसों का स्वाद ले कर, **मणुण्णभहएसु** - मनोज्ञ और स्वादिष्ट, **तेसु** - उनमें, **समणेण** - साधु, **ण सज्जियव्वं** - आसक्त नहीं हो, **जाव** - यावत्, **सइं** - स्मरण, **य** - और, **मइं** - विचार, **तत्थ** - उनका, **ण कुज्जा** - नहीं करे।

भावार्थ - चौथी भावना जिह्वेन्द्रिय का निग्रह है। साधु रसनेन्द्रिय द्वारा मनभावने एवं उत्तम रसों का आस्वादन करके आसक्त नहीं बने। वे रस कौन-से हैं ?

उत्तर - घृत में तल कर बनाये गए घेवर खाजा आदि और विविध प्रकार के भोजन-पान, गुड़ और शक्कर से बनाये हुए तिलपट्टी लड्डू, मालपूआ आदि भोज्य पदार्थों में, अनेक प्रकार की लवणयुक्त (नमकीन-मशालेदार) वस्तुओं में, मधु, मांस, बहुत प्रकार की मदिरा बहुमूल्य सामग्री से निर्मित पदार्थ कांजी बड़े, आम आदि का अचार या इमली आदि की चटनी, दूध, दही, सिरका, मद्य, वरवारुणी (उत्तम मदिरा) सिधु (आसव विशेष-गन्ना आदि से बनाया हुआ मद्य) कपिशायन (मदिरा विशेष) अठारह प्रकार के शाक (अथवा अठारहवाँ शाक है जिस भोजन में ऐसा) और विविध प्रकार के भोजन तथा वे द्रव्य कि जिनका वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श उत्तम है और उत्तम वस्तुओं के योग से संस्कारित किये गये हैं, इस प्रकार के सभी उत्तम एवं मनोज्ञ स्वादिष्ट रसों में साधु आसक्त नहीं बने यावत् उनका स्मरण-चिन्तन भी नहीं करे।

विवेचन - उपरोक्त भावना में मन-मोहक उत्तम रसों का वर्णन करते हुए शास्त्रकार ने 'मधु मद्य और मांस' का भी उल्लेख किया है। जैन मात्र के लिए इनका सेवन निषिद्ध है। ये वस्तुएँ आसक्ति बढ़ाने और लुब्धता में वृद्धि करने वाले पदार्थों में सम्मिलित हैं, इसलिए मनोज्ञ रस वाले पदार्थों में इनकी भी गणना की गई है अथवा जिसने गृहस्थावस्था में इनका आस्वादन किया हो और उनके देखने या स्मृति में आने से रसाकर्षण उत्पन्न हो, तो उससे बचने के लिए साधु को रसनेन्द्रिय निग्रह करने का उपदेश दिया है।

पुणरवि जिब्भिंदिण साइय रसाइं अमणुण्णपावगाइं किं ते? अरस-विरस-सीय-लुक्ख-णिज्जप्यपाण-भोयणाइं दोसीण-वावण्ण-कुहिय-पूइय-अमणुण्ण-विणट्ठप्यसूय-बहुदुब्धिगंधियाइं तित्त-कडुय-कसाय-अंबिलरस-ल्लिंडणीरसाइं अण्णोसु य एवमाइएसु रसेसु अमणुण्णपावगेसु ण तेसु समणेण रूसियव्वं जाव चरेज्ज धम्मं।

शब्दार्थ - पुणरखि - पुनः जिभिंदिएण - जिह्वेन्द्रिय द्वारा, साइय - स्वाद लेकर, रसाइं - रसों का, अमणुण्णपावगाइं - अमनोज्ञ और बुरे, किं ते - वे कौन-से हैं, अरस - अरस, विरस-विरस, सीय-ठंडा, लुक्ख - रूखा, णिज्जप्प - निस्सार, पाणभोयणाइं - पानी तथा आहार, दोसीण - रात्रि का पकाया हुआ अन्न, खावण्ण - विकृत स्वाद वाला, कुहिय - सड़ा हुआ, पूइयं - अपवित्र, अमणुण्ण - अमनोज्ञ, विणट्ठ - अत्यन्त विकृत अवस्था को प्राप्त, पसूय बहुदुब्धिगंधियाइं - जिससे अत्यन्त दुर्गन्ध निकल रही है ऐसा, तित्त - तीखा, कडुय - कडुआ, कसाय - कषैला, अंबिलरस - खट्टा, लिंडणीरसाइं - बिल्कुल नीरस आहार-पानी, अण्णेसु - दूसरे, य - और एवमाइएसु - इसी प्रकार के, रसेसु - रसों का, अमणुण्णपावगेसु - अमनोज्ञ और बुरे, तेसु - उनमें, समणेण - साधु, ण रूसियव्वं-द्वेष भाव नहीं लावे, जाव - यावत्, चरेज्ज धम्मं - धर्म का आचरण करे।

भावार्थ - रसनेन्द्रिय के द्वारा अमनोज्ञ-अरुचिकर-बुरे रसों का आस्वाद लेकर उनमें द्वेष नहीं करे। वे अनिच्छनीय रस कौन-से हैं ?

उत्तर - अरस, विरस; शीत (ठंडा), रूक्ष और निस्सार आहारपानी, रात्रि में पकाया हुआ, विकृत रस वाला, सड़ा हुआ, बिगड़ा हुआ, घृणित, अत्यन्त विकृत बना हुआ, जिससे अत्यन्त दुर्गन्ध आ रही है ऐसा तीखा, कडुआ, कषैला, खट्टा और अत्यन्त नीरस आहार पानी और इसी प्रकार के अन्य घृणित रसों पर, साधु द्वेष नहीं करे, रुष्ट नहीं होवे और रसना पर संयम रख कर धर्म का पालन करे।

पंचम भावना-स्पर्शनेन्द्रिय-संयम

पंचमगं फासिंदिएण फासिय फासाइं मणुण्णभद्दगाइं। किं ते? दग-मंडव-हार-सेयचंदण-सीयल-विमल-जल-विविहकु सुम-सत्थर-ओसीर-मुत्तिय-मुणाल-दोसिणापेहुणउक्खेवग-तालियंट-वीयणगजणियसुहसीयले य पवणे गिम्हकाले सुहफासाणि य बहुणि सयणाणि आसणाणि य पाउरणगुणे य सिसिरकाले अंगारपयावणा य आयवणिद्धमउयसीय-उसिणलहुआ य जे उउसुहफासा अंगसुह-णिव्वुइगरा ते अण्णेसु य एवमाइएसु फासेसु मणुण्णभद्दगेसु ण तेसु समणेण सजियव्वं ण रजियव्वं ण गिञ्जियव्वं ण मुमञ्जियव्वं ण विणिग्घायं आवजियव्वं ण लुब्धियव्वं ण अज्जोववजियव्वं ण तूसियव्वं ण हसियव्वं ण सइं च मइं च तत्थ कुज्जा।

शब्दार्थ - पंचमगं - पांचवीं, फासिंदिएण - स्पर्शनेन्द्रिय से, फासिय - स्पर्श करके, फासाइं - स्पर्शों का, मणुण्णभद्दगाइं - मनोज्ञ और सुखकारी, किं ते - वे कौन से हैं, दगमंडव - जिनमें से जल झर रहा है ऐसे मंडप, हार - हार, सेयचंदण - श्वेत चन्दन, सियलविमलजल - शीतल और निर्मल जल, विविह कुसुमसत्थर - विविध प्रकार के फूलों की शय्या, ओसीर - खश, मुत्तिय - मोतियों की

माला, मुणाल - कमल की माला, दोसिणा - रात्रि की चांदनी, पेहुणउक्खेवग - मोर के पिच्छों का पंखा, तालियंटवीयणग - ताड़ का पंखा, जणियसुहसीयले - इन वस्तुओं से उत्पन्न होने वाला सुखदायक शीतल, य - और, पवणे - पवन, गिम्हकाले - ग्रीष्मकाल में, सुहफासाणि - सुखदायक स्पर्श वाले, बहूणि - बहुत-से, सयणाणि - शयन, य - और, आसणाणि - आसन, पाउरणगुणे - शीत हरण करने वाला शाल-दुशाला, सिसिरकाले - शीतलकाल में, अंगारपयावणा - अग्नि से तापना, य - और, आयव - सूर्य की धूप का सेवन करना, गिद्ध - स्निग्ध-चिकना, मउय - मृदु, सीय - शीतल, उमिण - उष्ण, लहुय - हल्का, य - और, जे - जो, उउसुहफासा - उन-उन ऋतुओं में सुखदायक स्पर्श वाले पदार्थ, अंगसुहणिव्वइगरा - अंग को सुख देने वाले पदार्थों का स्पर्श करके, अण्णोसु - दूसरे, य - और, एवमाइएसु - इसी प्रकार के, फासेसु - स्पर्श वाले पदार्थों का स्पर्श करके, मणुण्णभइगोसु - मनोज्ञ और सुखकारी, तेसु - उनमें, समणेण - साधु को, ण सज्जियव्वं - आसक्त नहीं होना चाहिए, ण रज्जियव्वं - अनुरक्त नहीं होना चाहिए, ण गिण्णियव्वं - गृद्ध नहीं होना चाहिए, ण मुण्णियव्वं - मूर्च्छित नहीं होना चाहिए, ण विण्णियायं आवज्जियव्वं - उन स्पर्शों के लिए किसी जीव की घात नहीं करनी चाहिए, ण लुब्भियव्वं - लुब्ध नहीं होना चाहिए, ण अण्णोववज्जियव्वं - उनके लिए चिन्तित नहीं रहना चाहिए, ण तूसियव्वं - संतोष एवं हर्ष नहीं करना चाहिए, ण हूसियव्वं - हँसना नहीं चाहिए, सइं - स्मरण, य - और, मइं - विचार, तत्थ - उनका, ण कुज्जा - नहीं करना चाहिए।

भावार्थ - पांचवों भावना स्पर्शनेन्द्रिय संवर है। साधु स्पर्शनेन्द्रिय से, मनोज्ञ और सुखदायक स्पर्शों को स्पर्श कर उनमें आसक्त नहीं बने। वे मनोज्ञ स्पर्श वाले द्रव्य कौन-से हैं? जिनमें से जलकण बरस रहे हैं, ऐसे मण्डप (फव्वारा युक्त मण्डप) हार (मालाएँ) श्वेत चन्दन, निर्मल शीतल जल, विविध प्रकार के फूलों की शय्या, खश, मोतियों की माला, कमल की माला, इनका स्पर्श करना, रात्रि में निर्मल चांदनी में बैठकर, सो कर या विचरण कर सुखानुभव करना, ग्रीष्मकाल में मयूरपंख का और ताड़पत्र का पंखा झल कर शीतल वायु का सेवन करना और कोमल स्पर्श वाले वस्त्र, बिछौने और आसन का उपयोग करना, शीतकाल में उष्णता उत्पन्न करने वाले वस्त्र-शाल-दुशाले आदि ओढ़ना तथा अग्नि के ताप या सूर्य के ताप का सेवन करना तथा ऋतुओं के अनुसार स्निग्ध, मृदु, शीतल, उष्ण, लघु आदि सुखदायक पदार्थों का और इसी प्रकार के अन्य सुखद स्पर्शों का अनुभव करके आसक्त नहीं होना चाहिए। अनुरक्त, लुब्ध, गृद्ध एवं मूर्च्छित भी नहीं होना चाहिए और उन स्पर्शों को प्राप्त करने की चिंता तथा प्राप्ति पर प्रसन्न, तुष्ट एवं हर्षित नहीं होना चाहिए, इतना ही नहीं, इन्हें प्राप्त करने का विचार अथवा पूर्व प्राप्त का स्मरण भी नहीं करना चाहिए।

विवेचन - स्पर्शनेन्द्रिय के वश होकर साधु-साध्वी, संयमधर्म की उपेक्षा नहीं कर दें, इसलिए सूत्रकार भगवंत ने उपरोक्त उपदेश दिया है। सुखशीलिये बने हुए साधु, संयम को दूषित करते हैं। सुखशीलियापन से संयम में क्षति होती है। मुलायम एवं उज्वल वस्त्र, अकारण सुगन्धित तेल की

मालिश, टूथपेस्ट सेवन, स्नान, अकारण वस्त्र-धोवन आदि प्रवृत्ति भी इस महाव्रत और इस भावना का उल्लंघन करके ही की जाती है। आत्मारथियों को इससे बचना चाहिए।

पुणरवि फासिंदिएण फासिय फासियाइं अमणुण्णपावगाइं। किं ते? अणेग-वह-बंध-तालणंकण-अइभारारोवणए अंगभंजण-सूईणखप्पवेस-गायपच्छणण-लक्खारसखारतेल्ल कलकलंत-तउय-सीसग-काललोह-सिंचण-हडिबंधण-रज्जुणिगल संकल-हत्थंडुय-कुंभिपागदहण-सीहपुच्छण-उब्बं-धण-सूलभेय-गयचलण-मलण-करचरण-कण्ण-णासोदु-सीसच्छेयण जिब्बच्छेयण-वसण-णयण-हियय-दंतभंजण-जोत्तलय-कसप्पहार-पाय-पण्ह-जाणु-पत्थर-णिवाय-पीलण-कविकच्छु-अगणि-विच्छुयडक्क-वायाततव-दंसमसग-णिवाए दुट्टणिसज्ज-दुण्णिणीसीहिय-दुब्धि-कक्खड-गुरु-सीय-उसिण-लुक्खेसु बहुविहेसु अण्णेसु य एवमाइएसु फासेसु अमणुण्णपावगेसु ण तेसु समणेण रूसियव्वं ण हीलियव्वं ण णिंदियव्वं ण गरहियव्वं ण खिसियव्वं ण छिंदियव्वं ण भिंदियव्वं ण वहेयव्वं ण दुगंछावत्तियव्वं य लुब्भाउप्पाएउं एवं फासिंदियभावणा भाविओ भवइ अंतरप्पा, मणुण्णामणुण्ण-सुब्धि-दुब्भिरागदोसपणिहियप्पा साहू मणवयणकायगुत्ते संवुडेणं पणिहिइंदिए चरिज्ज धम्मं।

शब्दार्थ - पुणरवि - फिर, फासिंदिएण - स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा, फासिय - स्पर्श करके, फासियाइं-स्पर्शों का, अमणुण्णपावगाइं - अमनोज्ञ और बुरे, किं ते - वे कौन से हैं, अणेग - विविध प्रकार से, वह - वध करना, बंध - बाँधना, तालण - ताड़ना, अंकण - दाग देना, अइभारारोहण - बहुत भार लादना, अंगभंजण - अंगों को मरोड़ कर तोड़ना, सूईणखप्पवेस - नखों में सूई चुभाना, गायपच्छणण-शरीर को छिलना, लक्खारसखारतेल्लकलकलंत - लाख के रस को और कड़ुए तेल को अति तप्त करके उसके द्वारा शरीर का सेंकना, तउय - रांगा, सीसग - शीशी, काललोह - तप्त लोहे द्वारा, सिंचण-सींचना, हडिबंधण - हड्डी-बंधन, रज्जुणिगलसंकल - रस्सी या बेड़ी से बन्धन, हत्थंडुय - हाथों को बांध देना, कुंभिपाग - कुम्भि में पकाया जाना, दहण - अग्नि से जलाया जाना, सीहपुच्छण - अंडकोश निकालना, उब्बं-धण - उद्वन्धन-गले में रस्सी बांध कर लटना देना, सूलभेय - शूली पर चढ़ा कर भेदन करना, गयचलणमलण - हाथी के पाँव के नीचे डाल कर मसल डालना, करचरण-कण्ण-णासोदुसीसच्छेयण - हाथ, पाँव, कान, नाक, ओष्ठ और सिर का छेदन, जिब्बच्छेयण - जीभ को उखाड़ना, वसणणयण-हिययदंत-भंजण - अण्डकोश, नेत्र, हृदय और दाँतों को उखाड़ लेना, जोत्तलयकसप्पहार - चमड़े की चाबुक, हण्टर और लता द्वारा ताड़ना, पायपण्हजाणुपत्थरणिवाय -

पांव, ऐड़ी और घुटना पर पत्थर मारना, पीलण - कोल्हू में डाल कर पीड़न करना, कविकच्छु - तीव्र खाज उत्पन्न करने वाले फल विशेष द्वारा ताड़ना, अगणि - अग्नि में तपाना, विच्छुयडक्क - बिच्छू का डंक मारना, वायातवदंसमसगणिवाय - वायु, धूप, डांस और मच्छर आदि से होने वाला कष्ट, दुदुणिसज्जसीहिय - कष्टदायक शय्या और आसन, दुब्भिकवखड - अत्यन्त कर्कश, गुरु - भारी, सीय-शीत, उसिण - उष्ण, लुक्खेसु - रूक्ष, बहुविहेसु - विविध प्रकार के, अण्णेसु - दूसरे, य - और, एवमाइएसु - इसी प्रकार के, फासेसु - स्पर्श करके, अमणुण्णपावगेसु - अमनोज्ञ और बुरे, तेसु - उनमें, समणेण - साधु को, ण रूसियव्वं - द्वेष नहीं करना चाहिए, ण हीलियव्वं - हीलना नहीं करनी चाहिए, ण णिंदियव्वं - निन्दा नहीं करनी चाहिए, ण गरहियव्वं - गर्हा नहीं करनी चाहिए, ण खिसियव्वं - खिसना नहीं चाहिए, ण छिंदियव्वं - छेदन नहीं करना चाहिए, ण भिंदियव्वं - भेदन नहीं करना, ण वहेयव्वं - वध नहीं करना, य - और, ण दुगुच्छावत्तियं उप्पाएउं ण लब्भा - उनमें घृणा भी उत्पन्न नहीं करनी चाहिए, एवं - इस प्रकार, फासिंदिय भावणा भाविओ - स्पर्शनेन्द्रिय की भावना से भावित, अंतरप्पा - अन्तरात्मा, भवई - होता है, मणुण्णामणुण्ण-सुब्भि-दुब्भिरागदोसपणिहियप्पा - मनोज्ञ, अमनोज्ञ, सुगन्धित और दुर्गन्धित पदार्थों में अपनी आत्मा को राग-द्वेष रहित रखता हुआ, मणवयणकायगुत्ते - मन, वचन और काया से गुप्त, संवुडे - संवरधारी, पणिहिइंदिए - जितेन्द्रिय, साहू - साधु, चरिज्ज धम्मं - धर्म का आचरण करे।

भावार्थ - मनोज्ञ स्पर्श की रुचि, आसक्ति एवं लुब्धता का निषेध करने के बाद अमनोज्ञ स्पर्श के प्रति द्वेष का निषेध किया जा रहा है। साधु, स्पर्शनेन्द्रिय से अमनोरम स्पर्श करके उन पर क्रोध या द्वेष नहीं करे। वे अमनोज्ञ स्पर्श कौन से हैं ?

उत्तर - विविध प्रकार से कोई वध करे, रस्सी आदि से बांधे, थप्पड़ आदि मारकर ताड़ना करे, अंकन-उष्ण लोह-शलाका से दाग-कर अंग पर चिह्न बनावे, शक्ति से अधिक भार लादे, अंगों को तोड़े-मरोड़े, नखों में सूई चुभावे, शरीर को छिले, उबलता हुआ लाख का रस, क्षारयुक्त तेल, रांगा, शीशा और तप्त लोह-रस से अंग सिंचन करे (शरीर पर ऊँडले) 'हड्डिबन्धन (खोड़े में पाव फँसाकर बन्दी बनावे) रस्सी या बेड़ी से बांधे, हाथों में हथकड़ी डाले, कुंभी में पकाया जाय, अग्नि में जलावे, सिंहपुच्छन (शिशुन भंग करे या अण्डकोश निकालकर नपुंसक करे) उद्धन्धन-वृक्ष आदि पर बांध कर लटकावे, शूल भोंके या शूली पर चढ़ावे, हाथी के पैरों में डाल कर कुचले, हाथ, पाँव, कान, ओष्ठ, नासिका और मस्तक का छेदन करे। जीभ उखाड़ले, अण्डकोश, नेत्र, हृदय और दाँतों को उखाड़ दे, चाबुक, बेंत या लता से प्रहार करे, पाँव, ऐड़ी, घुटना और जानु आदि पर पत्थर से प्रहार करे, कोल्हू आदि में डाल कर पीले, करेच फल के बुरे या अन्य साधन से तीव्र रूप से खुजली उत्पन्न करे, आग में तपावे या जलावे, बिच्छू से दंक लगवावे, वायु धूप, डांस-मच्छर आदि से होने वाले कष्ट, ऊबड़-

खाबड़ शय्या एवं आसन तथा अत्यन्त कठोर, भारी, शीत, उष्ण, रूक्ष और इस प्रकार के अन्य अनिच्छनीय एवं दुःखदायक स्पर्श होने पर साधु को उन पर द्वेष नहीं करना चाहिए। हीलना, निन्दा, गर्हा और खिंसना नहीं करनी चाहिए। क्रोधित होकर उनका छेदन-भेदन और वध नहीं करना। उन पर घृणा भी नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार स्पर्शनिन्द्रिय सम्बन्धी भावना से भावित आत्मा वाला साधु, निर्मल होता है। उसका चरित्र विशुद्ध रहता है। मनोज्ञ और अमनोज्ञ, सुगन्धित या दुर्गन्ध युक्त पदार्थों में आत्मा को राग-द्वेष रहित रखता हुआ साधु, मन, वचन और काया से गुप्त एवं संवृत्त रहे और जितेन्द्रिय होकर धर्म का आचरण करे।

पंचम संवरद्वार का उपसंहार

एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहिं पंचहिं वि कारणेहिं मणवयकायपरिरक्खिण्हिं णिच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया, अणासवो अकलुसो अच्छिहो अपरिस्सावी अंसकिलिट्ठो सुद्धो सव्वजिणमणुण्णाओ।

शब्दार्थ - एवमिणं - इस प्रकार, संवरस्स - संवर का, दारं - द्वार, सम्मं - भली-भाँति, संवरियं-पालन किया हुआ, होइ - होता है, सुप्पणिहियं - सुप्रणिहित-सुरक्षित, इमेहिं - इन, पंचहिं - पांच, कारणेहिं - कारणों से, मणवयकायपरिरक्खिण्हिं - मन, वचन और काया से रक्षित करता हुआ, णिच्चं - सदैव, आमरणंतं - मरण-पर्यन्त, एस - इस, जोगो - योग का, णेयव्वो - पालन करना चाहिए, धिइमया - धैर्य-सम्पन्न, मइमया - बुद्धिमान्, अणासवो - आस्रव-रहित, अकलुसो - कलुषता-रहित, अच्छिहो - छिद्र-रहित, अपरिस्सावी - कर्म प्रवेश से रहित, अंसकिलिट्ठो - संक्लेश रहित, सुद्धो - शुद्ध, सव्वजिणमणुण्णाओ - सभी जिनेश्वरों द्वारा आज्ञापित।

भावार्थ - इस प्रकार विशुद्धता पूर्वक आचरण करने से इस संवर द्वार का सम्यक् रूप से पालन होकर सुरक्षित होता है। धृतिमन्त और सुमतिवान् साधु इन पांच कारणों (भावनाओं) से, मन, वचन और काया से इस योग (व्रत) की रक्षा करता हुआ मृत्युपर्यन्त पालन करे।

यह व्रत, आस्रव-रहित, कलुष-रहित, छिद्र-रहित, कर्म-प्रवेश के मार्ग से रहित और संक्लेश से रहित है। यह सभी जिनेश्वरों द्वारा अनुज्ञापित है।

अकलुष - निर्मल-रज-रहित।

अच्छिद्र - किसी भी दोष के लिए जहाँ छिद्र-अवकाश नहीं हो।

अपरिस्वावी - समस्त गुणों का धारक, विशुद्ध परिणाम।

असंक्लिष्ट - संक्लेशन-रहित, शुद्ध भावपूर्वक।

एवं पंचमं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहिए भवइ *। एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं। त्ति बेमि।

॥ पंचमं संवरदारं सम्मत्तं ॥

शब्दार्थ - एवं - इस प्रकार, पंचमं - पाँचवां, संवरदारं - संवरद्वार, फासियं - स्पृष्ट, पालियं - पालित, सोहियं - शोभित एवं शोधित, तीरियं - तीरित, किट्टियं - कीर्तित, अणुपालियं - अनुपालित, आणाए - आज्ञानुसार, आराहियं - आराधित, भवइ - होता है, णायमुणिणा भगवया - ज्ञातकुलोत्पन्न भगवान् महावीर स्वामी ने, पण्णवियं - कहा है, परूवियं - प्ररूपणा की है, पसिद्धं - प्रसिद्ध, सिद्धं - सिद्ध, सिद्धवरसासणं - अपने कार्य को सिद्ध करने वाले तीर्थंकर भगवान् की प्रधान आज्ञा है, इणं - इसके लिए, आघवियं - सम्यक् प्रकार से निरूपण, सुदेसियं - भली प्रकार उपदेशित, पसत्थं - प्रशस्त, सम्मत्तं - समाप्त हुआ, त्ति बेमि - ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ - इस प्रकार पंचम संवरद्वार का स्पर्श किया जाता है, पालन और शोधन होता है, पार पहुँचाया जाता है, कीर्तित होता है, आराधना होती है, जिनेश्वर की आज्ञानुसार अनुपालना एवं आराधना होती है। ऐसा ज्ञातकुलोत्पन्न भगवान् महावीर स्वामी ने कहा है। प्ररूपित किया है। यह मार्ग सिद्ध है, प्रसिद्ध है। इसके लिए अपने समस्त कार्य को सिद्ध करने वाले तीर्थंकर भगवन्त की मुख्य रूप से आज्ञा है। भगवान् ने इसका निरूपण किया है, भली प्रकार से उपदेश दिया है। भगवान् का यह उपदेश प्रशस्त (मंगलमय) है। ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ यह पांचवां संवर द्वार समाप्त हुआ ॥

* "वायणंतरे पुण-एयाणि पंचावि सुव्वय-महव्वयाणि लोणधिइकरणाणि, सुयसागरदेसियाणि संजम-सीलव्वयसव्वज्जवमयाणि णरयत्तिरियदेवमणुयगइविज्जयाणि सव्वजिणसासणाणि कम्मरयवियारयाणि भवसयविमोयगाणि दुक्खसयविणासगाणि सुक्खसयपक्त्तयाणि कापुरिससुदुरुत्तराणि सप्पुरिसजणतीरियाणि णिव्वाणमणजाणाणि कहियाणि सग्गपवायगाणि पंचावि महव्वयाणि कहियाणि।"

सम्पूर्ण संवरद्वार का उपसंहार

एयाइं वयाइं पंच वि सुव्वय महव्वयाइं हेउसयविचित्त-पुक्कलाइं कहियाइं अरिहंतसासणे पंच समासेण संवरा वित्थरेण उ पणवीसइ-समियसहिय-संवुडे सया जयण-घडण-सुविसुद्ध-दंसणे एए अणुचरियं संजए चरमसरीरधरे भविस्सइ ।

शब्दार्थ - एयाइं - ये, वयाइं - व्रत, पंच - पाँच, सुव्वय - सुन्दर व्रत के धारण करने वाले, महव्वयाइं - महाव्रत रूप, हेउसय-विचित्त पुक्कलाइं - ये सैकड़ों विचित्र निर्दोष और पुष्ट युक्तियों द्वारा, कहियाइं - कहे गये हैं, अरिहंतसासणे - तीर्थंकर भगवान् के शासन में, पंच - पाँच, समासेण-संक्षेप से, संवरा - संवर है, वित्थरेण - विस्तार से, पणवीसइ - पच्चीस होते हैं, समियसहिय - समिति आदि पांच-पाँच भावनाओं सहित, संवुडे - कषाय तथा इन्द्रियों का निरोध, सया - सदा, जयण-घडण - प्राप्त योग में प्रयत्न और अप्राप्त की प्राप्ति का उपाय करता रहता है, सुविसुद्धदंसणे - विशुद्ध ज्ञान-दर्शन संयुक्त होकर, एए - इंच संवरों का, अणुचरिय - सेवन करके, संजए - साधु, चरम-सरीरधरे - चरम शरीरी, भविस्सइ - हो जाएगा ।

भावार्थ - ये पांच सुव्रत, महाव्रत रूप हैं। आर्हत-दर्शन में ये सैकड़ों निर्दोष एवं शुद्ध युक्तियों से परिपुष्ट हुए हैं। ये पांच संवरद्वार संक्षेप में कहे गये हैं। विस्तार से (भावनाओं से) ये ही पच्चीस होते हैं। जो सुसंयती, समिति आदि भावनाओं से युक्त होकर इनका पालन करते हैं, वे विशुद्ध ज्ञान और दर्शन युक्त होकर अपनी इन्द्रियों और कषाय का निरोध करते हैं तथा प्राप्त योग-महाव्रत के पालन और रक्षण में प्रयत्नशील रहते हैं। जो सुसंयत इनका पालन करेंगे, वे चरिमशरीरी हो जाएंगे।

पणहवागरणे णं एगो सुयक्खंधो दस अज्झयणा एक्कसरगा दससु चेव दिवसेसु उद्विसिज्जंति एगंतरेसु आयंबिलेसु णिरुद्धेसु आउत्त-भत्तपाणएणं अंगं जहा आयारस्स ।

॥ इइ पणहवागरणं सुत्तं सम्मत्तं ॥

शब्दार्थ - पणहवागरणे - प्रश्नव्याकरण सूत्र में, एगो - एक, सुयक्खंधो - श्रुतस्कन्ध है, दस - दस, अज्झयणा - अध्ययन, एक्कसरगा - एक समान, दससु - दस, दिवसेसु - दिनों में, उद्विसिज्जंति - उपदेश किया जाता है, एगंतरेसु - एकान्तर, आयंबिलेसु - आयम्बिल, णिरुद्धेसु - करते हुए, आउत्तभत्तपाणएणं - अन्तप्रान्त आहार करते हुए, इइ - यह, पणहवागरणं - प्रश्नव्याकरण, सुत्तं - सूत्र, सम्मत्तं - समाप्त हुआ ।

भावार्थ - प्रश्नव्याकरण में एक श्रुतस्कन्ध और दस अध्ययन हैं। इसका एक समान दस दिनों में एकान्तर आयंबिल करते हुए अथवा अन्त-प्रान्त आहार करते हुए उपदेश करना चाहिए। विशेष चर्णन आचारांग के समान जानना चाहिए।

यह प्रश्नव्याकरण सूत्र पाप और धर्म का विवेचन करने वाला है। आत्मा से परमात्मा बनाने वाली विशिष्ट एवं सर्वोत्तम साधना का उपदेश करने वाला परमोपकारी सूत्र है। इसका रुचि प्रतीति एवं श्रद्धायुक्त पठन-मनन करके स्पर्शन करने वाले भव्य जीव, निश्चय ही मुक्ति लाभ करेंगे।

जयइ सव्वण्णु सासणं ।

परमसंबोहिए सुहिणो भवंति जीवा, सुहिणो भवंति जीवा ।

जिनेश्वर भगवंत की जय हो ।

निर्ग्रन्थ गुरुवर की जय हो ।

निर्ग्रन्थ धर्म कौ जय हो ॥

॥ प्रश्नव्याकरण सूत्र समाप्त ॥

